मेरे अन्तर भया प्रकाश

□ आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश ।। टेर ।।

[१]

काल अनन्त रुला भव-वन में, बंधा मोह के पाश ।
काम क्रोध मद लोभ भाव से, बना जगत् का दास ।। मेरे० ।।

[२]

तन धन परिजन सब ही पर है, पर की निवारो आश ।
पुद्गल को अपना कर मैने, किया स्वत्व का नाश ।। मेरे० ।।

[३]

रोग शोक का नही मुझको रे, जरा मात्र भी त्रास ।
सदा शान्तिमय मै हूँ मेरा, अचल रूप है खास ।। मेरे० ।।

[४]

इस जग की ममता ने मुझको, डाला गर्भावास ।
अस्थि मासमय अशुचि देह मे, मेरा हुआ निवास ।। मेरे० ।।

[५]

ममता से सताप उठाया, आज हुआ विश्वास ।
भेद-ज्ञान की पैनी धार मे, काट दिया वह पाश ।। मेरे० ।।

(६]

मोह मिथ्यात्व की गाठ गले, तब हो विज्ञान प्रकाश ।
'गजेन्द्र' देखे अलख रूप को, फिर न किसी की आश ।। मेरे० ।।



जिनवाणी

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा, कल्याणी ।
द्रोह, मोह, छल, मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी ।।

संयम-साधना के कल्पवृक्ष परम श्रद्धेय
आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की
दिव्यात्मा को समर्पित

श्रद्धांजलि विशेषांक



प्रधान सम्पादक
डॉ० नरेन्द्र भानावत



सम्पादक
डॉ० श्रीमती शान्ता भानावत



प्रकाशक
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर-३०२ ००३

जिनवाणी

आचार्य श्रीहस्तीमलजी म. सा. श्रद्धांजलि विशेषांक

मई, जून, जुलाई, १९९१
वीर निर्वाण सं. २५१७
वैशाख [द्वितीय], ज्येष्ठ, आषाढ़, स. २०४८
वर्ष : ४८ □ अंक ५–६–७



प्रकाशक :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान न. १८२–१८३ के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर-३०२ ००३ (राजस्थान)
फोन : ५६५९९७

संस्थापक :
श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

सम्पादकीय सम्पर्क सूत्र :
सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर-३०२ ००४ (राज.) फोन ४७४४४

भारत सरकार द्वारा प्रदत्त रजिस्ट्रेशन नं ३९६५३/५७

सदस्यता :
स्तम्भ सदस्यता : १००१ रु
संरक्षक सदस्यता : ५०१ रु.
आजीवन सदस्यता : देश मे २५१ रु.
आजीवन सदस्यता : विदेश मे ७५१ रु.
त्रिवर्षीय सदस्यता : ५५ रु
वार्षिक सदस्यता : २० रु.
इस विशेषांक का मूल्य १० रु.

मुद्रक :
फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर-३०२ ००३ फोन : ५६५९०४

प्रज्ञापुरुष को प्रणाम !

☐ डॉ. नरेन्द्र भानावत

भारतीय श्रमण-परम्परा के महान् आचार्य, उच्च कोटि के आध्यात्मिक सन्त, विशिष्ट ज्ञानी-ध्यानी साधक, संयम-साधना के कल्पवृक्ष, प्रज्ञापुरुष, परम श्रद्धेय पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का २१ अप्रेल, १९९१ को रात्रि ८ बजकर २१ मिनिट पर निमाज (पाली–राजस्थान) में तीन दिन की तपस्या (तेला) सहित तेरह दिवसीय संथारापूर्वक समाधिमरण हो गया। संथारा जैन विधि से इच्छा-मरण की सर्वोत्कृष्ट साधना है। इसमें मृत्यु-समय निकट जानकर देह और आत्मा की पृथकता का बोध कर पूर्ण जागरूक रहते समस्त जीवों से क्षमायाचना कर निडर, निर्द्वन्द्व, निर्लेप और कषाय रहित होकर आत्माभिमुख-अन्तर्लीन हुआ जाता है। आहार का पूर्णरूपेण त्याग कर दिया जाता है। इस अवस्था में किसी के प्रति यहाँ तक कि अपने शरीर के प्रति भी आसक्ति नहीं रहती। संथारा में मृत्यु मंगल महोत्सव बन जाती है, वह दुःख का कारण न रहकर आनन्द का धाम बन जाती है।

कहा जाता है कि आचार्य अर्थात् संघनायक को संथारा आना दुर्लभ होता है। कारण कि संघ के प्रति उनका राग मुश्किल से हट पाता है। विगत २०० वर्षों में किसी आचार्य को ऐसा संथारा आया हो, इसके संकेत नही मिलते। आचार्य श्री भविष्य द्रष्टा थे। उनकी चित्तवृत्ति अत्यन्त निर्मल और व्यक्तित्व पारदर्शी था, जिसके फलस्वरूप अपनी मृत्यु का उन्हें पूर्वाभास हो गया था और उसका आलिंगन करने के लिए वे समभाव में स्थित हो, पूर्ण-रूपेण सजग, सचेत, जागरूक और आनन्दित थे।

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. श्रमण भगवान् महावीर की शासन-परम्परा के ८१वें पट्टधर आचार्य थे। स्थानकवासी परम्परा के महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री रतनचन्द्रजी म. सा. के नाम से प्रसिद्ध रत्नवंश के वे सप्तम् आचार्य थे। रत्नवंश के मूल पुरुष आचार्य कुशलोजी थे। उनके पट्ट पर आचार्य श्री गुमानचन्द्रजी म. आसीन हुए। गुमानचन्द्रजी म. के शिष्य रतनचन्द्रजी म. बड़े प्रभावी, फक्कड़ और आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। अतः गुमानचन्द्रजी म. ने अपने शिष्य से कहा कि तुम्हारे नाम पर ही हमारी यह परम्परा चलेगी। आचार्य रतनचन्द्रजी म. सा. के बाद क्रमशः जो आचार्य हुए, वे है—आचार्य

हमीरमलजी म., आचार्य कजोड़मलजी म., आचार्य विनयचन्दजी म. आचार्य शोभाचन्दजी म. और उनके शिष्य हमारे आराध्य गुरुदेव आचार्य हस्तीमलजी म.। उनके लिखित गोपनीय दस्तावेज के आधार पर चतुर्विध संघ द्वारा पं. र. श्री हीरा मुनिजी को अष्टम आचार्य एवं पं. र. श्री मानमुनिजी को उपाध्याय घोषित किया गया।

आचार्य श्री हस्ती का जन्म आज से ८१ वर्ष पूर्व सं. १९६७ में पौष शुक्ला चतुर्दशी को जोधपुर के पीपाड़ शहर में श्री केवलचन्दजी बोहरा के यहाँ हुआ। जब वे माता रूपादेवी के गर्भ मे थे, तभी प्लेग की चपेट में आने से उनके पिता चल बसे। माता रूपादेवी धर्मपरायण, सरल-स्वभावी महिला थी। उन्होंने बालक हस्ती को गर्भावस्था मे ही धार्मिक, आध्यात्मिक संस्कार दिये। सात वर्षो बाद प्लेग का पुनः प्रकोप हुआ, जिसमें बालक हस्ती के नाना गिरधारीलालजी मुणोत और उनके परिवार के सात सदस्य एक-एक करके चल बसे। शरीर की नश्वरता और संसार के अनित्य-बोध ने बालक हस्ती और उनकी माँ रूपा को वैराग्य की ओर मोड़ा और १० वर्ष की अवस्था में बालक हस्ती ने सं. १९७७ में माघ शुक्ला द्वितीया को अजमेर में आचार्य श्री शोभाचन्दजी म. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकृत कर ली। उनकी माता भी उनके साथ ही दीक्षित हुई।

अपनी तीव्र मेधाशक्ति, विनम्रता, सेवा भावना और संयम-साधना के कारण मात्र १६ वर्ष की अवस्था में वे विशाल जैन संघ के आचार्य मनोनीत कर दिये गये और २० वर्ष की अवस्था में सं. १९८७ में वैशाख शुक्ला तृतीया को जोधपुर में चतुर्विध संघ की साक्षी में वे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये। इतनी कम उम्र मे और इतने लम्बे समय तक आचार्य पद का निर्वाह करने वाले आधुनिक युग में वे एकमात्र आचार्य थे।

आचार्य हस्ती एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था नहीं वरन् संपूर्ण युग थे। जिस परिस्थिति मे उनका जन्म हुआ, वह प्लेग जैसी महामारी और भयंकर दुर्भिक्ष से ग्रस्त थी। लोग अत्यन्त दु खी, अभावग्रस्त और असहाय थे। समाज बालविवाह, मृत्युभोज, पर्दाप्रथा, अंध-विश्वास आदि कुरीतियों और मिथ्या मान्यताओं से जकड़ा हुआ था। जात-पांत, छुआछूत और ऊँच-नीच के विभिन्न स्तरों मे समाज विभक्त था। नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उस पर नाना प्रकार के अंकुश थे। राजनैतिक दृष्टि से पीपाड़, जोधपुर के निमाज ठिकाने के अंतर्गत आता था। ब्रिटिश शासन और देशी रियासत की दोहरी गुलामी से जनता त्रस्त थी। ऐसी विषम परिस्थिति मे बालक हस्ती का लालन-पालन हुआ। बालक हस्ती के अचेतन मन पर इन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

बालक हस्ती के सिर से पिता का साया उठ चुका था। उनके पिताश्री की दर्जियों के मोहल्ले में दुकान थी। बालक हस्ती ने दुकान को संभाला, पर उसका मन इस दुकान में न लगा। बालक हस्ती के स्वभाव में चंचलता थी, नटखटपना था। वह बाड़े में झूलता था, झूलते-झूलते ठण्डी रोटी और मक्खन खाता था। पास के मकान में पिल्ले खिलाता और पढ़ाई का बहाना भी करता। मां चरखा चलाती, पूनी कातती। श्रमनिष्ठ, स्वावलम्बी शुद्ध जीवन था इनका।

यों दिन गुजर रहे थे। साधु-सन्तों का आना-जाना बराबर बना रहता। महासती पानकंवरजी, धनकंवरजी का पधारना हुआ। बावा हरखचन्दजी म. भी पीपाड़ पधारे। इनके उपदेशामृत से माँ-बेटे दोनों पर वैराग्य का रंग चढा। जीवन-दृष्टि बदली। बालक हस्ती ने निश्चय किया—वह ऐसे मार्ग पर चलेगा, जहाँ न कोई महामारी हो, न कोई दुर्भिक्ष, वह ऐसा झूला झूलेगा, जहाँ न राग हो, न द्वेष, वह ज्ञान की रोटी और दर्शन का मक्खन खाकर चारित्र से खेलेगा और सचमुच आचार्य हस्ती बनकर उसने यह सब कर दिखाया।

आचार्य श्री की मुझ पर विशेष कृपा थी। मै जब भी दर्शनार्थ सेवा में पहुँचता, मुझसे अवश्य चर्चा करते। एकाध बार ऐसे प्रसंग भी आये जब मौन होते हुए भी विशेष स्थिति में आवश्यक बात की। आज आचार्य श्री पार्थिव रूप से हमारे समक्ष नहीं है पर उनकी प्रेरणाएँ चहुँ ओर अनुगुंजित है। लगता है उनका वरद हस्त हम सब के लिए उठा हुआ है। और मुझे अपने बाल-जीवन की स्मृति हो आती है।

मैं सन् १९४७-४८ और ४८-४९ में जैन बोर्डिंग कुचेरा में छठी-सातवीं कक्षा में पढ़ता था, तभी आचार्य श्री हस्ती का नाम सुना था। उसके बाद जब जैन गुरुकुल छोटी सादड़ी आया तब संभवत: सन् १९५० में मेरी कविता 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। मै 'जिनवाणी' गुरुकुल-वाचनालय में जाकर नियमित पढ़ता था। उसमें आचार्य श्री हस्ती का प्रवचन प्रतिमाह प्रकाशित होता था। उनके विचारों ने मेरे बाल-मन को अत्यधिक प्रभावित किया और मै नियमित रूप से 'जिनवाणी' में अपनी रचनाएँ भेजने लगा। फलस्वरूप 'जिनवाणी' मुझे व्यक्तिगत रूप से नियमित मिलने लगी।

सन् १९५२ में अक्षय तृतीया पर सादड़ी में विशाल सम्मेलन हुआ, जिसमें स्थानकवासी परम्परा के साधु-समाज का श्रमण संघ के रूप में महत्त्व-पूर्ण संगठन बना। उसमें मुझे गुरुकुल की ओर से जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय प. रत्नकुमारजी जैन 'रत्नेश' अ. भा. श्वे. स्था. जैन कांफ्रेस

के मुख-पत्र 'जैन प्रकाश' के सपादक थे। उन दिनों 'जैन प्रकाश' में भी मेरी कविताएँ प्रकाशित हुई थीं, अतः उनके माध्यम से सम्मेलन की कार्यवाही को निकट से देखने और समझने का अवसर मिला। इस सम्मेलन में पहली वार मुझे आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के दर्शनों का लाभ मिला। मैं उनके तेजोदीप्त मुख मण्डल और अगाध ज्ञान-गरिमा मण्डित व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

सन् १९५२ से लेकर १९५८ तक सेठिया जैन ग्रंथालय बीकानेर में रहते हुए मैंने वी. ए. तथा एम. ए की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। समाज के धर्मनिष्ठ प्रमुख दानवीर सेठ श्री भैरोदानजी सेठिया एवं श्री जेठमल जी सेठिया की प्रेरणा व प्रोत्साहन से मेरा लेखन-कार्य सतत चलता रहा। वीकानेर से ग्रीष्मावकाश मे अपने गाव कानोड (उदयपुर) आते-जाते समय जोधपुर में मेरा अवश्य रुकना होता। 'जिनवाणी' के तत्कालीन सम्पादक श्री शांतिचन्द्रजी मेहता और व्यवस्थापक श्री विजयमलजी कुम्भट से मैं अवश्य मिलता। उनसे मुझे अपने लेखन मे वरावर प्रोत्साहन मिलता।

संयोग से अप्रेल, १९५६ में भीनासर में कांफ्रेस का अधिवेशन हुआ, साधु-सम्मेलन भी। उसमें भी आचार्य श्री हस्ती पधारे। सम्मेलन के वाद आचार्य श्री का १९५६ का चातुर्मास सेठिया कोटडी, बीकानेर मे हुआ। मै उस समय एम. ए. (पूर्वार्द्ध) का छात्र था। यहाँ मैं आचार्य श्री के निकट संपर्क मे आया। 'जिनवाणी' मे, एवं 'ललकार' साप्ताहिक में नियमित मेरी रचनाएँ प्रकाशित होने के कारण मेरी साहित्यिक रुचि से आचार्य श्री परिचित थे। अतः इस चातुर्मास में उन्होने मुझे 'जिनवाणी' के अहिसा विशेषाक के मम्पादन का दायित्व सौंपा और मैंने उसके लिए विविध आयामी सामग्री सकलित-सम्पादित की। उन वर्षो मे 'जिनवाणी' मे कविताओं के अतिरिक्त मेरे कई जैन एकांकी और जैन कहानियाँ भी प्रकाशित हुई थी। अतः वाल-स्तम्भ के सम्पादक मे रूप मे मेरा नाम 'जिनवाणी' में जाने लगा था। इसी चातुर्मास मे मेरी भेट संस्कृत–प्राकृत के मर्मज्ञ विद्वान् प. दुखमोचनजी झा से हुई जो आचार्य श्री के सान्निध्य मे वैरागियों को पढ़ाते थे। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है पं. रत्न श्री हीरामुनिजी उस समय वैराग्य अवस्था मे थे।

एम. ए. करने के वाद मेरी सर्वप्रथम नियुक्ति गवर्नमेन्ट कॉलेज, वून्दी मे हिन्दी प्राध्यापक के पद पर हुई। मैं वहाँ १३ जुलाई, १९६२ तक रहा। सभवत १९६०-६१ की बात होगी। आचार्य श्री अपने शिष्यों के साथ पद-विहार करते हुए कोटा से वून्दी पधारे। जव मुझे ज्ञात हुआ तो मैं उनके दर्शनार्थ सेवा मे पहुँचा। आचार्य श्री मुझे वहाँ देखकर वड़े प्रमुदित हुए और

कहा—"तुम्हें अपनी रुचि के अनुसार कार्य-क्षेत्र मिल गया है। लेखन सतत जारी रखो, जैन शास्त्रों का अध्ययन भी करो" और सहज भाव से यह भी कहा—"यदि तुम्हारी नियुक्ति जयपुर हो जाए तो समाज को ज्यादा लाभ हो सकता है।" मैंने कहा—ऐसा संभव नहीं लगता। कुछ दिन रहकर आचार्य श्री वहाँ से विहार कर गये। इधर मेरा पी-एच. डी. का कार्य भी पूरा हो गया और संयोग से राज्य सरकार के निर्णयानुसार राजस्थान विश्वविद्यालय को नया रूप दिया जाना तय हुआ। विभिन्न कॉलेजों से विभिन्न विषयों के प्राध्यापकों से राजस्थान विश्वविद्यालय में आने के लिए विकल्प (Option) मांगे गये। मेरा अध्यापन अनुभव यद्यपि कम था, पर तत्कालीन प्रिंसिपल श्री एम. एल. गर्ग सा. के यह कहने पर कि तुम्हारा एकेडैमिक कैरियर बहुत अच्छा है, अतः तुम विकल्प दे दो और देवयोग से राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के लिए शैक्षणिक योग्यता के आधार पर बिना साक्षात्कार ही मेरा चयन हो गया और मै १४ जुलाई, १९६२ को जयपुर आ गया। आज सोचता हूँ तो लगता है कि आचार्य श्री कितने भविष्यद्रष्टा थे, वचनसिद्ध थे। मुझे स्वप्न मे भी कल्पना नहीं थी कि मै इतने सहज रूप से जयपुर आ जाऊँगा।

जब आचार्य श्री को मैने जयपुर आने के समाचार दिये तो उन्हें बड़ा प्रमोद हुआ और मै १९६३ के चातुर्मास में उनके दर्शनार्थ पीपाड़ पहुँचा। इस यात्रा में मेरी आचार्य श्री से धर्म, साहित्य, संस्कृति और इतिहास विषयक कई विन्दुओं पर चर्चा हुई। जैन शोध की संभावनाओ पर चर्चा के समय आचार्य श्री ने जयपुर स्थित 'आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार' का जिक्र किया। प्राचीन हस्तलिखित जैन ग्रंथों के सरक्षण के महत्त्व पर भी आचार्य श्री ने प्रकाश डाला और वहाँ के प्रमुख श्रावक श्री जवाहरलालजी दफ्तरी के माध्यम से मैने पीपाड़ के जैन ज्ञान भण्डारों को भी देखा।

आचार्य श्री की सबसे बडी विशेषता जो मुझे देखने को मिली, वह थी उनकी गहरी सूक्ष्म दृष्टि, व्यक्ति की पात्रता की पकड़ और उसकी योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार कार्य करने की प्रदत्त प्रेरणा। जो भी उनके संपर्क मे आता, वह ऐसा अनुभव करता कि जैसे आचार्य श्री उसके अपने है, उसकी क्षमता को पहचानते हैं। वे धर्म को किसी पर लादते नही थे, व्यक्ति की पात्रता के अनुसार उसे ऐसी प्रेरणा देते कि वह धर्म को जीवन में उतारने के लिए तत्पर हो जाता, उस पथ पर चल पड़ता। यही कारण है कि अनपढ से लेकर वड़े-बडे विद्वान्-पण्डित, सामान्य जन से लेकर बडे-वड़े श्रीमन्त उनके भक्त थे। उनकी प्रवचना-सभा में सभी जाति और वर्ण के लोग आते थे। वे सबको समान स्नेह और आशीर्वाद देते थे। आचार्य श्री के प्रेरणादायी प्रभावक व्यक्तित्व का ही परिणाम है कि धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सेवा-

क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों के सैकड़ों कार्यकर्ता और समाजसेवी लगे हुए हैं। प्राचीन साहित्य के संरक्षण और संग्रह की प्रेरणा पाकर स्व. श्री सोहनमलजी कोठारी इस कार्य मे जुट गये थे। वे अपनी धुन के पक्के थे। कई लोगों को उन्होने विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार से जोड़ा। मुझे भी आचार्य श्री की प्रेरणा और श्री कोठारीजी के आग्रह से ज्ञान भण्डार में संगृहीत हस्तलिखित ग्रंथों के सूचीकरण के कार्य से जुड़ने का अवसर मिला। यहाँ तक कि राजस्थान विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति श्री मोहनसिहजी मेहता से मिलकर श्री कोठारीजी ने भण्डार के मानद निदेशक के रूप मे कार्य करने की मुझे स्वीकृति दिलवाई। हस्तलिखित ग्रंथ-सग्रह के साथ-साथ भडार मे विभिन्न धर्मो के मूल ग्रंथ भी संकलित किये गये और इसे शोध प्रतिष्ठान के रूप मे विकसित करने का प्रयत्न रहा।

भारतीय साहित्य के प्रणयन, संरक्षण एवं संवर्द्धन मे जैन साहित्यकारो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मध्ययुगीन जनपदीय भाषाओं के विविध रूपो और काव्य-शैलियो की सुरक्षा में जैन साहित्यकारो की उल्लेखनीय सेवाएँ रही है। भारतीय जन-जीवन के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एव नैतिक इतिहास-लेखन मे जैन स्रोत वड़े महत्त्वपूर्ण, विश्वस्त और प्रामाणिक है। जैन साहित्य विशेषकर स्थानकवासी परम्परा से सम्वन्धित जैन सामग्री जीर्ण-शीर्ण अवस्था में, उपाश्रयों, स्थानकों और निजी आलमारियो में वन्द पड़ी थी। उसकी प्रायः उपेक्षा थी। आचार्य श्री की भारतीय साहित्य और सस्कृति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन यह थी कि उन्होने इधर-उधर विखरे पड़े हस्तलिखित ग्रंथों, कलात्मक चित्रों/नक्शों को ज्ञान भण्डारो मे सगृहीत करने की प्रेरणा दी और उनके अध्ययन और अनुसधान के लिए अनुकूल वातावरण बनाया। जयपुर आने के वाद मैं आचार्य श्री की प्रेरणा से ही सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल और 'जिनवाणी' के सम्पादन जैसी प्रवृत्तियो से जुडा।

आचार्य श्री परम्परा का निर्वाह करते हुए भी आधुनिक भाव-वोध से सम्पृक्त थे। वे समाज की नब्ज को पहचानने मे दक्ष थे। उन्होने देखा कि धर्म को लोग रूढि रूप मे पालते अवश्य है, पर इससे उनका जीवन वदलता नही। सच्चा धर्म तो वह है जो तुरन्त अपना असर दिखाये। उनका चिन्तन था कि ज्ञानरहित क्रिया भार है, और क्रिया रहित ज्ञान शुष्क है। ज्ञान और क्रिया के संतुलित समन्वय से ही मुक्ति का पथ प्रशस्त होता है और राष्ट्र का प्रगति-रथ आगे वढ़ता है। उसी से मानव जीवन सार्थक वनता है। अतः उन्होने सामायिक के साथ स्वाध्याय को जोड़ा और स्वाध्याय के साथ सामायिक को। धर्माराधना के इन दोनो अंगों को नई शक्ति दी, नई रोशनी दी, नई दृष्टि दी आचार्य श्री ने। सभी वर्ग के लोग इस दिशा में यथाशक्ति खींचते चले

आये और देखते-देखते देश के विभिन्न प्रान्तों में स्वाध्याय का शंखनाद गूंज उठा। स्वाध्याय केवल मस्तिष्क का व्यायाम बनकर न रहे, उसमें साधना का रस छलके, हृदय का मिठास घुले, वह वाचना, पृच्छना और परिवर्तना तक ही सीमित न रहे। अनुप्रेक्षा और धर्म कथा के तत्त्व स्वाध्याय के साथ जुड़ें, इसी विचार ने साधना संघ को मूर्त्त रूप दिया। स्वाध्याय साधना का अंग बनकर ही जीवन को रूपान्तरित कर सकता है, भीतरी परतों को भीगो सकता है।

आचार्य श्री वस्तु को खण्ड-खण्ड देखकर भी जीवन की अखण्डता और सम्पूर्णता के पक्षधर थे। उनका विचार था कि जैन समाज सब प्रकार से सम्पन्न होकर भी अपना ओज और पुरुषार्थ नहीं प्रकट कर पा रहा है। समाज के श्रीमन्त, अपनी धन-सम्पदा में मस्त हैं तो समाज के विद्वान् अपने ज्ञान-लोक में एकाकी मग्न हैं। कार्यकर्ताओं की जैसी प्रतिष्ठा होनी चाहिए, वह नहीं है और अधिकारियों का अपना अलग अहम् है। यदि समाज के ये चारों अंग मिल जाएँ तो आदर्श समाज का निर्माण सहज-सुलभ हो सकता है। इसी विचार के परिणामस्वरूप अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद् अस्तित्व में आई।

आचार्य श्री के सन् १९७८ के इन्दौर चातुर्मास में वहाँ के प्रमुख समाज-सेवी श्री फकीरचन्दजी मेहता ने जैन समाज के प्रमुख विद्वानों का एक सम्मेलन इन्दौर में आयोजित करने की बात मुझे लिखी। मैं इन्दौर गया। आचार्य श्री से विचार-विमर्श हुआ और इस योजना को मूर्त्तरूप मिला। विभिन्न क्षेत्रों के लगभग १०० विद्वान् इससे जुड़े और फिर तो आचार्य श्री के प्रत्येक चातुर्मास में विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन होता रहा। विद्वत् परिषद् को संपुष्ट करने के लिए श्रीमन्तों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और प्रशासनिक अधिकारियों को भी इससे जोड़ा गया। आचार्य श्री का विद्वत् परिषद् को सदैव आशीर्वाद मिला। राजस्थान के अतिरिक्त देश के सुदूर क्षेत्रों मद्रास, रायचूर, जलगांव आदि में इसकी गोष्ठियाँ हुई। अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी आचार्य श्री संगोष्ठियों में पधारते और विद्वानों को सम्यक् मार्गदर्शन देते।

आचार्य श्री का बल बराबर इस बात पर रहता कि विद्वान् अपने को किताबों तक सीमित न रखे, वे धर्म-क्रिया में भी अपना ओज दिखायें। वे कहा करते थे—'यस्तु क्रियावान तस्य पुरुष सः विद्वान्' अर्थात् जो क्रियावान है, वही पुरुष विद्वान् है। आचार्य श्री की प्रेरणा रहती कि यदि एक विद्वान् सही अर्थ में धर्माराधना के साथ जुड़ जाता है तो वह अनेक भाई-बहिनो के लिए प्रेरणा-स्तम्भ बन जाता है। आचार्य श्री के इस उद्बोधन से प्रभावित-प्रेरित होकर

विद्वत् परिषद् के कई विद्वानों ने धर्म साधना सम्बन्धी दैनन्दिन नियम, व्रतादि ग्रहण किये ।

आचार्य श्री धर्म को आत्म-कल्याण का साधन मानने के साथ-साथ उसे लोक-शक्ति के जागरण का बहुत बड़ा माध्यम मानते थे । इसीलिए उन्होंने नारी शक्ति को संगठित होने की प्रेरणा दी । श्री महावीर जैन श्राविका संघ इसी प्रेरणा का प्रतिफल है । आचार्य श्री ने अपनी जन्मकालीन परिस्थितियो मे नारी को कुरीतियो के बंधन मे जकड़े हुए देखा था । उन कुरीतियों से नारी-शक्ति मुक्त हो, और वह अपना सर्वांगीण आध्यात्मिक विकास करे, इसके लिए वे सदैव प्रेरणा देते थे । कहना न होगा कि उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप ही सैकड़ों-हजारो बहिनों का जीवन बदला है । वे स्वाश्रयी और स्वावलम्बी बनी है ।

युवकों को भी आचार्य श्री संगठित होने की सदा प्रेरणा देते थे । जोश के साथ वे होश को न भूले, अपनी शक्ति रचनात्मक कार्यो मे लगाये, मादक पदार्थो के सेवन व अन्य व्यसनों से वे दूर रहे, जीवन में सादगी और खान-पान में सात्विकता बरते । इस दिशा में आचार्य श्री युवको को बराबर सावचेत करते थे । आचार्य श्री की प्रेरणा से 'अ० भा० जैन रत्न युवक संघ' का गठन हुआ, जिसके अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों मे अनेक युवा समाज-सेवा मे प्रवृत्त है ।

आचार्य श्री ने अपने जन्म-काल में जो महामारी और दुर्भिक्ष देखा, उससे उनका दिल पसीज उठा और संयम-पथ पर बढ़ने के बाद वे हमेशा रोग-मुक्ति के लिए उपदेश देते थे । वे अत्यन्त दयालु और करुणाशील थे । ज्ञान का फल प्रेम और वात्सल्य मानते थे । वे कहा करते थे यदि ज्ञानी किसी के आँसू न पोंछ सके तो उसके ज्ञान की क्या सार्थकता ? यदि कोई धार्मिक किसी दु.खी के दु.ख-निवारण में सहयोगी न बन सके तो वह कैसा धर्म ? यदि कोई धनिक संकटग्रस्त को सहायता न पहुँचा सके तो वह कैसा धनी ? आचार्य श्री की इस वाणी ने विभिन्न क्षेत्रो मे जीवदया, वात्सल्य फण्ड, बन्धु कल्याण कोष आदि के माध्यम से जनहितकारी प्रवृत्तियो को सक्रियता प्रदान की ।

आचार्य श्री पारम्परिक रूप से एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी विचारों मे उदार और व्यवहार मे सहिष्णु थे । यही कारण है कि अलग-अलग परम्पराओ के लोग आचार्य श्री की प्रेरणा से विभिन्न कार्यो से जुड़े रहते । सभी धर्मो के प्रति उनके मन में आदर का भाव था । 'जिनवाणी' का सम्पादन करते समय मुझे आचार्य श्री की उदार दृष्टि, तटस्थ चिन्तन और विशाल-हृदयता का कई बार अहसास हुआ । 'जिनवाणी' के तप, श्रावक धर्म, जैन

संस्कृति, साधना, कर्म सिद्धान्त और अपरिग्रह जैसे विशेषांकों में देश-विदेश के विभिन्न धर्मों की सम्बद्ध अवधारणाओं और मान्यताओं को स्थान देने में उनकी स्वीकृति और प्रेरणा थी। वे कहा करते थे—तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञान पकता है और चिन्तन में निखार आता है। उनकी व्यापक दृष्टि, धार्मिक सहिष्णुता और उदार मनोवृत्ति के फलस्वरूप ही 'जिनवाणी' के 'कर्म सिद्धान्त' विशेषांक में पूरा एक खण्ड 'कर्म सिद्धान्त और सामाजिक चिन्तन' विषय पर जा सका, जबकि कतिपय लोगों ने इस पर आपत्ति भी की थी। आचार्य श्री स्मित मुस्कान के साथ सहज भाव से यही फरमाते कि "भानावत ने तो विषय से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टियों को विशेषाक के रूप में एक स्थान पर पाठकों को परोस दिया है। अब वे अपने-अपने ढंग से इसका रसास्वादन करे और अपनी-अपनी टिप्पणियाँ दे ताकि वैचारिक मन्थन हो सके और चिन्तन की परम्परा आगे बढ़ सके।"

आचार्य श्री वस्तुतः इतिहास-मनीषी और आगम-पुरुष थे। उनकी शोध-दृष्टि बड़ी पैनी और प्रखर थी। नित्य नवीन ज्ञान-विज्ञान को जानने और समझने की उनकी जिज्ञासा बराबर बनी रहती थी। मै उनसे चर्चा मे प्रायः कहा करता था कि "आचार्य प्रवर! भारतीय विश्वविद्यालयों में आज प्राच्य विद्याएँ उपेक्षित हैं, जबकि विदेशी विद्वान् इस ओर आकृष्ट हो रहे हैं।" आचार्य श्री इस पर कभी-कभी टिप्पणी करते कि "ज्ञान के क्षेत्र में भी व्याव-सायिकता आ गई है और पल्लवग्राही पांडित्य बाजी मार रहा है।"

आचार्य श्री का यह दृढ अभिमत था कि किसी भी परम्परा को मूल रूप में समझे बिना उसको नकारना हितकर नहीं है। इसीलिए वे संस्कृत, प्राकृत के अध्ययन-अध्यापन पर विशेष बल देते थे क्योंकि इन भाषाओ के अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप को समझा ही नहीं जा सकता और न मौलिक चिन्तन का द्वार खुल पाता है। प्राचीनता और नवीनता के स्वस्थ समन्वय के पक्षधर थे आचार्य श्री। शिक्षा के क्षेत्र में भी वे इस समन्वय को चरितार्थ करना चाहते थे। इसी भावना से जयपुर में 'जैन सिद्धान्त शिक्षण सस्थान' की स्थापना हुई, ताकि ऐसे ठोस विद्वान् तैयार किये जा सके, जो प्राच्य विद्याओ के प्रकाण्ड पण्डित होकर भी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और शोध-प्रक्रिया में निष्णात हों।

आचार्य श्री की मुझ पर एवं मेरे परिवार पर अहेतुकी कृपा थी। साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर मेरी आचार्य श्री से समय-समय पर बातचीत हुआ करती थी। मैने उन्हे कभी किसी बात के प्रति आग्रही नही पाया। सदैव सहज-सरल, प्रज्ञाशील और सर्वग्राही दृष्टि सम्पन्न पाया। उनका

इतिहास-बोध विभिन्न संदर्भों से जुड़ा हुआ था। भारतीय इतिहास-लेखन में जैन स्रोत उपेक्षित न रहें, इसके लिए वे प्रेरणा देते थे। उन्हीं के सान्निध्य में सन् १९६५ के बालोतरा चातुर्मास में जैन धर्म के इतिहास लेखन की योजना बनी। उस समय जैन आगमज्ञ विद्वान् पं० दलसुख भाई मालवणिया विशेष रूप से बालोतरा पधारे थे। मैं भी उस अवसर पर उपस्थित था। जैन इतिहास लेखन की सामान्य रूपरेखा भी बनी और यह आवश्यक माना गया कि राजस्थान और गुजरात के ज्ञान-भण्डारों का सर्वेक्षण किया जाए और दक्षिण भारत की भाषाओं में जो जैन सामग्री विद्यमान है, उसका आकलन किया जाए। इतिहास की शोध-सामग्री के आकलन की दृष्टि को प्रधान रखकर ही सम्भवतः आचार्य श्री ने बालोतरा के बाद अहमदाबाद चातुर्मास किया और गुजरात के कई ज्ञान भण्डारों को आचार्य श्री ने स्वयं जाकर देखा और सामग्री संकलित करने की प्रेरणा दी। इतिहास के द्वितीय और तृतीय भाग के लिए आचार्य श्री ने कर्नाटक और तमिलनाडु की यात्राएं की और कई नये तथ्य उद्घाटित किये। स्थानकवासी परम्परा के इतिहास-लेखन की आधारभूत सामग्री 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' के रूप में संकलित की। इसका दूसरा भाग भी आचार्य श्री के निर्देशन में तैयार किया गया, जिसके प्रकाशन की प्रतीक्षा है।

आचार्य श्री संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं के अधिकृत विद्वान् थे। उन्होंने 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन सूत्र', 'नन्दी सूत्र', 'अन्तगड़ दशांग', 'प्रश्न व्याकरण' आदि शास्त्रों की सटिप्पण व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। आत्म जागृति मूलक कई पद लिखे, जो अत्यन्त प्रेरणा-दायी और जीवनस्पर्शी हैं। भगवान् महावीर से चली आती हुई जैन शासन-परम्परा को 'जैन आचार्य चरितावली' के रूप में पद्यबद्ध किया। आचार्य श्री का प्रवचन साहित्य हिन्दी के धार्मिक, दार्शनिक साहित्य की अमूल्य धरोहर है। ये प्रवचन सामान्य विचार नहीं हैं। इनमें तपोनिष्ठ साधक की अनुभूतियाँ और उच्च कोटि के आध्यात्मिक सन्त की आचरणशीलता अभिव्यंजित हुई है। प्राकृत, संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुए भी आचार्य श्री के प्रवचन कभी भी उनके पाण्डित्य से बोझिल नहीं हुए। उनमें उनकी संयम-साधना का माधुर्य और ज्ञान महोदधि के गांभीर्य का अद्भुत् संगम होता। छोटे-छोटे वाक्यों में लोक और शास्त्र के अनुभव को वे इस प्रकार बांटते थे कि श्रोता का हृदय-पात्र बोधामृत से लबालब भर जाता। उनकी प्रवचन-प्रभा से हजारों भक्तजनों का अज्ञानांधकार मिटा है, निराश मन में आशा का संचार हुआ है, खोई हुई दिशाएँ गन्तव्य की ओर अभिमुख हुई हैं, थकान मुस्कान में बदली है और आग में अनुराग का नन्दन वन महक उठा है।

मेरा किसी न किसी रूप में आचार्य श्री से लगभग ४० वर्षों का सम्पर्क-

सम्बन्ध रहा। आचार्य श्री के प्रेरक व्यक्तित्व और मंगल आशीर्वाद ने मेरे जीवन-निर्माण में और उसे आध्यात्मिक स्फुरणा देने में आधारभूत कार्य किया है। उनके सत्संग का ही प्रभाव है कि मेरे लेखन और चिन्तन की दिशा बदली। यदि आचार्य श्री का सान्निध्य न मिलता तो मैं दिशाहीन भटकता रहता। जीवन-समुद्र की ऊपरी सतह पर ही लक्ष्यहीन लहरों की भांति उठता-गिरता और सांसारिक प्रपंचों के किनारों से टकराता रहता, झाग बटोरता रहता। आचार्य श्री ने ही मुझे जीवन-समुद्र की गहराई का, उसकी मर्यादा और प्रशान्तता का बोध कराया। मुझे ही क्या मेरे जैसे सैकड़ों-हजारों लोगों को जीवन का रहस्य बताया, सम्यक् जीवन जीने की कला सिखाई। आज समाज में ज्ञान के प्रति जो चेतना, साहित्य के प्रति जो अनुराग और संस्कृति के प्रति जो निष्ठा दिखाई देती है, उसके मूल में आचार्य श्री का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व समाहित है।

आचार्य श्री के १९९० के पाली चातुर्मास में 'युवापीढ़ी और अहिंसा' विषयक संगोष्ठी जैन विद्वत् परिषद् के तत्त्वावधान में आयोजित की गई थी। आचार्य श्री ने विद्वानों को विशेष संदेश देते हुए कहा कि वे अपने ज्ञान को शस्त्र के साथ नहीं, शास्त्र के साथ जोड़ें, अपनी विद्वत्ता को कषाय-वृद्धि में नहीं, जीवन-शुद्धि में लगायें और ध्यान रखे कि संयम के बिना अहिंसा लंगड़ी है।

चातुर्मास के बाद आचार्य श्री का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहा और पाली में कुछ समय उन्हें रुकना पड़ा। २६ दिसम्बर को मैंने पाली में आचार्य श्री के दर्शन किये तब लगभग डेढ़-दो घण्टे तक साहित्य और साधना विषयक विभिन्न बिन्दुओं पर बातचीत हुई। आचार्य श्री ने मुझे सचेत किया कि तुम भारत में बहुत घूम चुके, अब ज्यादा भागदौड़ न करो, स्थिर जमकर काम करो, ध्यान पद्धति को निश्चित रूप दो, प्राकृत-संस्कृत भाषा एवं साहित्य की जो अनमोल विरासत है, उसे संभालो और नई पीढ़ी को इस ओर प्रेरित करो, आकर्षित करो।

इसी प्रसंग में उन्होंने 'जिनवाणी' के प्रति प्रमोद भाव व्यक्त किया और संकेत दिया कि 'स्वाध्याय-शिक्षा' प्राकृत भाषा की मुखपत्रिका बने। प्राकृत-लेखन की ओर आज विद्वानों की रुचि नहीं रही है। इस पत्रिका के माध्यम से प्राकृत-संस्कृत लेखन को बल मिले तो श्रेयस्कर होगा। विदेशों में श्रमण संस्कृति के शुद्ध स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए स्वाध्यायियों को विशेष रूप से तैयार करने की बात भी उन्होंने कही। यह भी संकेत दिया कि विदेशों में विभिन्न क्षेत्रों में हमारे समाज के लोग अच्छी स्थिति में है। यदि उनको संगठित कर कोई योजना

बनाई जावे तो वहाँ श्रमण संस्कृति के प्रचार-प्रसार का अच्छा वातावरण बन सकता है। आर्थिक दृष्टि से तो वे लोग आशा से अधिक सम्पन्न हो गये हैं पर धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विपन्न न रहें, इस ओर ध्यान देना विद्वत् परिषद् का कर्तव्य है। काश ! आचार्य श्री के इन विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए समाज कुछ कर सके।

आचार्य श्री जब निमाज पधारे, मैं सपत्नीक महावीर जयन्ती पर उनके दर्शनार्थ पहुँचा। तब आचार्य श्री मौन में थे। पर हमें लगभग पौन घण्टे तक आचार्य श्री के सान्निध्य में बैठने का, अपनी बात कहने का, मौन संकेतो द्वारा आचार्य श्री से उनका समाधान पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री गौतम मुनिजी ने इस वार्त्तालाप मे हमें विशेष सहयोग दिया। जब हम चलने लगे, तब आचार्य श्री ने पाट से खड़े होकर हमें मौन मांगलिक प्रदान की। यह एक प्रकार से आचार्य श्री से हमारी अन्तिम भेंटवार्ता थी।

उसके बाद १४ अप्रैल को हम दर्शनार्थ पहुँचे, तब आचार्य श्री ने संथारा ग्रहण कर लिया था। दर्शनार्थियो की अपार भीड़ कतारबद्ध खड़ी थी अपने आराध्य के श्रीचरणो मे। पर आचार्य श्री आत्मस्थ थे, जप-साधना में लीन थे। उन्हे न किसी के प्रति राग था, न द्वेष। शरीर का ममत्व वे छोड़ चुके थे। एक-एक कर दर्शनार्थी पंक्तिबद्ध उनके निकट आते, नतमस्तक हो वन्दन करते और मौन आशीर्वाद ले अपने को धन्य समझते। निमाज तीर्थधाम बन गया। धर्मनिष्ठ, श्रद्धानिष्ठ, उदार हृदय श्री तेजराजजी भण्डारी, उनके परिवार एवं सकल निमाज जैन श्रीसंघ ने अपने आराध्य गुरुदेव की भक्ति में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, आगन्तुक दर्शनार्थियो के आतिथ्य-सत्कार में पलक-पांवड़े बिछा दिये। निमाज का यह अंचल अपने लोकरंग में अन्तर्राष्ट्रीय हो उठा। देश-विदेश से भावुक भक्त बड़ी संख्या मे खिंचे चले आये। २१ अप्रैल, रविवार को इस युग का दिव्य दिवाकर समाधिपूर्वक परमात्म-ज्योति में समा गया।

पार्थिव रूप में आचाय श्री अब हमारे बीच नहीं हैं। पर उनका संदेश कण-कण मे व्याप्त है। वे प्रेरणा बन कर युगयुगों तक हमें अनुप्राणित करते रहेगे, स्फुरणा बनकर हमे जगाते रहेगे, हम पर उनके अनन्त उपकार है, हम उनसे उऋण नही हो सकते। वे ऐसे महासागर थे, जिसे कोई तैराक पार नही कर सकता, वे ऐसे असीम आकाश थे, जिसे कोई पक्षी लांघ नहीं सकता। किसमे ताकत है जो उनके गुणों की थाह ले सके ? उन प्रज्ञापुरुष को कोटि-कोटि प्रणाम।

देश-विदेश के जन-संचार माध्यमों ने इस महान् आध्यात्मिक विभूति को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। विभिन्न गांवों और नगरों के श्रीसंघों एवं संस्थाओं ने अपने आराध्य देव के चरणों में भावभीनी श्रद्धांजलियां अर्पित की। 'जिनवाणी' कार्यालय में जो श्रद्धांजलियां प्राप्त हुई है, उनमें मुख्य हैं—निमाज, जोधपुर, जयपुर, भरतपुर, अलवर, पाली, दूदू, गंगापुरसिटी, गुलाबपुरा, विजयनगर, ब्यावर, भीम, भीलवाड़ा, रायपुर, चित्तौड़गढ़, संगरिया, सलूम्बर, हुरड़ा, बून्दी, मेड़तासिटी, नागौर, पीपाड़, कोसाणा, भोपालगढ, सुमेरपुर, सोजत, भादसोड़ा, उदयपुर, बांसवाड़ा, डेह, मदनगंज-किशनगढ़, आबूपर्वत, धूलियाकलां, तिरपाल, छोटी सादड़ी, कानोड़, भदेसर, भवानीमण्डी, पचपहाड़, झालावाड़, झालरापाटन, अलीगढ़-रामपुरा, चौमहल्ला, बीकानेर, सवाई-माधोपुर, रसीदपुर, हस्तिनापुर, सिंगोली, गढ़ सिवाना, टोंक, चिकारड़ा, अजमेर, बिलाड़ा, कुचेरा, कोटा, इन्दौर, भोपाल, मन्दसौर, सैलाना, कसरावद, राजनांदगांव, जबलपुर, देवास, उज्जैन, अहमदाबाद, नवसारी, नागपुर, औरंगाबाद, अमरावती, जलगांव, अहमदनगर, बम्बई, बोदवड़, रालेगांव, धूलिया, उपलेटा, बंगलौर, बागलकोट, रायचूर, सिमोला, मद्रास, तिरुवन्नमल्लई, चिदम्बरम्, सिकन्दराबाद, हैदराबाद, विजयवाड़ा, दिल्ली, राजगृह, कलकत्ता, सोनीपत, जीन्द, पानीपत, गोहाना मण्डी, भटिण्डा, लुधियाना आदि के जैन श्री संघ और संस्थान।

अ० भा० श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल और 'जिनवाणी' परिवार के सभी सदस्य श्रद्धानत है आचार्य श्री के चरणों में। लगभग अर्द्ध शताब्दी तक जिन आचार्य श्री से 'जिनवाणी' परिवार को सम्यक् मार्गदर्शन और प्रेरणा-प्रकाश मिलता रहा है, उन अपने आराध्य गुरुदेव की पुण्य स्मृति को यह 'श्रद्धांजलि विशेषांक' समर्पित करते हुए हम सब भावविह्वल है, श्रद्धानत है।

यह विशेषांक चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड **'श्रद्धांजलि खण्ड'** है, जिसमे आचार्यों, मुनियों, विद्वानों, समाजसेवियों और भक्त श्रावकों द्वारा अपने-अपने श्रद्धा-सुमन आचार्य श्री के चरणों में समर्पित किये गये है। द्वितीय खण्ड **'काव्यांजलि'** में कवियो और गीतकारों ने अपने आराध्य गुरुदेव को अपने भावोद्‌गार काव्यरूप में अर्पित किये हैं। तृतीय खण्ड **'समाधिमरण'** इस विशेषांक का महत्त्वपूर्ण खण्ड है, जिसमें समाधिमरण, संथारा और संलेखना के संबंध में स्वयं आचार्य श्री के तथा अन्य विद्वानो के विचार संकलित है। चतुर्थ खण्ड 'आत्म-साक्ष्य' में आचार्य श्री के अन्तेवासी शिष्य युवा कवि मनीषी श्री गौतम मुनि ने आचार्य श्री के जीवन के संध्याकाल का **"आँखों देखा हाल"** बड़े रोचक और

मार्मिक ढंग से परिष्कृत शैली में प्रस्तुत किया है जो प्रत्येक पाठक के लिए प्रेरक और आत्म-जागृति बोधक है ।

इतना शीघ्र वृहत्काय श्रद्धांजलि विशेषांक प्रकाशित करने की योजना नहीं थी, पर श्रद्धानिष्ठ भावुक भक्तों द्वारा प्रेषित श्रद्धांजलियाँ बराबर मिलती रहीं और यह विशेषांक अपना रूप निखारता रहा । जैसी भी बन पड़ी है 'जिनवाणी' की यह श्रद्धा-सुमनांजलि आपके हाथों में है । काठ की पुतली की क्या क्षमता कि वह अपने चित्रकार को चित्रित कर सके ?



अमृत-वाणी

- शान्ति और क्षमा ये दोनों चारित्र के चरण हैं ।
- जीव को जड़ से अलग करता है चारित्र ।
- हृदय में व्याप्त अज्ञान के सघन अंधकार को दूर करने के लिए चेतना की तूली जलानी होगी ।
- पोथी में ज्ञान है लेकिन आचरण में नहीं है तो वह ज्ञान हमारा सम्बल नहीं बन पाता ।
- मनुष्य की कीमत उसकी वाणी से है, नापतोल से नही ।
- विचार की नींव कच्ची होने पर आचार के भव्य प्रासाद को धराशायी होते देर नहीं लगती ।
- आन्तरिक विजय प्राप्त करने के लिए शास्त्र-शिक्षा की आवश्यकता है ।

—आचार्य हस्ती

अनुक्रमणिका

द्वितीय खण्ड : काव्यांजलि २४३–२८८

तृतीय खण्ड : समाधिमरण २८९–३४४

चतुर्थ खण्ड : आत्मसाक्ष्य ३४५–३६५

प्रथम खण्ड



श्रद्धांजलि



आचार्यों, सन्त-सतियों, समाजसेवियों, विद्वानों
एवं भक्त-श्रावकों द्वारा समर्पित
भावभीनी श्रद्धांजलियाँ

असीम आत्म-शक्ति के धनी

प्रज्ञापुरुष परम पूज्य
स्वर्गीय आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.
की

जीवन-झांकी

नाम—आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.

उपनाम—श्री गजेन्द्राचार्य, श्री गजमुनिजी म. सा.

जन्म तिथि—वि. सं. १९६७ पौष सुदी, चौदस

जन्म स्थान—पीपाड़ सिटी (जोधपुर) राजस्थान प्रात

पिताजी का नाम—सुश्रावक श्री केवलचन्दजी बोहरा 'ओसवंश'

माताजी का नाम—सुश्राविका श्रीमती रूपकंवर (रूपा देवी)

दादाजी का नाम—सुश्रावक श्री दानमलजी बोहरा

दादीजी का नाम - सुश्राविका निवज्जा बाई (नौजा बाई)

नानाजी का नाम—सुश्रावक श्री गिरधारीलालजी मूणोत

नानीजी का नाम—सुश्राविका श्रीमती चन्द्राबाई मूणोत

दीक्षा-तिथि—वि. स १९७७ माघ सुदी दूसरी दूज, गुरुवार

दीक्षा-स्थान—अजमेर (राज.)

दीक्षा के समय आयु—दस वर्ष की लघु आयु

चार दीक्षाएँ साथ हुईं—१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. श्री चौथमलजी म. सा. ३. रूपकंवरजी म. सा. (पूज्य हस्तीमलजी म. सा. की माताजी) ४. अमृतकंवरजी म. सा.

दीक्षा प्रदाता एवं गुरुदेव—आचार्य प्रवर पूज्य श्री १००८ श्री शोभाचन्दजी म. सा.

अध्ययन किन से किया—पण्डित दु:खमोचनजी 'झा' से

किन-किन मुनिजी का अध्ययन एक साथ हुआ—१. पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. २. श्री चौथमलजी म. सा. ३. श्री बड़े लक्ष्मीचन्दजी म. सा.

अध्ययन क्या किया—जैन आगमों का, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, जैन-जैनेतर सभी दर्शनो का

गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्दजी म. सा. का स्वर्गवास कब हुआ—आचार्य प्रवर पूज्य श्री १००८ श्री शोभाचन्दजी म सा का स्वर्गवास वि. सं. १९८३ सावण वदी अमावस, रविवार पुष्य नक्षत्र के दिन सथारे के साथ दोपहर के १२ बजे जोधपुर मे हो गया ।

आचार्य पदवी—वि. सं. १९८७ वैसाख सुदी तीज गुरुवार, जोधपुर-सिंहपोल मे प्रदान की गई ।

आचार्य श्री के विचरण क्षेत्र—मारवाड, मेवाड, मालवा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडू, दिल्ली, हरियाणा आदि-आदि सुदूर प्रदेशों मे विहार किया ।

आचार्य श्री की मौलिक विशेषताएँ—जागरण से शयन तक अप्रमत्त दैनिकचर्या थी । ध्यान-मौन जप के विशिष्ट साधक थे । दूरदर्शी, गम्भीर चिन्तक एवं संस्कृति-रक्षक थे । असीम आत्म-शक्ति के धारी, आध्यात्मिक आनन्द में रमण करने वाले महान् विशिष्ट अद्भुत योगी थे । आचार्य श्री की सहज, स्वाभाविक, ओजस्वी, आकर्षणयुक्त तेजपुंज मुखमुद्रा थी ।

आचार्य श्री की समाज को प्रमुख देन—सामायिक-स्वाध्याय, जैन विद्वानो को एक मच, निर्व्यसनता की ओर समाज को मोड़ना ।

चौमासे कहाँ-कहाँ हुए—वि. सं. १९७८ अजमेर, १९७९ से १९८३ जोधपुर (कारण कि पूज्य श्री शोभाचन्दजी म. सा. वृद्ध हो जाने से जोधपुर स्थिरवास विराज गए और वि. सं. १९८३ के सावण वदी अमावस 'हरियाली अमावस' रविवार पुष्य नक्षत्र के दिन मध्याह्नकाल दोपहर को १२ बजे मूलसिंहजी भाभा की हवेली, पेटी के नोहरे के पास, मोती चौक जोधपुर में संथारे से स्वर्गवास पधार जाने से, १५ वर्ष की लघुवय में पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. को आचार्य घोषित किया), वि. सं. १९८४ पीपाड़, ८५ किशनगढ़, ८६ भोपालगढ़, ८७ जयपुर, ८८ रामपुरा, ८९ रतलाम, ९० जोधपुर, ९१ पीपाड़, ९२ पाली, ९३ अजमेर, ९४ उदयपुर, ९५ अहमदनगर, ९६ सतारा, ९७ गुलेदगढ़, ९८ अहमदनगर, ९९ लासलगाँव, २००० उज्जैन, वि. सं. २००१ जयपुर, २ जोधपुर, ३ भोपालगढ़, ४ अजमेर, ५ ब्यावर, ६ पाली, ७ पीपाड़, ८ मेड़ता सिटी, ९ नागौर, १० जोधपुर, ११ जयपुर, १२ अजमेर, १३ बीकानेर, १४ किशनगढ़, १५ दिल्ली, १६ जयपुर, १७ अजमेर, १८ जोधपुर, १९ सैलाना, २० पीपाड़, २१ भोपालगढ़, २२ बालोतरा, २३ अहमदाबाद, २४ जयपुर, २५ पाली, २६ नागौर, २७ मेड़ता सिटी, २८ जोधपुर, २९ कोसाना, ३० जयपुर, ३१ सवाई माधोपुर, ३२ ब्यावर, ३३ बालोतरा, ३४ अजमेर, ३५ इन्दौर, ३६ जलगाँव, ३७ मद्रास, ३८ रायचूर, ३९ जलगाँव, ४० जयपुर, ४१ जोधपुर, ४२ भोपालगढ़, ४३ पीपाड़, ४४ अजमेर, ४५ सवाई माधोपुर, ४६ कोसाना, २०४७ पाली (अंतिम)।

कुल ७० चौमासों का विवरण—सर्वाधिक ११ जोधपुर, ७ अजमेर, ७ जयपुर, ५ पीपाड़, ४ भोपालगढ़, ४ पाली, २ किशनगढ़, २ अहमदनगर, २ ब्यावर, २ मेड़ता, २ नागौर, २ बालोतरा, २ कोसाना, २ सवाई माधोपुर, २ जलगाँव, १ रामपुरा, १ रतलाम, १ उदयपुर, १ सतारा, १ गुलेदगढ़, १ लासलगाँव, १ उज्जैन, १ बीकानेर, १ दिल्ली, १ सैलाना, १ अहमदाबाद, १ इन्दौर, १ मद्रास, १ रायचूर=७० कुल चौमासे हुए।

आपके शासनकाल में ८५ दीक्षाएँ हुई : ३१ संतगण—१. छोटे लक्ष्मीचन्दजी म. सा., २. जोरावरमलजी म. सा., ३. माणकचन्दजी म. सा., ४. मुनीन्द्रकुमारजी म. सा., ५. रतनलालजी म. सा., ६. शांतिलालजी म. सा., ७. जयंतिलालजी म. सा., ८. सुगनचंदजी म. सा., ९. श्रीचंदजी म. सा., १०. मगनमुनिजी म. सा., ११. मानचंदजी म. सा., १२. हीराचंदजी म. सा., १३. शीतलमुनिजी म. सा., १४. शुभेंद्रमुनिजी म. सा., १५. बसंतमुनिजी म. सा., १६. चम्पकमुनिजी म. सा., १७. भद्रिकमुनिजी म. सा., १८. ज्ञानमुनिजी म. सा., १९. महेंद्रमुनिजी म. सा., २०. गौतममुनिजी म. सा., २१. नंदिषेण-

मुनिजी म. सा., २२. प्रकाशमुनिजी म. सा., २३ धन्नामुनिजी म. सा,, २४. गणेशमुनिजी म. सा., २५. जम्बूमुनिजी म. सा., २६. प्रमोदमुनिजी म. सा., २७. हरीशमुनिजी म. सा., २८. दयामुनिजी म. सा., २९. राममुनिजी म. सा., ३० कैलाशमुनिजी म. सा., ३१. अर्हत्दास मुनिजी म. सा. ।

५४ सतीगण—१. सुन्दरकंवरजी म., २. चुनाजी म., ३. धूलाजी म., ४. सिंगारजी म., ५. बिदामजी म , ६. स्वरूपजी म., ७. बदनकंवरजी म., ८. छोटा हरकंवरजी म., ९. अमरकवरजी म., १०. फूलकंवरजी म., ११. लाडकंवरजी म., १२. उगमकवरजी म., १३. धनकंवरजी म. (सबसे छोटे वाले), १४. सायरकवरजी म., १५. मैनासुन्दरीजी म., १६. उमरावकंवरजी म,, १७. संतोपकंवरजी म., १८. ज्ञानकंवरजी म., १९. शांतिकवरजी म., २०. राजकंवरजी म., २१. जतनकवरजी म., २२. सुगनकंवरजी म., २३. इचरजकंवरजी म., २४. वृद्धिकवरजी म., २५. निर्मलावतीजी म. (उपनाम तेजकवरजी), २६. रतनकवरजी म., २७. सुशीलाकवरजी म , २८. सूरजकंवरजी म., २९. सरलकंवरजी म., ३०. सौभाग्यवतीजी म , ३१. मनोहरकंवरजी म., ३२. राजमतिजी म,, ३३. कौशल्यावतीजी म., ३४. सोहनकंवरजी म., ३५. सरलेशप्रभाजी म., ३६. चंद्रकलाजी म , ३७. इंदुबालाजी म., ३८. विमलावतीजी म., ३९. शांतिप्रभाजी म., ४०. ज्ञानलताजी म., ४१. दर्शनलताजी म., ४२. चारित्रलताजी म., ४३. निशल्यवतीजी म., ४४. नलिनिप्रभाजी म., ४५. सुश्री प्रभाजी म., ४६. विनयप्रभाजी म., ४७. इंदिराप्रभाजी म , ४८. शशिप्रभाजी म , ४९. मुक्तिप्रभाजी म., ५०. सुमनलताजी म., ५१. सुमतिप्रभाजी म., ५२. विमलेशप्रभाजी म., ५३. शशिकलाजी म., ५४. विनीतप्रभाजी म. ।

पूज्य आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. श्रमण संघ मे वि. सं. २००९ सादड़ी-मारवाड़ साधु-सम्मेलन में प्रायश्चित मंत्री एव साहित्य शिक्षण मंत्री तथा सहमंत्री वनाए गए फिर श्रमण संघ मे उपाध्याय पद पर वि. सं. २०१३ से २०२४ तक रहे ।

आपके शासनकाल में ३ दीर्घ सथारे—(१) मुनिश्री सागरमलजी म. सा का ५९ दिन का सथारा किशनगढ़ में सीझा वि. सं. १९८५ सावण वदी तेरस को इनकी स्मृति में श्री सागर जैन विद्यालय, किशनगढ़ में चल रहा है ।

(२) महासतीजी सुगनकवरजी म. सा. का जोधपुर महामंदिर में ५२ दिन का संथारा सीझा, वि. स. १९९१ भादवा सुदी सातम को ।

(३) मुनि श्री माणकचंदजी म. सा. का जोधपुर, घोड़ों के चौक में ३५ दिन का संथारा सीझा, वि. सं. २०३२ फागण सुदी आठम मंगलवार को। इनकी स्मृति में श्री वर्धमान जैन रिलीफ सोसायटी (शफाखाना) जोधपुर में चल रही है। इसी तरह मुनि श्री अमरचंदजी म. सा. की स्मृतिमें श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी जयपुर में चल रही है।

आचार्य श्री की प्रेरणा से कई संस्थाएँ गतिमान चल रही हैं—श्री जैन रत्न पुस्तकालय सिहपोल, जोधपुर, श्री जैन रत्न पुस्तकालय घोड़ों का चौक जोधपुर, श्री जैन रत्न पुस्तकालय सरदारपुरा जोधपुर, श्री वर्धमान जैन पुस्तकालय पावटा, श्री सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर, श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ जोधपुर, अ. भा. जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ जोधपुर, श्री शोभाचंद्र ज्ञान भण्डार जोधपुर, श्री बाल शोभागृह जोधपुर, आयंबिल उपासना गृह जोधपुर, श्री वर्धमान कन्या पाठशाला पीपाड़, अ. भा. सामायिक संघ जयपुर, श्री वर्धमान जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी जोधपुर, श्री महावीर पाठशाला जोधपुर, 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका जयपुर, अ. भा. महावीर जैन श्राविका संघ जोधपुर, श्री चक्षुसेवा समिति, श्री सुजान पौषध शाला, जीव दया धर्मपुरा, साधना साधक संघ जोधपुर, सिद्धांत शाला जोधपुर, श्री विनयचंद्र ज्ञान भण्डार जयपुर, श्री भूधर धर्मबंधु कल्याण कोष जयपुर, श्री कुशल जैन छात्रावास जोधपुर, श्री जैन इतिहास समिति जयपुर, श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी जयपुर, 'स्वाध्याय शिक्षा पत्रिका' जयपुर, मासिक बुलेटिन जोधपुर, श्री जैन रत्न विद्यालय भोपालगढ़, जीव दया अमर बकरा ठाट भोपालगढ़, श्री जैन रत्न छात्रावास भोपालगढ़, श्री जैन कन्या पाठशाला, श्री सागर जैन विद्यालय किशनगढ़, श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ जलगाँव, अ. भा. जैन रत्न युवक संघ जोधपुर, गुणी अभिनन्दन शृंखला जयपुर, श्री अ. भा. जैन विद्वत् परिषद् जयपुर, श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान जयपुर, श्री जैन रत्न महिला मण्डल, श्री महावीर जैन उपकरण भण्डार, श्री पुरातत्त्व रक्षण समिति, श्री हस्तलिखित शास्त्र भण्डार, श्री हस्ती शोभा पुस्तकालय निमाज, श्री वर्धमान स्वाध्याय जैन पुस्तकालय, श्री महावीर जैन रत्न कल्याण कोष, श्री वर्धमान जैन कन्या विद्यालय, श्री महावीर जैन हॉस्पिटल जलगाँव आदि-आदि कई संस्थाएँ।

आचार्य श्री द्वारा लिखित व प्रकाशित साहित्य—जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १ से ४, ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पट्टावली प्रबंध संग्रह, जैन आचार्य चरितावली, अंतकृतदशांग सूत्र, प्रश्न व्याकरण सूत्र, उत्तराध्ययन

सूत्र भाग १ से ३, दशवैकालिक सूत्र, नन्दी सूत्र, वृहत्कल्प सूत्र, श्रमण सूत्र, गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग १ से ७, कुलक संग्रह, धार्मिक कहानियाँ, आदर्श विभूतियाँ, अमरता का पुजारी, आध्यात्मिक आलोक भाग १ से ४, आध्यात्मिक साधना, गजेन्द्र मुक्तावली भाग १ से २, प्रार्थना प्रवचन, पर्युषण पर्व पदावली, पर्युषण साधना, सैद्धांतिक प्रश्नोत्तरी, सामायिक-स्वाध्याय पाठावली, जैन स्वाध्याय सुभाषित माला भाग १ से २, नवपद आराधना, प्रबंध मुक्तावली, षड्द्रव्य विचार पंचाशिका, श्रीमद् रत्नचंद्र जीवन ज्योति, गजेन्द्र पद मुक्तावली आदि-आदि।

अंतिम सल्लेखना का तेला कब किया—निमाज के गंगवाल सुशीला भवन में वि. सं. २०४८ के प्रथम वैसाख वद दशम से बारस, वार मंगल से गुरुवार दिनांक ६ अप्रैल, १९९१ से ११ अप्रेल, १९९१ तक चौविहार तेले की तपस्या की।

संथारा कब किया—निमाज के गंगवाल सुशीला भवन में चतुर्विध संघ के समक्ष वि. सं. २०४८ के प्रथम वैसाख वद तेरस शुक्रवार दिनाक १२ अप्रेल, १९९१ को दोपहर १२ बजकर ४५ मिनट पर चोले की तपस्या के साथ यावज्जीवन के लिए तिविहार संथारा ग्रहण किया। दिनांक २१ अप्रेल, १९९१ को ५ बजे चौविहार सथारा भी कर लिया।

संथारा कब सीझा—वि. सं. २०४८ के प्रथम वैसाख सुद अष्टमी रविवार पुष्य नक्षत्र दिनांक २१ अप्रेल, १९९१ को तपस्या के १३वे दिन और संथारे के १०वें दिन रात्रि को ८ बजकर २१ मिनट पर स्वर्गवास पधार गए।

अग्नि संस्कार दिवस—वि. सं. २०४८ के प्रथम वैसाख सुद नवमी पुष्य नक्षत्र सोमवार दिनांक २२ अप्रेल, १९९१ को दोपहर १ बजे सुशीला भवन से बैकुण्ठी प्रारम्भ हुई जो भण्डारी उपवन में चंदन की चिता पर २ बजकर ३१ मिनट पर पहुँची और २ बजकर ४० मिनट पर अग्नि संस्कार शुरू हुआ, उस वक्त वहाँ डेढ़ लाख से भी अधिक श्रद्धालु भक्तों ने भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

—भण्डारी सरदारचन्द जैन,
त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर द्वारा संकलित

□ □ □

जैन जगत् के आलोकमान भास्कर*

☐ आचार्य श्री हीराचन्दजी म. सा.

श्रद्धेय आचार्य कल्प श्री शुभचन्दजी म. सा., श्रद्धेय उपाध्याय प्रवर, आत्मबन्धुओ !

जिन घड़ियों की प्रतीक्षा नहीं की जाती है, कभी-कभी वे अनचाही घड़ियां भी सामने आ खड़ी होती है । कल तक जिन्हें सुनते थे, जिन्हें देखकर रोम-रोम खुशियों से झूम जाता था, जिनके इंगित, आकार और चेष्टा हमारे आलम्बन थे, वे संघ के छत्रपति, जैन जगत् के आलोकमान भास्कर, माँ भारती के अनुपम लाल, रूपा सती के अनुपम बाल आचार्य भगवन् को आज हमारे बीच न देखकर, न पाकर हृदय उद्वेलित हुए बिना नहीं रहता । 'उत्तराध्ययन' मे एक गाथा है—

> वाएण हीर माणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।
> दुहिया असरणा अत्ता, ए ए कंदंति भोख गा ।।

एक महावृक्ष महावात के योग से गिर गया । उस समय अशरण बेचारे पक्षीगण क्रंदन करते है, यही स्थिति आज जैन शासन और संघ की है । महावात—महाकाल जिसे आचार्य प्रवर ने ललकारा था, जो स्वयं उनसे भयभीत हो गया था, जो दूर खड़ा उनके पास आने की हिम्मत नहीं कर रहा था, आखिर उसने दबे पाँव उस महापुरुष को हमसे सदैव के लिए छीन लिया ।

पिछले दो महीने से उनकी समाधिमरण की साधना चल रही थी । वे क्षण-क्षण आत्म-साधना की उस सर्वोच्च दशा की ओर बढ़ रहे थे, पर हम लोग उनकी उस महालीला को शायद जल्दी नहीं समझ पाए, इसीलिए हमारे प्रयत्न और ढंग से चल रहे थे, एवं उनके प्रयत्न और ढंग से वे निरन्तर मृत्युञ्जय दशा की ओर बढ़ रहे थे । वे स्वयं कभी-कभी शेरो-शायरी मे यो कहते थे—

> मरने से मुकर नही, जब अय अकब्बर ।
> बेहतर यही है, खुशी से मरना सीखो ।।

---

*२३ अप्रेल, ६१ को निमाज मे आयोजित श्रद्धाजलि-सभा मे व्यक्त किये गये भावोद्गारो से संकलित ।

वे कहते थे—

मरते-मरते कह गया, लुकमान सा दाना हकीम।
दर हकीकत मौत की, यारो दवा कुछ भी नहीं॥

बस, इनके भावों को आप समझ ही गए होंगे। पर भगवन् तो इनको जीवन-सूत्र ही बना गए और यही कारण था कि वे जीवन की सांध्य वेला मे उस अंतिम साधना को भी परवान चढा गए।

वे कितनी ही वार कहते थे कि "भाई, मै कही खाली न चला जाऊँ।" भला, वे महापुरुष खाली कैसे जाते? जिन्होंने जैन शासन के इतिहास को गूंथा, स्वयं अपने जीवन को भी इतिहास का श्रेष्ठतम इतिहास बना गये। जीये तो शान से, गये तो शान से, रहे तो शान से, जैसा कि कहा है—

ईमां की शान जिसको, अजीज थी अपनी जान से।
वो खिज्र जा रहा है, देखो कितनी शान से॥

भगवन् के जीवन के विषय में मैं कितना क्या कहू? वाणी होते हुए भी शब्दकोष में शब्द नही है। और फिर अपरिचित हों तो कहने की भी चेष्टा करूँ, पर जिसकी नस-नस को, रोम-रोम को, क्षण-क्षण, पल-पल अपने निकट से देखा, उनको मैं क्या कहूं? आप स्वयं साक्षी है, जगत् साक्षी है, उस गुण-गौरव गरिमामय, महापुरुष का। हमे तो अब यही सोचना है कि भगवन्! जो आपने हमे दिया है, उसे हम अक्षुण्ण रख सके, यही भक्ति की शक्ति हमें प्रदान करे तथा आपके बताए मार्ग पर हम निश्चल निरन्तर आगे बढ़ते रहे, यही हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

ओम् शांतिः शांति. शांतिः।

हमें शरीर बदलने का अफसोस नही होना चाहिए। अफसोस इस वात पर होना चाहिए कि ज्ञान गुण घट गया, श्रद्धा घट गई।

—आचार्य हस्ती

सुखद, शान्त, मनोहर, महाकल्पवृक्ष*

☐ उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म. सा.

आज हम एक अकल्पनीय प्रसंग को लेकर इकट्ठे हुए है । कल तक हम एक सुखद, शांत, मनोहर महाकल्प वृक्ष की छाया तले आनन्दित हो रहे थे । भले ही कल्पवृक्ष न कुछ कहता है, न कुछ प्रत्यक्ष करता दिखाई देता है, किन्तु फिर भी वह सब कुछ वांछित फलदाता होता है, ऐसे ही महा-कल्पवृक्ष थे महास्थविर, महाप्राज्ञ, महामना आचार्य प्रवर ! जीवन की उषाकाल में वे सयमी बने । तब से लेकर अनवरत वे आगे की ओर ही बढ़े, पीछे झांकने का उनका स्वभाव ही नहीं था । वे हर क्षण सजग रूप से अध्यात्म के हर सोपान में निरन्तर आगे ही बढ़े । अभी-अभी गुरुदेव कुछ अस्वस्थ थे । एक दिन पाट से काफी आगे सरक कर बैठे थे तथा आगे सरक रहे थे, हमने सहज रूप से निवेदन किया, 'भगवन् ! जरा पीछे सरके ।' तब मृदु हास्य के साथ वाणी निकली, "भाई, मैं तो आगे बढ़ना ही जानता हूं, तुम मुझे पीछे सरकने को कह रहे हो !"

एक छोटी सी बात में भी वे जीवन के कई अनछुए प्रश्नों को सहज खोल देते थे । यही हुआ था इस उपयुक्त चर्चा में । आज हमें उनका वियोग हो गया ।

वे कितने साहसी, धीर, वीर, गम्भीर थे, क्या बताया जाय ? कितना कहा जाय ? आखिर कहने को मेरे पास शब्द सामर्थ्य ही कहाँ है ? कई घटनाएँ स्मृति-पटल पर बार-बार आती है । कोई एक घटना हो [illegible] जाय । उनके जीवन का हर क्षण, हर पल तथा हर कार्य [illegible] विलक्षण, अनुपम, अवर्णनीय था । मेरी वाणी तो उन सबको [illegible] अक्षम है । इतना ही कहना है कि गुरुदेव ! जो धन आपने [illegible] आशीर्वाद से उसे हम निरन्तर वृद्धि की ओर ले जायें ।

भगवन् तो निकटभवी हैं । उनकी आत्मा [illegible] ही । इसमें हमारा कुछ कहना ही क्या ? [illegible] ज्वलंत प्रमाण था । भविष्य की संघ-व्यवस्था [illegible] श्रेष्ठतम व्यवस्था की है, जो सारे संघ को [illegible]

आशा है, आचार्य प्रवर के योग्य [illegible] गरिमा को निरन्तर वढायेगा, यही मेरी [illegible] महापुरुष को अपनी भावपूर्ण श्रद्धां[illegible]

---

*२३ अप्रेल, १९९१ को निमा[illegible] विचारो से सकलित ।

जाज्वल्यमान जीवन*

□ पं० र० श्री ज्ञान मुनि
(आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के विद्वान् शिष्य)

आत्म वन्धुओ !

आज का प्रसंग एक अकल्पनीय प्रसंग है । इस प्रसंग की कल्पना भी नहीं की थी । कभी नही सोचा था कि ऐसा दिवस और यह प्रसंग भी देखना पड़ेगा । पर यह प्रसंग आज ही आ गया । इस प्रसंग पर क्या कहा जाय, यह भी एक विकट समस्या है । कल तक जिन महापुरुष को हम अपने वीच पा रहे थे; जिन्हे देखकर मन भरता ही नही था; आज वे हमारे वीच में से चले ही गये । एक शायर ने कहा है—

कल तक तो कहते थे कि विस्तर से उठा जाता नही ।
आज दुनिया से चले जाने की ताकत आ गई ।।

आचार्य देव देह से चले गए और शास्त्रकारों ने भी कहा कि "ऐसे महापुरुषों के लिए जाना यानी मरण कोई शोक का कारण नही होता ।"—

ण हु होई सोयियव्वो, जो कालगातो दढ़ो चरित्ताम्मि ।
सो होई सोयियव्वो, जो संजम दुव्वलो विहरई ।।

उस महापुरुष के मरण को भी अनुभवी तो महोत्सव ही कहते है । जो संयम में, चरित्र में दढ़ है, दढ थे, उन महापुरुप के मरण का क्या सोच ? जो संयम-चरित्र में वेचारे दुर्बल है, उनका मरण सोचनीय होता है । विचारणीय होता है उनका मरण ! राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक जगह लिखा है—

जो इन्द्रियों को जीत कर, धर्माचरण में लीन है ।
उनके मरण का सोच क्या, वो मुक्त बंधन हीन है ।।
जो धर्म पालन में विमुख, जिसको विषय ही भोग्य है ।
ससार में मरना उसी का, सोचने के योग्य है ।।

---

*२३ अप्रेल, १९९१ को निमाज मे आयोजित श्रद्धाञ्जलि सभा मे व्यक्त किये गये विचारांश ।

जिस महापुरुष ने हँसते-हँसते मौत को गले लगाया; मौत खुद जिनसे सहम गई, उस मृत्युञ्जयी महापुरुष के लिए हम क्या कहने में समर्थ हो सकते हैं? उन्होंने मौत को जीता, जीवन को सफलता के शिखर तक पहुँचाया, पर हमारी अन्तरंग स्थिति कैसी है; क्या कहूं, समझ से परे है। हमारे मरुधरा के युवा संत श्री नूतन मुनिजी के दिवंगत होने पर स्व. आचार्य श्री लालचन्दजी म. सा. ने एक शेर कहा था, मुझे याद आता है वह—

गुर जिन्दगी का सीखे, खिलती हुई कली से।
लब पर है मुस्कराहट, दिल खून रो रहा है।।

आज हमारी यही दशा है। बाहर महोत्सव है पर भीतर का हाल कहने लायक नहीं है। ऐसी दशा क्यों है? कारण यह है जिस महापुरुष ने सब कुछ दे दिया, जीवन सौप दिया; हमारे पास क्या है जो उनके ऋण को चुका सके—

"जग हित निज सर्वस्व दान कर, तुम तो हुए अशेष।
क्या देकर प्रतिदान करूँ मै, पास नहीं लवलेश।।"

हमारे पास प्रतिदान करने को कुछ भी तो नहीं है और ऐसे महापुरुष न मालूम कितनी शताब्दियों में जाकर कही मानवता के हाथ आते है। कहा है—

हजारों सालों से नरगिस, अपनी बेनूरी पर रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदवर पैदा।।

शायर इससे भी आगे बढ़कर बोलता है—

तेरा दीद जिसको नसीब, वो नसीब काबिले दीद है।।

अरे, जिसने उस महापुरुष का दर्शन पाया, सान्निध्य पाया, ज्ञान पाया, उस व्यक्ति का तो भाग्य भी दूसरों के लिए ईर्ष्या का कारण बन जाता है। वात यह है कि एक मारवाड़ी कवि कह गया—

सौ सज्जन अरु मित्र लख, बंधु सुबंधु अनेक।
ज्यां देख्यां ही दु:ख टले, सो लाखन में एक।।

आचार्य भगवन्त लाखों में ही नही; करोड़ो में अपनी सानी के एक ही थे। क्या वे चले गये? कैसे चले गये? देह से भले ही चले गये, पर उनका यश: शरीर आज तो क्या; युगों-युगों तक अमर रहेगा। फिर एक संवाद याद आता है—

ज्वलन्त उदाहरण 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' है जो चार भागों मे उपलब्ध है।

आपका तो यह दृढ़ मन्तव्य था कि जीवन निन्दा से नही, निर्माण से निखरता है। आप निन्दा-स्तुति में सदा सम रहते थे। निन्दा मे भूलना और प्रशंसा में फूलना तो आपने सीखा ही नही। निन्दकों को पास रखना वे हमेशा अधिक पसन्द करते थे जिससे हर कार्य में सावधानी रहे। कवि के शब्दो मे—

"निन्दक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करत सुभाय।।"

गुरुदेव ने विरोध को सदा विनोद माना। यही कारण है कि भयंकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी गुलाब के फूल की तरह वे मुस्कराते रहे। उर्दू के विद्वान् के शब्दों में—

"मंजिले हस्ती में दुश्मन को भी अपना दोस्त कर।
रात हो जाये तो दिखलावे, तुझे दुश्मन चिराग।।"

आपने दुश्मनों को भी मित्र माना।

आप सच्चे प्रभावी प्रवचनकार थे। विशिष्ट त्याग-प्रधान जीवन से जीने वाले महापुरुषों की वाणी ही प्रवचन है। आपकी वाणी मे सहज मधुरता थी। भावों की लड़ी, भाषा की कड़ी एवं तर्कों की झडी का सुमेल ऐसा होता कि श्रोता आपकी वाणी सुन झूम उठता था। किस समय क्या बोलना, कितना बोलना और कैसे बोलना, इस बात का आपको पूरा-पूरा ज्ञान था। अतः जो कोई आपके सम्पर्क मे आता, आपका बने बिना नही रह सकता, चाहे जैन हो या अजैन।

अभी-अभी निमाज मे आचार्य भगवन् की उपस्थिति में हरदव भाई जो इस्लाम धर्म को मानने वाला, भयंकर जीवन जीने वाला और स्वय कत्लखाना चलाने वाला कसाई था, आचार्य श्री के मूक सन्देशों से इतना गजब का प्रभावित हुआ कि उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक यह महापुरुष जिन्दा रहेगा मै ही क्या हमारी जाति में कोई भी मांसाहार नहीं करेगा न विक्रय करेगा। यह आपकी जादूभरी वाणी का ही प्रभाव था।

इस प्रकार मैं आपकी कौन सी विशेषता पर प्रकाश डालू ? लेखनी पर आपके गुणो को अंकित करना सम्भव ही नही। क्या कभी विराट् समुद्र को नन्ही सी अजुलि मे भरा जा सकता है ?

गुरु जीवन रूपी ट्रेन का स्टेशन है, जीवन-नौका का नाविक है। जीवन दीपक की ज्योति है। प्रकाश पुञ्ज है। गुरु हमारे जीवन के निर्माता हैं। कवि ने कहा है--

"हुए तराजू के दो बाजू, पलड़ा बिच में चोटी।
खोट हुआ चोटी में, करदे सारी बातां खोटी।।"

तराजू की चोटी की तरह देव और धर्म के बीच गुरु हैं। चोटी में कसर होने पर तोल की गड़बड़ी हो जाती है, गुरु की प्रामाणिकता समाप्त होने पर चतुर्विध संघ की व्यवस्था ही खत्म हो जाती है। पर हमें तो जो गुरु मिले थे, वे सच्चे अनुशास्ता थे। उन्होंने चतुर्विध संघ में जीवन-निर्माण के लिए तिल-तिल जल कर अपने को खपाया। वे जिए तो स्व एवं संघहित के लिए और स्व एवं संघ हित में ही मृत्युजय बनकर हम चतुर्विध संघ को धन्य-धन्य कर गये।

आचार्य भगवन् ने अपने निर्मल ज्ञान में अन्तिम समय को पूर्ण रीति से कई दिनों पूर्व ही नही, बल्कि महीनों और वर्षो पूर्व जान लिया। कुछ उदाहरण सहज ही मेरी स्मृति-पटल पर अकित हो गये है जैसे—

(१) मेड़ता वाले जतनराज सा मेहता ने आचार्य भगवन् से अर्ज किया—भगवन्! मेरे पिताजी अस्वस्थ है। डॉक्टरों ने हाथ छिटका दिये है अत: मांगलिक सुनावें। आचार्य श्री ने हँसते स्वर मे कहा—वाह जतन वाह! क्यों घबरा रहा है? तेरे पिताजी और मेरा जाना तो आगे-पीछे ही होगा। घर जाने पर जतनराज सा ने अपने पिताजी को स्वस्थ पाया। आप जानकर आश्चर्यचकित होंगें कि दिनांक २२-४-६१ को निमाज में आचार्य भगवन् एवं उसी दिन मेड़ता में प्रेमराज सा मेहता का दाह संस्कार हुआ। यह कोई १५ वर्ष पुरानी बात है।

(२) मैने आचार्य भगवन् से अर्ज किया—भगवन्! आपने हम सबको स्मृति-पट मे ले दर्शन-सेवा का सौभाग्य दिया वैसे ही महासती तेजकुवरजी को भी बुला ले। आचार्य श्री ने फरमाया—वे आ नही पायेगे और उनके दर्शन लिखे नही है। वास्तव में हुआ भी वैसा ही। १२ दिन में ३६५ कि. मी. का उग्र विहार करके आने पर भी दर्शन-सेवा लाभ से वे वंचित ही रहे।

(३) मै आचार्य भगवन् के दर्शन करने को १८ मार्च के दिन दोपहर दो बजे पहुँची। वन्दना कर बाहर निकल ही रही थी कि भगवन् ने दो अंगुली खड़ी की। मैने मुड़कर पूछा—भगवन्! क्या मै बेला करूँ या दो हजार गाथाओं का स्वाध्याय करूँ? तब कहा—नही। मै समझ ही नही पाई आचार्य भगवन् क्या कहना चाहते है? तब उस समय पास विराजित श्री अर्हत्दासजी म. सा. से

मैने पूछा—आचार्य श्री क्या फरमा रहे हैं ? तब आचार्य श्री से उन्होंने पूछा और भगवन् ने फरमाया कि महासती रतनकुवरजी की तबियत खराब हो गई है। उनको मोटे रोटे तो अनुकूल हो सकते है किन्तु गरिष्ठ आहार नहीं। अतः दो हजार गाथाओं का स्वाध्याय करने का कह देना। मैने कहा—भगवन् ! आज तो ठीक है। पर सच मानिये (आचार्य भगवन् सर्वज्ञ नहीं होते हुए भी सर्वज्ञ की तरह विशेषज्ञ थे) १० मिनिट बाद ही मेरे पास बुलावा पहुँचा। आप जल्दी स्थान पर आवें क्योंकि रतनजी म. सा. को बहुत जोरों से उल्टियाँ हो रही है। तबियत खराब है। मेरे आश्चर्य का पारावार नहीं था। सचमुच आचार्य भगवन् इस कलिकाल में सर्वज्ञ नहीं होने पर भी सर्वज्ञ की तरह विशेषज्ञ थे।

इस प्रकार कई प्रमाणों से आचार्य भगवन् ने अपना अंतिम समय बतला कर संथारा संलेखना से पंडित मरण की तैयारी डेढ़ माह पूर्व से ही चालू कर दी। आपने अपने को आत्मस्थ कर लिया। संसार के सम्पूर्ण पदार्थो से स्नेह-सम्बन्ध तो पूर्व से ही कटा हुआ था किन्तु चतुर्विध संघ से भी मोह-सम्बन्ध हटा कर अन्तिम साधना 'स्थानांग सूत्र' मे वर्णित 'तीसरा मनोरथ' अपनाकर अपनी नश्वर देह का त्याग किया।

आज भौतिक पिंड से आचार्य श्री हमारे बीच में नहीं है, किन्तु सद्गुणों की अपेक्षा हजार-हजार रूपों में आज भी वे अमर है। ऐसे अनन्त-अनन्त उपकारी गुरु भगवन् को मैं क्या कहूँ ?

"तात मात के गुरु कहूँ, सखा कहूँ शिर ताज।
जे कहुँ ते ओछूं बधु, मै मान्युं गुरुराज।"

अन्त में शासनेश से मंगल कामना करती हूँ कि आचार्य भगवन् के सभी सद्गुण धीरे-धीरे मेरे जीवन में भी प्रविष्ट हों और मै अपने संघ एवं संघनायक की यत्किंचित् सेवा कर सकूँ, यही मेरी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

आचार की दृढ़ता : विचार की उदारता

☐ श्री मोफतराज मूणोत

प्रातः स्मरणीय, अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी, परम श्रद्धेय, पूज्य आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. भारतीय सन्त परम्परा के महान् आचार्य थे। आध्यात्मिक सन्त-परम्परा में वे वर्तमान युग के विशिष्ट ज्ञानी, ध्यानी, वचनसिद्ध, महामनीषी, विरल विलक्षण व्यक्तित्व थे। यद्यपि वे रत्नवंशीय सम्प्रदाय के सप्तम आचार्य थे, पर सम्प्रदाय विशेष की सीमा में वे बंधकर

नहीं रहे । आत्म-कल्याण के साथ प्राणीमात्र के कल्याण के लिए उनकी जीवन-साधना समर्पित रही । सभी वर्ग, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के लोग बिना भेदभाव के उनके दर्शन, प्रवचन-श्रवण एवं सान्निध्य का लाभ उठाकर अपने को कृतकृत्य समझते थे । सारल्य, वात्सल्य, माधुर्य और करुणा के वे महासागर थे ।

१० वर्ष की आयु में आचार्य श्री शोभाचन्दजी म. सा. के चरणों में जन भागवती दीक्षा अंगीकृत कर अपनी विलक्षण प्रतिभा, अगाध ज्ञान, उत्कृष्ट चारित्र एवं कठोर आत्मानुशासन के फलस्वरूप २० वर्ष की आयु में आप रत्नवंश सम्प्रदाय के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए । ६२ वर्ष तक आचार्य रूप में जिनशासन और धर्मसंघ की सेवा करने वाले आप विशिष्ट आचार्य थे । इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता ।

आचार की दृढ़ता और विचार की उदारता आपके व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी । आप प्रायः कहा करते थे कि आचार में मेरु पर्वत की तरह अडोल बने रहो और विचार में गंगा की पवित्रता लिये बहते चलो । आप सम्प्रदाय को एक परिवार मानते थे और कहा करते थे कि अपने परिवार के विकास के लिए सतत क्रियाशील रहो, पर किसी के लिए बाधक न बनो । दूसरे को गिराकर उठने का प्रयत्न न करो, सबको साथ लेकर चलो । इसी भावभूमि पर अन्य सम्प्रदायों के प्रति आपका सदा सहिष्णुता का भाव रहा । यही कारण है कि सभी सम्प्रदाय के लोगों की आप में पूर्ण आस्था एवं अगाध श्रद्धाभक्ति थी ।

आपके व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता कथनी-करनी में एकरूपता थी । अपने सुदीर्घकालीन आचार्य-काल में आपने कभी अपने व्यक्तित्व में द्वैतपना नहीं आने दिया । अंगूर की तरह आप भीतर और बाहर एकरूप, एकरस बने रहे ।

समाज को धार्मिक, शैक्षिक व अन्य सर्वजन-हितकारी प्रवृत्तियों की सतत प्रेरणा देते हुए भी आप सदैव आत्म-चिन्तन और धर्म-ध्यान में लीन रहते थे । एक क्षण भी आप प्रमाद में नहीं बिताते थे । चिन्तन-मनन, जप-तप, स्वाध्याय में लीन रहते हुए भी आप सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक भाई-बहिन, बाल, युवा, वृद्ध को उसकी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक प्रवृत्ति करने की प्रेरणा और नियम दिलाते थे । पात्र में रही हुई योग्यता को पहचानने में आप बड़े कुशल और सिद्धहस्त थे । जिसमें जैसी क्षमता और योग्यता देखते, उसे उसी ओर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते, जिससे आपके सम्पर्क मे आने वाला प्रत्येक व्यक्ति आपके दर्शन कर आंतरिक प्रसन्नता और विशिष्ट शांति अनुभव करता था । आपकी दी हुई

प्रेरणा और कहे हुए वचन हृदय को गहराई तक स्पर्श करते थे और आपकी कोई भी वात भारभूत नहीं लगती थी। यही कारण है कि आपके सम्पर्क मे आने वाले भाई-वहिनों के जीवन में रूपान्तरण आया है और वे सच्चे मानव और आदर्श नागरिक बनने की ओर अग्रसर हुए हैं।

कहा जाता है कि संघनायक आचार्य को अन्तिम समय में संथारा दुर्लभता से ही आता है क्योंकि किसी न किसी रूप में संघनायक को अपने संघ के प्रति राग वना रहता है, पर आचार्य श्री ने तीन दिन के उपवास सहित १३ दिन का सथारा लेकर जो समाधिमरण प्राप्त किया, वह इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। आप प्राणीमात्र से, प्रमुख आचार्यो से, सन्त-सतियों से क्षमा-याचना कर, अपने कृत कर्मो की आलोचना कर, देह और आत्मा का भेद अनुभव कर, पूर्ण जागरूकता के साथ अंतिम समय तक आत्मस्थ रहे, आत्मरमण करते रहे। आपने जीवन-साधना की तरह मरण-साधना की भी पिछले कई दिनों से पूरी योजना सी वना ली थी। इसीलिए बार-बार आपका संकेत निमाज चलने की ओर रहा और अपने सन्तों से भी कहते—'मै खाली न चला जाऊँ।' संथारा-ग्रहण से कई दिनो पूर्व से ही आपने अन्न लेना बन्द कर दिया था। वस्तुतः शरीर व आत्मा के भेद को आपने अनुभूति के स्तर पर समझ लिया था। शरीर के प्रति आपका कोई मोह-ममत्व नहीं था। मृत्यु स्वयं आकर आप पर झपटा मारे, ऐसा अवसर आपने मौत को दिया ही नही। आपने तो मृत्यु को विजय महोत्सव मानकर, उसे अपना परम मित्र जानकर स्वयं निमंत्रण दिया कि आओ और मुझे ले चलो। आप जैसे ज्योतिर्धर आचार्य का मार्ग-दर्शन पाकर हमारा संघ ही नहीं, पूरा समाज, राष्ट्र और विश्व कृतकृत्य हो उठा। आज पार्थिव रूप से आप हमारे बीच नहीं है, पर सामायिक और स्वाध्याय के रूप में दिया गया आपका सन्देश हमें सदा प्रेरणा देता रहेगा। हम सबका कर्तव्य है कि हम आचार्य श्री के वताये हुए रास्ते पर निरन्तर वढते रहें। यही उस दिवंगत आत्मा के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि है।

आपके द्वारा लिखित गोपनीय दस्तावेज के आधार पर चतुर्विध संघ द्वारा आपके सुशिष्य पं. र श्री हीराचन्द्रजी म. सा आचार्य पद पर एव पं. र. श्री मानचन्दजी म. सा. उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किये गये है। आपके सम्यक् मार्ग-दर्शन में हमारा संघ और समाज धर्माराधना एवं अध्यात्म-साधना मे निरन्तर आगे वढता रहे, यही मंगल-कामना है।

—अध्यक्ष, अ० भा० श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
जोधपुर—३४२००१
६१, कल्पवृक्ष, २७ वी. जी. खेर मार्ग
वम्वई—४००००६

उच्च कोटि के आध्यात्मिक सन्त

☐ डॉ. सम्पतसिंह भांडावत

परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की मेरे व मेरे परिवार पर पूरी कृपा-दृष्टि थी। मेरे लिए तो आचार्य श्री भगवान् थे। उनका आशीर्वाद मुझे व मेरे परिवार को सदा मिलता रहा।

आचार्य श्री अपनी कठोर संयम-साधना, शुद्ध, सात्विक साधु-मर्यादा, विशिष्ट ज्ञान-ध्यान आराधना के लिए विख्यात थे। सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना में वे जीवन-पर्यन्त समाधिभाव से लीन रहे तथा संघ व समाज को इस ओर प्रवृत्त होने की सतत प्रेरणा देते रहे।

आचार्य श्री कथनी-करनी में एकरूप व वचन-सिद्ध थे। उनका हृदय अत्यन्त निर्मल और चित्तवृत्ति इतनी शुद्ध व पवित्र थी कि भविष्य में होने वाली घटना को वे जान लेते थे। पाली चातुर्मास के बाद आचार्य श्री का विहार जोधपुर की ओर हो, यह सभी की भावना थी पर आचार्य श्री बराबर निमाज का संकेत करते रहे। उन्हें अपने अन्तिम समय का पूर्वाभास हो गया था। आचार्य श्री प्रायः कहा करते थे कि मरण-सुधार से जीवन-सुधार होता है और जीवन-सुधार से मरण सुधार। उन्होंने संथारापूर्वक समाधिमरण प्राप्त कर जैन आचार्य-परम्परा में अपना विशेष कीर्तिमान स्थापित किया।

आचार्य श्री श्रमण-परम्परा के महान् सन्त थे। परम्परा का निर्वाह करते हुए भी वे रूढ़िवादी नही थे। धर्म-क्रिया को तेजस्वी और प्रभावक बनाने के लिए उन्होंने स्वाध्याय पर विशेष बल दिया। उन्होंने आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जैसी संस्था स्थापित करने की प्रेरणा दी ताकि समाज में सच्चे ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो।

उच्च कोटि के आध्यात्मिक सन्त होते हुए भी आचार्य श्री सहज-सरल थे। आपका सबके प्रति समान व्यवहार था। कोई भी व्यक्ति आप तक सीधा पहुँच सकता था। सबको आपका आशीर्वाद और सान्निध्य बिना किसी भेदभाव के सुलभ हो जाता था। आपका दरवाजा सबके लिए खुला था।

आचार्य श्री अत्यन्त दयालु और करुणासागर थे। मेरे डॉक्टर ने कैंसर बता दिया। मै अमेरिका भी गया पर आपका मंगल आशीर्वाद ही मेरा सम्बल रहा। आपने सदा निराशा में आशा का संचार किया और सही मार्ग-दर्शन दिया।

ऐसे महान् आध्यात्मिक सन्त के चरणों में मेरा कोटि-कोटि वन्दन !

—अध्यक्ष, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल,
रैनबो हाउस, पावटा, जोधपुर

फक्कड़ सन्त : महक अनन्त

☐ श्री देवेन्द्रराज मेहता

परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की मेरे एवं मेरे परिवार पर असीम कृपा थी। मेरे बचपन से लेकर उनके समाधि मरण तक यह कृपा बनी रही जो मेरा परम सौभाग्य था। जब मुझे दिल्ली में यह सूचना मिली कि आचार्य श्री का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है तो मैं २३ मार्च, १९९१ को उनके दर्शनार्थ निमाज पहुँचा। मुझे वहाँ यह बताया गया कि ४ दिन से आचार्य श्री मौनरत है अतः उनके दर्शन तो हो सकते है, पर चर्चा-वार्त्ता नही। पर जब मैं उनके सान्निध्य में पहुँचा तो उन्होंने स्वतः ही मुझे एवं मेरे परिवार को आशीर्वाद दिया। रत्नवंशीय साधु-परिवार एवं मेरे स्वयं के परिवार के सात से अधिक पीढियो के सबंधों का प्रमोद भाव से उल्लेख किया और काफी अस्वस्थ होने के उपरान्त लगभग ३० मिनिट तक बातचीत की, व अन्त में सदा की भांति नैतिक एवं प्रामाणिक जीवन जीने के बिन्दु पर बल दिया। अहिसा एवं सेवा के क्षेत्र में और अधिक रुचि लेने तथा कार्य बढ़ाने की विशेष प्रेरणा दी। आचार्य श्री के इस आशीर्वाद और आत्मीयतापूर्ण अंतिम निर्देश को पाकर मैं आत्म-विभोर व भाव-विह्वल हो उठा। मुझे बाद में बताया गया कि इसके बाद आचार्य श्री समाधिमरण तक पूर्ण मौन मे रहे और अन्य किसी से वार्त्ता नही की, यह उनकी अन्तिम वार्त्ता थी।

मेरे एव मेरे परिवार का यह सौभाग्य है कि रत्नवंशीय चतुर्विध संघ-परम्परा के साथ पीढ़ियो से हमारा श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमपूर्ण सबंध रहा है जिसका उल्लेख आचार्य श्री स्वय यदा-कदा करते रहते थे। मुझे वह प्रसंग स्मरण हो आया जब आचार्य श्री आलनपुर सवाईमाधोपुर चातुर्मास में विराज रहे थे। मैं जयपुर से रात्रि के समय वहाँ आचार्य श्री के दर्शनार्थ पहुँचा—अन्धेरा था। अतः वहाँ उपस्थित श्रावको ने पूछा—आप कौन है ? कहाँ से आये हैं ? मैंने अपना नाम आदि बताया। आचार्य श्री ने इस पर सहज भाव से कहा—सरकार मे ये क्या कार्य करते है, यह तो मुझे पता नही, पर कम से कम सात पीढ़ियों से—हमारे साधु संघ व इनके परिवार से सम्बन्ध रहे है। इस सम्बन्ध में आचार्य श्री ने एक घटना सुनाई जो उनके स्वयं के जीवन व वंश-परम्परा मे व्याप्त फक्कड़पन तथा अनासक्त भाव को उजागर करती है।

आचार्य श्री ने कहा कि महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री रत्नचन्दजी म० (जिनके नाम पर रत्नवंश परम्परा चल रही है) जब कभी जोधपुर पधारते तो

श्री जसरूपजी सा० मेहता (मेरे पूर्वज) उन्हें अपने घर लाडनूँ की हवेली में अवश्य आते-जाते ठहराते थे। श्री जसरूपजी सा० अपने समय के प्रमुख श्रावक थे और जोधपुर राजघराने में उनका अत्यधिक प्रभाव था। उनके प्रभाव का एक दृष्टान्त यह है कि उन्होंने अपने कामदार श्री कालूराम पंचोली को राज्य का दीवान बना दिया। उस समय जोधपुर के नरेश महाराजा मानसिंह थे जिनका व्यक्तित्व विचित्र और विरोधाभासी था। एक ओर वे गहन आध्यात्मिक एवं ज्ञानी थे तो दूसरी ओर प्रशासन में कूटनीतिज्ञ तथा कठोर थे।

जसरूपजी सा० ने जोधपुर नरेश से निवेदन किया कि रत्नचन्दजी म. सा. उनकी हवेली में ठहरे हुए हैं। उनके दर्शन करने वे पधारे। उनसे यह सुनकर कि रत्नचन्दजी म० सा० एक पहुँचे हुए सन्त है तो नरेश ने दूसरे दिन उनकी हवेली पर आने की स्वीकृति दे दी। यह घटना प्रधान चर्चा का विषय हो गयी क्योंकि उन दिनों में नरेश का किसी के घर जाना भगवान का घर आना माना जाता था। किले से जब रात को जसरूपजी सा. वापस आये तो सर्वप्रथम रत्नचन्दजी म. सा. को जोधपुर नरेश की स्वीकृति की सूचना यह समझ कर दी कि इससे म. सा. अत्यधिक प्रसन्न होंगे। उनकी मनोभावना शायद यह भी रही हो कि महाराज सा. समझेंगे कि उनका श्रावक कितना बड़ा व्यक्ति हो गया है कि जो नरेश को भी अपने घर ला सकता है। पर आचार्य रत्नचन्दजी म. सा. ने इस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही कि और अन्धेरा होने के कारण उनके भाव भी चेहरे से नही पढ़े जा सके।

दूसरे दिन सवेरा होते ही महाराज सा. ने विहार कर दिया। नौकर ऊपर भागा और जसरूपजी सा. को इसकी सूचना दी। जसरूपजी सा. सकते में आ गये और घोड़े पर बैठकर महाराज सा. के पीछे पहुँचे। उन्होंने आचार्य श्री रत्नचन्दजी म. सा. से पुनः अपनी हवेली पर आने का निवेदन किया तथा यह भी वताया कि जोधपुर नरेश जिन्होंने उनके (आचार्य श्री के) प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी, वे इसे अपनी घोर अवमानना समझेंगे।

इस पर आचार्य श्री रतनचन्दजी म. सा. ने नि.संग और निर्भीक होकर कहा—'हमने तो संसार छोड़ दिया। कौन राजा ? किसका राजा ? सांसारिक प्रपंचो मे हमें मत फँसाओ। हमारे पास तो ये काष्ठ-पात्र है और राजा के पास छत्र है। पात्र-पति व छत्र-पति का क्या संग ?

आचार्य श्री का यह उत्तर सुनकर श्री जसरूपजी महाराजा मानसिंहजी के पास गये और आचार्य श्री व अपने बीच हुआ पूरा वार्त्तालाप उन्हें सुनाकर

क्षमायाचना की। महाराजा मानसिंह बहुत प्रभावित हुए और यह कहा कि तुम्हारे गुरु तो पक्के फक्कड़ हैं।

आचार्य श्री रतनचन्दजी म. सा. का यह फक्कड़पन, अनासक्त भाव और निःसंगपना मैंने आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के जीवन में भी सदैव देखा। राजनीतिज्ञों, श्रीमन्तों और सत्ताधारियों से वे कभी प्रभावित नही हुए। मान-सम्मान की उन्हे कभी परवाह नही रही। उनकी दृष्टि में राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, वर्ण-जाति का कोई भेदभाव नहीं था। जयपुर में महान् तपस्विनी श्रीमती इचरजदेवी लूणावत की १६५ दिन की सुदीर्घ तपस्या के महोत्सव पर भारत सरकार के खाद्य मंत्री श्री जगजीवनराम आये थे। आचार्य श्री को जब इस बात का पता चला तो उन्होने इसके लिए कोई प्रमोद व्यक्त नही किया और अपने प्रवचन में एक निर्भीक, तेजस्वी, फक्कड़ सन्त की तरह देश की परिस्थिति पर अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि राजनीतिज्ञ सिर्फ गांधी की कमाई ही नही खावें बल्कि देश मे बढ़ते भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण किया जाये। यह अलग बात है कि अनेक लोगों को उनकी यह बात रास न आई हो।

पीपाड़ चातुर्मास में राजस्थान के राज्यपाल वसन्त दादा पाटिल के आने पर भी आचार्य श्री अपनी धर्माराधन में ही लगे रहे और जब महामहिम राज्यपाल स्वय ने उनके दर्शन कर आशीर्वाद मांगा तो केवल शराब बन्दी की बात कही। आचार्य श्री के सान्निध्य में सबके लिए समान अवसर और समदर्शिता का भाव था। मैंने कई बार देखा है कि संघ के वरिष्ठ पदाधिकारी भी धर्मसभा में जैसे आते है, वैसे बैठते जाते है। उनके लिए कोई स्थान निश्चित नहीं रहता।

आचार्य श्री धर्म को जन्म से नहीं, सद्कर्म से जोड़ते थे। जो सत्कर्म करता है, जो सद्गुणी है, वही उनकी दृष्टि मे ऊँचा माना जाता था, फिर चाहे वह किसी जाति व वर्ण का क्यों न हो। मेरे एक सहयोगी मित्र ने जो प्रशासन में है और जन्म से मीणा जाति के है, एक बार कहा—कि आपके धर्म गुरु आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. इस युग के महान् आध्यात्मिक सन्त है। वे समता की प्रतिमूर्ति हैं। हमारी जाति के एक युवक को उन्होने जैन दीक्षा की है और उन्हें अपने सघ में, आचार-व्यवहार में बराबर का दर्जा दिया। बड़े-बड़े विद्वान् और श्रीमन्त उस युवक मुनि के चरण-स्पर्श करते है। जातिवाद के विरुद्ध महावीर ने जो परम्परा कायम की, उसी के अनुरूप यह कार्य हुआ।

आचार्य श्री नैतिक व प्रामाणिक जीवन जीने पर विशेष बल देते थे।

उनकी बराबर यह प्रेरणा रहती थी कि धर्म जीवन में उतरे, व्यवहार में प्रगट हो। धर्म दस्तूर रूप में न होकर आचरण रूप में हो। आचार्य श्री क्रियाकाण्ड में धर्म नहीं मानते थे। ईमानदारी, सादगी और नैतिकता के रूप में धर्म प्रतिफलित हो, ऐसी उनकी प्रेरणा रहती थी। यदि ये गुण किसी व्यक्ति में हैं, फिर वह चाहे सामायिक करे या न करे, माला फेरे या न फेरे, उनकी दृष्टि में धार्मिक और नैतिक था। मेरे चाचा श्री जसवन्तराजजी मेहता ऐसे ही व्यक्ति थे। आचार्य श्री उन्हे इसी भाव से देखते थे। वे जीवन पर्यन्त ईमानदार, नैतिक, प्रामाणिक और सादगीप्रिय रहे। वे अजमेर साधु-सम्मेलन में मुनि दर्शनार्थ गये। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने एक अन्य आचार्य से उनका परिचय कराते हुए कहा—'इनमें और हम में भेद सिर्फ वेष का है।' एक अन्य प्रसंग जोधपुर का है। श्री जसवन्तराजजी मेहता आचार्य श्री के दर्शनार्थ गये। वहाँ बड़े लक्ष्मीचन्दजी म. सा. ने उनसे पूछा कि क्या आप माला फेरते है? सामायिक करते है? इतने में आचार्य श्री पधार गये। उन्होने मेहता सा. को देखकर कहा—'मुनि श्री! आप ये बात किससे पूछ रहे है? ये तो जो करे, सो ही धर्म है।'

आचार्य श्री पात्र की योग्यता और सामर्थ्य देखकर धर्माराधना के क्षेत्र मे उसके अनुरूप बढ़ने की प्रेरणा देते थे। यही कारण है कि उनके संपर्क में आने वाले व्यक्तियों में जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग है। क्या धनी, क्या उद्योग-पति, क्या वकील, क्या न्यायाधीश, क्या डॉक्टर, क्या इंजीनियर, क्या अध्यापक, क्या अधिकारी।

आचार्य श्री अत्यन्त करुणाशील और दयालु थे। अहिंसा और प्रेम उनके रग-रग में व्याप्त था। प्राणी मात्र के प्रति उनके मन मे दया का भाव था। उनके मुख-मण्डल पर सदैव प्रसन्नता का भाव, करुणा का भाव, सौम्य भाव व्याप्त रहता था। जो भी उनके सम्पर्क में आता, सान्निध्य पाता, भीतर से भीग उठता, सहृदय बन जाता। उसकी पराकाष्ठा समाधिमरण के समय पहुँची। उनके विशिष्ट त्याग व करुणाभाव से वातावरण ऐसा विशुद्ध हुआ कि ईद की नमाज पढकर सैकड़ों मुसलमान आचार्य श्री के दर्शन को आये तथा यह प्रण लिया कि आचार्य श्री के समाधिमरण तक किसी पशु का वध नहीं होगा। इस प्रण को उन्होंने पूर्ण रूप से निभाया। एक तरफ आज साम्प्रदायिकता की बात होती है, दूसरी तरफ इतर सम्प्रदाय के लोग भी प्रभावित होते है। यहाँ यह भी कहना प्रासंगिक होगा कि आचार्य श्री की अन्तिम यात्रा में श्मशान तक पहुँचाने में हजारो मुसलमान थे। इस यात्रा में करीब एक लाख लोग शामिल थे जिसमें आधे से अधिक जैनेतर थे। इसी करुणा की बात को आगे बढ़ाते हुए निमाज की ही सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख आवश्यक है।

जब कसाइयों के प्रण की बात मैंने सुनी तो दूसरे दिन निमाज पहुँचने पर मैं सात कसाइयों के घर गया। उनसे काफी चर्चा हुई। वे स्वयं यह मानते हैं कि उनका काम अच्छा नहीं है पर पेट भरने व परम्परा के कारण ऐसा करते है। एक ने यह कहा कि उसने हजारों जानवर कटवा दिए पर उसके घर पर कोई बरकत नही हुई, वे वहीं के वही है। एक-दूसरे व्यक्ति ने बताया कि २१ अप्रेल को ३२५ बकरे गाँवों से निमाज में एकत्र किये जायेंगे और उन्हें कटने के लिए बम्बई भेजा जायेगा। संघ के कई लोगों के मन में विचार आया कि ऐसे महान् मृत्युजयी सत के आसपास का कोई प्राणी कैसे वधित हो सकता है? अतः तत्काल निर्णय हुआ कि सारे बकरे सघ द्वारा खरीद लिये जाये। इसके लिए कुछ व्यक्ति सारी राशि देने को तैयार थे। दूसरे दिन व्याख्यान में जब इसकी चर्चा हुई तो सैकडों व्यक्तियों ने सारी राशि दे दी। ऐसा लगा मानो एक घंटे तक रुपये-पैसों की वर्षा होती रही। शाम साढ़े छह बजे तक सारे बकरे संघ द्वारा मुक्त करा दिये गये। आचार्य श्री के महाप्रयाण के दो घंटे पूर्व सभी प्राणियो को अभयदान दे दिया गया था।

आचार्य श्री का बराबर इस बात पर बल रहा कि समाज में हिंसा का व्यावसायीकरण न हो, बढ़ती हुई हिंसा को रोकने के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाया जाए। कई बार ऐसा लगता है कि हमने अहिंसा के निषेधात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया है और उसका सकारात्मक पक्ष उपेक्षित रहा है। मेरे मन में इस सम्बन्ध में प्रायः शंका उठा करती थी। एक दिन जोधपुर में मैं दर्शन करने गया तब आचार्य श्री एक माली परिवार मे ठहरे हुए थे। वहाँ कोई संवाददाता आचार्य श्री से बातचीत कर रहा था। बातचीत के बाद जब मैं आचार्य श्री के पास गया तो आचार्य श्री ने मुझसे कहा कि आज तो एक अखबार वाले ने मुझे निरुत्तर कर दिया। मैने पूछा—कैसे? आचार्य श्री ने कहा कि अखबार वाला पूछ रहा था कि आपकी अहिंसा कहां तक जाती है। मैंने कहा—प्राणी मात्र तक। इस पर वह बोला—यदि किसी माँ द्वारा त्याज्य शिशु सड़क पर मिल जाए तो आप क्या करेंगे?

तब मैंने आचार्य श्री से निवेदन किया कि हम श्रावकों का तो कर्तव्य बनता है न? क्यों न ऐसे बच्चों के रक्षण, लालन-पालन और जीवन-निर्वाह के लिए अनाथालय बनाये जाएँ।

आचार्य श्री ने केवल इतना कहा—सोचो! और तब मुझे लगा कि मेरी शंका का समाधान हो गया। अहिंसा का सकारात्मक पक्ष सेवा, दया और करुणा में है और इस क्षेत्र में समाज को आगे बढ़ना चाहिए। आचार्य

श्री की प्रेरणा से ही 'बाल-शोभा' नाम से एक अनाथालय बन गया, जहाँ वर्तमान में करीब ३२ बच्चे रह रहे है और ७० तक बच्चे रखने की अब योजना है। समाज की ओर से ऐसे १० अनाथालय खोलने की योजना भी है।

विकलांगों का जीवन भी स्वावलम्बी और सुखी बने, इस दिशा में भी आचार्य श्री की प्रेरणा बनी रही। आचार्य श्री के जलगाँव चातुर्मास में विकलांगों का एक शिविर आयोजित किया गया। मेरी भावना थी कि आचार्य श्री द्वारा इसका उद्घाटन हो, आचार्य श्री जंगल जाकर आ रहे थे। मैने आचार्य श्री से शिविर-स्थल की ओर पधारने का निवेदन किया। आचार्य श्री पधारे और अपनी मांगलिक दी। आचार्य श्री की मांगलिक सुनकर कार्य शुरू कर दिया गया। आज महावीर विकलांग सहायता समिति का कार्य देश-विदेश में तेजी से बढ़ता जा रहा है। आचार्य श्री का इस कार्य में हमेशा आशीर्वाद रहा।

विधवाओं, परित्यक्ताओं, प्रताड़ित-पीड़ित महिलाओं की सहायता के लिए भी एक व्यापक योजना जोधपुर में क्रियान्वित की गई है। अन्य स्थानों पर भी यह योजना चालू हो, इसके लिए प्रयत्न अपेक्षित है।

पीपाड़ चातुर्मास में आचार्य श्री का संकेत था कि स्वाध्यायियों से सेवा के बारे मे बात की जाये। स्वाध्यायियों की बड़ी शक्ति हमारे पास है। सन्त-सतियों के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण के दिनों में जाकर वे धर्माराधना में महत्त्वपूर्ण सहयोग और प्रेरणा देते हैं। उनका उपयोग सेवा के कार्य में हो, यह आचार्य श्री की भावना थी। सेवा निष्काम भाव से हो, इसके लिए संगठन और सम्पत्ति मुख्य नही है। मुख्य है—सेवा की भावना और सहृदयता। पीपाड़ में एक स्वाध्यायी अध्यापक मुझे ऐसे मिले, जो अपने नेत्रहीन चपरासी को, जो प्रति दिन ३० मील दूर अपने कार्य पर जाता था, उसे बस स्टैण्ड से स्कूल और स्कूल से बस स्टैण्ड तक छोड़ा करते थे। जब ऐसी करुणा की भावना का हृदय में उद्रेक होता है, तब कही सेवा कार्य हो पाता है। आचार्य श्री ने साधु-मर्यादा में रहते हुए इन सब कार्यो के लिए प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप समाज में सेवा कार्यो से जुड़ने वाले भाई-बहिनों की संख्या बहुत अधिक है। कुछ उल्लेखनीय नाम हैं—श्रीमती इचरजदेवी लूणावत, श्रीमती इन्दरबाई सा., सज्जनबाई सा., सुशीला बोहरा, श्री एवं श्रीमती एम सी. भण्डारी, दलीचन्दजी जैन, रतन-लालजी बाफना, पूनमचन्दजी हरिश्चन्दजी बडेर, इन्दरचन्दजी हीरावत,

उम्मेदमल जी जैन, सी. एल. ललवाणी, सुमतिचन्द जी कोठारी, पारसमलजी कुचेरिया आदि ।

आचार्य श्री के संयमी जीवन और साधनानिष्ठ व्यक्तित्व का ही यह प्रभाव था कि शिक्षा, चिकित्सा, विद्यालय, छात्रालय, पुस्तकालय, ज्ञान भण्डार आदि विविध जनहितकारी प्रवृत्तियाँ सक्रिय बनी और प्रत्येक क्षेत्र में बड़ी सख्या में भाई-बहिन इनसे जुड़े । अ. भा. जैन विद्वत् परिषद् के रूप में विद्वानों का एक संगठन भी आचार्य श्री की प्रेरणा से बना, जिसके साथ श्रीमन्त और सामाजिक कार्यकर्ता भी जुड़े, ताकि समाज की ज्वलन्त समस्याओं पर सभी दृष्टियों से विचार हो सके और उनके समाधान का रास्ता खोजा जा सके । पीपाड़ मे आयोजित विद्वत् सगोष्ठी के अवसर पर यह विचार-चर्चा चली कि धर्म जीवन में कैसे उतरे ? अहिंसा के विधायक पक्ष पर बल दिया गया । उस समय राजस्थान मे विशेषकर मारवाड़ में भयंकर अकाल था । मूक प्राणियों की रक्षा के लिए मारवाड़ अकाल सहायता कोष की स्थापना हुई जिसके माध्यम से २७ करोड़ की राशि व्यय कर पांच लाख पशुओं को बचाया गया ।

आज आचार्य श्री पार्थिव रूप से हमारे बीच नहीं है, पर समाज में अहिंसा, सेवा, ज्ञान और क्रिया की जो ज्योति उन्होंने प्रज्वलित की, उसमें उनकी प्रेरणा, उनका प्रकाश और आशीर्वाद अक्षुण्ण बना रहेगा । मुझे उन्होंने जो अन्तिम निर्देश दिया, वही मेरे जीवन की सबसे बड़ी निधि है। मुझे उस ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलती रहे, यही अभ्यर्थना है । उस फक्कड़ सन्त, जिसकी महक अनन्त, के चरणों मे कोटिशः वन्दन ।

—पूर्व अध्यक्ष, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल एवं संरक्षक
अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं आचार्येभ्यो नमोनमः

☐ प्रो० कल्याणमल लोढ़ा

आचार्य श्री अस्वस्थ है—ये समाचार मिलते रहते थे। अचानक यह सूचना मिली कि उन्होंने संलेखना—सकाम मरण—संथारा ले लिया है। अब तो सब कुछ छोड़कर निमाज जाना ही पड़ेगा उनके अन्तिम दर्शनार्थ । मेरी पत्नी तो आकुल-व्याकुल हो गई। सुयोग से दिल्ली में एक कार्य निकल आया—

और वहाँ से २० अप्रैल को निमाज। पथ की कठिनाइयाँ दूर होती गई। नीमाज में देखा—सहस्र-सहस्र नर-नारी पंक्तिबद्ध खड़े हैं उनके दर्शनार्थ। फिर वह कक्ष—शांत—स्थिर दृढ़भाव से आचार्य श्री। पार्श्व में संत-साध्वी। मैं निर्निमेष दृष्टि से गुरुदेव को देखता रहा। श्रद्धेय हीरा मुनि (अब आचार्य) बैठने को कहते हैं। मुझे अथर्ववेद का (६-७-२) प्रसिद्ध मंत्र स्मरण हो आया—

नमोऽस्तु ते निर्ऋतेतिग्मतेजोऽयस्मयान् वि घृता बन्ध याशान्।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददादि तस्मै यमाय नमोऽस्तुमृत्यवे॥

हे मृत्यु देवता! तुम्हें शतबार नमस्कार है। इस देह-पाश से मुक्त कर मोक्ष का द्वार खोलो। हे यमराज! मुझे मुक्त कर अक्षय अमृत का वर दो। प्रभु का स्नेहांचल। देश-पाश से मुक्ति की ओर व मोक्ष के द्वार खोलने की यह कैसी तेजस्विता है। परम आचार्य श्री को एकटक देखता हूँ। यह अपार जन समुदाय! अनिवर्चनीय श्रद्धा-वीतरागता का अनुपम प्रमाण! पुनः

मृत्यु मार्गे प्रवृत्तस्य, वीतरागो ददातु मे।
समाधि बोध पाथेयं, यावन्मुक्ति पुरीपुरः। (मृत्यु महोत्सव)

श्रद्धालु भक्त आते हैं—श्रद्धावनत होकर वन्दना करते हैं—सारा परिवेश आचार्य श्री—'आलोक पुरुष मंगल चेतन' से दिव्य हो उठा है—पावन। मैं पुनः परमानन्द स्तोत्र का मन ही मन पाठ करता हूँ—

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतिविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरी भूय–निर्विकल्पः समाधितः।

यह है योग की निर्विकल्प समाधि! स्वस्थ चित्त की विमल अवस्था—निर्विकार, निर्वोध, सर्व संग ये विवर्जित शुद्ध चैतन्य। शुद्धात्मा।

विचार-मग्न मै बाहर आता हूँ—भावातीत अनुभूति आत्म-विभोर कर देती है। दिखाई पड़ते है श्री तेजराज जी भंडारी, श्री मोफतराज जी मूणोत व अन्य श्रावकवृन्द। श्री भंडारी मुझे कुछ बोलने का आग्रह करते है—गद्गद् होकर सुनाते है प्रसंग। किस प्रकार प्रतिश्रुत होने वाले आचार्य श्री निमाज आए। वर्षो पूर्व उनके पिता को दिया गया वचन रखा—और इस धरती को पवित्र किया। उनकी चरण-धूलि से यह धरित्री धन्य हो उठी—मैने तुलसी की चौपाई सुनाई—'प्राण जाई पर वचन न जाई'—वचन नही गया, पर प्राण यही जाएँगे, सिद्धपीठ की ओर आत्मा कर्म-मुक्त होकर प्रस्थान करेगी। 'छत्तीस गुणों गुरु मज्झ' (आचार्य श्री तो इन छत्तीस गुणों से भी आगे, वहुत आगे है।)

× × ×

श्री नथमलजी हीरावत मिलते है। आचार्य श्री के परम भक्त। कहते है—'जीवन में साधना की ऐसी उत्कृष्टता अन्यत्र नही देखी'—मेरा मन साधना की उत्कृष्टता के सोपानों को खोजता है—गुणस्थानों को जिनसे साधक निरन्तर उत्तरोत्तर ऊर्ध्व गति की ओर अग्रसर होता रहता है। 'आयारो' के पंचमोउद्देसो में वीर प्रभु कहते है—'ते पास सव्वतो गुत्ते, पास लोए महेसिणो'— सम्ममेयंति पासह', 'कालस्स कंखाए परिव्वयंति त्तिबेमि' अर्थात् लोक में विद्यमान सर्वतः (मन, वचन और काया से) मुक्त महर्षियों को देख, जो प्रज्ञावान, प्रबुद्ध और आरम्भ से उपरत है, यह सम्यग है, इसे देखो जीवन के अंतिम क्षण तक काल की प्रतीक्षा करते हुए परिव्रजन करते है—न मृत्यु की आशसा और न उसका भय। यही आचार्य पद की विशेपता है। यही साधना की परम उत्कृष्टता है—'कसाए पयणुए समाहियच्चे फलगावट्ठीय उठ्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुऽच्चे' कपायो को कृश कर—समाधिपूर्ण भाव वाला फलक की भाँति शरीर और कपाय, दोनो ओर से कृशता प्राप्त कर समाधिमरण के लिए उत्थित शरीर को स्थिर व शांत करता है। पथ पर खड़े हो इस गाथा का स्मरण कर मेरी दृष्टि पुनः उस कक्ष की ओर अनायास जाती है—जहां आचार्य श्री समाधि मरण के लिए उत्थित है—मै उन्हे मौन प्रणति देता हूँ।

× × ×

कुछ समयोपरान्त श्री देवेन्द्रराजजी मेहता श्री जौहरीमल जी पारख से जिज्ञासा करते है—सथारा के लक्षण क्या है,—अतिचार क्या है? क्या वह आत्महत्या नही है? श्री पारख संक्षेप में पाँच अतिचार गिनाते है। मैं श्री मोफतराज जी से प्रस्ताव करता हूँ कि 'जिनवाणी' का आगामी अंक संलेखना पर हो। वे सहर्प सहमत होते है। इसी बीच एक मित्र पूछते है—सलेखना सही है या सल्लेखना? मेरा उत्तर है श्वेताम्बर परम्परा में संलेखना और दिगम्बर में संल्लेखना। पुनः जिज्ञासा होती है—संलेखना, समाधि-मरण संथारा, पंडित-मरण, संथारा मे क्या अन्तर है—अन्तिम बार बिछौने में शयन करने के कारण 'सथारा' कहा जाता है। समाधिमरण ही सकाम मरण है, जिसमें सर्व आधि-व्याधि से निवृत्त होकर शांत और निर्मल चित्त से धर्म-ध्यान लगे रहना समाधि मरण है। संलेखना सकाम मृत्यु के समय अपने याव्वजीवन दोपों का सम्यक् निरीक्षण—उनकी गर्हा आदि सलेखना है: तीनों शल्यों की आलोचना से सल्लेखना कहा जाता है, यों जैन धर्म में १४ (अथवा १७) प्रकार की मृत्यु कही जाती है। 'संलिख्यतेऽनया शरीर कपायादि इति संलेखना (आचार्य अभयदेव) जैन सिद्धांतों से काय और कपाय ही कर्मास्रव के मुख्य कारण है—इसी से वाह्य शरीर और आभ्यंतरिक कपायो का क्रमशः सम्यक्

प्रकार से क्षीण करना संलेखना है। 'तत्त्वार्थ सूत्र' के अनुसार 'मारणान्तिकी संलेखना जोषिता (७-१७) अर्थात् मरण के समय संलेखना की आराधना करे। पुनः 'अपच्छिमा मारणंतिआ संलेहणा जूसणाराहणा'।

आत्म-शुद्धि के पथ में जीवन-शुद्धि का जितना महत्त्व है उतना ही मरण-शुद्धि का। यहाँ मृत्यु से भय नही रहता—वह एक महोत्सव बन जाती है। उमास्वाति कहते है :

संचितं तपोधनं न नित्यं व्रत नियमे संयमरतानाम्।
उत्सवभूतं मन्ये मरणमनपराधवृत्तीनाम्॥

जैन मतानुसार बालमरण अकाम मरण से सकाम मरण श्रेष्ठ है। सकाम मरण के भी पंडित मरण व बाल पंडित मरण दो भेद हैं। इस प्रकार संलेखना दो प्रकार की काय (बाह्य) और कषाय (आभ्यंतरिक) होती है। आचार्य समन्त भद्र ने संलेखना का काल भी निर्धारित किया है। पुनः प्रश्न होता है संलेखना और समाधि मरण में क्या अन्तर है ? मै कहता हूँ कि कुछ आचार्यो ने दोनों को एक गिना है और कुछ ने भिन्न। जहाँ तक मुझे स्मरण है उमास्वाति ने दोनों का भेद स्वीकार नही किया पर आचार्य कुन्दकुन्द ने अन्तर माना है। आचार्य समन्तभद्र ने भी दोनों मे अन्तर गिना है। अभी ये प्रसंग स्मृति में नहीं है। मेरा स्पष्ट मत है कि जैन धर्म ही नही वैदिक परम्परा में भी प्रायोपवेशन, प्रायोपवेश आदि संलेखना के ही पर्याय है। इनकी विधियों का भी उल्लेख है। भारतीय मनीषा का यह उज्ज्वलतम पक्ष है। यह न आत्म-हत्या है और न आत्म-बलिदान। भारतीय वाङ्मय में प्रायोपवेश के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। संलेखना-संथारा-समाधिमरण मीनू मसानी द्वारा प्रतिपादित 'इयूथेनेसिया' से भी नितान्त भिन्न है। मै देवेन्द्रराज जी का उपेन्द्र ठाकुर के ग्रथ 'दि हिस्ट्री ऑफ स्यूसाइड इन इंडिया' की ओर ध्यान दिलाता हूँ। समाधि-मरण के लिए भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा—जीवियं नाभिकरवेज्जा मरणं नाभिपत्थए। दुहओ विन सज्जिज्जा, जीविए मरणेतहा। मज्झत्थो निज्जरा पे ही समाहिमणु पालिए। अंतो बहि विऊसिपज्झ अज्झत्थं सुद्धमेसए। (८-८-४-५)

श्रमण न जीने की आकांक्षा करे और न मरने की। वह दोनों में आसक्त नहीं रहे। समभाव में स्थित निर्जरा की अपेक्षा रख कर समाधि का पालन करे। आभ्यन्तर और बाह्य ममत्व का त्याग कर शुद्ध अध्यात्म का अन्वेषण करे। आत्महत्या मे मृत्यु की आकांक्षा है पर समाधिमरण में नही। मेरी दृष्टि पुनः आचार्य श्री की ओर जाती है और मै मौन भाव से तिक्खुतो का पाठ करता हूँ।

अब मध्याह्न का सूर्य ढलने लगा। आकाश निर्मल है—हवा में कही उष्णता नही। दर्शनार्थियों का जमाव बढ़ रहा है—उधर एक श्रावक कह रहा है—

'गुरु हस्ती के दो फरमान।
सामायिक-स्वाध्याय महान्॥'

इधर दूसरे ने गूंज लगायी, 'गुरु हस्ती की जय'। श्री सुमेरसिंह जी बोथरा आ गए। मैने कहा—'यह साधना की अप्रतिम शक्ति है।' उन्होंने बताया कि आज तो अपेक्षाकृत कम है। श्री तेजराज जी ने कहा—आप आश्चर्य करेंगे, यहाँ मुसलमानों के तीन सौ घर है—सबने रोजा यहाँ आकर खोला—किसी घर में आमिष भोजन नही बनता। हिन्दू-मुसलमान का भेद ही मिट गया—अपूर्व है यह दृश्य! मुझे इकबाल याद आ गए 'मजहब नही सिखाता आपस में बैर रखना।' यही मजहब है, यही मानव-धर्म है, यही समता की साधना है। इसीलिए तो चीनी सम्राट् कन्फ्यूसियस ने कहा था—'मैं ईश्वर नही मनुष्य बनाता हूँ, मनुष्य बन गया तो सब बन गया।' न जाने कितने दशकों से गांव-गांव, नगर-नगर, जनपद-जनपद की पदयात्रा से आचार्य श्री ने भी मनुष्य के ही निर्माण का प्रण निभाया। उसकी आंतरिक पाशविकता को नष्ट करने का संकल्प एवम् कल्याण मार्ग प्रशस्त कर संयम, मैत्री, करुणा, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य और वासनाहीन जीवन का उद्घोष! अचानक ही महादेवी की पंक्ति मुझे याद आयी -

'पा तुझे यह स्वर्ग की छात्री प्रसन्न प्रकाम।
इच्छाबद्ध, मुक्त, प्रणाम!'

हाँ आचार्य प्रवर दोनों हैं—इच्छाबद्ध और मुक्त। दोनों ही। और लोगस्स का अन्तिम पद 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंति' गुनगुनाता मै सपरिवार अपने वाहन की ओर।

× × ×

अब निमाज पीछे छूट रहा है। पथ व मोटरों व बसों की लम्बी कतार है निमाज की ओर जाती हुई। यकायक एक राहगीर पूछता है 'दर्शन हो गए? महान् चमत्कारी संत है—अब कब, कैसे और कहाँ होंगे ऐसे महापुरुष!' मै मौन सहमति देता हूँ।

× × ×

मस्तिष्क घनीभूत स्मृतियों में खोया है। कभी सोचता हूँ कि आचार्य श्री ने अपना आचार्यत्व कितनी पूर्णता से निभाया। वे ज्योतिर्धर आचार्य थे। आचार्य के लिए कहा गया है :

जह दीवा दीवसयं पइप्पए सोय दिप्पए जीवो।
दीव समा आयरिया, दिप्पंति परंच दीवेति ।।

आचार्य दीपक के समान है—जो स्वयं प्रकाशित है पर अन्य को भी प्रकाशमान करते हैं। 'सयि घर समो य आयरिओ' वे शांति-गृह के सदृश हैं। परमाराध्य आचार्य ने भी घोर तमिस्रा को नष्ट कर न जाने कितने व्यक्तियों को दीपक के सदृश प्रकाशमान किया और सहस्र-सहस्र व्यक्तियों ने अपने उत्तप्त जीवन को शीतल किया। दिशाहीनों ने दिशा पायी है—पंगु गतिमान हुए। मैं 'सूक्ति कोश' देखता हूँ। दृष्टि पड़ती है मुनि रामसिंह की गुरु-वन्दना पर—

गुरु दिणयरु गुरु हिमकरणु, गुरु दीवउ गुरु देउ ।
अप्पा परहं परंपरहं, जो दरिसावइ मेउ ।।

यही गुरुत्व है—आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट करने वाला, मन का द्वैत समाप्त करने वाला, आधि-व्याधि को नष्ट करने वाला। कबीर याद आते है—

निराकार की आरसी, साधु ही की देह ।
लखा जो चाहे, अलख को, इनही में लखि लेहि ।।

मैं 'उत्तराध्ययन' के उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र के प्रसंग का स्मरण करता हूँ। वहीं भगवान महावीर ने श्रमण-महिमा का वर्णन किया है। पुनः ग्रंथ देखता हूँ—

निम्मभो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सत्वभूयेसु, तसेसु थावरेसु य ।।८६।।

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दा पसंसासु, तहा माणावमाणओ ।।६०।।

आचार्य श्री के श्रमण जीवन में खो जाता हूँ। श्री गजसिंह राठौड़ कृत सुण्ठु-सुन्दर 'गजेन्द्र स्तवन' याद आता है। कैसी है इनकी महिमा ! गाड़ी में उनकी स्तुति का कैसेट चल रहा है। श्रीकृष्ण ने 'श्रीमद्भागवत' में साधु-संत को ही अपना रूप कहा था—

देवता वान्धवा: सन्त: सन्त आत्माऽऽहमेवच (११-२६-३४)

आचार्य श्री भी मुझे अरिहंत स्वरूप लगते है। राजचन्द्र ने तो स्पष्ट कहा था कि वही गुरु मान्य है, जिसका प्रभाव पानी व धूलि की लकीर न होकर प्रस्तर में उत्कीर्ण रेखा से सदृश हो। श्री लंका मे बुद्ध की विशाल प्रतिमा को देखकर एक अंग्रेज विद्वान् कह उठा था :

हे वोधि सत्व ! तव चरणो में, जगती के नर-नारी आवे।
उत्तप्त हृदय तव छाया मे, प्राणों की शीतलता पावे।

(अंग्रेजी मूल से अनूदित)

न जाने कितने उन्मत्त-उत्तप्त-उपहतक हृदयो ने इनकी स्निग्ध छाया मे प्राणों की शीतलता पायी और व्यक्ति और ससाज के अनैतिक, अशुद्ध, आचरण-प्रवाह ने नैतिक शुद्धता।

× × ×

२२-०४-९१ :

प्रत्यूष वेला के साथ ही यह सूचना मिली कि आचार्य श्री की देहलीला समाप्त ही गयी। २१-०४ की रात्रि को। पंचांग देखता हूँ। आचार्य श्री के संस्तर धारण व समाधि मरण के काल में अद्‌भुत योग रहा। धारण-काल का नक्षत्र था पूर्व भाद्रपद दिनांक १२-४-९१ और समाधि मरण का पुनर्वसु। योग था ध्वज। संथारा लिया था दिन मे और सिद्धि लाभ किया रात्रि में। आचार्य अमितगति के अनुसार यही श्रेष्ठतम योग है। शीघ्रता से मै निर्वाण भूमि की ओर सपरिवार चलता हूँ। महावीर प्रभु ने वताया था—

निज्जू हिऊणं आहारं, काल धम्मे उवट्ठिए,
जहिऊण माणुसं वोन्दि, पहू दुक्खे विमुच्चई।
निम्ममो निरहंकारो, वीयरागो अणासवो,
संपत्तो केवलं नाण, सासयं परिणिव्वुए॥

(उत्तरा० ३५-(२०-२१)

अर्थात् अन्तिम काल उपस्थित होने पर मुनि आहार का परित्याग कर, मनुष्य शरीर को छोड़ दु.खों से मुक्त प्रभु हो जाता है। निर्मम, निरहंकार,

वीतराग और अनास्रव मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर शाश्वत परिनिर्वाण को प्राप्त होता है।

जयपुर से निमाज तक न जाने जितनी मोटरें—कितनी बसें निमाज की ओर जाती मिलीं।

और ! निमाज में लक्ष-लक्ष नर-नारी अन्तिम दर्शनार्थ—उनकी अंतहीन कतार। सामने बैकुंठी पर मुद्रासीन आचार्य श्री। मैं निर्निमिष दृष्टि से उनकी ओर देखता हूँ। लगता है, जैसे वे अभी इस विशाल समूह को सम्बोधित करेंगे। मृत्यु का कोई चिह्न नहीं। जीवन और मरण को एक ही दृष्टि से देखना कितना कठिन है—पर साधक और शुद्धात्मा ही यह करने में समर्थ है—न अपेक्षा और न उपेक्षा। वही समभाव, वही तेजस्विता।

उदये सविता रक्तः, रक्तश्चास्तमने तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता॥

सूर्य उदय-काल और अस्तगंत होने पर एक ही रंग रखता है—सम्पत्ति और विपत्ति, जीवन और मरण दोनों में महात्मा एक ही भाव-दशा रखते हैं। मैं मौन भाव से 'तिक्खुतो' का पाठ कर उन्हें उनकी वन्दना करता हूँ। कैसी श्रद्धा है यह !! अध्यात्म योग की चरम परिणति ! कैसी दिव्य शांति !! डॉ० शीतलराजजी मेहता बताते है कि उन्होंने आश्चर्यजनक ढंग से देह-त्याग किया। मुझे स्मरण आता है—वह शुक्ल ध्यान, वह तेजो लेश्या, जिसे मैंने अपने प्रथम दर्शन में दिव्य आभा मंडल में देखी थी। अँग्रेजी में जिसे 'निम्बस' कहते है—Circle of light above the head of sacred persons लगा, जैसे वे कह रहे है, 'आत्मा वाअरे दृष्टव्यः', जैसे इस आभा मण्डल से आज भी 'सामायिक स्वाध्याय महान्' की ध्वनि गुंजरित हो रही है। मुझे अँग्रेजी की एक प्रसिद्ध कहावत याद आयी : 'The light that shows us our sins, is the light that heals us'.

इधर अपार जनसमूह अनुशासन से पंक्तिबद्ध होकर दर्शन कर रहा है। राजनेता-मंत्री-सांसद आ रहे है। भारी सख्या में उपस्थित पुलिस भी इस भीड़ पर आश्चर्य कर रही है। वस्तुतः यह तो अध्यात्म-शक्ति का चुम्बकीय प्रभाव है, हाँ तो शुक्ल ध्यान और तेजोलेश्या। एक मित्र पूछते है—कैसे पता चला आपको ? मै उन्हे उत्तर देकर अन्तर्मुखी हो जाता हूँ। जैनागमों में इन दोनों का कितना विशद वैज्ञानिक वर्णन है। उस सबकी विवेचना यहां संभव नहीं। धर्म ध्यान के चारों भेदों का आधार जितना मनोवैज्ञानिक है, उतना ही

आध्यात्मिक। शुक्ल ध्यान मोक्ष मार्ग का अंतिम सोपान है, जिसके चार अवलंब, क्षमा, मार्दव, आर्जव और मुक्ति। शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन-मनन कर साधक का मन स्थिर हो जाता है और वैराग्य की घनीभूत अवस्था से चित्तवृत्ति अन्तर्मुखी बन जाती है। यही आत्मलीन अवस्था है। यही देहातीत स्थिति है। शुक्ल ध्यानी श्रमण अव्यथा, असंमोह, विवेकी और व्युत्सर्ग के चार लिंगों से, उपर्युक्त चार आलम्बन से और चार अनुप्रेक्षाओं से आत्म-सिद्ध बनता है। यही गुणों की उच्च स्थिति है, जिसमें इच्छा का सर्वथा अभाव रहता है। शुक्ल ध्यान से ही मुक्ति होती है। शुक्ल ध्यान की अंतिम स्थिति १४वां गुण-स्थान है—और यही 'व्युपरत क्रियानिवृत्ति'—चौथा शुक्ल-ध्यान है। मैं यह सोचता हूँ कि पास में खड़े एक विद्वान् धीरे से बताते हैं—'ज्ञानार्णव' में शुक्ल ध्यान के लिए कहा है :

अथ धर्म मति क्रान्तः, शुद्धि चात्यन्तिकी श्रितः।
ध्यातुमारभते धीरः, शुक्लमत्यन्त निर्मलम् ॥

इस प्रकार धर्म ध्यान से आगे यह शुक्ल ध्यान का प्रारम्भ कर आत्यन्तिक शुद्धि का आश्रय लेता है। वे आगे कहते हैं—

निष्क्रियं करणातीतं, ध्यान धारण वर्जितम्।
अन्तर्मुखंच यच्चित्तं, तच्छुक्लमिति पठ्यते ॥

अर्थात् जो आत्मा के सम्मुख होकर चित्त क्रिया, इन्द्रियों से रहित, ध्यान धारणा के विकल्प से वर्जित होकर अन्तर्मुखी हो जाता है—समस्त विकल्प से रहित, वही शुक्ल ध्यान है। वे आगे कहते हैं—इस प्रकार शुद्ध स्वरूप को प्राप्त होकर, मुनि ऊर्ध्वगमन करते है और लोक शिखर तक जाते है। मैं उनकी ओर देखता हूँ। वे दोहराते हैं :

जया जोगे निरुंमित्ता, सेलेसिं पडिवज्जई ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धि गच्छाई वीरओ ॥
जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धि गच्छाई वीरणो ।
तया लोगमत्थ चत्थे, सिद्धि हवइ सासओ ॥

विद्वान् वृद्ध से सन्दर्भ पूछकर परिचय पूछता हूँ। वे हँसकर कहते है—"मैं आपको जानता हूँ। मैं जैन हूँ और नही भी। जैन धर्म और दर्शन के अगाध सागर में से मैं तो अंजुरि भी नही भर सका। जब से इस महामुनि ने संथारा लिया है दर्शनार्थ आता हूँ—प्रणति देकर चला जाता हूँ—सिद्ध मुनि है—भव-

तारक। वे यह कह ही रहे थे कि भीड़ की हिलोर आयी। आवाजे उठीं 'मुख्य मंत्री आ गये—और मंत्री भी हैं—पुलिस सतर्क हो उठी। परिणाम 'अच्छा मै चला! नमस्कार' और वे वृद्ध चले गये। मै सोचता रहा जैन धर्म की महानता पर, आचार्य श्री की महिमा पर!! कितने जैन-अजैन—पंडित-विद्वान् इनकी दिव्यता से प्रभावित है।

भीड़ से आशंकित मै भी दूर चला गया। कुछ समय पश्चात् शवयात्रा निकली—जन समुदाय कह उठा :—

'जब तक सूरज चाँद रहेगा।
हस्ती तेरा नाम रहेगा ।।'

बैकुण्ठी के साथ-साथ विशाल जनसमूह और भिन्न-भिन्न नारे! मैं विस्फारित नेत्रो से यह देख रहा था—देख रहा था आचार्य श्री की शुद्धात्मा का आध्यात्मिक वैभव—नारिकेलो की चतुर्दिक वर्षा। पास में एक दुकानदार ने कहा 'बाबू, आप भी जाइये न! बड़े महान् सन्त है'—और वह भी उठकर वंदना करने लगा।

मैने जीवन में अनेक उत्सव—आयोजन समारोह देखे हैं। महानगर में रहने के कारण अपार जनसमूह से भी अनभिज्ञ नहीं, नारे तो दिनरात कानों में पड़ते ही है। साधु-सन्तो की शवयात्राओं में भी सम्मिलित हुआ हूँ पर ऐसा अभूतपूर्व दृश्य, ऐसी श्रद्धा, ऐसी भक्ति, ऐसी प्रभविष्णुता—ऐसी लोकप्रभावी शक्ति नहीं देखी। 'विष्णुपुराण' का श्लोक मन ही मन गुनगुनाता हूँ—

स धन्यः पुरुषो लोके, सुकृती परमार्थवित्।
ब्रह्म निष्ठः सत्य सन्धो, यो भवेद् भुवि मानवः।।

× × ×

आकाश स्वच्छ है। यत्र-तत्र दौड़ती हुई घनराजिकाएँ अपनी छाया दे रही हैं। भुवन भास्कर अश्वरथ से मध्याह्न पार कर प्रतीचोन्मुख हो गये है—मंद-मंद शीतल वायु के झोंके ग्रीष्म के उत्ताप से सबको सांत्वना दे रहे है। धरित्री ऋषि-गध से सारे परिवेश को दिव्य कर रही है। अभी कुछ ही समय में श्रुति सिद्ध कर देगी कि 'भस्मान्तं शरीरं'। धीरे-धीरे यह विपुल जनसमूह भी चला जायेगा। रह जायेगी निमाज की वह पवित्र भूमि। काल अपनी अनवरत यात्रा करता रहेगा, सामान्य जीवन-क्रम-उपक्रम इसी प्रकार चलते रहेगे। रात्रि के सूचीभेद्य अंधकार को नष्ट करने के लिए उषा अपनी मुस्कान से ज्योति बिखरेगी, उसी प्रकार मनुष्य के पतन के मध्य उसके उत्थान के लिए 'धर्म संस्थापनार्थय संभवामि युगे युगे'। कोई न कोई प्रज्ञा पुरुष अवतरित होगा, जिससे जड़ता के मध्य हमारे आत्म-चैतन्य की जागृति हो। रवीन्द्रनाथ की कविता है :

पतन अभ्युदय वंधुर पंथा, जुग जुग धावित धात्री।
हे चिर-सारथि ! तव रथ चक्रे, मुखरित पथ दिन रात्री ।।

हाँ, ऐसे चिर-सारथि से ही दिन-रात मुखरित होते रहेगे और घोर अन्धकार के पश्चात् मनुष्य अपना मंगल-प्रभात अवश्य देखेगा। मै ज्ञान के इन सभी पथिकृतो को प्रणति देता हूँ—इदं नमो ऋपिभ्यः पूर्वेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृदभ्यः उन सब सिद्धात्माओं को प्रणाम, जिन्होंने ज्ञान के अरण्य में हमारे लिए नया पथ संजोया। आचार्यश्री उनमें शीर्ष है। अब सुदूर चिता अग्निमुख हो गयी और आकाश ज्योति सम्पन्न। सारा वातावरण जय-ध्वनि से गूज रहा है। मैं भी इस पुण्य भूमि को अपनी प्रणति देता हूँ।

आंखे लगी रहेगी वरसों वही सभी की।
'हुआ' कदम का तेरे जिस जां निशां जमी पर ।।

× × ×

थके मांदे मन से जयपुर लौटा। जो अभिराम दृश्य देखा वह अविस्मरणीय है। साधना की, वैराग्य की, श्रमणत्व की, वह चरम स्थिति थी। आज लाल भवन में शोक सभा है। साध्वियों की निश्रा में श्रावक अपनी भावभीनी श्रद्धाजलि देंगे। गुमानमलजी चौरड़िया कह रहे थे कि जैन शासन की एक महान् विभूति चली गयी। मैं हतप्रभ हूँ। मन मे कही गहरी टीस है—किकर्त्तव्यविमूढ़ ! ऐसे चौराहे पर खड़ा हूँ, जहाँ आगे का पथ अनजान है पर अपने ज्योतिर्धर आचार्य की पावन स्मृति संजोकर आगे बढना है, उनकी देशनाओं पर चलना है। आचार्य प्रवर का सम्पूर्ण जीवन मानव संस्कृति और समाज की मूल्यात्मक चेतना को, उसकी नैतिक अर्थवत्ता को, स्वस्थ मानसिकता को जागृत करने के लिए समर्पित था। आज हमारा कर्तव्य है कि हम उनके मार्ग का अनुसरण करे। यही सोचता-समझता मै लाल भवन से वाहर आता हूँ। पास ही मंदिर मे भजन गाया जा रहा है—उसकी मधुर ध्वनि मेरे कानों में पड़ती है—उसके शव्द जैसे मेरे ही मनोभाव को व्यक्त कर रहे है—मैं भी उसके स्वर में स्वर मिला कर स्वगत कहता हूँ—

'उर की धड़कन-धड़कन मे, मैं सुनता हूँ संगीत तुम्हारा।'

हाँ, यदि हम वह सगीत सुनते और गुनते रहे तो हमारी हर धड़कन हमें प्रवुद्ध, सदाचारी वनायेगी। यह शुभ सकल्प ही अब पाथेय है। वह धड़कन हमारे जीवन की लय और तान वने।

'ॐ ह्री श्री अर्हं आचार्येभ्यो नमोनमः'।

—पूर्व कुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय,
२ ए, देशप्रिय पार्क (ईस्ट) कलकत्ता-७०००२९

अद्भुत तेज : अपूर्व शांति

☐ श्री चैतन्यमल ढढ्ढा

परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की मेरे व मेरे परिवार पर सदा कृपा रही है। मेरी माताजी श्रीमती नवरतन बाई नियमित सामायिक-स्वाध्याय करती थीं, उन्हीं के संस्कार मुझे बचपन से मिले। मैं आचार्य श्री के प्रवचन-श्रवण व दर्शनों का लाभ बराबर लेता रहा। उनके अप्रमत्त जीवन, सौम्य स्वभाव और साधनानिष्ठता से मैं सदा प्रभावित रहा। मैं सन् १९८२ में मुख्य अभियन्ता भू-जल विभाग, से जब सेवा निवृत्त हुआ तो आचार्य श्री की सेवा में दर्शनार्थ अजमेर पहुँचा। आचार्य श्री ने प्रमोद भाव व्यक्त करते हुए कहा कि 'तुमने सरकार की सेवा तो खूब की है, अब समाज की सेवा में भी अपने पुरुषार्थ का सदुपयोग करो।' सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के मंत्री के रूप में मुझे सेवा करने का अवसर मिला।

आचार्य श्री बराबर यह प्रेरणा देते थे कि हमारे समाज में श्रीसम्पन्नता तो खूब है पर साहित्य के संरक्षण और अध्ययन-मनन की ओर ध्यान कम है। तुम पढ़े-लिखे हो, समाज को इस ओर मोड़ो, धर्म धन के प्रदर्शन में नहीं, मन को विषय-कषायों से हटाकर आत्म-स्वभाव में प्रतिष्ठित करने में है, स्वाध्याय से जुड़ने में है। आचार्य श्री की प्रेरणा से स्वाध्यायियों के लिए विशेष प्रशिक्षण शिविर मण्डल द्वारा समय-समय पर आयोजित किये जाते रहे। स्वाध्यायियों का धार्मिक, आध्यात्मिक, तात्त्विक ज्ञान अभिवृद्ध होता रहे, प्राकृत-संस्कृत का ज्ञान निरन्तर बढ़ता रहे, इसके लिए 'स्वाध्याय शिक्षा' द्वैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया गया।

आचार्य श्री के पास जो भी आता, वे उसे ज्ञान-ध्यान की प्रेरणा देते, बड़ी आत्मीयता दिखाते। मुझे हृदय-रोग की शिकायत थी। जांच के लिए जब मद्रास जाने का कार्यक्रम बना तो मैं आचार्य श्री के दर्शनार्थ सवाईमाधोपुर पहुँचा। आचार्य श्री ने आत्म-विश्वास दिलाते हुए कहा—'चिन्ता की कोई बात नहीं, सब कुछ ठीक हो जायेगा।' मांगलिक लेकर मैं मद्रास पहुँचा। जिस दिन जांच होनी थी, मुझे प्रतिदिन दो माला फेरने का संकेत मिला। मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे ठीक होने लगा। मुझे बड़ा सम्बल मिला।

आचार्य श्री का अन्तिम चातुर्मास पाली में था। वहाँ जयपुर संघ को ज्ञानाराधना एवं सामाजिक सौहार्द व वात्सल्य भाव बढ़ाने की आचार्य श्री ने विशेष प्रेरणा दी। निमाज में जब आचार्य श्री ने संथारा ग्रहण कर लिया था, मैं सपरिवार दर्शनार्थ पहुँचा। वे पूर्ण जागरूकता के साथ जप-साधना में लीन थे। उनके मुख-मण्डल पर संयम-साधना का अद्भुत तेज एवं समता भाव की अपूर्व शांति थी। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके द्वारा निर्दिष्ट ज्ञान-मार्ग पर सतत अग्रसर हों।

—मंत्री, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

ज्योतिपुंज गुरुदेव !

☐ श्री सुमेरसिंह बोथरा

मुझे आचार्य श्री के सम्पर्क में आने का सौभाग्य सन् १९७३ सवाई-माधोपुर चातुर्मास में सुलभ हुआ। इसका श्रेय जाता है श्रीमान् चन्द्रराजजी सा. सिंघवी को जिनके साथ २० बार गुरु-चरणों में जाने का अवसर मिला। सुबह से शाम तक गुरु-चरणों में बैठने से आत्मानन्द की अनुभूति एवं शान्ति का अनुभव हुआ। सदा सर्वदा जिन शासन की सेवा एवं आध्यात्मिक चिन्तन के लिये प्रेरणा करना ही आचार्य श्री का एकमात्र लक्ष्य था। आचार्य श्री ने श्रीमन्तों, समाज-सेवियो और विद्वानो को एक मंच पर लाकर विद्वत् परिषद् जैसी संस्था की स्थापना की प्रेरणा दी। समाजसेवी कार्यकर्ता को श्रीमन्तो का पारिवारिक संरक्षण का मार्ग भी आपने प्रशस्त कराया। मेरे मन में बार-बार दर्शनो की उत्कंठा बढ़ती रही। यदि थोडे दिन निकल जाते और व्यापारिक या पारिवारिक कारण से दर्शन करने नही जा पाता तो मन में घुटन लगने लगती और जब तक दर्शन नही करता, मन मे शान्ति नहीं होती। दर्शन करते ही व्यापारिक तनाव या पारिवारिक चिन्ता अविलम्ब दूर हो जाती थी।

इन्दौर चातुर्मास का प्रसंग है। हमारे लिए इन्दौर नया शहर होने से हम होटल मे ठहर गये। जब आचार्य प्रवर को मालूम हुआ तो इतना इशारा किया—समाज के कार्यकर्ताओं, संघ-सेवको को अपने गुरु भाइयों से अगर वात्सल्य बढ़ाना हो तो जहाँ समाज की व्यवस्था हो, वही ठहरना ठीक रहता है। हमें इससे गुरु भाइयों का, जहां-जहाँ गये, अपनत्व, वात्सल्य, सौहार्द, भ्रातृत्व, स्नेह मिला जो हृदय-पटल पर सदा सर्वदा अंकित रहता है। आचार्य श्री अपनी साधना में सदा आत्मस्थ रहते। जीवन में तेरी-मेरी या अन्य चर्चा से कोई सम्बन्ध नही रखते थे। सामायिक, स्वाध्याय, माला आदि की जानकारी लेकर और अधिक आध्यात्मिक प्रगति की प्रेरणा दिया करते थे।

निमाज पहुँचने के साथ ही सब सन्त-सतियों को क्षमायाचना के पत्र लिखवा देना, संघ के अधिकारियो को संघ-सेवा के संकल्प की भोलावन देना, मात्र एक श्रावक के कह देने से कि मोह तो चाहे अपने शरीर का हो या संघ के प्रति हो, कर्म-बन्ध का कारण है, आपने मौन धारण कर ली और फिर संथारा ग्रहण कर लिया। जो भी व्यक्ति एक बार आचार्य प्रवर के सम्पर्क में आ जाता वह समझ लेता कि गुरुदेव की मुझ पर असीम कृपा है। यही गुरुदेव के संयमी जीवन की विशेषता रही कि प्रत्येक अपने आपको गुरुदेव के नजदीक मानता। ऐसे हस्ती गुरु को कोटिशः वन्दन।

—कोषाध्यक्ष, अ. भा श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ एवं अ. भा. जैन विद्वत् परिषद्, पीतलियों का चौक, जयपुर–३

स्वाध्याय एवं सामायिक-साधना के प्रेरक दीप-स्तम्भ

☐ आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी म. सा.

जैनाचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. संथारा-समाधि पूर्वक देवलोक हो गये, यह समाचार श्रवण कर सभी स्तब्ध रह गये। आप श्रमण संघ के उपाध्याय पद पर थे। समय-समय पर संघ-व्यवस्था संचालन में सहयोग देते। पूज्य श्री जी स्वाध्याय एवं सामायिक-साधना के प्रेरक दीप-स्तम्भ थे।

—श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन
धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर

विशुद्ध ज्ञान एवं निर्मल आचरण के पक्षधर

☐ आचार्य श्री नानालालजी म. सा.

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. विशुद्ध ज्ञान एवं निर्मल आचरण के पक्षधर थे। उनके प्रभावक जीवन की अमिट प्रेरणाएँ सदैव भव्य मुमुक्षु आत्माओं को प्रेरणाएँ प्रदान करती रहेंगी।

सादड़ी सम्मेलन में जब आचार्य पद पर चयनित करने का प्रश्न सामने आया, उस समय आपश्री ने ही बड़े उल्लसित भाव से शान्त-क्रांति के जन्मदाता स्वर्गीय आचार्य गुरुदेव श्री गणेशीलालजी म. सा. का नाम प्रस्तावित किया था। आपके इस प्रस्ताव पर सम्मेलन में उपस्थित सभी दिग्गज मुनिराजों ने सहर्ष सहमत होकर आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. को श्रमण संघ के सर्व सत्ता सम्पन्न आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आप में श्रमण संस्कृति के प्रति अगाध स्नेह था। इसकी सुरक्षा एवं संवृद्धि में आपश्री ने स्वर्गीय गुरुदेव श्री के समक्ष भी तथा मेरे भोपालगढ़, जोधपुर प्रवास के समय भी जब मिलने का प्रसंग आया, तब उनकी भावनाओं से विदित होने का अवसर मिला। भोपालगढ़ में शुद्ध श्रमण जीवन के प्रति निष्ठावान साधकों की एक चातुर्मास, एक व्याख्यान आदि रूप एकता के लिए हमने विचार-विनिमय किया।

आचार्य श्रीजी ने सामायिक-स्वाध्याय, शिक्षा तथा साहित्य के सम्बन्ध में भी जैन शासन को जो सेवाएँ अर्पित कीं, वे समाज को लाभान्वित कर रही हैं। आचार्य श्री के दिवंगत हो जाने से शासन में एक अपूरणीय क्षति हुई है।

संयोग का अन्त तो वियोग में परिणत होता है। किन्तु सन्तजनों के देह पिण्ड से विमुक्त हो जाने के बाद भी उनके आदर्शमय जीवन की गौरवशाली प्रेरणा विद्यमान रहती है। उनके पार्थिव शरीर के नहीं रहने से सभी को खिन्नता पैदा होना स्वाभाविक है, किन्तु चतुर्विध संघ के सदस्यों को खिन्नता की वजाय उनके गुण निष्पन्न व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से लाभान्वित होते हुए आदर्शमय जीवन की ओर गतिशील होना चाहिये।

आचार्य श्री के दिवंगत हो जाने के बाद उनकी परम्परा में आचार्य पद पर श्री हीरा मुनिजी म. सा. को एवं उपाध्याय पद पर श्री मान मुनिजी म. सा. को प्रतिष्ठित किया है, ऐसा सुनने को मिला है। मुनि पुंगवों को तथा संघ को आचार्य श्री के गुणमय जीवन से आलोकित होते हुए श्रमण संस्कृति की सुरक्षा-सतभावना एवं सहयोग के कार्य मे वढते रहना चाहिये।

—गुलाबपुरा (राजस्थान)

उत्कृष्ट समाधि योग

☐ आचार्य श्री तुलसी

आप श्री ने अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य किया है। जिस उत्कृष्ट समाधि योग में आप बढे है, मेरी यही मंगल कामना है कि अन्त समय तक वैसे उत्कृष्ट परिणाम बने रहे।

—जयपुर : १४ अप्रेल, १९९१

उदात्त प्रकृति के महान् सन्त

☐ उपाध्याय श्री अमर मुनि

आचार्य श्री प्रशान्त, सौम्य एवं उदात्त प्रकृति के महान् सन्त थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक विधाओं में सत्कर्मो की धाराएँ प्रवाहित कीं। सामायिक-साधना के प्रचार में तो उनका एक विशिष्ट स्थान है, जो चिरकाल तक भक्तगणों के हृदय में सुरक्षित रहेगा।

आचार्यश्रीजी का मरण, मरण नहीं है, अपितु प्राप्त देह का विसर्जन कर किसी अन्य ऊर्ध्व स्थिति की ओर प्रशस्त यात्रा है।

—वीरायतन, राजगृह (बिहार)

महासन्त ! अध्यात्मयोगी !!

☐ उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि

"हे क्रूर काल ! तूने यह निकृष्ट कार्य क्यों किया ? आज दिन तक तू कितने प्रभावक ज्योतिर्धर सन्त रत्नों को ले गया ? अभी तक तुझे सन्तोष नहीं हुआ ? मेरे परम स्नेही साथी आचार्य हस्तीमलजी म० को ले जाते हुए तेरे हाथ नहीं कांपे ? आज उनकी यहां पर कितनी आवश्यकता है ? आज चारों ओर भौतिकता की आंधी आ रही है, ऐसी विकट वेला में एक अध्यात्मयोगी को हमारे से छीनकर ले गया। वस्तुतः जिसकी यहाँ चाह है, उसकी वहाँ भी चाह है। हे महासन्त ! तुमने संथारा कर सच्चे वीर की तरह मृत्यु को वरण किया है। धन्य तुम्हारा जीवन और धन्य है तुम्हारी मृत्यु।

—जैन स्थानक, गढ़ सिवाना

ज्योतिर्धर आचार्य

☐ उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

जीवन में जब कभी भी इस प्रकार की दारुण घटना घटित हो जाती है तब हृदय व्यथित हो जाता है, मन मलिन हो जाता है और वाणी मूक हो जाती है। दिल नहीं चाहता है कि ऐसे हृदय विदारक करुण प्रसंग पर बोला जाय, पर न बोलना भी वाणी की चोरी है। प्रातः एक सज्जन ने 'राजस्थान पत्रिका' का अंक हाथ में थमाया। मुख पृष्ठ पर ही "जैनाचार्य हस्तीमलजी का महाप्रयाण" शीर्षक पढ़ते ही हृदय से ये स्वर फूट पड़े। क्या जैन जगत् के एक ज्योतिर्धर आचारनिष्ठ सन्तरत्न हमारे बीच नहीं रहे ?

आचार्य प्रवर हस्तीमलजी म. का जन्म उस सांस्कृतिक भूमि में हुआ जहाँ पर स्थानकवासी समाज के प्रथम क्रियोद्धारक श्री जीवराजजी म. ने संवत् १६६६ में क्रियोद्धार कर एक अभिनव क्रान्ति की। उसी पावन पुण्य धरा में सन् १६१० में आप जन्मे। आपके पूज्य पिता का नाम केवलचन्दजी

और माँ का नाम रूपकुंवर था। १० वर्ष की लघुवय में माँ के साथ ही आचार्य प्रवर श्री शोभाचन्दजी म. के चरणारविन्दों में आर्हती दीक्षा ग्रहण की और वीस वर्ष की युवावस्था में आचार्य पद से अलंकृत हुए।

जीवन के उषाकाल से ही अध्ययन में आपकी विशेष रुचि थी। संस्कृत-प्राकृत भाषाओं का गहन अध्ययन किया। धर्म, दर्शन, साहित्य, व्याकरण, न्याय और आगमों का तलस्पर्शी अनुशीलन किया और अनेक ग्रन्थों का सम्पादन और लेखन कर सहज साहित्यिक रुचि का परिचय भी दिया।

जैन शासन की प्रभावना अधिक-से-अधिक हो, इस दृष्टि से आप अजमेर वृहद् साधु सम्मेलन मे सम्मिलित हुए। आपकी सहज आचारनिष्ठा को निहार-कर सभी सन्त आह्लादित हुए। सन् १९५२ में जब सादड़ी में सन्त-सम्मेलन का आयोजन हुआ, उस समय आप श्री का मंगलमय पदार्पण सम्मेलन में हुआ। सादड़ी के पवित्र प्रागण में सर्वप्रथम मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रथम दर्शन मे ही मै उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ। उन्होंने अपनत्व की भाषा में जी मधुर शिक्षाएँ प्रदान कीं, वे जीवन की अनमोल थाती हैं। उनकी अपनत्व की भावना ने ही उनके प्रति अनन्त आस्था पैदा की। सादड़ी में श्रमण संघ का निर्माण हुआ। आपने आचार्य पद व सम्प्रदाय का विलीनीकरण 'श्रमण संघ' में कर दिया। आप साहित्य शिक्षण मत्री पद पर आसीन हुए। श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी म. भी साहित्य-शिक्षण पद पर आसीन हुए। एक ही पद पर होने के कारण गुरुदेव श्री के साथ निरन्तर आप श्री का पत्राचार चलता रहा। पूज्य गुरुदेव श्री ने उस वर्ष 'जैन पाठावली' के पाँच भागों का संशोधन भी किया।

सन् १९५३ में पुनः सोजत मन्त्री मण्डल की वैठक में आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला। जव भी मै आपके कक्ष में दर्शनार्थ पहुँचता तव स्नेह-सुधा स्निग्ध शब्दों मे आप मुझे हित शिक्षाएँ देते कि तुम्हें राजस्थान की गरिमा को सदा अक्षुण्ण रखना है। सन् १९५३, ५५ और ५६ ये तीन वर्षावास मेरे दादागुरु महास्थविर श्री ताराचन्दजी म. की वृद्धावस्था के कारण जयपुर मे ए। आपकी पावन प्रेरणा से 'जिनवाणी' पत्रिका का प्रकाशन जयपुर से होता । आपने पत्र के द्वारा मुझे यह प्रेरणा दी कि तुम्हारे अन्तर्मानस मे साहित्य , प्रति सहज रुचि है अतः तुम्हारे लेख 'जिनवाणी' मे जाये और साथ ही यह भी उपयोग रखना है कि उसमें जो लेख जाये, वे आगम व स्थानकवासी मान्यता के विरुद्ध न हो। महाराज श्री की प्रेरणा से मैंने यह कार्य सहर्ष किया भी।

मैंने 'जिनवाणी' की फाइले टटोलते हुए इतिहास से सम्बन्धित एक लेखमाला पढ़ी। यद्यपि उस लेखमाला पर आपका नाम अंकित नहीं था पर

वह लेखमाला आपके द्वारा ही लिखी हुई थी। जीवन के उषाकाल में आपने वह लेखमाला लिखी थी जिस समय ऐतिहासिक ग्रन्थों का अभाव था। मैंने आपसे सनम्र निवेदन किया कि आप पुनः इस लेखमाला को लिखे तो अधिक श्रेयस्कर रहेगा। उसी लेखमाला की पुनर्लेखन की कल्पना ने ही 'जैन धर्म के मौलिक इतिहास' को लिखने के लिए बाध्य किया। 'जैन धर्म के मौलिक इतिहास' के प्रथम भाग के पाँच सौ पृष्ठ का सम्पादन भी मैने किया। आप श्री का सदा ही स्नेह पूर्ण आग्रह रहा कि मैं मौलिक इतिहास का लेखन और सम्पादन करूँ, पर क्षेत्र-दूरी होने से और अनेक व्यवधान आने के कारण वह सम्भव नहीं हो सका किन्तु आपकी प्रेरणा सदा बनी रही।

सन् १९५७ में परमादरणीय उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म. तथा आप श्री के पास लगभग एक महीने तक रहने का अवसर मिला। उस समय मैंने बहुत ही सन्निकटता से आपको देखा। जप-साधना के प्रति आपकी निष्ठा को देखकर मेरा हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। सन् १९६० में विजयनगर में आठ-दस दिन साथ में रहने का अवसर मिला। 'अखण्ड रहे यह संघ हमारा' यह नारा बुलन्द किया। इस लेख में 'श्रमण संघ अखण्ड रहे' इस सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त हुए है, वे इतिहास की एक अपूर्व धरोहर है। उन विचारों को पढ़ने से लगता है कि 'श्रमण संघ' के प्रति कितने निर्मल विचार आपके रहे है।

सन् १९६४ में अजमेर में शिखर सम्मेलन हुआ। उस समय भी साथ में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। नागौर, खांगटा, पाली, जोधपुर, मदनगंज, पुष्कर प्रभृति विविध स्थलों पर साथ में रहने के अवसर प्राप्त हुए। किसी परिस्थिति से आप 'श्रमण संघ' से अलग भी हो गये, पर उसके पश्चात् भी आपके साथ अनेक बार प्रवचन हुए। एक साथ रहने के अवसर प्राप्त हुए। जब भी मिले, तब स्नेह और सौहार्दपूर्ण वातावरण में मिले। आपके साथ पत्राचार तो सदा ही वना रहा।

सन् १९९० का सादड़ी का यशस्वी वर्षावास सम्पन्न कर हम लोग पाली पहुँचे। आप स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण वहाँ पर विराज रहे थे। जब आपने सुना कि उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म. आ रहे है तो आपका हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। आपने अपने शिष्य रत्न पण्डित श्री हीरामुनिजी आदि सन्तों को अगवानी हेतु भिजवाया। मै भी मध्याह्न मे आपकी सेवा मे पहुँचा। आपने प्रसन्न मुद्रा में वार्त्तालाप किया और कहा कि मेरा शरीर अब साथ नही दे रहा है। हमने अपने जीवन में स्थानकवासी समाज के उत्कर्ष हेतु सतत प्रयास किया है। आपको भी यही प्रयास करना है। विचारों की उत्क्रान्ति के साथ आचार की उपेक्षा न हो, यह सतत स्मरण रहे। इतिहास का जो कार्य

को प्राप्त किया है। आपकी आत्मा को ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का पूर्ण रस प्राप्त हो और सदा इस विषम वेला में भी आत्मा शान्ति की लहरों मे रमण करे, यही एक महान् पुरुष का लक्षण है। हमारी यह शुभ कामना हृदय से है कि आपकी आत्मा सदा शान्त भावों में संचरण-विचरण करे।

धन्य धरा मरुधर धरा, धन्य गजेन्द्र गणीय।
धन्य नीम्ब-नीवाजको, भइ जगत् वन्दनीय।।

हमारी भी प्रवल इच्छा थी कि हम भी आपके अन्तिम दर्शन, वन्दन करें पर क्या करें, हम वहुत दूर है, और आपने संथारा कर लिया। हमारे भूधर वंश के आज की वेला मे आप सव से वड़े एक महान् सन्त रत्न है। हमें वड़ा गर्व था कि हमारे वुजुर्ग विराजते हैं। आप श्री का यह संथारा सुखद रूप में चले, यही शुभेच्छा है। सभी सन्त आप धन्य है कि आप सेवा में है। धन्य है नीम्बाज संघ को कि वह सभी भार वहन कर रहा है और चतुर्विध सघ की सेवा कर रहा है।

—सावरवत्ती : २० अप्रेल, १९९१

ज्योतिर्मान नक्षत्र

☐ श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'
[श्रमण संघीय महामन्त्री]

समाज में ज्ञानादि गुणो में युक्त एक तेजस्वी, यशस्वी, चारित्रात्मा का निर्वाण सचमुच एक कठिन प्रक्रिया है। प्रतिभा सम्पन्न श्रमण-श्रमणी हों और जीवन भर प्रेरक नेतृत्व में ज्ञानादि गुणों के योग्य निरन्तर श्रम करें साथ ही अपने चारित्रिक गुणों का भी सम्यक् विकास करे तथा अनुकूल-प्रतिकूल परीषहों पर आत्म-विजय का ध्वज फहराते हुए निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर होते रहें तभी उनमे एक सुदीर्घ साधना के पश्चात् परिपक्वता का निर्माण होता है। ऐसे श्रमण-श्रमणी ही सघ-समाज को नेतृत्व प्रदान करने योग्य सिद्ध हो सकते है।

यह एक कठिन एवं साधना प्रधान प्रक्रिया है जो सभी श्रमण-श्रमणियों में प्राय. विकसित नही हो पाती। ऐसी स्थिति में एक परिपक्व कर्मठ श्रामण्य सिद्ध चारित्रात्माका का गठन महत्त्वपूर्ण वात होती है।

आपने अपने रत्नत्रयात्मक व्यक्तित्व का सुदीर्घ साधना के साथ विकास किया जो प्रत्येक श्रमण-श्रमणी के लिए सम्भव नही हो पाता। ऐसे परिपक्व

स्थिर और कर्मठ व्यक्तित्व का अभाव हो जाना समाज के लिए दुःखद ही कहा जा सकता है। श्रमण चेतना का सुव्यवस्थित नव-निर्माण तो कठिन है किन्तु सुनिर्माणित सुसिद्ध व्यक्तित्व का उठ जाना जिन शासन के अनुयायियों के लिए अपूरणीय क्षति ही बन जाया करती है। स्वर्गीय पूज्य आचार्य श्री के अभाव को हम ऐसी ही क्षति के रूप में अनुभव कर रहे है। स्वर्गीय पूज्य श्री न केवल स्वयं त्याग, तप, साधना और ज्ञान की जीवन्त प्रतिमा थे अपितु उन्होंने समाज में सम्यक् ज्ञान साधना-सामायिक विस्तार हेतु अपनी सीमा में अथक प्रयत्न किये।

इस दिशा में कार्यरत अनेक सक्रिय संस्थाएँ पूज्य श्री की प्रेरणा के वे प्रमाण है जो युगो-युगों तक जैन जगत् को लाभान्वित करते रहेगे।

—कदमाल (राज०)

वयोवृद्ध चरित्रवान सन्त

☐ वाणीभूषण श्री रतन मुनि

मारवाड के एक वयोवृद्ध, चरित्रवान सन्त के रूप में प्रसिद्ध थे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०। आप और हम आचार्य श्री भूधरजी म० सा० की परम्परा से एक ही हैं। आचार्य श्री रघुनाथजी म० सा०, आचार्य श्री जयमलजी म० सा०, आचार्य श्री कुशलोजी म० सा० की वर्तमान परम्परा में आप श्री एवम् हम सब एक ही है। आपके देहावसान होने पर मारवाड़ ने एक वयोवृद्ध, सुयोग्य आचार्य को खो दिया है, जिनके प्रति बड़ा जन-समूह श्रद्धानिष्ठ था। स्वर्गस्थ आत्मा को शांति मिले, यही कामना है।

—गुडीहारी–रायपुर

ख्याति प्राप्त वयोवृद्ध आचार्य

☐ प्रवर्तक श्री रमेश मुनि

आचार्य प्रवर श्री जी सम्पूर्ण श्वे० स्थानकवासी मुनि संघ में ख्याति प्राप्त, वयोवृद्ध, ज्ञानी-ध्यानी-संयमी, कुशल, अनुभवी, सुदीर्घ आचार्य पर्यायी तथा

रत्नवंश के आचार्य श्री शोभाचन्दजी म० के सुयोग्य शिष्य रत्न थे। आपके द्वारा चतुर्विध संघ को प्रतिपल स्वाध्याय-संवर तथा सामायिक की प्रवल प्रेरणा मिलती थी।

आपश्री ने प्रान्त-प्रान्त में परिभ्रमण कर जिन धर्म दर्शन का वहुत प्रचार-प्रसार किया। आपकी वलवती प्रेरणा के दीप वर्तमान में सैकड़ों श्रावक-श्राविकाओं के हृदयों में जगमगा रहे हैं—स्वाध्याय प्रवृत्ति के रूप में।

सुदीर्घ संयम, सम्प्रदाय-शासन पर्यायी आचार्य प्रवर के स्वर्गवास से रत्न-वंश में जो कमी हुई है, उसकी पूर्ति निकट भविष्य में शीघ्रता से होनी असम्भव-सी है।

श्रद्धेय श्री मान मुनिजी म०, श्री हीरामुनिजी म० आदि सभी संत-सती मण्डल धैर्यता रखते हुए संघ-शासन की गरिमा को गौरवान्वित करते रहेंगे तथा जो ऐतिहासिक देन "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" ४ भाग दी है, उसके अधूरे वचे कार्य को पूर्ण करायेंगे। इसी भावना के साथ आचार्य श्री को श्रद्धांजलि।

—नांगलोई (दिल्ली)

सजग साधक पुरुष

☐ प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

स्वर्गीय पूज्य श्री पुरानी पीढ़ी के अत्यन्त प्रभावशाली सजग साधक पुरुष थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन जीवंतता के साथ जीया। उनका मनोवल मजवूत था। सामायिक-स्वाध्याय और साधना के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने वहुत कुछ किया। पूज्य श्री का निधन एक ऐसी क्षति है जो हर एक के मन को खलती रहेगी।

—जैन स्थानक, मदनगंज (राज०)

साधकों के लिए प्रेरणा

☐ प्रवर्तक श्री उमेश मुनि 'अणु'

आचार्य श्री स्थानकवासी श्री संघ के वरिष्ठ सन्त थे। आपने साधकों

को ज्ञान-आराधना में और चरित्र-आराधना में विशेष प्रेरणा दी। ज्ञान-आराधना के प्रसार के लिए स्वाध्याय संघ की स्थापना की। प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के संरक्षण हेतु ज्ञान भण्डार की स्थापना करवाई। आपने स्वयं लेखन किया एवं प्रवचन दिये। आगामों का सम्पादन किया। चरित्र-आराधना की प्रेरणा देने के लिए सामायिक संघ की स्थापना करवाई।

आचार्य श्री की आत्मा वीतराग-मार्ग पर अग्रसर होती हुई शाश्वत शिव सुख को प्राप्त करे, यही मंगल कामना है।

—जैन स्थानक, महिदपुर (म० प्र०)

साम्प्रदायिक सौहार्द एवं समता के विश्वासी

☐ मुनि श्री रामकृष्णजी म०

आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज सा० जैन शासन के एक महान् तेजस्वी आचार्य थे। उन्होंने अपने समग्र जीवन में जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार का महान् श्लाघनीय प्रयत्न किया। युवक वर्ग एवं बाल वर्ग में सामायिक, स्वाध्याय की महान् प्रेरणा देकर धर्म की अद्भुत जागृति उत्पन्न की। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अनेक अनमोल कृतियों से जैन भारती के कोष को समृद्ध किया।

वे साम्प्रदायिक सौहार्द एवं समता के विश्वासी थे। जैन शासन को अभी ऐसे महान् व्यक्तित्व की और अपेक्षा थी।

अभी कुछ ही समय पूर्व पीतमपुरा में आचार्य श्री का हीरक जयन्ती समारोह मनाया गया था जिसमें राष्ट्र के प्रधान मन्त्री ने स्वयं उपस्थित होकर उनके लिये समग्र राष्ट्र की ओर से शुभ कामनायें अर्पित की थीं। लेकिन अतीव विषाद की बात है कि वे इतने शीघ्र अपने जीवन की यात्रा को पूर्णकर, परम पूर्णता की ओर प्रस्थित हो गये।

—श्री एस० एस० जैन सभा, पीतमपुरा, दिल्ली—३४

यशस्वी आचार्य

☐ श्री गणेश मुनि शास्त्री

श्रद्धास्पद आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. एक सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न, आदरणीय महापुरुष थे । लघुवय में संयम लेकर वे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान् बने । उन्होंने अपनी दिव्य लेखनी से अनेक अनमोल ग्रन्थ रत्न लिखकर समाज को समर्पित किये हैं जो सदियों तक जन-समाज का मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे । जिनमें 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' अमूल्य है, जिसमें आचार्य श्री ने अपने अनुभव ज्ञान की अद्भुत गंगा बहाई है । यह महाग्रन्थ चार भागों में विभक्त है ।

जैन जगत् के यशस्वी आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की कृपापूर्ण छत्र-छाया में रहने के मुझे अनेक बार सुअवसर प्राप्त हुए थे – जोधपुर, पाली, अजमेर, समदड़ी आदि । इनमे सर्वाधिक सान्निध्य सरदारपुरा-जोधपुर का अविस्मरणीय है । मैंने उन्हे हर समय स्वाध्याय ध्यान-चिन्तन, लेखन, साधना में संलग्न देखा । यही कारण था कि श्रमण वर्ग हो या श्रावक वर्ग, सभी को सत्पुरुषार्थ की अर्हनिश प्रबल प्रेरणा प्रदान करते रहते थे । स्वाध्याय और सामायिक को आत्म-विकास का श्रेष्ठतम उपाय बताते हुए इसे कल्प-वृक्ष की उपमा देकर व्याख्यायित करते थे । उनकी सद्प्रेरणा से हजारों-हजार साधक/साधिकाएँ आत्म-साधना के सोपान पर आरूढ़ है ।

इतिहास-मर्मज्ञ, ज्ञान और क्रिया के साकार रूप आचार्य श्री का स्वर्गवास जैन समाज की अपूरणीय क्षति है । ऐसी दिव्यात्मा को भाव भरी श्रद्धा-सुमनांजलि समर्पित करते हैं । उनके पीछे सन्त-महासती परिवार के प्रति मेरी आत्मीय सहानुभूति है । सुयोग्य उत्तराधिकारी से संघ / समाज को बहुत-बहुत आशा / अभिलाषा है ।

—अमर जैन साहित्य संस्थान, सैक्टर ११, उदयपुर

इतिहास पुरुष बन गये

☐ श्री सुदर्शनलालजी म. सा.

"पूर्वाह्ने प्रतिबोध्य पंकज वनान्युत्सार्य नैशं तमः,
कृत्वा चन्द्रमसं प्रकाशरहितं निस्तेजसं तेजसा ।

ऐतिहासिक पत्र हमारे गुरुदेवजी म. के पास भेजा तो रोम-रोम प्रफुल्लित एवं हृदय गद्गद् हो गया तथा की हमारे पास उस विषय में खबर आई कि तुमने पू. आ. ों के पवित्रतम हृदय में अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाकर मूल्य एवं असली कमाई की है। इससे मेरी आत्मा अति

ा. श्रीजी के जाने से हमें खुद भी आत्म-क्षति की अनुभूति हो ो इस प्रसंग पर हम आप मुनि मण्डल की हार्दिक भावनाओं में गी हैं। उन्होंने अपना सर्वस्व अपने मुनि मण्ड में उंडेला है जिसे आदर्शों के साथ पूर्णतः सुरक्षित और वर्धापित करेंगे, इसी आशा के साथ हमारे हृदय की गहराइयों से निकले कुछ भाव-सुमन करें।

—बोरीबली, बम्बई

संयम के चक्र

☐ श्री रामप्रसादजी म०

महान् आत्मा, संयम के शिखरों को पार करती हुई संलेखना के ज़र को स्पर्श कर रही है। लगभग साढ़े तीन वर्ष सोनीपत में स्वनाम श्रेष्ठ, संथारा-साधना तपस्वी श्री बद्रीप्रसादजी म० का ७२ दिनों हुआ। आचार्य प्रवर ने उनके लिए पाथेय स्वरूप शिक्षा वचनों तथा को भेजा, जिनके आलम्बन से उन्हे अतीव प्रेरणा तथा समाधि ज हम लघु आप जैसे महान् व्यक्तित्व को क्या लिखें? यह ो रहा है, फिर भी कुछ श्रद्धा-पुष्प अर्पित हैं।

एयं तुमे लद्धं, जिण वचनामय विभूसियं देहं ।
रयणास्लिया ते मडिया, भवणम्मि वसुहारा ।।
ऽ मे हिययं तुब्मे मोक्खस्स साहणोवाओ ।
संथारो सुविहिय परमत्थ संथारो ।।

(संथार पइन्ना)

वचन अथवा जिन धर्मामृत से विभूषित देह पाया,
स्वर्ण वृष्टि हो रही है। मेरा हृदय आपका

और जन-जन को ज्ञानावलम्ब देकर युगों-युगों को उपकृत और ऋणी बनाया है। स्वयं भी इतिहास पुरुष बन गए हैं।

आचार्य श्रीजी का हमारी परम्परा से बहुत ही गहरा अनुराग रहा है। पूज्यपाद संयम शिरोमणि श्री मायारामजी म. के युग से ही आचार्य श्री विनयचन्द्रजी म. के साथ मधुर सम्बन्ध रहे। व्याख्यानवाचस्पति पूज्य गुरुदेव श्री मदनलालजी म. सा. के साथ भी आप बहुत आत्मीय श्रद्धा का व्यवहार करते रहे, फिर उनके पश्चात् भी हमारे मुनि संघ के ऊपर आपने कृपापूर्ण दृष्टि रखी है।

तीन वर्ष पूर्व हमारे गुरुभ्राता, तपस्वीराज श्री बद्रीप्रसादजी म. ने ७२ दिन का संथारा करके युगचेतना को वीतराग भगवन्तों से जोड़ दिया था, उस महान अनुष्ठान अवस्था में अधिकाधिक साज साहाय्य प्रदान कर महान् निर्जरा में भागीदार बने।

हमें आचार्य श्रीजी की सदा स्मृति बनी रहेगी, चाहे वे शरीर रूप से रहें या न रहें, उनकी आत्मा, भावना, साधना हमारे हृदयों पर अमिट रूप से अंकित है और रहेगी।

—जीन्द (हरियाणा) : १४ अप्रेल, १९९१

महान् दिव्य पुरुष

☐ श्री प्रकाश मुनि

उस महान् दिव्य पुरुष की सर्व विशेषताओं को शब्दशः प्रकट नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपने समस्त साधना-काल को गन्ध हस्ती की तरह सर्वथा अप्रमत्त एवं जागरूक भावेन जीया है। यद्यपि उनके पावन चरणों में हमें यत्किंचित् ही रहने का लाभ मिला तो भी हम मुनिराज इस बात को गौरवपूर्ण ढंग से कह सकते हैं कि वे हमारे हृदय के अन्तरतम प्रवेश में विराजित कुछ ही [illegible] साधकों में से एक थे। उनसे हमें जो आत्मीय स्नेह, हार्दिक भाव एवं अत्यन्त उदारपूर्ण मृदु व्यवहारमय कृपा प्रसाद मिला है वह हमारे जीवन का सुरक्षित अक्षय कोष ही रहेगा। हमारे पूज्यपाद चरित्र नायक श्री गुरुदेवजी म. सा. एवं उनके मुनि मण्डल के मन में जो आचार्य श्री के प्रति उत्कट श्रद्धा एवं आदर भाव है, वह परस्पर हृदय की भाषा से ही समझा जा सकता है। जून सन् 89 में मेड़ता के मधुर एवं आत्म सौहार्दपूर्ण सन्त मिलन के पश्चात्

हरे पर अत्यन्त सौम्यता, धैर्यता एवं भव्यता झलक रही थी।
रणों में वन्दन किया। उन्होंने अपलक दृष्टि से हमें देखा।
आनन्दित हो गया उनके दर्शन की झलक पाकर। जीवन में
र्लभता से ही प्राप्त हो सकते हैं।

येक जन्मधारी अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त करता है, किन्तु मृत्यु
प्त करना आवश्यक है। महापुरुषों का जीवन हमें यही दिशा-
। साधक साधना पथ पर चलता है, अन्य भी साथी गणों को

के प्रचार-प्रसार में, साहित्य-सेवा में आपका स्तुत्य प्रयास रहा।
वाध्याय शिक्षणशाला, सामायिक संघ, आदि अनुष्ठानों का
ापके दिल पर था। उसका मनसा, वाचा, कर्मणा आपने प्रचार-

ाधना में मृत्यु को चुनौती देकर संथारा स्वीकार कर लिया।
ना में संलग्न हो गये। दस दिनों तक आराधना चलती
गमन कर गये। मैंने भी दिव्यात्मा के जीवन से यही प्रेरणा
मेरी भी अन्तिम आराधना इसी प्रकार से समतापूर्वक
क्षणों तक शुभ भावों की अजस्र धारा बहती रहे।

प्रवर का जीवन जिन्होंने स्वेच्छा से मृत्यु की गोद स्वीकार
ा दिया कि मृत्यु को हँसते-हँसते प्राप्त करो जिससे
म हो जाये एवं आत्मा शाश्वत सुखों को प्राप्त करे।
ात्मा के श्री चरणों में हार्दिक भावाञ्जलि।

ारकारी विरल विभूति

☐ मुनि -जितेश

ी नानेश के सुशिष्य]

जीवात्माओं ने
तय की हैं
के लिए न
ई है।

अभिनन्दन कर रहा है जो अपने मोक्ष साधनोपायभूत संथारा लिया है, जो मोक्षार्थ की गई परमार्थ साधना की पराकाष्ठा है, वीर प्राप्ति है—

श्लोक—देवाधि देव लोए भुंजंता वहु विहाइं भोगाइं ॥
संथारं चिन्तंतां आसरा सयरगाइं मुंचंति ॥

(संथार पइन्ना)

देव भी देवलोक में विविध भोगों में रत होने पर भी (आप जैसों के) संथारे का ख्याल आते ही आसन, शयन छोड़कर (आपकी वन्दना करते होंगे) आपने जो जीवन-संग्राम अब तक किया, आज उसके शीर्ष पर पहुँच गये हैं। विजयश्री आपके निकट ही है। आराधना-पताका उच्च भावों की पावन पवन से प्रेरित होकर उच्चाकाश में फहरा रही है। तप-संयम के शस्त्रों से सभी मुनिवर सुसज्जित होते है, पर संलेखना रूप सुदर्शन चक्र तो किसी-किसी संयमी चक्रवर्ती के हाथ आता है, क्योंकि उसे धारण करने की तथा प्रयोग करने की क्षमता हर एक में नही होती है। धन्य है आपको तथा समीपस्थ मुनियों को भी जो आज आपको विदा करने में, मोह त्याग पूर्वक समाधि प्रदान करने में जुटे है।

—संगरिया (राज०) १४ अप्रेल, १९९१

धैर्य एवं भव्यता की प्रतिमूर्ति

☐ श्री ईश्वर मुनि

संसार मे सभी जीवों का आवागमन होता रहता है। कोई ज्ञानी के रूप में तो कोई अज्ञानी के रूप में। सबका भिन्न-भिन्न रूप मे जीवन-यापन का स्तर होता है। ज्ञानियों का जीवन सही रूप से उपयोगी होता है। उनके जीवन-स्तर से सभी जीवों को लाभ मिलता है। अतः ज्ञानी पुरुषों का जीवन ही सार्थक जीवन कहलाता है।

अभी कुछ दिन पूर्व निमाज (जिला—पाली) में जैनाचार्य पूज्य श्री हस्तीमलजी का शुभ संकल्पमय संथारा चल रहा था। संयोग से हमारी भी धर्म प्रचार यात्रा का पड़ाव अजमेर में ही था। हम भी उस पुण्यात्मा के पावन अन्तिम दर्शनार्थ पहुँच गये। आचार्य श्री के समाधियुक्त संथारे का आठवां दिन

चल रहा था। चेहरे पर अत्यन्त सौम्यता, धैर्यता एवं भव्यता झलक रही थी। हमने उनके श्रीचरणों में वन्दन किया। उन्होंने अपलक दृष्टि से हमें देखा। हमारा मन-मयूर आनन्दित हो गया उनके दर्शन की झलक पाकर। जीवन में ऐसे पावन क्षण दुर्लभता से ही प्राप्त हो सकते हैं।

वैसे तो प्रत्येक जन्मधारी अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त करता है, किन्तु मृत्यु के पूर्व शिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है। महापुरुषों का जीवन हमें यही दिशा-बोध करवाता है। साधक साधना पथ पर चलता है, अन्य भी साथी गणों को तैयार करता है।

जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में, साहित्य-सेवा में आपका स्तुत्य प्रयास रहा। स्थान-स्थान पर स्वाध्याय शिक्षणशाला, सामायिक संघ, आदि अनुष्ठानों का अत्यधिक प्रभाव आपके दिल पर था। उसका मनसा, वाचा, कर्मणा आपने प्रचार-प्रसार किया।

अन्तिम आराधना में मृत्यु को चुनौती देकर संथारा स्वीकार कर लिया। समभावों की आराधना में संलग्न हो गये। दस दिनों तक आराधना चलती रही। अन्त में स्वर्ग गमन कर गये। मैंने भी दिव्यात्मा के जीवन से यही प्रेरणा प्राप्त की कि प्रभो! मेरी भी अन्तिम आराधना इसी प्रकार से समतापूर्वक चलती रहे! अन्तिम क्षणों तक शुभ भावों की अजस्र धारा बहती रहे।

धन्य है आचार्य प्रवर का जीवन जिन्होंने स्वेच्छा से मृत्यु की गोद स्वीकार की तथा दुनिया को सिखा दिया कि मृत्यु को हँसते-हँसते प्राप्त करो जिससे आवागमन का चक्र खत्म हो जाये एवं आत्मा शाश्वत सुखों को प्राप्त करे। तपःपूत, सुदीर्घ संयमी आत्मा के श्री चरणों में हार्दिक भावाञ्जलि।

युगान्तरकारी विरल विभूति

□ मुनि प्रेम-जितेश
[आचार्य श्री नानेश के सुशिष्य]

अनादि अनन्त के अनवरत प्रवाह में प्रवाहशील अनेक जीवात्माओं ने जन्म एवं मृत्यु के चक्रवात में अपकर्ष एवं उत्कर्ष की अनेक यात्राएँ तय की हैं किन्तु वह यात्रा जिसमें समुत्कर्ष का समावेश हो, जो यात्रा मृत्यु के लिए न हो, मुक्ति बनाम जीवन के लिए हो, ऐसी यात्रा विरलों में ही घटित हुई है।

जिन्होंने मृत्यु से नही, जन्म से छुटकारा पाने का पुरुषार्थ १० वर्ष की लघुवय से ८१ वर्ष अर्थात् ७१ वर्ष के लगभग किया, जो साधना के परिवेश में ज्योतिर्मान नक्षत्र के रूप में जैन शासन में चमकते रहे, जिनकी मनोहारी निर्मल ज्योत्स्ना ने भवाटवी में भटकते हुए भव्य मुमुक्षु साधकों को सही दिशा वोध दे, सुपथ का यात्री वनाया है, जो जीवनपर्यन्त स्वाध्याय, सामायिक की प्रेरणा के लिये समर्पित रहे, जिनके उपदेशामृत ने मानव-मन के मरुस्थल को सुखद मेघ की तरह सिंचित कर हरा-भरा किया है, ऐसे आत्मज्ञानी-ध्यानी महामनीपी श्रद्धेय आचार्य प्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का नाम अविस्मरणीय है। वे महापुरुष अपने आपको एक युगान्तरकारी विरल विभूति के रूप में चरितार्थ कर गये हैं।

हम नहीं मान सकते कि उस दिव्यात्मा की मृत्यु हो गई, चूँकि मृत्यु कीड़े-मकोड़ों की होती है, स्वर्गवास संसारियों का होता है, स्वर्ग इच्छा आकांक्षा का फल, संसार है, संसार में रहने की जो यात्रा है, वह है संसारी। पूज्यपाद आचार्य प्रवर 'अमरत्व' के उपासक थे, साधक थे, इन अर्थों में असंसारी थे। उनकी संयम यात्रा को सिद्धलोक की यात्रा कहेंगे। जो संथारे के माध्यम से तय हुई है। इसे हम पूज्य श्री का अमरत्व पाना कहें तो अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। ऐसे अमरत्व के देवता पूज्य श्री के निर्मल ज्ञान, विमल आचरण एवं करुणा-शीलता के सद्गुणों को आत्म-प्रतिष्ठित करना ही अपनी शोक तन्द्रा को तोडने का एकमात्र उपाय है। इसी माध्यम से हम उनकी जीवन-यात्रा से जुड़ सकते हैं। इस रूप में जुड़कर 'भक्त' इस संज्ञा को सार्थक किया जा सकता है। मृत्यु-स्वर्गवास या देहावसान ये शव्द उन्हें भुला सकते है। 'अमरत्व की यात्रा' यह शव्द उन महापुरुपों के अनुसरण की अमर प्रेरणा प्रदान करेगा। उनका यह अनुसरण हमारी आत्मा के लिए पाथेय वनेगा, सच्ची श्रद्धॉजलि होगा।

कुशल वंश के कुशल कलाकार, रत्नसंघ के सच्चे रत्न, शोभा गुरु की महकती शोभा, तपोमूर्ति श्रीमद् गजेन्द्राचार्य ने विनाशी और अविनाशी दोनों के साथ-साथ रहने पर भी परम भेदज्ञान का साक्षात्कार कर लिया था। उनके अन्दर दोनो की संवेदना पृथक्-पृथक् समायी हुई थी। वे विनाशी शरीर) का पोपण अविनाशी की अर्चा के लिये करते थे तथा अविनाशी की विनाशी के चंगुल से मुक्त होने के लिए करते थे।

वे महापुरुप कितने सावधान, कितने सजग, कि विनाशी के वगावत करने पर देहातीत हो अविनाशी में तल्लीन हुए जिसे शास्त्रीय भाषा में 'अप्पाअप्पम्मिरओ' आत्मा से आत्म-रमण की संज्ञा दी गई है। जिसे हम संलेखना, संथारा, समाधि मरण के रूप में जानते, पहचानते हैं।

ऐसे महान् व्यक्तित्व के धनी आचार्यदेव शीघ्र ही अपने आत्मिक लक्ष्य को प्राप्त कर सिद्धत्व, बुद्धत्व को प्राप्त करें तथा समस्त जैन श्रीसंघ महापुरुषों के आदर्शों पर चल अपना जीवन सार्थक करें, यही विनम्र श्रद्धांजलि उन पुण्य पुरुषों की पावन यात्रा के प्रति सादर समर्पित है।

—सलूम्बर (उदयपुर) : २३ अप्रेल, ९१

अप्रमत्त साधक

☐ **श्री धर्मेश मुनि**
[आचार्य श्री नानेश के सुशिष्य]

आचार्य श्री के दर्शनों का मुझे पूर्व में भी सौभाग्य मिला और आचार्य श्री नानेश के साथ प्रेम सम्बन्ध होने के बाद तो विशेष रूप से अवसर मिला। मैंने सदा पाया कि वे अप्रमत्त भाव से साधना में संलग्न रहते। मौन, जप, स्वाध्याय एवं आत्मचिंतन उनका दैनिक क्रम था। इतिहास-लेखन के माध्यम से उन्होंने बहुत बड़ी समाज-सेवा की है।

के. जी. एफ. (कर्नाटक) में लगभग २२ दिन साथ रहने का काम पड़ा। मुझे गुरु सदृश स्नेह प्राप्त हुआ। काल निरन्तर भूत में समा रहा है परन्तु वे स्वर्णिम घड़ियाँ आज भी स्मृति कोष में तरोताजा है और आगे भी रहेंगी।

महान् आचार्य का स्वर्गवास स्थानकवासी ही नहीं, सम्पूर्ण जैन समाज के लिये अपूरणीय क्षति है। उनके बताये मार्ग पर चलें, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

—हस्तिनापुर

सदैव प्रेरणा-स्रोत

☐ **त्रिस्तुतिक समुदायवर्ती**
जयन्त शिशु मुनि धर्मरत्न विजय

तिविहारोपवास संथारा समाधिस्थ पच्चक्खाण आप श्री ने ग्रहण किये। दैनिक अखबार 'तरुण भारत' द्वारा जानने को मिला। काफी प्रसन्नता

हुई। सचमुच आपकी यह पहल सराहनीय है और रहेगी। भविष्य में लिखे जाने वाले इतिहास के मुख्य पृष्ठों पर यह विवरण उत्साह वर्धकता पूर्वक स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा तथा वर्तमान में आस्तिक एवं नास्तिक दोनों प्रकार के मानवों के हृदय पटल पर स्थायी रूपेण टंकित होगा। मुझ जैसे पामर अज्ञानी के लिये निश्चित ही आपका यह कदम सदैव प्रेरणा स्रोत बन प्रवहमान रहेगा। आप श्री की जागृत हुई शुभ भावना को निर्विघ्नतया निर्बाध रूप से सच्चे साधक के स्वरूप में सफलता प्राप्त होवे—ऐसी परमाराध्य परम इष्ट पूज्य गुरुदेव श्री से निरन्तर प्रार्थना करता हूँ एवं आशा रखता हूँ कि त्यागवीर, तपवीर, ज्ञानवीर, ध्यानवीर, महावीर, धीर-वीर, गम्भीर सन्त-महन्त, ऋषि-मुनि भगवन्त के परम आशीर्वाद से मुझे भी पण्डितमरण की प्राप्ति हो, इसी सद् कामना के साथ।

—जैन श्वे. उपाश्रय, औरंगाबाद : १७ अप्रेल, ९१

सदा याद रहेंगे

☐ श्री जय मुनि
[श्री सुदर्शनलालजी म. सा. के सुशिष्य]

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्म तप्तं,
दुर्दाव वह्नि विधुराणि च काननानि।
नाना नदी नद शतानि च पूरयित्वा,
रिक्तोऽसि यज्जलद ! सैव तवोत्तमा श्रीः ॥

अर्थात् हे मेघ ! जब पर्वतो के शिखर गर्मी से सन्तप्त हो रहे थे, तुमने उन्हें शान्ति का आश्वासन दिया। जब वनराजियां दावानल से दग्ध होती हुई अपने अस्तित्वमात्र के प्रति शंकित थी, तुमने जल बरसा कर उन्हें जीवन-दान दिया। शुष्कप्राय. सैकड़ों नदी-नालो को पूर्ण करके तुम रिक्त हो गये हो, परन्तु [illegible] वास्तविक शोभा श्री तो इसी मे समाई हुई है।

पूज्य आचार्य प्रवर, परम श्रद्धेय, सामायिक-स्वाध्याय प्रणेता जैन इतिहास-[illegible], करुणानिधि श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. इस सम्पूर्ण भू-मण्डल को अपने उत्तम संयम व ज्ञान-ध्यान के द्वारा सन्तृप्त करके यद्यपि आज देहदृष्ट्या विलीन हो गये है, परन्तु उनकी गरिमा, महिमा एवं यश, कीर्ति तो उनके क्रियाकलापों द्वारा सदा अजर-अमर बनी रहेगी।

यद्यपि व्यक्तिगत रूपेण मेरा इतना सौभाग्य नहीं रहा कि इन चर्म-चक्षुओं से मैंने आचार्य प्रवर के दर्शन किये हों, किन्तु मैं सन् १९६८ से ही, जब से मैं यहां गुरुदेव (श्री सुदर्शनलालजी म. सा.) के श्री चरणों में वैरागी बना, आचार्य प्रवर के महान् जीवन के बारे में बहुत कुछ सुनता आ रहा हूँ। सन् १९७८ में गुरुदेव के दो विरक्त शिष्य श्री राजेन्द्रजी एवं श्री राकेशजी अपनी दीक्षा से पूर्व उज्जैन में आचार्य प्रवर के दर्शन और आशीर्वाद ग्रहण करके आये। सन् १९८७ में सरलात्मा, ओजस्वी वक्ता श्री मान मुनिजी म. सा. ने देहली में विराजमान हमारे गुरुदेव के गुरुभ्राता, शान्तात्मा, स्वाध्यायशील श्री सेठजी म. आदि मुनिराजों से मधुर मिलन करके आपसी सम्बन्धों का पुनर्नवीनीकरण किया। सन् १९८९ के अजमेर चातुर्मास से पूर्व पूज्य गुरुदेव के ज्येष्ठ शिष्य, कठोर संयमी, प्रखर वक्ता श्री प्रकाश मुनिजी म. सा. ठाणा ३ ने मेड़ता सिटी में पूज्य आचार्यदेव के दर्शन एवं सान्निध्य का अमृत लाभ लिया। इन सब विशेष प्रसंगों की चर्चाएं एवं तज्जन्य संस्कारों को सुन-सुनकर मेरे मन में सदा-सर्वदा किसी अनिर्वचनीय समुल्लास की अनुभूति होती है।

जिन आचार्य प्रवर के जीवन के प्रति हमारे पूज्य गुरुदेव इतनी अगाध श्रद्धा रखते हैं, तो ऐसे आचार्य प्रवर के प्रति हम लघु सन्तों में श्रद्धा का भाव भला क्यों नहीं उमड़ेगा ?

आचार्य श्रीजी ने सुमेरु पर्वत के तीन काण्डों के समान अपने साधुत्व, उपाध्याय पद एवं आचार्य पद के द्वारा मंत्रराज नवकार के तीन पदों को महिमामण्डित किया है।

राजस्थान जैसे क्षेत्रों में, जहां पर सुदीर्घ दीक्षित सन्त भी अनेक तरह के विवादों के चक्रव्यूह में समय-समय पर घिरते रहते हैं, वहां पर आचार्य श्री सब प्रकार के विवादों से दूर रहे। इतनी निर्लेपता भी कोई उच्चकोटि का अनासक्त योगी ही कर सकता है। वे सभी तरह की एषणा, दौड़ और लिप्साओं से अछूते रहे थे।

साहित्यिक-क्षेत्र में भी आप श्रीजी ने अपनी विशिष्ट गरिमा बनाये रखी। जहां आपने अपने कठोर श्रम के द्वारा माँ भारती के कोष को समृद्ध किया, वहाँ आपने धन और धनिकों को अपने ऊपर काबिज नहीं होने दिया। इतिहास जैसे ठोस और जटिल विषय को छूकर भी आपने प्रभु महावीर की संयमप्रधान परम्परा के पोषण की ही दृष्टि बनाये रखी। आपकी सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख देन रही है संयम का समर्थन और संयम का अनुकरण।

संगठन आपको प्रिय था, इसके लिये आपने कई प्रयास भी किये तथा बलिदान भी किये । इन सबके पीछे आपका एक ही ध्येय रहा कि संगठन की अंधभक्ति में कभी संयम की बलि न चढ़ जाये । सभी कुछ छोड़कर सबसे किनारा करके भी आप संयम का ही दामन थामे रहे । श्रमण संघ में विलय, अपने संघीय पदों का विसर्जन तथा नव संघ निर्माण में अपनी आहुति—ये सब संयम मूल्यों के पुनः स्थापना की ही कड़ियां रही हैं ।

खैर ! जीवन का अन्तिम पड़ाव मरण है । त्रेसठ शलाका पुरुषों को भी इस आवश्यक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है । मृत्यु शब्द के नाम मात्र से ही यह चराचर प्राणि जगत् खौफ खाता है । उसे टालने के लिए वह सैंकडों-सहस्रों यत्न करता है पर आचार्य श्री ने तो 'समरेव महामुणी' का उच्च लक्ष्य सामने रखकर मृत्यु का सहर्ष आलिंगन किया । इनके इस आदर्श बलिदान पर हमें शोक नहीं, गर्व करना है—

जो देखी हिस्टरी इस बात पर कामिल यकीं आया ।
उसे जीना नही आया, जिसे मरना नहीं आया ।।
हो सदाकत के लिए, जिस दिल में मरने की तड़प ।
पहले अपने पैकरे–खाकी में जां पैदा करे ।।

आचार्य प्रवर की ज्ञान-रोशनी अंधेरों की चीर कर हमें दिव्य प्रकाश बांटती रहेगी—

खुश जमालों की याद आती है, बेमिसालों की याद आती है ।
जाने वाले लौट कर नही आते, जाने वालों की याद आती है ।।

जैन शासन को उनके अभाव में कितनी क्षति हुई है, यह भी एक गहन चिन्ता का विपय है—

दिक्श्रीस्तमोहतिर्जगज्जन रञ्जनादि, सर्व भविष्यति रवेरिव चन्द्रतोऽपि ।
. स्त गामिनि रवौ भविता न जाने, राजीव जीवन विधौ कतमः प्रकारः ।।

अर्थात् सूर्य के छिप जाने पर, सभव है चन्द्रमा का उदय हो । उससे २ ˎ शोभित हो जाएँ, कुछ अधेरा घट जाए तथा जनता का मन भी थम जाये परन्तु वेचारे कमलों का क्या होगा ? आचार्य श्री के दिवंगत होने पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से फलने-फूलने वाले हम कमलों का विकास कैसे हो पायेगा, यह चिन्तनीय है ।

साधुत्व के मूर्तिमान् रूप उस मुनिवर, आगमों के गहन ज्ञान से मण्डित उस उपाध्याय तथा आचारनिष्ठा के सजग प्रहरी रूप उस आचार्य प्रवर को हम सब मुनिराजों का शतशः सहस्रशः और कोटिशः नमन तथा सादर श्रद्धांजलि समर्पित है।

—जैन स्थानक, गोहाना मण्डी (रोहतक) हरियाणा

स्मरणीय और उल्लेखनीय

☐ श्री सुभद्र मुनि

आचार्य श्री वर्तमान में एक उल्लेखनीय आचार्य थे। यद्यपि वे एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य थे, परन्तु उनके कार्य एक सम्प्रदाय विशेष के लिये नही थे। उन्होंने समग्र जैन समाज के लिये कार्य किया। उन्होंने एक सम्प्रदाय का पोषण ही नही समग्र जैन शासन की अभ्युन्नति के लिये कार्य किया। उनके द्वारा रचित साहित्य इस बात का साक्ष्य है।

आचार्य श्री ने अपने जीवन के अन्तिम समय में समाधि की जो आराधना की वह चिरस्मरणीय और चिरउल्लेखनीय रहेगी। मुमुक्षावान-जनों के लिये वह प्रेरणा का स्रोत रहेगी।

हमारी कामना है—आचार्य श्री की आत्मा को चिरशान्ति प्राप्त हो। वे अपने परम संलक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। ऐसी हमारी भावना है।

—श्री एस. एस. जैन सभा, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४

महान् सन्त-रत्न

☐ महासती श्री यशकंवरजी म. सा.

एक दिव्य-दिवाकर अपना दिव्य-ज्ञानालोक वसुधातल पर विकीर्ण कर अस्त हो गया। हरी-भरी, पुष्पित, पल्लवित, इस सरस बगिया का बागवां जाता रहा। वह ज्ञान-प्रदीप बुझ गया। फूल मुरझा गया। तप-त्याग की सौरभ लुटाकर सभी का पथ-प्रदर्शक, जन-जन का मसीहा अनन्त में समा गया।

पुण्यात्मा हँसते-हँसते सुरधाम सिधार गए शिष्य-शिष्यावृंद, भक्तगण, श्रद्धालुवृंद को पीड़ित कर। अब पावन संयम-निधि देहदृष्ट्या हमारे समक्ष

नही है, किन्तु उनका निर्मल यशःकाय युगों-युगों तक श्रद्धालुओं को मार्ग दर्शन देता रहेगा।

श्रद्धेय आचार्य प्रवर इस युग के महान् सन्त-रत्न थे। उनकी गरिमा-महिमा का वर्णन लेखनी द्वारा अभिव्यक्त नही किया जा सकता। उपमातीत व्यक्तित्व को किस उपमा से उपमित किया जाये ? मेरे अन्तर-मानस में रह-रहकर कवि की निम्न पंक्तियां उभर रही है—

"मैंने अपनी इन आखो से, सच ऐसे इन्सान को देखा है।
जिसके बारे में सब कहते है, धरती पर भगवान को देखा है।।"

सचमुच आचार्य प्रवर एकान्त ध्यान योगी, मौन साधक थे। छल, छद्म एवं पदलिप्सा से दूर रहकर हर क्षण अप्रमत्त भाव से आत्म-जागरण के साथ सच्चा श्रमण-जीवन व्यतीत किया। सामायिक, स्वाध्याय के प्रबल पक्षधर थे। इसी कारण घर-घर में सामायिक एव स्वाध्याय का बिगुल बजाया। वस्तुतः आचार्य प्रवर ज्ञान के प्रदीप ही थे। यथा—

धन्य जीवन है तुम्हारा, दीप बनकर तुम जले हो।
विश्व का तमतोम हरने, ज्यों शमा कि तुम ढले हो।।
अम्बर का सितारा कहूँ, या धरती का रतन प्यारा कहूँ।
त्याग का नजारा कहूँ, या डूबतों का सहारा कहूँ ?

अन्त में दिवंगत आत्मा को अखण्ड आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो तथा आचार्य प्रवर के यशस्वी, तेजस्वी, जीवन से हम भी उस पुनीत पथ के अनुगामी बने। हमारे चरण भी उसी मंगलमय दिशा में अग्रसर हों, इसी मंगल-मनीषा के साथ—

—हुरड़ा (राजस्थान)

जगमगाती ज्योति

☐ महासती श्री कुसुमवतीजी म. सा.

आचार्य श्री महान् आत्मा थे। उनका सम्पूर्ण जीवन तप, त्याग, संयम साधनामय था। उन्होंने स्व के साथ पर-कल्याण में अपना जीवन लगाया। विश्व में सामायिक-स्वाध्याय का नाद गुंजाया। समाज को उनकी बहुत बड़ी देन है। वे जिन-शासन की जगमगाती ज्योति, विरल विभूति थे। उनके स्वर्गवास से जिनशासन को अपूरणीय क्षति हुई है। ऐसे साधना-पथ के ममर-साधक महान् तप-पूत आत्मा को हार्दिक भावांजलि।

—वर्धमान महावीर केन्द्र, आबूपर्वत

आध्यात्मिक ज्योति-स्तंभ

☐ श्री अजित मुनि

स्वर्गीय आचार्य श्री वर्तमान मरुधरा की मुनि-परम्परा में वरिष्ठतम व्यक्तित्व थे। जिन्होंने न केवल मारवाड़ ही वरन् मद्रास तक धर्म-प्रभावना का सुन्दर विचरण करके भगवान महावीर के सामायिक एवं स्वाध्याय के सन्देश से जन-मन को परिचित कराने का बीड़ा उठाया। समाज के आंगन में इस फसल की अंगड़ाई आज लहराती दृष्टिगत हो जाती है। यह स्वर्णिम भविष्य का एक शुभ संकेत है। सामायिक और स्वाध्याय, मेरा भी अपना बिंदुस्रोत है। इसे मै स्थानकवासी संस्कृति का प्राण-तत्त्व मानता हूँ।

आचार्य श्री का 'महतो महियान' रूप से एक ही सक्षम/ठोस प्रयास है और वह है, स्थानकवासी जैन दृष्टि से जैन इतिहास की खोज। इस खोज की रचनात्मकता से जो ऐतिहासिक स्रोत के उद्‌घाटन अध्येता/जिज्ञासु गणों के लिए हुए है, वह भी अपने आप में महान्‌तम उपलब्धि है। हम जैसे अपने ही स्थानकवासी जैन इतिहास से अजाने थे। इसके पूर्व जो भी अधूरे, बिखरे प्रयास हुए, वे सभी सतही तौर पर हुए थे। 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' ग्रंथमाला में तीर्थंकरकाल से २१वीं सदी के पूर्व दशक तक के प्रामाणिक ब्यौरों का इतिहास-वैभव सुरक्षित है। मेरी दृष्टि से इतिहास-गंगा को महत्तम-संकल्प के भागीरथी प्रशस्त प्रयास द्वारा प्रामाणिकता के माध्यम से यथार्थ की धरती पर हमारे ज्ञानाचमन/अवगाहन हेतु आचार्य श्री ने अवतरित कर दिया। इस खोज-उपक्रम ने हमारे लिए एक गहरी सांस्कृतिक चेतना की संबोधि प्रदान की है।

मैं हार्दिक भावना से यह चाहता हूँ कि जैन इतिहास समिति, जैन इतिहास के प्रत्येक रुचिर आयामों पर शोध/खोज के सुदृढ प्रयासों को यथा संभव गतिमान रखे। इस इतिहास-गंगा के अवतरण को अनवरतरूपेण प्रवहमान बनाए रखे।

आचार्य श्री आगम प्रणीत मान्यताओं के प्रबल पोषक एवं हिमायती रहे। आप आडंबर/प्रदर्शन के कभी भी पक्षधर नहीं रहे। स्थानकवासी परम्पराप्रियता की रुचि आप में भरपूर थी। सम्यक् ज्ञान / दर्शन / चारित्र की सर्वांगीण सम्पन्नता सेसमाज के हर व्यक्ति को विभूषित देखना चाहते थे। उनके स्वर एवं उनके कार्य सदा अपने उद्‌देश्य / संकल्प के प्रति समर्पित रहे।

आज हम सभी के बीच वे नहीं रहे, किन्तु उनका कार्य-शिल्प ही प्रत्येक पीढ़ी को प्रेरित करता रहेगा। ऐसे उन जिनवाणी साधक, आत्मार्थी, संघके अनुशास्ता, आध्यात्मिक ज्योति-स्तंभ, जिन शासन प्रभावक, आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. के प्रति मेरे संयमी साधक मन की भावना-पूरित भावांजलि सादर समर्पित है।

जन-जन के श्रद्धा-केन्द्र

□ वायमातृ पदालंकृत श्री इन्द्रचन्दजी म. सा.

व्यक्ति को जीना और मरना दोनों ही सीखना चाहिए । हम भी जी रहे है परन्तु हमें जीना नहीं आया । स्वर्गीय आचार्य श्री ने हमें जीना सिखाया। बालकाल में ही संयम ग्रहण कर जीवन को चमकाया, १६ वर्ष की आयु में आचार्य मनोनीत हुए, २० वर्ष की आयु में आचार्य पद प्राप्त किया और जन-जन के श्रद्धा-केन्द्र बन गये । आपने हमें जीना सिखाया, उसी प्रकार मरना भी सिखाया । तेले का तप कर संथारे का प्रत्याख्यान करना महान् आदर्श है। हमारा वास्तविक घर तो मोक्ष है, जिसे भूलकर हम भटक रहे हैं । आचार्य श्री ने 'सिद्धपुर थारो वास चेतनजी' की याद दिलाकर, उस रास्ते पर स्वय चलकर अपने जीवन को सार्थक किया । उस महान् आत्मा को हार्दिक श्रद्धांजलि ।

—सेठिया कोटड़ी जैन स्थानक, बीकानेर

ध्यान, मौन के विशिष्ट साधक

□ पं. र. श्री आशीष मुनि

आचार्य श्री ६० साल तक कठोरता से संयम की साधना में लीन रहे। वे ध्यान, मौन के विशिष्ट साधक, चिन्तक एवं संस्कृति के रक्षक, असीम आत्म-शक्ति के धारी, आत्मानन्द में रमण करने वाले अद्‌भुत योगी थे । सामायिक एवं स्वाध्याय के वे विशेष प्रेरक रहे । उनकी प्रेरणा से कई समाजोपयोगी कार्य शिक्षा, साहित्य एवं सेवा के क्षेत्र में सम्पन्न हुए । उनके पंडित समाधिमरण के अवसर पर हम सभी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें नतमस्तक प्रणाम करते है ।

—श्री श्वे. स्था. जैन संघ, मिन्ट स्ट्रीट, मद्रास

संयमी जीवन के प्रति सजग

□ साध्वी श्री सुलोचना श्रीजी

स्वर्गीय आचार्य भगवंत संयमी जीवन के प्रति काफी सजग थे । उनकी कथनी-करनी में एकरूपता थी । उन्होंने आचार्य के रूप में समाज एवं सन्त-समुदाय को जो दिशा-निर्देश व मार्ग-दर्शन दिया, वह कभी नहीं भुलाया जा सकेगा । आपके सद्प्रयासों से समाज में स्वाध्यायियों की जो फौज तैयार हुई है, वह समाज-निर्माण व धर्म के प्रचार-प्रसार में मील का पत्थर साबित ो रही है ।

—जैन स्थानक, कोंडागाँव

उत्कृष्ट सरल भावमय जीवन-दर्शन*

☐ श्री उमरावमल सुराना

परम श्रद्धेय आराध्य आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. का स्वास्थ्य पाली चातुर्मास के बाद दिन ब दिन गिरता गया अत: चातुर्मास के बाद अस्वस्थता के कारण आचार्यश्री को पाली शहर के उपनगरों में करीबन तीन माह विराजना पड़ा, पर आचार्यश्री असाता वेदनीय के उदय के कारण इस वेदना को समभाव से सहन करते हुए संयम-साधना, ध्यान, मौन व स्व-आत्म-चिंतन में लीन रहते व सान्निध्य में आने वाले उपासकों को बराबर सामायिक, स्वाध्याय नियमित करते रहने की सतत आत्म-कल्याणकारी प्रेरणा करते रहते, जो कि उनके जीवन का मिशन था। हम सांसारिक भाई-बहिनों की संसार के कामों में गृद्धिपणा देखकर आचार्यश्री के मन में बहुत ही करुणा भाव था कि अति शुभ्र पुण्योदय से यह अमूल्य मनुष्य जन्म पाकर भी, ये इसे व्यर्थ न हार जाये, इसीलिए सतत प्रेरणा करते कि स्व-आत्म-कल्याण के लिए वीतराग वाणी का अवलम्बन लेकर धर्माराधन को जीवन में प्राथमिकता दो, यही श्रेयस्कर है।

आचार्य श्री की शारीरिक स्थिति को देखकर जोधपुर संघ बराबर कई बार सेवा में पहुँचा व पुरजोर विनती करता रहा कि भगवन ! आप श्री की शारीरिक स्थिति अब विहार करने की नहीं है, कृपा करके जोधपुर पधार कर स्थिरवास विराजने की इस संघ पर महती कृपा करावें।

आचार्य श्री प्रत्येक बात को सुनते, गहराई से विचार करते व अपने शिष्य समुदाय के भी विचार जानने के अभिप्राय से सबसे विचार-विमर्श करते। अपने मन के भाव अपने शिष्यों को दर्शाये कि मैंने अब तक के संयम-जीवन में [illegible] समाधे जो-जो भी क्षेत्र फरसने का आश्वासन दिया था, उसे शासनेश [illegible] वीर स्वामी की व परमाराध्य गुरुदेव की कृपा से व आप सब के सहयोग [illegible] कर सका। एक आश्वासन पिछले कुछ वर्षों से निमाज श्रीसंघ, [illegible] तेजराजजी गणेशमलजी भंडारी व स्वर्गस्थ श्री सुगनचन्दजी [illegible] समाधे आपके संघ की धर्म भावना अनुसार निमाज फरसने [illegible] कर सकूं तो मुझे संतोष व प्रमोद होगा।

इस पर विनीत सेवाभावी आत्मार्थी पं. [illegible] म. सा. व पं. र. श्री हीरामुनिजी म. सा. आदि उपस्थित [illegible] भाव से निवेदन किया कि भगवन् ! आप जैसा [illegible] करावें, [illegible]

* मोजत से निमाज तक की धर्मयात्रा के [illegible]

मिलकर वैसा करने के लिये सहर्ष तैयार है। संयोग से श्री शुभ मुनिजी का सिगाड़ा भी उस दिन पाली पहुँच गया। जोधपुर की ओर विहार करने का जो मन बना था, उसे निरस्त कर, अब निमाज सघ, भंडारी परिवार की भक्ति से प्रेरित मन होकर उन्हे दिया आश्वासन पूरा करना है, इस दृढ़ मनोबल से आचार्यश्री ने निमाज की ओर विहार कर दिया। संतों ने आचार्यश्री को डोली में बैठाकर सोजत की ओर विहार कर दिया। रास्ते के ग्रामों को फरसते हुए आचार्यश्री सोजतसिटी अपनी शिष्य मंडली सहित पधारे, सोजत संघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा। सोजत संघ ने व श्रीमान् भोपालचंदजी पगारिया बैंगलोर वाले, जो सोजतसिटी के ही है व पाली चौमासे मे सपरिवार सेवा करने के वाद सोजत आ गये थे, ने फाल्गुनी चौमासा तक सोजतसिटी विराजने की भावपूर्वक विनती की, जिसे आचार्यश्री ने मान लिया। सोजत के सभी भाई-बहिनों ने उत्साह-पूर्वक धर्मध्यान तप आराधन किया। सोजत संघ ने दर्शनार्थी वन्धुओं की सेवा, आवास-निवास, भोजनादि की सुन्दर व्यवस्था की जो अनुकरणीय व प्रशसनीय है। श्री भंवरलालजी गोटावत बैंगलोर वाले, जो सोजत के ही है, आचार्यश्री की सेवा में सोजत आये व सेवा का लाभ लिया।

चैत्र वदी १ को आचार्यश्री स्थानक से विहार कर गोटावतजी की विनती के कारण इस भाव से कि मै पैदल कितना क्या विहार कर सकने की स्थिति में हूँ, गोटावतजी के मकान तक पैदल पधारे, पर शारीरिक कमजोरी के कारण थकान से गुरुदेव काफी अस्वस्थ हो गये। मै भी मद्रास से सोजतसिटी होली के पहले पहुँच गया था। आचार्यश्री ने अपने शरीर की स्थिति को देखते हुए संतो को फरमाया कि मुझे शीघ्रातिशीघ्र निमाज पहुँचा दो। आज्ञा पाते ही निमाज की ओर विहार कर दिया। पगारिया परिवार व मै व और भी कई भाई-वहिन विहार में साथ थे। सोजत रोड, वगड़ी, पीपलिया, चावण्डिया, खुशालपुरा आदि क्षेत्रों को फरसते हुए १०-३-९१ के दिन निमाज पहुँचे। आचार्यश्री बहुत सन्तुष्ट व प्रमुदित थे। सतों के खुशी का तो कोई पार नही था। गुरु आज्ञा का पालन करने से सव प्रसन्न थे। निमाज संघ, ग्रामवासी व खासकर भडारी परिवार को तो वेहद खुशी थी। 'भगवान् महावीर स्वामी की जय', 'आचार्यश्री की जय', 'निर्ग्रन्थ श्रमण-श्रमणी वृन्द की जय', 'दया धर्म की जय' के घोष से पूरा गाँव गूँज रहा था। पूज्यश्री डोली से नीचे उतरे। जिस स्थान पर ठहरना था उस गगवाल वाग का पूरा अवलोकन किया, भवन मे वाहर चारों ओर घूमकर देखकर पाया कि यह स्थान हम मुनियों के लिए परठने-परठाने की सुविधा से युक्त है व आने वाले भाइयो के लिए भी सुविधा वाला, धर्माराधन लिए शांत वातावरण का है। उस वक्त मैं निमाज में २०-३-९१ तक सेवा में वाद में मद्रास आ गया।

मुनिजी म. सा. ने पूज्य गुरुदेव को चौविहार संथारा का प्रत्याख्यान करा दिया। हम सब जो बाहर गये थे, तबियत खराब होने का सुनते ही वहाँ आ गये। वहाँ जितने भी भाई-बहिन उपस्थित थे, सब नवकार मंत्र का जाप करने लगे।

इस प्रकार वि. सं. २०४८ का प्रथम वैसाख सुद ८ रविवार पुष्य नक्षत्र दिनांक २१-४-९१ रात में ८.१५ बजे परम पूज्य बालब्रह्मचारी आराध्य गुरुदेव आचार्य प्रवर श्री ने समभाव की साधना करते समाधिपूर्वक पंडित मरण को प्राप्त किया। यह खबर उसी वक्त आकाशवाणी, दूरदर्शन पर रात प्रसारित की गई जो सारे विश्व में फैल गयी। इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर के शासन में निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा के वर्तमान समय के जैन-जगत् के महान् सन्त रत्न, ज्योतिर्धर आचार्य युगद्रष्टा गुरुदेव ७२ वर्ष श्रमण पर्याय पालकर व ६१ वर्ष आचार्य पद पर रहकर वीरशासन सेवा, जिनधर्म का प्रचार-प्रसार व राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात आदि प्रान्तों में भ्रमण कर अप्रमत्त भाव से सामायिक-स्वाध्याय का घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगर में प्रचार करते हुए राजस्थान के पाली जिले के निमाज गाँव में गंगवाल भवन में स्वर्गवासी हो गये।

यह समाचार सुनते ही सारा जैन जगत् स्तब्ध रह गया। पर जन्म लेने पर मरण निश्चित है, यह जानकर धैर्य व समभाव से उनके वियोग को सहन करने के सिवाय चारा भी क्या है। समूचे जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है, जिसकी निकट भविष्य में तो पूर्ति होना मुश्किल है। मैं व मेरे जैसे हजारों लाखों भाई-बहिन आज अपने आपको अनाथ महसूस कर रहे हैं।

गुरुदेव के स्वर्गस्थ होते ही उनके पार्थिव शरीर को जो पाट पर था, तत्काल वहाँ उपस्थित भाइयों में से श्री हजारीमलजी सुराणा, श्री भोपालचन्दजी पगारिया, श्री मोफतराजजी मुणोत (अध्यक्ष, अ. भा. जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ), श्री गणेशमलजी हुक्मीचन्दजी भण्डारी, श्री रतनलालजी बाफणा व मैं, सबने मिलकर गुरुदेव के पार्थिव शरीर को सम्भाला। गुरुदेव का चादर, चोलपट्टा, मुख वस्त्रिका, रजोहरण, पूंजणी आदि उपकरण विसर्जन कर, नया चोलपट्टा, चद्दर, मुँह पत्ति धारण कराई तथा वे उपकरण जो शरीर पर से उतारे, सन्तों को सम्भला दिये। गुरुदेव के शरीर को पाटपर खिड़की के सहारे ध्यानस्थ पद्मासन मुद्रा में विराजमान कर दिया। चन्दन व गुलाब जल का लेप कर दिया ताकि जीवोत्पत्ति न हो। इस प्रकार हम सब जो इस काम में लगे थे, गुरुदेव के पार्थिव शरीर पर चन्दन गुलाबजल का लेप करते रहे व अपलक दृष्टि से गुरुदेव के अन्तिम दर्शन का लाभ लेते रहे।

ममत्व हटा लिया व निजानंद समाधिभाव में लीन रहे। गुरुदेव ने अपने अन्तिम समय को समाधिमय बनाने का मन में निश्चय कर लिया।

दिनांक ९-४-९१ को गुरुदेव ने उपवास किया, १०-४-९१ को बेला किया, ११-४-९१ को तेला किया तब चतुर्विध संघ ने विचार-विमर्श करके यह निर्णय किया कि कल गुरुदेव से पारणा करने की आग्रह भरी विनती की जाय, इस पर पूज्य गुरुदेव जो फरमावें, वैसा किया जाय। १२-४-९१ को संत-सतियों ने, भाई-बहिनों ने विनती की कि भगवन ! पारणा कर लिरावें। तब आचार्यश्री ने फरमाया कि अब मुझे तो पारणा नहीं करना है, याव्वजीवन का संथारा करना है। तब चतुर्विध संघ की उपस्थिति में आचार्यश्री ने आलोचना करके श्री मान मुनिजी म. सा. के मुख से तिविहार संथारा का दिन में १२.४५ पर प्रत्याख्यान किया। यह खबर उसी दिन देश-विदेश में दूरदर्शन पर सुनी गई।

संथारा की खबर सुनते ही नजदीक से, सुदूर प्रांतों से, देश भर से, भक्त-गण जो भी साधन, रेल, मोटर, वायुयान आदि उपलब्ध हुए, से हजारो-हजार की संख्या में अन्तिम दर्शन हेतु आने लगे। निमाज संघ ने ग्रामवासियों के सहयोग से व आगन्तुक स्वधर्मी भाइयों के सहयोग से ठहरने, भोजन, धोवण आदि की शानदार व्यवस्था की। वास्तव में वे सब तरह से धन्य हो गये। आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म. सा. की संत-सतियाँ, आचार्य कल्पश्री १००८ श्री शुभचन्द्रजी म. सा., स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी के महासती श्री उमरावकंवरजी म. सा. ठाणा सर्व, आदि कई सिंगाड़े पहुँच गये, दर्शन-सेवा का अलभ्य लाभ लिया व धर्म-स्नेह का परिचय दिया। श्री शीतल मुनिजी म. सा., चम्पक मुनिजी म. सा., धन्ना मुनिजी म. सा. भी सवाई माधोपुर से उग्र-विहार करके पूज्य गुरुदेव के अन्तिम दर्शन हेतु २०-४-९१ को निमाज पहुँचे। दर्शन, वन्दन, क्षमायाचना करके अपने आपको पावन किया। मैं भी १३-४-९१ को पुनः निमाज पहुँचा व हजारों भाई-बहिन दक्षिण भारत के कर्नाटक, तमिल-नाडु, आंध्र, महाराष्ट्र प्रान्त के दर्शनार्थी निमाज पहुँचे व दर्शन, सन्त-सेवा का लाभ प्राप्त कर धन्य हुए।

२१-४-९१ रविवार को हम दम्पति, गुरुदेव को अन्तिम भेंट में सम्पूर्ण कुशील सेवन का त्याग करके, पूर्ण शीलव्रत लें, इस भावना से गुरु-सेवा मे आये व दिन मे ४.१५ बजे परम श्रद्धेय गुरुदेव, पूज्य आचार्य प्रवर व महान् सेवाभावी आत्मार्थी श्री मान मुनिजी म. सा. के सान्निध्य में पं. र. श्री हीरामुनिजी म. से कुशील सेवन का सर्वथा त्यागकर शीलव्रत धारा। उपस्थित जनसमुदाय ने जय-घोष किया व अनुमोदन किया। हम बाहर गये कि अचानक ५ बजे गुरुदेव के अत्यधिक वेदना बढ़ती गई तब चतुर्विध संघ की उपस्थिति में पं. र. श्री मान

है। गाँव के किसी मोहल्ले में सर्प निकला। अज्ञानी लोग, जिन्हें जीव हिसादि पाप से स्वयं की कितनी हानि होती है, इसका ज्ञान (जानकारी) न होने से, उसे पत्थर मार रहे थे। आचार्य प्रवर बाहर स्थण्डिल को जा रहे थे। भीड़ व हो-हल्ला होने का कारण जानकर, तत्काल जीव हिसा को रोकने हेतु आगे बढ़े व अपने प्रिय मधुर वचनो से बोले—हमारे-तुम्हारे जीव जैसा ही इस सर्प का जीव है, जीना सबको प्रिय है, मृत्यु सवको अप्रिय है। तुम सब दूर हो जाओ। लोग आचार्यश्री के वचन सुन-सुनकर तत्काल दूर हो गये। सांप पत्थर मारने से साधारण घायल भी था, पर अत्यधिक क्रोध में था। सर्प वह भी छेड़ा हुआ, क्रोधित। पर देखिये, जो जीवनभर के लिये त्रिकरण-त्रियोग से हिंसा का सम्पूर्ण त्याग कर देते है व ससार के सव त्रस-स्थावर जीवों को अभयदान देते हैं, उस परम श्रेष्ठ अहिसा दया के प्रभाव से क्रोधित सर्प भी गुरुदेव का दीदार देखते ही शांत हो गया। गुरुदेव ने झोली फैलाई, सर्प झोली में आगया। गुरुदेव झोली लेकर जंगल की ओर बढ़े। सब उपस्थित जनता आश्चर्यचकित हो गई कि यह कोई पहुँचा हुआ महात्मा है। गुरुदेव ने जंगल में सुरक्षित झाड़ियों में सर्प को छोड़ दिया, उसे नवकार मंत्र सुनाया। सर्प फन फैलाकर वन्दन करके झाड़ी मे चला गया।

निमाज में गुरुदेव के तप संथारा करने पर रात्रि में सर्प आया। गुरुदेव को फन फैलाकर वन्दन-नमस्कार करके, उनके दर्शन करके अन्तर्ध्यान हो गया। मेरे खयाल से हो न हो, यह उसी सर्प का जीव हो, जो अपने जीवन रक्षक महान् उपकारी के अन्तिम दर्शन हेतु आया हो। यह मेरे मन का भाव है।

गुरु के संथारा सीझने के तीन दिन पूर्व गंगवाल भवन में हम सब स्वधर्मी भाई भिन्न-भिन्न जगह के आए हुए, आपस मे विचार-विमर्श कर रहे थे। सबने चाहा कि गुरुदेव की मोक्षदायिनी सामायिक-स्वाध्याय की पावन धर्म प्रवृत्ति जो एकाग्र मन से करने पर पूर्व कृत कर्मो को क्षय करने का अमोघ उपाय है, को भारत भर मे प्रचारित-प्रसारित करने हेतु कुछ स्थायी व्यवस्था की जाय। सवके मन मे जच गई व सवने अपनी शक्ति अनुसार उदारतापूर्वक इसमें अपनी ओर से अच्छी राशि देने का वचन दिया। मै भी अपनी शक्ति अनुसार इस शुभ काम में अच्छी राशि लिखा पाया। यह गुरुदेव के प्रति अगाध श्रद्धा-भक्ति के कारण ही हो सका।

निमाज का संघ व खासकर भडारी परिवार व ग्रामवासियों की यह भावना थी कि यहाँ गुरुदेव की स्मृति में कोई रचनात्मक काम किया जाय। सभी जगह के सघ सदस्य वहाँ मौजूद थे। सबने आपस मे विचार-चर्चा करके एक राय से निमाज संघ से निवेदन किया कि आपकी भक्ति प्रेरित अतिरेक

इधर ग्रामवासी व वहाँ विभिन्न ग्राम, नगर व प्रांतों से आये भाई-वहिनो की दर्शन हेतु गंगवाल भवन के वाहर लम्बी कतार लग गई। रात में ११.३० वजे हमने व्यावर से डेढ़ मन चांदी की जो देवविमाननुमा बैकुण्ठी (पालखी) लाई हुई थी, उसे सजाकर गुरुदेव के पार्थिव शरीर को उसमें बैठा दिया व गंगवाल भवन के वाहर गंगवाल वाग की वाउण्डरी में जो चवूतरा है, उस पर लाकर रख दिया। इस पर रात १२ वजे से दर्शन करने का सिलसिला शुरू हो गया। तेरह दिन की तपस्या व नव दिन के संथारे में करीवन २.५० लाख लोगो ने दर्शनलाभ प्राप्त किया। उछाल के लिए करीवन पचास हजार की रेजगी व कलदार गुरुदेव के शरीर पर से वार कर रख दिये। सुवह मीलों लम्बी लाइन लग गई। करीवन १।-१।। लाख भाई-वहिनो ने उस दिन दर्शन किये होगे।

राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री भैरोंसिंहजी शेखावत अपने मन्त्रिमण्डल के कतिपय सहयोगियों के साथ गुरुदेव के अन्तिम दर्शन हेतु आये। दर्शन करके अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए।

दिन में १।। वजे महाप्रयाण अन्तिम यात्रा शुरू हुई जो गांव के मुख्य मार्गों पर होती हुई भंडारी उपवन में पहुँची। दो ऊँटों पर रक्खी उछाल को लगातार रास्ते भर उछाल करते रहे ताकि उछाल लेने वालो को सहज प्राप्त हो जाये।

भंडारी उपवन में ऊँची जगह पर चन्दन की चिता रची हुई थी। गुरुदेव के पार्थिव शरीर को वैकुण्ठी से उतार कर चिता पर रख दिया व चन्दन की लकड़ियो से चिता पूरी तरह रचदी गई। नारियल, खोपरा, कपूर, अगर-वत्ती आदि डालकर करीवन १।-१।। लाख की विशाल जनमेदिनी की उपस्थिति में अ. भा. जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के अध्यक्ष श्री मोफतराजजी मुणोत व निमाज संघ के अध्यक्ष श्री तेजराजजी भंडारी ने अग्नि संस्कार किया। चिता के प्रज्वलित होने पर चारों ओर से भक्तजन नारियल, खोपरा, चन्दन मुठिया आदि चिता पर डालने लग गये। ऐसा महसूस होता था कि मानो नारियल-खोपरे की वर्षा हो रही हो। चिता जव जोरों से प्रज्वलित हो गई तो उस वक्त आकाश में मेघ आच्छादित थे। ओलों की वृष्टि हुई। इस तरह प्रकृति ने भी गुरुदेव को अपनी भेट समर्पित की। गुरुदेव के त्याग तपमय अतिशय प्रभाव से इतनी जनमेदिनी के होते हुए भी किसी का कोई सामान नहीं खोया न किसी को सख्त चोट आई।

आचार्यश्री अपने प्रथम दक्षिण प्रवास में धर्म प्रचार-प्रसार हेतु पधारे। सतारा में विराज रहे थे। यह घटना विक्रम सं. १९९१ व २००० के वीच की

ति से शक्ति मिलेगी। शक्ति से उत्तम विचार और तब संघ धर्म-प्रभावना में
ागे बढ़ेगा।

सभी संघों (जोधपुर, जयपुर, अजमेर, पाली, ब्यावर, पीपाड़, भोपालगढ़,
ागौर, बालोतरा, जलगांव, दिल्ली, सवाईमाधोपुर, इन्दौर, भोपाल, उज्जैन,
तलाम, मेड़ता, कोसाणा, रीयां, पालासणी, रायचूर, बैंगलौर, मद्रास आदि)
सदस्यों की उपस्थिति मे आचार्यश्री द्वारा लेख्य पत्र भावी संघ-व्यवस्था हेतु
ियुक्ति (मनोनीत) बाबत संघ अध्यक्ष श्री मोफतराजजी मुणोत ने सबको पढ़कर
ुनाया, वहीं पर आचार्य पद चादर पाट महोत्सव सूर्य नगरी जोधपुर में करने
ा सर्वसम्मति से निश्चय किया गया क्योंकि रत्न संघ का प्रधान कार्यालय
ी जोधपुर में है व संघ भी सब संघों में बड़ा है व गुरुदेव तथा गुरुदेव के सन्त-
ातियों के प्रति अनन्य श्रद्धाभक्ति रखने वाला आदर्श संघ है। जोधपुर संघ का
नोरथ पूर्ण हो गया। जिस तरह आचार्यश्री का पाट महोत्सव वि. सं. १९८७
ी आखातीज को जोधपुर में हुआ व गुरुदेव ने इस पद की गौरव-गरिमा को
ढाया व संघ को धर्म प्रवृत्ति में समुन्नत किया। उसी प्रकार इसी नगर में पूज्य
ुरुदेव के लैखिक आदेशानुसार संघ व्यवस्था के सुचारुरूपेण संचालन हेतु
रिष्ठ संत रत्न द्वय को जोधपुर में प्रतिष्ठित किया जाना संघ की आध्यात्मिक
उन्नति का कारण होगा।

आचार्य श्री अपनी संयम-साधना व धार्मिक क्रिया के निरतिचार पालन
के लिए सदैव सजग व सावधान रहते थे। अस्वस्थता में भी वे इस ओर पूर्ण
जागरूक थे।

पीपलियाकलां में जब आप यकायक अस्वस्थ हो गये, तो पं. र. श्री मान
मुनिजी को, जो विहार में पीछे थे, तत्काल पीपल्या बुलाकर धर्मसंघ की उन्नति
हो, सामायिक-स्वाध्याय की अलख जगती रहे, श्रमण-जीवन में रत्नत्रय की
आराधना निर्विघ्न रूप से चलती रहे, किसी प्रकार की स्खलना न होने पाये,
इसकी पूरी भलावण दी।

बाद में निमाज में भी जब आचार्य श्री की अस्वस्थता अचानक बढ़ी तो
सन्तों को भलावण दी कि श्रमण-जीवन की मर्यादा सुरक्षित रहे, नियमों का
ठीक ढंग से पालन करके वीरशासन व धर्मसंघ का गौरव बढ़ाते रहें। फिर कुछ
देर बाद फरमाया कि अगर बेहोशी की स्थिति में आ जाऊँ तो सब सन्त, सतियां,
श्रावक-श्राविका ध्यान रखें कि मुझे किसी प्रकार की क्रिया न लगे।

बून्दी के स्वाध्यायी श्रावक श्री प्रेमचन्दजी कोठारी ने गुरुदेव से विनय-
पूर्वक विनती की कि आप बेफिक्र रहें। आपके आत्मार्थी श्री मान मुनिजी,

भावना है, पर गुरुदेव ने अपने जीवन में सम्यग्ज्ञान प्रचार-प्रसार, धर्म प्रभावना के कामों को धर्म संघ की मर्यादा व नियमों का पालन करते हुए किया व जो आचार-संहिता धर्म संघ के सामने प्रस्तुत की, उसी अनुसार हमें सोच-समझकर पूर्ण विवेक से निर्णय करना है जिससे गाँव-गाँव मे कम से कम जैन समाज के बच्चे-बच्चियों में हम सच्ची मानवता के संस्कार पनपा सकें। आज के इस भयंकर विषम वातावरण मे जहाँ व्यक्ति अपनी स्वार्थ-साधना में अन्धा होकर इस देश की अहिंसा, सत्य, दया, शीलचर्या को मिटाने का घोर अनैतिक व पापाचार का प्रचार करके अहिंसक देशवासियों को हिंसक पाप प्रवृत्ति की ओर धकेल रहा है।

हमें अज्ञान-अंधकार की विषम स्थिति से भावी पीढ़ी को उबारना है, बचाना है तो धार्मिक तत्त्वज्ञान की, सदाचार की, व्यवहार-शुद्धि की, समता की शिक्षा से सुसंस्कारित करके ही हम अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकेंगे और ऐसी प्रणाली-प्रद्धति की प्रवृत्ति को गतिशील करना, रखना ही उस महामहिमामय गुरुदेव के प्रति सच्ची श्रद्धा-भक्ति होगी। खुशी है कि निमाज संघ के सब भाई, भंडारी परिवार के परम गुरु भक्त भाई तेजराजजी गणेशमलजी सबने इस विचार व राय को स्वीकार किया व प्रमोद भाव से तत्काल अखिल भारतीय जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ को भंडारी उपवन की सारी जमीन भेंट कर दी व लिखकर दिया कि इस जगह पर संघ सामायिक-स्वाध्याय का क्रम व आबाल वृद्ध नर-नारी, प्रौढों को धार्मिक शिक्षण हेतु स्वाध्याय भवन, पाठशाला बनाकर धार्मिक शिक्षण चालू किया जाय।

भंडारी परिवार की गुरुभक्ति, स्वधर्मी वात्सल्य भाव, अतिथि सेवा-सत्कार, संघ के प्रति अटूट निष्ठा व श्रद्धा-भक्ति जो देखने में आई, वह अति प्रशंसनीय व अनुकरणीय है—आचार्य श्री के जीवन के साथ भंडारी परिवार निमाज का नाम भी जुड गया जो सदा समाज में यादगार रूप में अंकित रहेगा।

अब रत्न संघ के सभी सदस्य भाई-बहिनों का यह कर्तव्य है कि हम जैसी श्रद्धा-भक्ति पूज्य गुरुदेव आचार्य प्रवर के प्रति रखते थे, वैसी ही श्रद्धा-भक्ति उनके द्वारा उपाध्याय पद पर मनोनीत संघ के वरिष्ठ संत रत्न सेवाधर्म परिपालना की आदर्श ज्योति रूप मान मुनिजी म. सा. व गुरुदेव के द्वारा आचार्य पद पर मनोनीत श्रद्धेय पं. र. श्री हीरा मुनिजी महाराज सा. के प्रति भी रखकर संघ-संचालन के कार्य में समस्त संघ के विधान नियमानुसार गुरुदेव के कार्य में समय-समय पर सेवा में पहुँच कर संघ-हित में जिनशासन धर्म प्रभावना के कार्यों में प्रगति हेतु सहकार करे व गम्भीर धैर्यधारी निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त करके वैसा आचरण करेंगे तो सच्ची गुरुभक्ति होगी। गुरु

मेरे आराध्य देव !

☐ श्री टीकमचन्द हीरावत

समझ में नहीं आता कि आचार्य भगवन्त के गुणों की महिमा कहाँ से शुरु करूँ ? जन्म से लेकर अन्तिम महायात्रा तक आपका जीवन पूर्णतया साधनामय था। बाल्य अवस्था में ही दीक्षा लेना और २० वर्ष की उम्र में ही आचार्य जैसा महान् पद ग्रहण कर लेना, अपने आप में अलौकिक है। मुझे याद आता है जब आप २२ वर्ष के थे, तब कोटा विराज रहे थे और अजमेर साधु-सम्मेलन में जाना था। बीच में रास्ता केकडी होकर था। केकड़ी समाज ने विनती की कि आप इधर की तरफ से न पधारे क्योंकि आपको यहाँ पर शास्त्रार्थ करना पड़ेगा। पर आपने उसे स्वीकार किया और २० दिन तक लगातार आपको इतर समाज से शास्त्रार्थ करना पड़ा। अन्त में आपके प्रश्नों के उत्तर सम्बद्ध समाज नही दे सका। आज भी वे तमाम प्रश्न-उत्तर लिपिबद्ध किये हुए है। इतनी छोटी वय मे ही आप में कितना विलक्षण ज्ञान था। आपके जीवन में कितने ही परिषह आये, लेकिन कभी आप उनसे प्रभावित नही हुए। आपका जीवन हमेशा सत्य की खोज करता रहा और उस सत्य की खोज पर अपने आपको समर्पित किया।

आप हमारे सच्चे गुरु थे। गुरु का काम यही है कि वह दोष-दर्शन कराये और दोष मिटाने का उपाय बताये जिससे वह दोष मुक्त हो जावे। गुरु ज्ञान के द्वारा सुधार करने का प्रयास करते है।

आपने कुछ समय पहले एक दफा फरमाया कि सागर में एक बूँद रहे तो क्या और नहीं रहे तो क्या ? मै कहता हूँ कि जैसे सागर में से अगर हम एक-एक लोटा पानी का निकाले तो भी सागर के पानी का अनुमान लगाना मुश्किल है। इसी प्रकार से आप में इतने गुणों का भण्डार था कि उन गुणों का बयान करते-करते भी गुणों का भण्डार कभी खाली हो नही सकता है। आपकी प्रेरणा से चहुँमुखी ज्ञान-दर्शन चारित्र की वर्षा हुई। और अनेक संस्थाएँ आज पल्लवित है जिससे समाज को एक प्रशस्त मार्ग मिला है। आप ज्ञान-दर्शन, चारित्र के समन्वय के मसीहा थे। आप वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग किया करते थे। अर्थात् वर्तमान में जीना जानते थे।

आपकी विवेकपूर्वक उदारता एवं त्यागवृत्ति ने ही आपको मानव से महामानव बनाया। आपकी मानवतावादी उदार विचार-धारा अवस्था, कर्म, परिस्थिति, भाषा, वेश, सम्प्रदाय आदि के विविध भेद होते हुए भी हमें स्नेह की, एकता की प्रेरणा देती है। आचार्य भगवन्त में ऐसी विलक्षणता, चिन्मयता थी

पं. र. श्री हीरा मुनिजी व सभी सन्त-सती आपके सान्निध्य मे इतने वर्ष मुनि पर्याय में रहते वहुत कुछ सीखा है, वे आपके संयमी जीवन में किसी प्रकार की स्खलना नहीं आने देंगे। इससे आचार्य श्री को सन्तोष हुआ और अन्तिम क्षण तक वे पूर्ण जागरूकता के साथ आत्म-रमण करते रहे, समाधिस्थ रहे। कोटि वन्दन।

—अध्यक्ष, श्री महावीर जैन स्वाध्याय एजुकेशनल ट्रस्ट
१, कलाथी पिल्लई स्ट्रीट, मद्रास-७९

वचनामृत

- शास्त्र ही मनुष्य का वास्तविक नयन है।
- सख्या में छोटा हो या वड़ा, गुणों के लिए संघ वड़ा महनीय है।
- साधु लोगों का दायित्व समाज को उपदेश देने, सन्मार्ग वताने तथा विकृतियों के संशोधन का है।
- जैसे घर से निकलकर धर्मस्थान में आते हैं और कपड़े वदलकर सामायिक साधना मे वैठते हैं, उसी तरह से कपड़ों के साथ-साथ आदत भी वदलनी चाहिए और वाहरी वातावरण तथा इधर-उधर की वातो को भुलाकर वैठना चाहिए।
- सामायिक द्वारा साधक अपनी मानसिक दुर्वलताओं को दूर करके समभाव और संयम को प्राप्त करता है।
- मन को कावू में करना साधना का प्रधान अंग है। मन में गर्व, क्रोध, कामना, भय आदि को स्थान देकर यदि कोई सामायिक करता है तो ये सव मानसिक दोष इसे मशीन वना देते हैं।
- स्वाध्याय चित्त की स्थिरता और पवित्रता के लिए सर्वोत्तम उपाय है।
- जिनसे जीवन में तप, क्षमा और अहिंसा की ज्योति जगे, भोग—जीवन घटे, उन ग्रथों को मर्यादा और विधि के साथ पढ़ना व पढाना स्वाध्याय है।
- श्रीमन्तो को समाज की आँखों में काजल वनकर रहना चाहिये जो खटके नहीं, न कि कंकर वनकर जो खटकता हो।
- नौजवानो! संगठित होकर, नवयुवक दल वनाकर सामाजिक और धार्मिक कार्यों में, धर्म-साधना में संलग्न होकर, अपने तन, मन और धन को उपकारी वनाओ। इसी में जवानी की शोभा है।

—आचार्य हस्ती

मेरे आराध्य देव !

☐ श्री टीकमचन्द हीरावत

समझ में नहीं आता कि आचार्य भगवन्त के गुणों की महिमा कहाँ से शुरु करूँ ? जन्म से लेकर अन्तिम महायात्रा तक आपका जीवन पूर्णतया साधनामय था। बाल्य अवस्था में ही दीक्षा लेना और २० वर्ष की उम्र में ही आचार्य जैसा महान् पद ग्रहण कर लेना, अपने आप में अलौकिक है। मुझे याद आता है जब आप २२ वर्ष के थे, तब कोटा विराज रहे थे और अजमेर साधु-सम्मेलन में जाना था। बीच में रास्ता केकड़ी होकर था। केकड़ी समाज ने विनती की कि आप इधर की तरफ से न पधारें क्योंकि आपको यहाँ पर शास्त्रार्थ करना पड़ेगा। पर आपने उसे स्वीकार किया और २० दिन तक लगातार आपको इतर समाज से शास्त्रार्थ करना पड़ा। अन्त में आपके प्रश्नों के उत्तर सम्बद्ध समाज नहीं दे सका। आज भी वे तमाम प्रश्न-उत्तर लिपिबद्ध किये हुए है। इतनी छोटी वय मे भी आप में कितना विलक्षण ज्ञान था। आपके जीवन में कितने ही परिषह आये, लेकिन कभी आप उनसे प्रभावित नही हुए। आपका जीवन हमेशा सत्य की खोज करता रहा और उस सत्य की खोज पर अपने आपको समर्पित किया।

आप हमारे सच्चे गुरु थे। गुरु का काम यही है कि वह दोष-दर्शन कराये और दोष मिटाने का उपाय बताये जिससे वह दोष मुक्त हो जावे। गुरु ज्ञान के द्वारा सुधार करने का प्रयास करते हैं।

आपने कुछ समय पहले एक दफा फरमाया कि सागर मे एक बूँद रहे तो क्या और नहीं रहे तो क्या ? मै कहता हूँ कि जैसे सागर में से अगर हम एक-एक लोटा पानी का निकाले तो भी सागर के पानी का अनुमान लगाना मुश्किल है। उसी प्रकार से आप मे इतने गुणों का भण्डार था कि उन गुणों का बयान करते-करते भी गुणों का भण्डार कभी खाली हो नही सकता है। आपकी प्रेरणा से चहुँ-मुखी ज्ञान-दर्शन चारित्र की वर्षा हुई। और अनेक संस्थाएँ आज पल्लवित है जिससे समाज को एक प्रशस्त मार्ग मिला है। आप ज्ञान-दर्शन, चारित्र के समन्वय के मसीहा थे। आप वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग किया करते थे। अर्थात् वर्तमान में जीना जानते थे।

आपकी विवेकपूर्वक उदारता एवं त्यागवृत्ति ने ही आपको मानव से महामानव बनाया। आपकी मानवतावादी उदार विचार-धारा अवस्था, कर्म, परिस्थिति, भाषा, वेश, सम्प्रदाय आदि के विविध भेद होते हुए भी हमें स्नेह की, एकता की प्रेरणा देती है। आचार्य भगवन्त में ऐसी विलक्षणता, चिन्मयता थी

पं. र. श्री हीरा मुनिजी व सभी सन्त-सती आपके सान्निध्य में इतने वर्ष मुनि पर्याय में रहते बहुत कुछ सीखा है, वे आपके संयमी जीवन में किसी प्रकार की स्खलना नही आने देगे। इससे आचार्य श्री को सन्तोष हुआ और अन्तिम क्षण तक वे पूर्ण जागरूकता के साथ आत्म-रमण करते रहे, समाधिस्थ रहे। कोटि: वन्दन।

—अध्यक्ष, श्री महावीर जैन स्वाध्याय एजुकेशनल ट्रस्ट
१, कलाथी पिल्लई स्ट्रीट, मद्रास-७९

वचनामृत

- शास्त्र ही मनुष्य का वास्तविक नयन है।
- सख्या में छोटा हो या वड़ा, गुणों के लिए संघ वड़ा महनीय है।
- साधु लोगों का दायित्व समाज को उपदेश देने, सन्मार्ग बताने तथा विकृतियों के सशोधन का है।
- जैसे घर से निकलकर धर्मस्थान में आते है और कपड़े वदलकर सामायिक साधना मे बैठते है, उसी तरह से कपड़ों के साथ-साथ आदत भी वदलनी चाहिए और बाहरी वातावरण तथा इधर-उधर की बातों को भुलाकर बैठना चाहिए।
- सामायिक द्वारा साधक अपनी मानसिक दुर्बलताओं को दूर करके समभाव और संयम को प्राप्त करता है।
- मन को काबू में करना साधना का प्रधान अंग है। मन में गर्व, क्रोध, कामना, भय आदि को स्थान देकर यदि कोई सामायिक करता है तो ये सब मानसिक दोप इसे मशीन बना देते है।
- स्वाध्याय चित्त की स्थिरता और पवित्रता के लिए सर्वोत्तम उपाय है।
- जिनसे जीवन में तप, क्षमा और अहिसा की ज्योति जगे, भोग—जीवन घटे, उन ग्रंथों को मर्यादा और विधि के साथ पढ़ना व पढाना स्वाध्याय है।
- श्रीमन्तों को समाज की आँखों में काजल वनकर रहना चाहिये जो खटके नही, न कि कंकर वनकर जो खटकता हो।
- नौजवानो ! संगठित होकर, नवयुवक दल वनाकर सामाजिक और धार्मिक कार्यो में, धर्म-साधना मे संलग्न होकर, अपने तन, मन और धन को उपकारी वनाओ। इसी मे जवानी की शोभा है।

—आचार्य हस्ती

जाता है। प्रेम का प्रादुर्भाव होने के लिए आवश्यकता केवल इसी बात की है कि हृदय में किसी के प्रति किसी भी प्रकार का लेश मात्र भी राग-द्वेष न हो।

शरीर से असंग होकर राग-प्रेम कि निवृत्ति किस प्रकार हो सकती है, यह आपने सथारा लेकर दिखा दिया। परस्पर मान्यताओं में भेद होने पर भी प्रीति-भेद तथा लक्ष्य भेद नहीं होना चाहिए, ऐसा आप कहा करते थे। योग्यता-भेद होने के कारण, कर्म-भेद, विचारों का भेद, सम्प्रदायों का भेद भले ही बना रहे पर प्रीति-स्वरूप जो मानवता है, उसका भेद नहीं होना चाहिए, क्योंकि मानव-मात्र में मानवता एक है, उसी मानवता को विकसित करने के लिए मानव जीवन मिला है। आपने अपना पूरा जीवन अप्रमत्त अवस्था में ही गुजारा।

अन्त में मैं तो इतना ही कहूँगा कि उनके गुणों को अपने जीवन में अंगीकार करे, यही उनके प्रति सच्ची श्रदांजलि है।

—कार्याध्यक्ष, सम्यग्ज्ञान प्रचारक, मंडल, जयपुर

उच्च कोटि के सिद्ध पुरुष

☐ श्री गुमानमल चौरड़िया

परम पूज्य, चारित्र-चूड़ामणि, इतिहास मार्तण्ड, सामायिक-स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, अप्रमत्त योगीराज, अखण्ड बाल ब्रह्मचारी, जिन नहीं पर जिन सरीखे, आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. लघुवय में ही प्रव्रजित हो गये थे। आपकी विचक्षणता एवं होनहारिता सहज ही परिलक्षित होती थी, अतः २० वर्ष की अवस्था में ही आपको आचार्य पद से सुशोभित किया गया। ६१ वर्ष तक आप आचार्य पद पर विराजे। इतने लम्बे समय तक आचार्य पद अलंकृत होने वाले आप ही एक आचार्य थे।

वृहद् अजमेर साधु सम्मेलन में आप श्री का एवं ज्योतिर्धर क्रान्तिकारी आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. का भी विशेष सम्पर्क रहा। आचार्य श्री ने आपकी प्रतिभा को परखा। सम्मेलन के ३ वर्ष पश्चात् आप दोनों आचार्य जेठाना विराज रहे थे, तब आचार्य श्री जवाहर गुजरात के लिए विहार कर रहे थे। आचार्य श्री जवाहर ने विहार करते वक्त फरमाया कि आप मुझे मांगलिक सुनाइये। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. हतप्रभ हो गये और कहा कि आप इतने बड़े आचार्य, मैं आपको क्या मांगलिक श्रवण कराऊँ? पर आचार्य-

कि हमारे पास उसको प्रकट करने के लिए शब्द नहीं हैं, परन्तु उसका अस्तित्व है। आप कहा करते थे कि आनन्द उसी को मिल सकता है जिसकी प्रवृत्ति दूसरों के हित के लिये और जिसकी निवृत्ति वासना रहित हो। आप जितेन्द्रियता, निर्विकल्पता और समता के सागर थे।

आचार्य भगवन्त ने शरीर को कभी अपना अस्तित्व नही माना। उनकी जो साधना है वही आचरण है, वही उनका अस्तित्व है। शरीर के न रहने पर भी उनका आचरण एवं उनकी साधना तथा विचारधारा बनी रहेगी और समाज में विधान के रूप में आदर पाती रहेगी। शरीर नही है, बोलने वाली वाणी नही है पर बोली हुई मधुरता सदैव रहेगी, बोली हुई सत्यता सदैव रहेगी। संकल्प करने वाला मन न रहेगा लेकिन शुद्ध संकल्प सदैव रहेगा। विवेक का प्रकाश करने वाली बुद्धि न रहेगी, पर विवेक रहेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि आपका अस्तित्व अजर-अमर होकर रहेगा। क्योंकि उसकी मांग जगत् को है। आपने अन्तिम समय यह करके दिखा दिया कि जब चाहे तब ही शरीर से असंग हो सकते हैं। आप की जाग्रत अवस्था से सुषुप्ति पर्यन्त और जन्म से मृत्यु पर्यन्त प्रत्येक प्रवृत्ति मोक्षगामी थी। आचार्य भगवन्त में ऐसी विलक्षणा थी कि वे हमेशा अपने को देह से अलग अनुभव करते थे। इससे उनमें निर्वासना आ जाती और जीवन प्रेम से परिपूर्ण हो जाता था। जो कुछ नही चाहता वही प्रेम कर सकता है और जो कुछ नही चाहता वही मुक्त हो सकता है। जहाँ देह है, वहीं मृत्यु है। देह से अतीत जीवन तो चिन्मय है और वही अमरत्व है। आप कहा करते थे कि जहाँ हमें सन्देह होना चाहिए अर्थात् पदार्थो पर वहाँ तो हम नि.सन्देह हो गये है और जहाँ निःसन्देह होना चाहिए अर्थात् आत्मा पर, वहाँ हमें सन्देह हो जाता है, यह कैसी विडम्बना है?

आपके जीवन मे सेवा का बड़ा महत्त्व था। आप सर्वहितकारी प्रवृत्ति के लिए कहा करते थे, लेकिन साथ में विषय-कषाय भोगों की निवृत्ति के लिए भी जोर दिया करते थे। आपने साधन को ही जीवन बना लिया। साधन जीवन हो जाने पर साधन से मोह तथा अभिमान शेष नहीं रहता और फिर अपने साधन का अनुसरण और दूसरे के साधनों का आदर मानवता है। जो साधन जीवन बन जाता है उसका प्रचार स्वतः हो जाता है, क्योंकि सभी का लक्ष्य एक है और योग्यता-भेद से केवल साधन के बाध्य स्वरूप में भेद है।

आप कहा करते थे कि अपने प्रति न्याय वही कर सकेगा जिसका जीवन व्रत, तप, प्रायश्चित्त तथा प्रार्थना से युक्त हो। आपकी दृष्टि मे पर दोष दर्शन करना ही सबसे बडा पाप है। क्रोध, मान, माया, लोभ इन बन्धनों से मानव बंधा हुआ है। इन बन्धनों से रहित होते ही समस्त जीवन प्रेम से परिपूर्ण हो

सोमवार को, बाद में गुरुवार को व्याख्यान के अलावा मौन एवं प्रतिमास कृष्णा पक्ष की दशमी को पूर्ण मौन एवं एकासना की साधना करते थे ।

१९५२ में सादड़ी सम्मेलन में जब श्रमण संघ का निर्माण हुआ और इसे संजोया गया तो इसमें आपका पूर्णतया मार्ग-दर्शन एवं सहयोग था । उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. ने जब श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा की तब आप उदयपुर उपाचार्य श्री को श्रमण संघ में उपाचार्य पद पर रहने के लिये विशेष आग्रह करने पधारे थे । उपाचार्य श्री ने आपकी बातों को विशेष महत्त्व देते हुये भी असमर्थतता प्रकट की एवं आप से कहा कि श्री हस्तीमलजी म. सा. आपने मेरा साथ नहीं दिया पर एक दिन आपको भी श्रमण संघ से पृथक् होना पड़ेगा, आप इसमें रह नहीं सकेंगे । महापुरुषों के मुख से उच्चरित स्वर कभी मिथ्या नही हो सकते, एतद्स्वरूप कालान्तर में आप श्री ने भी जयपुर के उपनगर आदर्शनगर में पृथकत्व की घोषणा की ।

आप श्री का एवं आचार्य श्री नानालालजी म. सा. का भोपालगढ़ में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हुआ, उस प्रसंग से वार्ता हेतु जब आपकी सेवा में उपस्थित हुये तब आपने एक ही जिज्ञासा प्रकट की कि भाई आचार्य श्री अन्तःकरण से चाहते है या नहीं ? जब आचार्य श्री नानालालजी म. सा. से पुछाकर आप से पुनः निवेदन किया कि आचार्य श्री की अन्तरमन की भावना है, तब आप प्रमुदित हुये एवं आगे का सभावित कार्यक्रम निश्चित होता गया तथा अत्यन्त प्रेम के वातावरण में मैत्री-संबंध स्थापित हुआ जो आज भी यथावत है ।

आप श्री, जब भी कोई श्रावक-श्राविका सेवा में उपस्थित होता तो उन्हें प्रेरणा देने के अलावा अन्य साधकों के लिये भी साधना के विषय में जानकारी कर प्रेरित करने के लिये फरमाया करते थे । मुमुक्षु जीवों के लिए सहज रूप में आपके मुखारविन्द से जो शब्द उच्चरित हो जाते, वे हमेशा सत्य साबित हुये है ।

आप उच्च कोटि के सिद्ध पुरुष एवं एक महान् सन्त थे । आगत व्यक्ति क्या जिज्ञासा लेकर आया है, आपको सहज ही भासित हो जाता था । आप शेषकाल में लाल भवन में विराज रहे थे । प्रतिदिन प्रवचन की पीयूषधारा प्रवाहित होती थी । विधान सभा के तत्कालीन स्पीकर श्री निरंजननाथजी आचार्य पधारे एवं व्याख्यान सुना, प्रभावित हुये, पुनः दूसरे दिन प्रवचन-सभा में पधारे । आचार्य जी अपने मन में जो जिज्ञासाएँ लेकर पधारे थे, उन सबका आपने प्रवचन मे समाधान कर दिया । प्रवचन के पश्चात् आचार्यजी ने आचार्य श्री से अर्ज किया—जो-जो जिज्ञासाएँ मेरे मन में थी, उन सबका बिना पूछे ही आपने समाधान कर दिया । निरंजननाथजी आचार्य श्री से अति प्रभावित हुए ।

आचार्य को मांगलिक नहीं सुनावेगा तो कौन सुनावेगा', आचार्य श्री जवाहर के स्नेह एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार के आगे आपको मांगलिक श्रवण करवानी पड़ी।

आचार्य श्री में एक विशिष्ट गुण अप्रमत्तता का था। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक आप एक क्षण भी प्रमाद नहीं करते थे। आप दैनन्दिनी चर्या के अलावा अपने लेखन के कार्य में या अध्ययन के कार्य में हमेशा व्यस्त रहते थे। कोई भी श्रावक-श्राविका दर्शन करने आते थे तब आप उनसे उनकी साधना के विषय में जानकारी कर, कुछ अधिक प्रेरणा दे कर वापिस अपने लेखन या स्वाध्याय के कार्य में व्यस्त हो जाते थे। व्यर्थ की सांसारिक बातों का आपके संयमी जीवन में कतई स्थान नहीं था।

जैन आगामों के आप श्री प्रकाण्ड पंडित थे, गहन स्वाध्याय व चिन्तन आपके जीवन का मूल लक्ष्य रहा। आपके मन में एक भावना थी कि सन्त-सतियों को अध्ययन कराने के लिए योग्य विद्वानों की बहुत अल्पता है, अतः एक संस्था ऐसी होनी चाहिये कि जहाँ छात्र अपने व्यावहारिक शिक्षण को प्राप्त करते रहने के साथ-साथ धार्मिक विषयों में भी पारंगत हो सकें, अतः आपकी प्रेरणा से प्रेरित होकर एक सिद्धान्त शाला की स्थापना हुई एवं योग्य समर्पित गृहपति श्री कन्हैयालालजी लोढा की सेवाओ से अच्छे प्राकृत एवं संस्कृत मे विद्वान् तैयार हो रहे हैं।

आप यह महसूस करते थे कि सन्त-सतियों की संख्या सीमित है, सब जगह चातुर्मास हो नही सकते अतः कम से कम पर्युषण पर्वाधिराज में कुछ स्वाध्यायी बन्धु जिन क्षेत्रों मे चातुर्मास सन्त-सतियों के नही हों, वहाँ जाकर श्रावक-श्राविकाओं में ज्ञानाराधना, धर्माराधना करवाने में सहयोगी बने। उस समय केवल स्वामी श्री पन्नालालजी म. सा. की प्रेरणा से विजयनगर में स्वाध्यायी बन्धुओं की एक संस्था थी जो देश में सब जगह स्वाध्यायियों को भेजने में सक्षम नहीं थी अतः आपकी प्रेरणा से सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल के अन्तर्गत स्वाध्याय मण्डल की स्थापना की गई। इसके माध्यम से योग्य शिक्षण के लिए समय-समय पर जगह-जगह शिविर आयोजित होते रहते है। आपने स्वयं ने स्वाध्यायी बनने के लिये युवकों को प्रेरित किया, फलस्वरूप अच्छी संख्या में अच्छे स्तर के स्वाध्यायी सर्वत्र सेवायें अर्पित कर रहे हैं।

आप हमेशा मुमुक्षु जीवों को सामायिक और स्वाध्याय की प्रबल प्रेरणा दिया करते थे। तमिलनाडु, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र दिल्ली, राजस्थान जो-जो क्षेत्र आपके चरण-रजों से उपकृत हुये, वहाँ सर्वत्र आपकी सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा से काफी भव्य जीव लाभान्वित हुये है। आपने अपने जीवन का काफी समय [illegible] पूर्व में

आचार्य प्रवर एक दूरदर्शीय व्यक्ति थे। आपके जीवन में ऐसे अनेक ंग आये, जहाँ आपने दूरदर्शिता दिखायी। उन प्रसंगों में से मात्र तीन प्रसंगों उल्लेख करना चाहूँगा।

(१) संवत् १९९० में अजमेर में प्रथम साधु सम्मेलन आयोजित किया ा। जिसमें स्थानकवासी समाज के दिग्गज आचार्य जैसे पूज्य श्री जवाहरलालजी ० सा०, पूज्य श्री मन्नालालजी म० सा० आदि संत मुनिवर एकत्रित हुये। म्मेलन-स्थल समीर शुभ कार्यालय में रखा गया। बैठक का प्रारम्भ आचार्य वर द्वारा "सफलयतु मुनि सम्मेलन मद" संस्कृत के मंगलाचरण से हुआ। इस वसर पर मुनिजनों ने प्रतिक्रमण, संवत्सरी पर २० लोगस्स का ध्यान आदि कुछ हत्त्वपूर्ण निर्णय लिए। इसी अवसर पर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस का एक धिवेशन भी वहाँ आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में बोलने हेतु आचार्य वर सहित कुछ प्रमुख संतों को भी आमंत्रित किया गया। पंडाल में विशाल नसमूह होने से कई संतों को लाउड स्पीकर का भी प्रयोग करना पड़ा परन्तु ज्य आचार्य प्रवर श्री जवाहरलालजी म० सा० आदि अनेक संतों ने लाउड पीकर का प्रयोग नहीं किया। जिसके कारण उपस्थित जन-समूह को उनका ाषण सुनाई नहीं पड़ा। इस पर वहाँ हो हल्ला हो गया और जन-समूह ने सन्तों ो बैठ जाने को कहा। आचार्य प्रवर को वहाँ इस प्रकार की अशाति का पूर्वाभास ो गया था, अतः आप अधिवेशन में नहीं पधारे। यंत्र प्रयोग करने वाले सतों ो दूसरे दिन प्रायश्चित्त लेना पड़ा। जिन संतों ने अधिवेशन में भाग लिया, वे ाद मे आचार्य प्रवर के पास आये और उनके अधिवेशन मे नही पधारने की राहना की। उस साधु-सम्मेलन में आप सबसे छोटी उम्र के आचार्य थे फिर ी उस छोटी अवस्था मे आपने जो दूरदर्शिता दिखायी, वह श्लाघनीय थी।

(२) आपकी दूरदर्शिता का एक अन्य उदाहरण आचार्य प्रवर के लगभग २० वर्ष पूर्व मेड़ता वर्षावास की एक घटना से जुड़ा हुआ है। जब आचार्य भगवन् वर्षावास हेतु मेड़ता विराज रहे थे, तब आपके अनन्य भक्त धर्म प्रेमी, सुश्रावक, साधक श्री जतन राज जी मेहता के पूज्य पिताजी श्री प्रेमराजजी मेहता अचानक अत्यधिक बीमार पड़ गये और उनके जीवन की आशा धूमिल हो गयी। आचार्य प्रवर श्री प्रेमराजजी को दर्शन देने उनके निवास स्थान पर पधारे। श्री जतनराजजी ने उस समय अपने पिताश्री के स्वास्थ्य की ओर चिन्तित होते हुये भगवन् से पूछा कि क्या उनको अभी संथारा कराना उचित होगा? इस पर आचार्य भगवन् ने सहज ही में अपनी भाषा मे फरमाया—"नही रे, अभी समय है, मै और ये तो आगे लारे ही जावसां" गुरुदेव की वह भविष्यवाणी सही निकली और प्रथम वैशाख शुक्ला ९ सोमवार २२–४–९१ को सुश्रावक

जीवन-काल में आप श्री ने यद्यपि कोई लम्बी तपस्या नहीं की पर जीवन के संध्याकाल में तेले की तपस्या कर, पारणे में संथारा ग्रहण कर, १० दिन तिविहारी संथारा कर अंतिम समय सवा चार घण्टे का पूर्ण चौविहारी संथारा कर, एक कीतिमान स्थापित किया।

धन्य है ऐसे आराध्य आचार्य देव, धन्य है आपकी साधना। प्रभु, ऐसे आराध्य को शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति प्रदान करें।

—पूर्व अध्यक्ष, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ,
चौरड़िया भवन, सोंथली वालों का रास्ता, जयपुर

दूरदर्शी व्यक्तित्व

□ श्री माणकमल भंडारी

आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व अनूठा रहा है। २० वर्ष की लघुवय मे आचार्य पद प्राप्त कर हरिभद्र सूरी के पश्चात् जहाँ आपने ६०० वर्षो का रिकार्ड तोड़ा है वहाँ आचार्य पद पर रहते हुये संथारा कर, आप २०० वर्ष पूर्व आचार्य प्रवर श्री जयमलजी म० सा० के पथ पर अग्रसर हुए। पिछले २०० वर्षो में सभवतया किसी आचार्य को संथारा नही आया। वैसे सामान्यतया आचार्य को संथारा नहीं आता है क्योंकि संघ-व्यवस्था का भार उन पर होता है जिसे उन्हे निभाना पड़ता है। संघ-नायक के लिये चतुर्विध संघ का मोह भी आचार्यो के संथारे में बाधक होता है। क्योंकि सघ अपने आचार्य के जीवन की रक्षा हेतु अनेकानेक उपचार करता है ताकि उनका स्वास्थ ठीक रह सके और वे संघ को लम्बे समय तक मार्ग-दर्शन देते रहे। इसी संघ-मोह के कारण एक समय ऐसा आ जाता है कि आचार्य विना संथारा लिये ही देवलोक हो जाते है। हिन्दी के महाकवि तुलसीदास जी ने भी कहा है—

जनम-जनम मुनि जतन कराहि।
अंतिम समय राम-मुख निकसे नाहि।।

निमाज पहुँचने पर आचार्य प्रवर ने संघ-व्यवस्था हेतु चतुर्विध संघ को आवश्यक निर्देश देकर संघ-नायक के अपने कर्तव्य का दायित्व पूरा किया। पश्चात् अपनी आत्म-साधना में रम गये और अंतिम समय संथारे के साथ समाधि मरण को प्राप्त किया।

ःराज का नाम उल्लेखनीय है। लेखक ने प्रथम और अन्तिम बार उनके र्शन लगभग ४५ वर्ष पूर्व जोधपुर में उनकी एक प्रवचन-सभा में किये । उसके बाद अभी कुछ अरसे पहले, जब उनके द्वारा संथारा ग्रहण करने ा समाचार पढ़ा तो समाधि-मरण का वरण करने वाले इस व्यक्ति के प्रति सी पारलौकिक चुम्बकीय आकर्षण से प्रभावित होकर मैंने भाई नरेन्द्र से, नके दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। यह मेरा दुर्भाग्य था कि कुछ अपरिहार्य ारणों से मैं इस अभिलाषा को पूरी नहीं कर सका, परन्तु तब से इस अद्भुत ्यक्ति के ज्ञान, दर्शन तथा आचरण पर मैंने काफी पढ डाला है और कह कता हूँ कि उनके उपदेशों में यत्र-तत्र बिखरे मोती किसी के लिए भी अमूल्य ाधि है।

भगवान महावीर ने कहा है कि मृत्यु को कलात्मक स्वरूप प्रदान ारना मानव का सर्वश्रेष्ठ कौशल है और जीवनगत विकारों को समाप्त करके, ीवन का शोधन करके, माया-ममता से अलग होकर जो हँसते-हँसते मरता ; वही जीने की कला जानता है। स्वयं आचार्य श्री के अनुसार ऐसा ामाधिमरण एक कठोर परीक्षा है जिसमें उत्तीर्ण होने के लिये जीवन-व्यापी ाप की आवश्यकता है और जीवन को सुधारे बिना मृत्यु को सुधारने की ाशा रखने वालों को निराश होना पड़ेगा। अपने इस दर्शन को, अपने ही ीवन में क्रियान्वित कर, आचार्य श्री मर कर भी अमर हो गये।

महापुरुषों के महाप्रयाण के बाद कालांतर में हम सांसारिक लोग उनके सन्देशों को भूल जाते हैं तथा उन्हें यदा-कदा याद करके ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। मगर व्यक्ति, समाज और विश्व के सुख तथा शांति के लिये आवश्यक है कि उन सन्देशों को हम अपने जीवन में ढाले। उनकी ाश्वर काया, भले ही समाप्त हो गई, मगर अपने प्रकाशित व्याख्यानों के माध्यम से तो आचार्य श्री का वरदहस्त हम सब पर सदैव रहेगा। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि तो उनके बताये मार्ग पर चलने से ही होगी। वाणी में उनके प्रति सम्मान, मगर दिनचर्या में उपभोक्ता और वैभव संस्कृति के अनुकरण से तो हम उनका अपमान ही करेंगे।

जैन धर्म की आधारशिला ही ज्ञान तथा आचरण है। परन्तु विडम्बना यह है कि शुद्ध आचरण के बावजूद दिनचर्या की शैली में मात्र कुछ छोटी-मोटी मतभिन्नता के आधार पर ही ऐसे वर्ग और उपवर्ग भी बन गये है कि उनके पृथक् अनुयायियों के पृथक् मंच यद्यपि पारस्परिक विरोधी नही, पर सम्पूर्ण धर्म को एक सूत्र में पिरोने मे सहायक तो नहीं होते ? अन्य सब धर्मो का भी यही अभिशाप है। हिन्दुओं में शैव, वैष्णव या भक्तिमार्गी, ज्ञानमार्गी,

श्री प्रेमराज जी सा० का संथारे के साथ स्वर्गवास हुआ जबकि स्वयं आचार्य भगवान् का स्वर्गवास प्रथम वैशाख शुक्ला ८ रविवार, २१-४-९१ को सायंकाल संथारे के साथ हुआ। इस प्रकार आचार्य प्रवर व श्री प्रेमराजजी आगे-पीछे ही गये। यह सुखद संयोग था कि आप दोनों का दाह-संस्कार एक दिन हुआ।

(३) गुरुदेव के स्वयं के स्वर्गवास की घटना भी आपकी दूरदर्शिता सूचक है। सन् १९८४ का आपका चातुर्मास रेनवो हाउस, जोधपुर में था। चातुर्मास काल मे आपको यकायक एक झटका लगा, और आप अस्वस्थ हो गए। आपके अन्तिम समय को लेकर अनेकानेक भ्रान्तियां फैलने लग गई। इस वर्तमानाचार्य श्री हीराचन्दजी म० सा० के पूज्य गुरुदेव से उनके अंतिम स... बावत पूछने पर आप श्री ने फरमाया, मेरा स्वर्गवास उस स्थान पर होगा... निम्न पाँच बाते एक साथ पाई जावेगी—

(१) स्थान मुख्य सड़क पर हो।

(२) वहाँ एक छोटा सा मन्दिर हो।

(३) एक कुआ हो।

(४) एक बगीचा हो।

(५) पास में एक स्कूल हो।

हमने देखा, गंगवाल भवन निमाज में उपर्युक्त पांचों ही बातें मौजूद थी। पाली से जहाँ आपका जोधपुर की ओर विहार प्रायः निश्चित ही था, परन्तु संभवतया अपने अंतिम समय का पूर्वाभास हो जाने के कारण आपने निमाज की ओर विहार कर दिया। निमाज पधारने पर तो आपने सब दायित्वों को पूर्ण कर अपने शरीर को आत्मा से अलग कर लिया तथा समाधिपूर्वक महाप्रयाण कर गए। ऐसे दूरदर्शी युग पुरुष के चरणों मे कोटिशः वन्दन।

—पूर्व महामन्त्री, श्री अ० भा० जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ,
रावतों का वास, जोधपुर

मर कर भी अमर हो गये !

☐ श्री जयनारायण गौड़

जिन महामानवों के व्यक्तित्व और कृतित्व को किसी धर्म अथवा संप्रदाय विशेष में ही सीमित नही रखा जा सकता, उनमें आचार्य श्री हस्तीमलजी

महाराज का नाम उल्लेखनीय है। लेखक ने प्रथम और अन्तिम बार उनके दर्शन लगभग ४५ वर्ष पूर्व जोधपुर में उनकी एक प्रवचन-सभा में किये थे। उसके बाद अभी कुछ अरसे पहले, जब उनके द्वारा संथारा ग्रहण करने का समाचार पढ़ा तो समाधि-मरण का वरण करने वाले इस व्यक्ति के प्रति किसी पारलौकिक चुम्बकीय आकर्षण से प्रभावित होकर मैंने भाई नरेन्द्र से, इनके दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। यह मेरा दुर्भाग्य था कि कुछ अपरिहार्य कारणों से मैं इस अभिलाषा को पूरी नहीं कर सका, परन्तु तब से इस अद्भुत व्यक्ति के ज्ञान, दर्शन तथा आचरण पर मैंने काफी पढ़ डाला है और कह सकता हूँ कि उनके उपदेशों में यत्र-तत्र बिखरे मोती किसी के लिए भी अमूल्य निधि हैं।

भगवान महावीर ने कहा है कि मृत्यु को कलात्मक स्वरूप प्रदान करना मानव का सर्वश्रेष्ठ कौशल है और जीवनगत विकारों को समाप्त करके, जीवन का शोधन करके, माया-ममता से अलग होकर जो हँसते-हँसते मरता है, वही जीने की कला जानता है। स्वयं आचार्य श्री के अनुसार ऐसा समाधिमरण एक कठोर परीक्षा है जिसमें उत्तीर्ण होने के लिये जीवन-व्यापी तप की आवश्यकता है और जीवन को सुधारे बिना मृत्यु को सुधारने की आशा रखने वालों को निराश होना पड़ेगा। अपने इस दर्शन को, अपने ही जीवन में क्रियान्वित कर, आचार्य श्री मर कर भी अमर हो गये।

महापुरुषों के महाप्रयाण के बाद कालांतर में हम सांसारिक लोग उनके सन्देशों को भूल जाते हैं तथा उन्हें यदा-कदा याद करके ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। मगर व्यक्ति, समाज और विश्व के सुख तथा शांति के लिये आवश्यक है कि उन सन्देशों को हम अपने जीवन में ढालें। उनकी नश्वर काया, भले ही समाप्त हो गई, मगर अपने प्रकाशित व्याख्यानों के माध्यम से तो आचार्य श्री का वरदहस्त हम सब पर सदैव रहेगा। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि तो उनके बताये मार्ग पर चलने से ही होगी। वाणी में उनके प्रति सम्मान, मगर दिनचर्या में उपभोक्ता और वैभव संस्कृति के अनुकरण से तो हम उनका अपमान ही करेंगे।

जैन धर्म की आधारशिला ही ज्ञान तथा आचरण है। परन्तु विडम्बना यह है कि शुद्ध आचरण के बावजूद दिनचर्या की शैली में मात्र कुछ छोटी-मोटी मतभिन्नता के आधार पर ही ऐसे वर्ग और उपवर्ग भी बन गये हैं कि उनके पृथक् अनुयायियों के पृथक् मंच यद्यपि पारस्परिक विरोधी नहीं, पर सम्पूर्ण धर्म को एक सूत्र में पिरोने में सहायक तो नहीं होते? अन्य सब धर्मों का भी यही अभिशाप है। हिन्दुओं मे शैव, वैष्णव या भक्तिमार्गी, ज्ञानमार्गी,

मुसलमानों में शिया और सुन्नी, ईसाइयों में कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट के अन्तर्द्वन्द्व विख्यात हैं। जब सब धर्मों का लक्ष्य मानव-कल्याण है, तो ये धर्म पारस्परिक सहिष्णुता को अक्षुण्ण रख कर अपने आंतरिक विरोधों पर विजय क्यों नहीं पा सकते हैं? आचार्य श्री की अजर-अमर आत्मा बड़ी प्रफुल्लित होगी, यदि जैन धर्म के विभिन्न वर्ग अपनी तुलनात्मक श्रेष्ठता का अहंकार त्याग कर, हृदय से एक हो जाएँ।

—पूर्व जिलाधीश, जयपुर एवं सदस्य, राजस्व मंडल, अजमेर
हेमांचल, सी-६८, राम मार्ग, तिलक नगर, जयपुर-४

आलोक, जो जीवन की संध्या में और भी निखर उठा

☐ डॉ० मञ्जुला बम्ब

सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र-प्राप्ति में सहायक, भक्ति-मार्ग दर्शक, पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म. सा के चरणारविन्दो मे शत-शत वन्दन।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

जिस महापुरुष के मुखस्रोत से निःसृत पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के समान अव्याहत गति से धवल धारायुत धायमान होती हुई वाग्धारा ने सहस्रो मानव-मस्तिष्को को परम पुनीत किया, जिस महापुरुष की वाग्धारा प्रत्येक के लिये उत्थान एवं निःश्रेयस की सीढ़ी है, उन परम पूज्यपाद संत-शिरोमणि, महान् कलाकार, चारित्र-चूड़ामणि पूज्य गुरुदेव हस्तीमलजी म. सा. के सम्बन्ध में मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति का कुछ भी कहना, लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है तथापि आतरिक प्रेरणा से प्रेरित हो दो शब्द लिखने के लिये उद्यत हुई हूँ—

रशियन प्रजा को अपनी वैज्ञानिक शक्ति पर गर्व है तो अमेरिका के लोगों को अपने वैभव पर। अंग्रेज प्रजा को अपनी जल-शक्ति पर गर्व है तो फ्रास अपनी विलासिता तथा चमक-दमक पर फूला नही समाता है, परन्तु हम भारतवासियों को सबसे अधिक गर्व है अपनी सत-परम्परा पर। संत भारतीय संस्कृति के प्राण व आत्मा कहे जाएँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भ. ऋषभदेव

लगाकर आज तक अपनी इस पवित्र भूमि में अनेक संत पुरुष पैदा हुये हैं। ी संत-परम्परा मे जैन समाज के एक संत रत्न हैं—आचार्य श्री हस्तीमलजी . सा.।

बाल्यावस्था में ही आपके अन्तर्मन में त्याग और वैराग्य की एक लहर ागी और उस वैराग्य-रस से आप्लावित तन-मन को लेकर आप पूज्य गुरुदेव ो शोभाचन्दजी म. सा. के चरणारविन्दों में पहुँचे और आगार से अनगार नाने की प्रार्थना की। मनोभावों के सुन्दर चितेरे आचार्य श्री शोभाचन्दजी . सा. ने कहा—वत्स! अनगार बनना हंसी का खेल नही है, यह असिधारा र चलना है, जलते अंगारों पर बढ़ना है और अभी तुम कुसुम से कोमल हो। र बालक हस्ती का वैराग्य-रंग कच्चा नहीं था, सच्चा था। वह साधना के ूलों से भयभीत होने वाला नहीं था। आचार्य श्री ने परीक्षा की कसौटी पर सने के पश्चात् जैनेन्द्री दीक्षा देने की अनुमति प्रदान की।

विक्रम संवत् १९६७ में सहसा महामारी का भीषण प्रकोप मरुधरा र हुआ और आपकी जन्मभूमि पीपाड़ को भी अपने अंक में कसकर समेट लेया। यत्र-तत्र सर्वत्र लोग धड़ाधड़ करालकाल के कवल बन गए। पिता श्री केवलचन्दजी पर भी करालकाल की क्रूर दृष्टि पड़ी और वे अपनी वृद्ध माता नौजादेवी, गर्भस्थ शिशु और तरुणी पत्नी रूपादेवी को पाणिग्रहण के तीन वर्ष बाद ही बिलखती छोड़कर चल बसे। कुछ समय उपरान्त दादी नौजादेवी भी अपनी पुत्रवधू रूपादेवी और पौत्र हस्ती को अकेला छोड़कर इस संसार से चली गई। इस घोर वज्रपात से बोहरा परिवार मर्माहत हो तड़प उठा। पतिपरायण रूपादेवी को जीवन के उषाकाल में ही अपने सौभाग्य-सूर्य के अस्त हो जाने के कारण समग्र संसार घोर अंधकारपूर्ण लग रहा था। किन्तु महान् पुण्यशाली गर्भस्थ शिशु के प्रभाव से उनके अन्तर्चक्षु शीघ्र ही उन्मीलित हो उठे। वस्तुत. यह संसार अभाव-अभियोगों से ओतप्रोत दुःखद्वन्द्वों का सागर है।

जिस प्रकार दिन के बाद रात और रात के बाद दिन, छाया के बाद धूप और धूप के बाद छाया, चाँदनी रात के बाद अंधेरी रात और अंधेरी रात के बाद चाँदनी रात का आगमन अनिवार्य है उसी प्रकार जन्म-मृत्यु, संयोग-वियोग व सुख-दुःख का, चक्र की गति समान क्रम निश्चित है। संसार का यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक अक्षुण्ण गति से चलता रहेगा।

इस प्रकार चिन्तन करते-करते ममतामयी मां रूपा देवी ने संसार की असारता जान ली थी और संसार से विरक्त हो गई थी और साथ ही

उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मेरे गर्भ मे पल रहा शिशु, यदि दीक्षा ले लेगा तो पहले मैं उसे दीक्षा दिलाऊगी बाद में ही मैं दीक्षा लूंगी। अन्यथा यदि वह दीक्षा नही लेगा तो इसे अपने नानाजी श्री गिरधारीलालजी मूरगोत के पास छोड़कर मै भी अपनी मासीजी फूलाजी, जेठानीजी (केवलचन्दजी सा. के बड़े भाई श्री रामूजी की धर्मपत्नी) की तरह श्रमरणी धर्म को अंगीकार कर लूंगी।

विक्रम संवत् १९६७ की पौषशुक्ला चतुर्दशी का प्रभात, न केवल वोहरा एवं मूरगोत परिवारों के लिये अपितु सम्पूर्ण जैन जगत् के लिये एक अनुपम अनमोल उपहार १ बजकर ४० मिनिट पर पीपाड़ नगर में, एक महाप्रतापी एवं पुण्यशाली पुत्र रत्न को लेकर आया।

वैराग्य के प्रगाढ रग मे रगे धार्मिक संस्कार वालक को मातेश्वरी से गर्भ मे ही मिल चुके थे। माता और पुत्र घर-गृहस्थी और सासारिक मोहमाया के सभी कार्यों में जल कमलवत् निर्लिप्त थे। उन्होंने तो अपने जीवन का एकमात्र यही परम और चरम लक्ष्य बना लिया था कि वे मोह-ममता के सभी वन्धनों को काटकर शीघ्रातिशीघ्र भवाटवी में निरन्तर भटकाने वाले कर्म बन्धनों से विमुक्ति पाने हेतु आध्यात्मिक साधना में लीन हो जाएं। दीक्षित होने में एक दिन की भी देर उन्हें दुसह्य हो गई थी।

स्वामीजी श्री हरखचन्दजी म. सा. के पास रात-दिन बालक हस्ती ज्ञानाभ्यास करते और अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, नवतत्व, सड़सठ वोल आदि अनेक थोकड़े और शास्त्रों मे दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि कण्ठस्थ किये। इस प्रकार मुमुक्षु हस्तीमलजी का ज्ञानाभ्यास उत्तरोत्तर वढने लगा। चिरकाल से दीक्षा ग्रहण करने की अभिलाषिणी वैराग्यवती माता रूपा देवी, विलक्षण प्रतिभाशाली वाल वैरागी श्री हस्तीमलजी, चौधरी कुलभूषरण विरक्त किशोर श्री चौथमलजी और वैरागिन वहिन अमृतकंवरजी एक साथ इन चार मुमुक्षु आत्माओं ने अजमेर में विक्रम संवत् १९७७ को माघ शुक्ला द्वितीया को दीक्षा अंगीकार की।

योग्य गुरु के योग्य शिष्य ने वाल्यकाल में ही जैनागमों का गहरा अध्ययन किया और अल्पकाल में ही अध्ययनशील वृत्ति से गम्भीर अध्ययन कर अपनी प्रतापपूर्ण प्रतिभा का परिचय दिया। आपने विविध विषयों पर विविध रचानाएँ लिखी। आपकी ऐतिहासिक लोकप्रिय रचना 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' विश्व को अनूठी देन है।

वर्षा से पूर्व या वर्षा के पश्चात् जब कभी नीलगगन में इन्द्रधनुष की मनोहर छटा छितराती है तो दर्शक मुग्ध होकर देखते रहते हैं उस सुरम्य दृश्य को, देखते-देखते आंखें अघाती नहीं, मन भरता नहीं और हृदय की सुकता कम नहीं होती। बार-बार उस छवि को देखने हृदय उछाले भर-भर मगता है। आंखें लपकती है। कभी उस इन्द्रधनुष में चार रंग दीख पड़ते कभी पांच, कभी सात। वास्तव में उसमें कितने रंग हैं, आंखे निश्चय नहीं र पातीं, बस उसके रम्य रंगों को देखते-देखते ही मन विभोर होता हता है।

आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. के व्यक्तित्व का दर्शन करते मय भी मन में इसी प्रकार की भावनाएँ उमगती हैं। जब-जब ज्ञान की ाखों में श्रद्धा की ज्योति जागती है और आचार्य श्री के स्वच्छ, सौम्य, धवल श परिमडित देह के भीतर एक दिव्य व्यक्तित्व की प्रतिभा का दर्शन करते , तो सचमुच ऐसा ही लगता है। उनका व्यक्तित्व कितने रमणीय रंगों में गा था, कह पाना कठिन है, समझ पाना भी कठिन है, सिर्फ अनुभूति होती है। उनके विविध सुरम्य रूपों को देखकर कभी लगता है आचार्य श्री सरलता की साकार मूर्ति थे, विनम्रता के पुंज थे। कभी-कभी उनकी दिव्य ज्ञान साधना की छवि के दर्शन होते है तो लगता है ज्ञान का अथाह सागर ठाठें मार रहा है, असंख्य-असंख्य ज्ञान उर्मियां उछल रही है। विविध भाषाओं का परिज्ञान, दर्शन और धर्म की सूक्ष्मातिसूक्ष्म धारणाओं का विवेचन बुद्धि को चकित कर देता है।

उनसे बात करते समय लगता था वाणी मिश्री से भी मीठी है, माधुर्य छलक रहा है। शब्दों का विवेक बड़ा गहरा था, भाषा का संयम बड़ा ही सूक्ष्म था, जो कुछ बोलते थे हियं, मियं, अपुट्ठं, हितकर, मिताक्षर और सुन्दर बोलते थे। कोई धाराशास्त्री (वकील) भी उनकी वाणी को कानून के कांटों से पकड़ नहीं सकता। शब्दों में सार, भाषा में भाव और माधुर्य यों छलकता था जैसे अंगूरो के गुच्छे हो।

वे अनुशासनप्रिय थे, स्वयं गुरु-चरणों के कठोर अनुशासन में रहकर शिक्षा और संस्कारों की विधि प्राप्त की थी, इसलिये एक सैनिक की भांति न केवल स्वयं अनुशासित जीवन जीते थे, किन्तु दूसरों को भी अनुशासन की प्रेरणा देते थे। वाणी से कम, व्यवहार से अधिक। उनका जीवन अनुशासन की जीती जागती तस्वीर था।

'विज्जा विणय सम्पन्ने' का शास्त्रीय आदर्श उनके जीवन के कण-कण से मुखरित होता सा लगता था। विद्या के साथ विनय, विनय के साथ विवेक,

विवेक के साथ वाग्मिता, व्यवहारपटुता आदि अनेक दिव्य-भव्य गुणों की शृंखला ऐसी जुड़ी हुई थी कि जैसे मणिमुक्ता मंडित माला में एक-एक बहुमूल्य मुक्ता गुंथी हुई हो। उनकी प्रतिभा बड़ी विलक्षण थी। महावीर अगर आज होते तो अपने इस प्रिय शिष्य को आसुपन्ने, दीघपन्ने-आशुप्रज्ञ, दीर्घप्रज्ञ कहकर सम्बोधित करते।

बचपन में जब आप पढ़ते थे तो बड़े-बड़े न्याय एवं व्याकरण के आचार्य जो अध्यापक बनकर आये थे, आपके सूक्ष्म और मूलग्राही जिज्ञासाप्रधान प्रश्नों से कतराने लगे थे। बचपन में ही प्रतिभा की आशातीत स्फुरणा थी और सत्योन्मुखी जिज्ञासा भी। वही जिज्ञासा जिसने दर्शन को जन्म दिया। इन्द्रभूति गौतम को महावीर के समवसरण तक आकृष्ट किया और विशाल वाङ्मय की सर्जना की। गुरुदेव हस्तीमलजी म. सा. में भी उसी प्रकार की स्फूर्त जिज्ञासा विद्यमान थी। इसी प्रतिभा और स्फूर्त जिज्ञासा ने हस्तीमलजी म. सा. को श्रुतज्ञान की अमूल्य निधि की कुंजी सौंपी। न केवल स्वयं विज्ञान बने किन्तु इनके मन मे विद्याप्रसार की एक अक्षय लौ भी प्रज्वलित हुई, जिसकी ज्योति से दूर-दूर के प्रदेश आलोकित हुये। हजारों अन्धकाराच्छन्न हृदयों मे ज्ञान का दिव्य आलोक जगमगाया। शिक्षा-प्रसार की एक अनूठी धुन थी इस परोपकारी पुनीत महात्मन् के हृदय में।

हे जिनशासन प्रभावक! आपने अपनी तीव्र बुद्धि और वाक्पटुता से अनेक प्रकार के आत्मबोधक साहित्य का सर्जन कर जो मानव-ससार पर उपकार किया है, वह चिरस्मरणीय रहेगा। जिस प्रकार अंधेरी निशा मे दीपक ठीक मार्ग-दर्शन कराता है, ठीक इसी प्रकार आपका रचित साहित्य भी मार्ग-दर्शन कराता रहेगा। हे मार्गदर्शक! आपने अनेक भूले-भटके प्राणियों को मोक्षमार्ग का पथिक बनाया।

हे ज्ञानार्णव! आपकी गुणगाथाओं का जितना भी वर्णन किया जाय, उतना ही थोड़ा है। आपके जीवन के विषय में जो ये कतिपय पंक्तियां लिखी गई है, यह एक प्रकार का दु:साहस और धृष्टतासूचक कार्य ही है। संतों का जीवन एक ऐसा सागर है जिसमें असंख्य मोती भरे रहते है। जो जितना गहरा गोता लगाता है, वह उतने ही अनमोल मोती प्राप्त कर सकता है आचार्य श्री के जीवन-सागर में भी अनेक सद्गुण रूपी मोती बिखरे हुये थे। उनके जीवन का गहरा अध्ययन करके उनके सद्गुणों को अपने जीवन में अपनाने का प्रयत्न करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है।

अपने लक्ष्य की ओर चले चलो, यही आपके जीवन का मूल मंत्र था। जब तक रवि, शशि, तारे, तब तक गीत तुम्हारे, विश्व रहेगा गाता।

आप श्री के अनन्त उपकार ही मेरे जीवन के पाथेय हैं। आप ही मेरी ज्ञान, ध्यान, जप, तप, साधना के आधारभूत है। अतएव, मैं सर्वात्मना आपके गुणगान करते हुये भी उऋण नहीं हूँ। आपकी गुणावलियों के लिये—

सब धरती कागद करूँ, लेखनी सब वनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, तो भी गुरु-गुण लिख्या न जाय॥

उषा समीप आती है तब शशि निष्प्रभ हो जाता है। जब संध्या समय आता है तब रवि भी प्रशान्त हो जाता है पर हस्ती के आलोक की यही अद्भुत विशेषता है कि जीवन की संध्या में वह और भी निखर उठा है।

—बम्ब सदन, जड़ियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर-३

अमृत-कण

- तप थर्मामीटर की तरह मापक यन्त्र है। यदि मस्तिष्क में हल्कापन आया, हृदय में प्रमोद बढ़ा, तो समझना चाहिए कि तप का लाभ मिला है।
- सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात के ऊपर तुम सवार रहो, लेकिन तुम्हारे ऊपर धन सवार नहीं हो। यदि धन तुम पर सवार हो गया तो वह तुमको नीचे डूबो देगा।
- जैसे घृत की आहुति से आग नहीं बुझती, वैसे ही धन की भूख धन से नही मिटती। तन की भूख तो पाव भर अन्न से मिट जाती है किन्तु मन की भूख असीम है। उसकी दवा त्याग और सन्तोष है, धन नहीं।
- जिस प्रकार खाये हुए अन्न का विसर्जन अनिवार्य रूप से करना पड़ता है, उसी प्रकार कमाये हुए धन का भी दानादि में विसर्जन करना परम आवश्यक है।
- धर्म एक रथ है। धर्म-रथ के दो घोड़े हैं—तप और संयम।

—आचार्य हस्ती

स्वाध्याय प्रणेता तपस्वी

☐ मधु श्री कावरा

पूज्य श्री हस्तीमलजी म० सा० पिछले कुछ समय से अस्वस्थ चल रहे थे। वे अपनी धर्मसाधना जारी रखे हुए थे। डॉक्टर उनकी बीच-बीच में जाँच कर लिया करते थे। पिछले वर्ष चातुर्मास के बाद उनका स्वास्थ्य अधिक खराब हुआ तो पीपाड़ मे ही उन्हें अपना विहार रोकना पड़ा था। फिर कुछ स्वस्थ हुए तो वही "चरैवेती चरैवेती" परोपकारी सत कब कहां एक जगह रुकते है?

अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य धर्मसाधना का बनाया था। जैन परम्परा में अहिंसा और करुणा का बहुत ही सूक्ष्म भावार्थ दिया हुआ है। लोग उस पथ से भटक कर परोक्ष हिंसा में जुड़ते जा रहे है। अनेक साधु-महात्मा भी इस प्रक्रिया में सहभागी बनते है, परन्तु हस्तीमलजी म० सा० ने जिस तरह जैन तत्त्व को समझा और आत्मसात किया, उन्होने उसी सूक्ष्म जैनभाव को महत्त्व दिया और अपने अनुयायियों को भी वही करने का कहा।

जैनधर्म की सूक्ष्मता को शब्दो की बजाय भावों से ही व्यक्त किया जा सकता है। समय का बहाव बाह्याडम्बर की तरफ बढता गया, भवन, मन्दिर तथा स्थापत्यो की तरफ प्रचारात्मक वेग बढने लगा, वहाँ हस्तीमल जी म० सा० बहती हुई हवा के सामने अडिग खडे हो गए—लोगों को जो चाहिए वह धर्म नही है, धर्म का जो आदेश है, उसी मुताबिक वर्तन करना और लोक-प्रवाह को मोड़ना ही धर्म है। हस्तीमलजी म० सा० ने सस्ती लोकप्रियता की कामना नहीं की, उन्हें उसकी परवाह भी नही थी। जो त्यागी है, तपस्वी है, उसे भला क्या कोई प्रलोभन या आकांक्षा प्रभावित कर पाएगी?

उन्होंने तो वही लिखा जो धर्म में निर्देश है, उन्होंने वही किया जिसमें जि धर्म का आदेश है, उन्होंने वही कहा जो धर्म मे अपेक्षित है। जिन्हें धर्म की मूल भावना का ज्ञान था वे तुरन्त समझ गए, जिन्हें स्थूल व बाह्याडम्बर का प्रभाव था, वे उन्हें समझ नहीं पाए और तर्क-कुतर्क द्वारा विरोध दर्शाते रहे— युग-पुरुष हस्तीमलजी म० सा० ने इसकी कभी परवाह या चिंता नही की और अपने कर्तव्य में लगे रहे। विरोधियो के पास कोई तर्क या दलील नहीं थी केवल "करते आए है", की अंधानुकरणी भावना थी—लोग मंदिर बनाते है तो हम भी एक से बढ़कर एक बनाते जा रहे हैं, लोग मूर्तिपूजा में ही भगवान् व भक्ति समझ बैठे है, इसलिए हम भी वही कर रहे है, भले ही उसमे जैनधर्म की मूल अहिंसा, जीव-करुणा की भावना को ठेस लगती हो, या उसके विपरीत

आचरण होता हो, उन्हें यह बात बहते प्रवाह के कारण समझ नहीं आई, परंतु युगाचार्य संत हस्तीमलजी म० सा० ने इसके लिए न तो अपनी धर्म-यात्रा रोकी और न ही उस विरोधी भाव से कभी विचलित हुए।

जिन्होंने जैन धर्म का गहराई से अध्ययन किया, जैन शास्त्रों पर शोध कार्य किया, इतिहास लिखा, ऐसे धर्म-मर्मज्ञ के लिए गलत बात कैसे स्वीकार्य होती ? धर्मभावना के विपरीत आचरण को वे कैसे प्राधान्य देते ?

उनका धर्म क्या था ? धर्म तो सभी जैसा ही उनका भी था, फर्क इतना ही रहा कि लोग बाह्याचार मे धर्म देखते है, प्रचार-प्रसिद्धि में धर्म देखते है, जबकि धर्म तो करुणा और कर्तव्य में है।

उन्होंने धर्म को अध्ययन का रूप दिया, उन्होंने धर्म को स्वाध्याय का रूप दिया। धर्म स्वाध्याय से ही सीखा व समझा जा सकता है, बिना धर्मतत्त्व को समझे कोई धर्म को क्या अपना सकेगा ? बाहरी तौर पर टीका लगाना, मूर्ति पूजा करना, तोतारटन्त की तरह नवकार पढ़ना ही धर्म नहीं है, सही धर्म तो उसके मूलतत्त्व को समझने से है, तत्पश्चात ही धर्म प्रचार भी हो सकेगा और उसके लिए "स्वाध्याय" रामबाण औषधि है।

केवल मंदिर बनाना, मूर्तिपूजा करना, टीका लगा नवकार पढ़ना—माला फिराना या फिर देखादेखी व्रत-उपवास करना, ये सब धर्म की विधियाँ अपनी-अपनी जगह ठीक हो सकती है परंतु सही धर्म तो उसके तत्त्व में है, उसे समझना महत्त्वपूर्ण होता है। केवल ऊपर लिखे सभी काम करना और बाकी जीवन में धर्म से विलग रहना, अथवा निजी आचार में धर्म को आत्मसात नही करना, सही धर्म नहीं है। इसलिए हस्तीमलजी म० सा० का "स्वाध्याय" धर्म और जीवन का समन्वय है जो लंबे समय तक धर्म की साधना सिद्ध करेगा, धर्म का सही स्वरूप प्राप्त करेगा।

स्वाध्याय केवल जैन धर्म का ही हो, ऐसा उनका आग्रह हर किसी के लिए नहीं था, वे तो मानवमात्र को अपने धर्म का तत्त्व समझने के लिए "स्वाध्याय" का आग्रह रखते थे—सभी अपने-अपने धर्म का स्वाध्याय करे—धर्म ही मनुष्य में रही पशुता दूर करेगा, संसार में सुख-शांति व्याप्त होगी। "धर्म सभी अच्छे है' जिसमें विश्वास है, उसी का स्वाध्याय करो—उसी का मर्म समझो और अपनी धर्म-साधना से पीड़ित मानवता की सेवा करो"। आचार्य श्री का हर किसी को यही उपदेश रहता। उनका पहला प्रश्न 'स्वाध्याय करते हो' उसी से चर्चा की शुरुआत होती। आज धर्म की बाते करने वाले अनेक छोटे-बड़े देश चाहे क्रिश्चियन हों या मुस्लिम हों, वे सभी शस्त्रों का निर्माण करते

है, बेचते हैं उसका उपयोग मानवीय-विनाश के लिए करते हैं। लोग जिस दिन धर्म का स्वाध्याय मन से करने लगेंगे तब मानव अपने विनाश के, जीव-विनाश के, शस्त्र-साधन नहीं बनाएँगे और न ही उनका विनाशकारी उपयोग करेंगे। वे केवल बाइबल और कुरान ऊपरी मन से पढ़ते हैं, वही अगर सच्चे मन से अपने धर्म ग्रंथों का मनन और स्वाध्याय शुरू करेंगे तो फिर उनके कार्यों में दोहरापन नहीं रहेगा। उनमे करुणा के भाव अपने आप प्रगट होंगे। जो बात केवल बाहरी अहिंसा कारगर रूप से नहीं कर पाती वही स्वाध्याय द्वारा आसानी से सिद्ध होगी।

धर्म की इतनी गहन बात करने वाले ये संत जोधपुर जिले के पीपाड़नगर में ८२ वर्ष पूर्व अवतरित हुए, बहुत ही छोटी उम्र यानी १० वर्ष की किशोरावस्था में ही दीक्षा ग्रहण कर ली और कुमारावस्था की देहली पर यानी कि २० वर्ष की तरुण अवस्था में ही आचार्यपद प्राप्त कर लिया। आचार्य प्रवर पू० शोभाचन्द्र जी म० सा० की पारखी दृष्टि ने हस्तीमल जी म० सा० के त्याग, गुण और साधना को तत्काल परख लिया था। और उन्होंने इस महान् विभूति का चयन आचार्य पद पर किया जो सर्वथा सार्थक रहा।

अपने ६२ वर्ष के सुदीर्घ तपस्वी जीवन में उन्होंने अनेकविध धर्म की सेवा की है, जैन इतिहास का मौलिक सर्जन और 'स्वाध्याय आन्दोलन' हस्तीमलजी म० सा० की अमर देन कही जाएगी। इतिहास उन्हें हमेशा स्वाध्याय प्रणेता के रूप में, स्वाध्याय गुरु के रूप में स्मरण करता रहेगा। धर्म उनकी साधना व सेवा से ऋणी रहेगा।

पिछले मार्च महीने से आपका स्वास्थ्य पुनः बिगड़ गया। आप निमाज में ही विराजित थे, विहार में फिर रुकावट हुई, वैसे ही चर्चा अफवाह के रूप में चल पड़ी कि महाराज साहब ने संथारा व्रत ले लिया है, भाविक जन दर्शनों हेतु उमड़ पड़े, खबर सही नहीं थी, लोगों को संतोष हुआ। पुनः प्रभु कृपा से उनका स्वास्थ्य कुछ सुधार पर आया, सिलसिला विहार का शुरू होने ही वाला था कि महाराज साहब को पुनः स्वास्थ्य की तकलीफ हुई। इस बार उन्होंने किसी श्रावक या संत की नही सुनी, किसी डॉक्टरी सलाह को मान्य नही किया और १२ अप्रेल से संथारा व्रत ले लिया। महाराज साहब के सथारा व्रत की खबर वायु की तरह सभी जगह दूर तक फैल गई, पुनः भाविकजन हजारों की तादाद में दर्शनों हेतु उमड़ पड़े। ऐसे चमत्कारी संत तो किसी वरदान से ही अवतरित होते है, किसी पुण्य के प्रताप से ही मिलते है, उनके दर्शनों की एक झलक के लिए मानव समुदाय टूट पड़ा—सभी को यह अहसास था कि ऐसा तपस्वी संत दुबारा इस जनम में शायद ही सदेह देखने को मिलेगा। 21 अप्रेल को

वाध्याय गुरु ने अपनी इहलीला समेट ली और महाप्रयाण कर दिया। भाविक-
ानों की भक्ति आंसुओं के सैलाब की तरह उमड़ पड़ी। लाखो लोगों की श्रद्धा-
ाक्ति, वन्दना और जयघोष से आचार्य श्री का पावन शरीर पंच महाभूत में
वलीन हो गया।

पीपाड़ की पावनभूमि धन्य है, जहां ऐसा तपस्वी विद्वान् संत पैदा हुआ,
वगत सैंकड़ों साल में ऐसा संत इस भूमि में नही हुआ है। "गुरु हस्ती" की
हान हस्ती ने पीपाड़ की भूमि को गौरव दे दिया, इतिहास में स्थान दिला
दया। पीपाड़ इस पावन संत की कीर्ति से धन्य हो गया, एक तीर्थ बन गया।
ीपाड़ परिसर में इतना महान् विद्वान्, तपस्वी सत सदियों की देन था। उनका
नहाप्रयाण आने वाली अनेक सदियों तक स्वाध्याय की प्रेरणा देता रहेगा।
ऋणी मानवता उनके उपकारों को कैसे भुला सकेगी? उनकी सुदीर्घ धर्म सेवा
के बदले जो भी किया जाय वह कम है मगर उनको सही श्रद्धांजलि तो वही
होगी जो कि उनके विचारों पर आधारित हो, आदर्शो पर आधारित हो,
इसलिए उनका सही स्मारक तो स्वाध्याय केन्द्र ही हो सकते है, जगह-जगह
"गुरु-हस्ती" की स्मृति में स्वाध्याय केन्द्र बने, धर्म का प्रचार करें, धर्म का मर्म
समझे और समझाएँ।

हे महान् संत! हे गुरुदेव! आपके इस धर्म-ऋण को मानव मात्र
'स्वाध्याय' की अंजलि देकर ही चुका सकेगा।

प्रभु अरिहन्त! इस महापुरुष की महान् आत्मा को अपनी शरण दें
और मोक्ष प्रदान करे। हिंसा-पीड़ित दु:खी संसार में ऐसे संतों का निरन्तर
अवतरण करते रहे—यही अभ्यर्थना है।

हे युगपुरुष! तुम्हारी विदाई पर कवि सुमन जी की पंक्तियाँ दोहराना
सार्थक होगा—

'तुम आए तो मुन्द गई पलक, जब चले गए तो आंख खुली ।'

हे महामानव! आपकी अनुपस्थिति हम भाविकों को सदैव अनुभूति
देती रहेगी—आपका स्वाध्याय मंत्र ही आपका सान्निध्य प्रदान करेगा, आपकी
अमृत वाणी हमारे दिलो-दिमाग में आपके 'स्मारक' का रूप लेगी! आपको
कोटिश: प्रणाम!!

—सम्पादक, 'समाज-प्रवाह'
गणेश मार्ग, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, मुलुंड (पश्चिम) बम्बई-४०० ०८०

अद्भुत आत्म-शक्ति के धारक

☐ श्री जशकरण डागा

परम श्रद्धेय अखंड वाल ब्रह्मचारी, ज्ञान व क्रिया के महान् दीप स्तंभ, इतिहास मार्त्तण्ड पूज्य १००८ श्री हस्तीमल जी म० सा० के गुणो का नाम मात्र उल्लेख करने में अनेक विशाल ग्रंथ भर जावें, तो भी उनके गुणसमुद्र के समक्ष वह समस्त प्रयास एक बूंद मात्र होगा। ऐसे अपार गुणो के धारक दिव्य महापुरुष के लिए जितना लिखा जाय, उतना थोड़ा है। फिर भी जिनशासन प्रभावक, महान् उपकारी, जन-जन की आस्था के केन्द्र की पुण्य स्मृति में, भक्तिवश उनकी कुछ विशेषताओ को, जो मेरे ध्यान में आई है, श्रद्धा-सुमन के रूप में यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(१) **वीर शासन के अद्वितीय आचार्य**—भ० महावीर से अब तक ढाई हजार वर्ष से कुछ अधिक समय व्यतीत हो चुका है। इस अवधि में सैंकड़ो आचार्य हुए है किन्तु आपकी तरह एक भी आचार्य नहीं हुए कि जिन्होंने मात्र दस वर्ष की लघु वय में दीक्षा ग्रहण कर, वीस वर्ष की आयु में चतुर्विध संघ का नायक (आचार्य) पद प्राप्त किया हो और जो इकसठ वर्ष से भी अधिक समय तक आचार्य पद पर सुशोभित रहे हों। इसके अतिरिक्त पिछले करीब दो सौ वर्षो में (आचार्य जयमल जी म० सा० के वाद) कोई ऐसा आचार्य नहीं हुआ जिन्होंने ऐसा आदर्श संथारा स्वयं किया हो व दस दिन लम्वी अवधि तक संथारा चला हो।

(२) **वज्रादपि कठोराणि मृदुनी कुसुमादपि**—आदर्श आचार्य वीकानेरी मिश्रीवत् होते हैं। जैसे मिश्री इतनी कठोर होती है कि मस्तक पर प्रहार करें तो वह खून निकाल दे, और नरम इतनी कि पानी में डालो, तो पानीवत् हो जाये। ये दोनों विशेषताएँ आपके जीवन मे प्रत्यक्ष थी। आप आचार व अनुशासन पालन करने-कराने में वज्र की तरह कठोर थे, तो दीन-दुःखी, अज्ञानी जीवों के दुःख दूर कर कल्याण करने हेतु फूल और मक्खन से भी अधिक कोमल व दयावान थे। शुद्धाचार व अनुशासन के पालनार्थ जहाँ आपने अपने अन्तेवासी शिष्यों को भी कठोर दण्ड देकर संघ से अलग कर दिया, वहीं दूसरी ओर चतुर्विध संघ में एकता के लिए व जिनशासन उन्नति करे, इस हेतु करुणार्द्र हो आचार्य पद भी छोड़कर वृहद् श्रमण संघ में सम्मिलित हो गये थे। इस तरह आपके व्यक्तित्व में दृढ़ता और कोमलता का अनूठा संगम था।

(३) **सरल और उदार प्रकृति**—आप चतुर्विध संघ के नायक होकर भी बड़े सरल स्वभावी व उदार हृदयी थे। इसी कारण जो भी एक वार आपके

म्पर्क में आया, आपका श्रद्धालु भक्त बन गया। एक बार टोंक संघ की ओर आपको किन्हीं संत-सतियों के चातुर्मास टोंक स्वीकृत करने की कृपा करावें, ता विनती पत्र डाक से प्रेषित किया गया था, जिसमें बड़े क्षेत्रों की पेक्षा टोंक क्षेत्र छोटा होने से उसकी उपेक्षा न करने का अनुरोध किया गया । आचार्य श्री ने विनती पत्र पर ध्यान दिया और टोंक संघ आचार्य श्री के रणो में पहुँचे, इससे पूर्व भी आपने पत्र से ही विदुषी महासती मैनासुन्दरी जी ० सा० को टोंक चातुर्मास करने की आज्ञा भिजवा दी थी। टोंक संघ आचार्य ी की इस उदारता और महती कृपा से बड़ा प्रभावित हुआ।

इसी प्रकार एक बार सवाई माधोपुर से जयपुर वाया टोंक होकर ापको शीघ्र पहुँचना था, जिससे टोंक के बाहर से ही जाना था, किन्तु से ही टोंक के बाहर टोंक निवासी पहुँचे और आपसे विनती की, आपने टोंक कने की सहमति दे दी तथा समय कम होते हुए भी तीन-चार दिन टोंक रुके। स प्रकार आप बड़े सरल और दयालु प्रकृति वाले थे।

(४) **अप्रमत्त मोक्षलक्षी श्रुतधर**—जैसे दिशासूचक यंत्र कहीं भी रहे, सका झुकाव सदा ध्रुव तारे की ओर रहता है, जैसे नदिया किधर भी बहें, न्ततः उनका बहाव सदा समुद्र की ओर रहता है। वैसे ही हमारे आचार्य प्रवर हीं भी, कैसी परिस्थिति में रहें, सदा उनका लक्ष्य मोक्षप्राप्ति का रहा। आप तिम दिनों में भी जब रुग्ण थे, सदा सजग और अप्रमत्त रहे। आप पुनः-पुनः वा में रहे संतों से कहते कि—"कही मैं खाली हाथ न चला जाऊँ?" और चिकित्सकों व चतुर्विध संघ के अनुरोध को भी अन्ततः न मानकर तेले की पस्या के साथ में यावज्जीवन संथारा स्वयं ने ग्रहण कर लिया। संथारे में ाप दस दिन रहे। इस अवधि में आपकी धर्म दृढता, समता व शान्ति का अपूर्व ज आपके चेहरे पर दर्शनीय था। जैसे सूर्य सदा अपनी मर्यादा में भ्रमण रता है, वैसे ही आप सदा अप्रमत्त भाव से साधु-मर्यादा का आजीवन पालन रते रहे और सुख-दुःख, मान-अपमान, सब समभाव से सहन करते अपनी ाधना को अधिकाधिक तेजस्वी बनाते रहे। जैसे सूर्य लोक के अंधकार को नष्ट करता है, वैसे आप अज्ञान रूप महा अंधकार को अपने विशिष्ट श्रुत ज्ञान से नष्ट कर, ज्ञान का व्यापक प्रकाश फैलाने में अद्वितीय श्रुतधर थे। आपकी अप्रमत्त साधना और विशिष्ट श्रुत ज्ञान से अनेक जैनेतर भी प्रभावित हो, आपके भक्त बन गए। हमारे टोंक शहर के एक प्रमुख व्यक्ति एक बार लाल भवन, जयपुर मे, आपके दर्शनार्थ रात्रि में करीब ग्यारह बजे पहुँचे। उन्होंने देखा कि उस समय भी आचार्य श्री ध्यान और जप में लीन पाटे पर विराजमान थे। दूसरी बार वे प्रातः ४ बजे लाल भवन पहुँचे तो उस समय भी आचार्य श्री को साधना-लीन बैठे पाया। वे विचारने लगे—"अहो! आप कब सोते हैं? जब

आया तभी साधनारत पाया। वस्तुतः यह मानव नही महामानव है। उन्होंने अपनी शंकाओं का सहज समाधान आपके दर्शन कर पा लिया और वे आचार्य श्री के परम श्रद्धालु भक्त बन गये।

(५) **मूल मोक्ष-मार्ग के अनुपम प्रणेता**—मोक्ष का मूल मार्ग है- "सम्यग् ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्षः।" आपके जीवन में उत्तम ज्ञान और क्रिया दोनों का अनुपम संगम था। आपने सम्यग् ज्ञान और क्रिया के प्रचार-प्रसार हेतु इनके उत्तम साधन—स्वाध्याय और सामायिक बताकर, नगर-नगर और ग्राम-ग्राम मे घूमकर, सम्पूर्ण भारत में हजारों को, जो नाम मात्र के जैन रह गए थे, या उन्मार्गी हो गए थे, उन्हें भी मूल मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त किया। जब कभी कोई दर्शनार्थी आपके पास पहुँचता तो आप उसे प्रेमपूर्वक बोध देकर सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा और प्रसादी देते थे। आपका शरीर लघु और कृश होते हुए भी मोमबत्ती की तरह तेजस्वी था। जैसे मोमबत्ती स्वयं को जलाकर भी दूसरों को प्रकाश देती है, वैसे ही आप वृद्धावस्था में भी अन्तिम समय तक, बिना अपने शरीर की परवाह किए, निरंतर विहार कर, अज्ञान-अंधकार को मिटा, स्वाध्याय और सामायिक का प्रसाद जन-जन में बाँटते रहे।

(६) **अद्भुत आत्म-शक्ति के धारक**—अखण्ड बाल ब्रह्मचर्य पालन, सुदीर्घ कठोर साधना, नित्य नियमित मौनव्रत, जप-प्रभु स्मरण आदि कारणों से आपने अद्भुत आत्म-शक्ति विकसित कर ली थी। आपकी दृष्टि में अमृत और वाणी मे सिद्धि का निवास था। आप पर निम्न उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती थी—

"फकीरों की निगाहों में, अजब तासीर होती है।
जो नजरे महर कर देखे, खाक अक्सीर होती है।।"

इस उक्ति की पुष्टि में, यहाँ कुछ सत्य घटनाएँ दी जाती है।

(i) दक्षिण प्रान्त में सतारा नगरी है। आपने वहाँ विहार करते हुए कुछ व्यक्तियों को एक काले नाग को मारते देखा, तो आप उसे बचाने को आगे हो गए। मारने वालों ने आप श्री से कहा—'महात्मा, साँप किसी का बाप नही होता, जो किसी को बख्श दे। आपको दया आती है, तो आप ले जावें। आचार्य श्री ने तत्क्षण नाग को ओघे की सहायता से पात्र में ले, सुदूर वन में छोड़ दिया। नाग जाते समय आचार्य श्री से मंत्र सुन, उन्हें प्रणाम करके गया। ऐसा कहते हैं कि वह नाग अभय दान पाकर आप श्री का भक्त हो गया। आप श्री का जहाँ भी चातुर्मास होता, नाग प्रतिवर्ष एक बार आपके दर्शन करने आता। नाग का आना अंतिम समय तक चलता रहा। जब आपने निमाज में संथारा कर लिया तो वहाँ भी नाग आया और आप श्री से मंत्र श्रवण कर वापिस लौटने लगा तो एक भक्त ने उस पर लोहे की टोकरी डाल कर बंद कर

या। जब आचार्य श्री के निर्देश पर टोकरी हटाई तो नाग गायब हो चुका
। वही नाग अंतिम बार आचार्य श्री के अन्त्येष्ठी-स्थल पर भी देखा गया।
ाँ सायंकाल चिता के निकट आया और चिता की परिक्रमा कर, अनेक बार
ान किया, और फिर वह जंगल में विलीन हो गया।

(ii) इसी प्रसंग में दूसरी घटना हुई, टोंक के भाई-बहिनों के साथ में।
ाचार्य श्री की अन्तिम महा-यात्रा में सम्मिलित हो, जब शाम को हम टोंक
ाटने लगे तो आचार्य श्री की चिता पर एक बार पुनः गए। चिता तब भी
ल रही थी। कुछ दूरी पर (चिता की गर्मी के कारण) रुक गए तथा वही
ानस्थ हो आचार्य श्री के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करने लगे। तभी
ता से एक शोला पटाखे की आवाज करता हुआ सीधा हमारे पैरों के पास
ाकर गिरा। सभी आश्चर्यचकित हुए। वहाँ उपस्थित सभी बन्धुओं ने कहा—
ह आचार्य श्री का अंतिम आशीर्वाद आपको मिला है। वैसे चिता से शोले का
ठना अन्य कारण से भी संभव है पर ठीक हमारे ध्यान करने पर सीधा हमारे
क ही आकर निकट में गिरना—यह हम सबको प्रभावित करने का कारण
ान गया।

(iii) आचार्य श्री के प्रति हमारी अत्यन्त दृढ़ आस्था होने की एक
टना मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीलादेवी डागा से संबंधित है। वे बचपन से
ी हृदय रोग से ग्रसित रही है। अभी करीब चार वर्ष पूर्व दुर्लभजी अस्पताल
यपुर में जाँच करवाई तो चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ० अशोक जैन ने हृदय का एक
ाल्व पूरा खराब व एक वाल्व कुछ डेमेज (क्षतिग्रस्त) होना, यंत्रों से देखकर
ताया और ऑपरेशन करने की सलाह दी। इस ऑपरेशन कराने का निर्णय
े, इससे पूर्व जयपुर में विराजित पू० आचार्य प्रवर की सेवा में पहुँचे। उन्होंने
ब स्थिति सुनकर फरमाया—चिता न करें, धर्म साधना करते रहें, सब ठीक
ोगा। हम उनसे मंगलिक श्रवण कर घर आ गए। टोंक में आकर आचार्य श्री
के वचनों पर विश्वास कर ऑपरेशन कराना स्थगित रखा तथा टोंक के
चिकित्सक की ही सामान्य दवा लेना शुरू किया। देव, गुरु, धर्म पर श्रद्धा-भक्ति
का चमत्कार देखिये कि कुछ ही दिनों मे मेरी धर्मपत्नी, जो दिन में भी सोती
रहती थी, स्वस्थ हो घर का सारा कार्य करने लगी। आज वह बिलकुल स्वस्थ
है। चिकित्सकों को भी विना ऑपरेशन पूर्ण स्वस्थ होने पर आश्चर्य है। मैं इसे
आचार्य श्री की कृपा-दृष्टि का ही फल मानता हूँ।

अंत में ऐसे परमप्रतापी, युग प्रधान, परम ज्योतिर्धर, दिव्य पुरुष, जैनाचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० को सभक्ति शत-शत नमन करता हुआ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—डागा सदन, संघपुरा, टोंक (राज०)

अहिंसा, करुणा व दया के सागर

□ श्री रेणुमल जैन

टिमटिमाती एक ज्योति बुझ गई। नहीं, नहीं, ऐसा कहना भूल है। वह ज्योति हमें प्रज्वलित करने के लिए पैदा हुई और आज भी वह ज्योति हमारी धड़कनों में चमक रही है।

अहिंसा, करुणा व दया के अपार सागर आचार्य श्री की आत्मा से सदैव एक ही पावन-गंगा प्रवाहित होती थी कि सबका मंगल हो, सबका कल्याण हो व सभी की मुक्ति हो। सभी प्राणी सुखी हों। हर प्राणी राग, द्वेष व अभिमान से बचे, विभाव से स्वभाव की ओर लौटे—तभी वह सच्ची शांति प्राप्त कर सकेगा। ऐसी भावना के सागर थे आचार्य श्री !

आचार्य श्री का पवित्र सान्निध्य पाकर प्राणियों का जागतिक विरोध त्वरन्त अनुरोध में बदल जाता था। ऐसा था अद्भुत, अद्वितीय, आलोकमय व्यक्तित्व पूजनीय परमवंद्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का। इनकी चर्या संयम और तप से अनुप्राणित होती थी। चलते थे तो वे ईर्या-समिति के साथ, बोलते थे तो भाषा-समिति से संप्रेरित। कहने का तात्पर्य यह है कि उनका प्रत्येक क्षण जागृत अवस्था में बीतता था। ऐसा था आचार्य श्री का असाधारण विरल व्यक्तित्व !

आचार्य श्री का अत्यन्त प्रिय भजन था—

"दयामय ऐसी मति हो जाय।
त्रिभुवन की कल्याण कामना,
दिन-दिन बढ़ती जाय।
औरो के दुःख को दुःख समझूँ,
सुख का करूं उपाय।"

आपके मुख पर मधुर मुस्कान के साथ-साथ वाणी की मधुरता, हृदय नवनीत से भी अधिक कोमल, साधना निर्मल, तप, जप, त्याग, वैराग्य, संयम और ब्रह्मचर्य से निखरा आपका आत्मतेज अलौकिक था।

जो भी नवागन्तुक दर्शन हेतु आते, आचार्य श्री उनसे नैतिकता व सदाचार ... प्रश्न ही पूछते—

क्या नवकार-मंत्र की माला फेरते हो ?

क्या सामायिक करते हो ?

क्या कुछ समय के लिए स्वाध्याय करते हो ?

क्या व्रत-प्रत्याख्यान है ?

सात कुव्यसनों का क्या त्याग किया है ?

उनमें कथनी और करनी का अद्‌भुत साम्य था। आचार-विचार की रूपता का जैसा सामंजस्य आपके जीवन में मिलता है, वैसा अन्यत्र बहुत म। ज्ञान व क्रिया का अनोखा अभ्यास था।

घंटों आपके मुख-मण्डल की ओर निहारते रहने पर भी दर्शक-मन तृप्त ही होता था। अनिमेष दृष्टि से आपको देखते रहना ही मन को भाता था। पकी यह सौम्य मुखमुद्रा दर्शक को सदैव ही सौम्य एवं प्रसन्न बने रहने की बल प्रेरणा प्रदान करती थी।

आचार्य श्री फरमाते थे—आलोचना अन्य की नहीं, स्वयं की करो, तभी र्मों की सच्ची निर्जरा हो सकेगी।

आचार्य श्री फरमाते थे कि जिनवाणी या सद्‌ज्ञान सुनने का लाभ जहाँ ी मिले, वहाँ जाकर अपने समय का सदुपयोग करना चाहिए। आचार्य श्री की सी सद्‌भावना के कारण सभी सम्प्रदायों के जैन बन्धु आचार्य श्री की सेवा में डी श्रद्धा से आते थे।

आचार्य श्री अपनी प्रशंसा को पसन्द नही करते थे। आपके प्रवचन के श्चात् आपकी उपस्थिति में जब कभी आपकी स्तुति की जाती थी तो आप ाँखे वन्दकर ध्यानमग्न हो जाते थे।

ऐसा भी लोग कहते है कि आपके पैरों में पद्म का चिह्न था। यह पद्म ही आपकी ओजस्विता का प्रवल कारक था।

आचार्य श्री की संघस्थ आचार-संहिता शाब्दिक भर नही थी। उसका मूलाधार था—चरण-आचरण। जहाँ चरण सदाचार में परिणित होते है, तव वहाँ मंगलाचरण का प्रवर्तन होता है। आचार्य श्री मंगलाचरण के प्रवर्तक थे।

संस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध सूक्ति 'हितम् मनोहारि च दुर्लभं वच' अर्थात् ऐसे वचन दुर्लभ है जो हितकारी होने के साथ-साथ मधुर और मनोहारी भी हों। इस युक्ति के आदर्श रूप थे आचार्य श्री हस्ती। आपकी वाणी की एक अन्यतम विशेषता थी—मितभापिता।

वृद्धावस्था में भी प्रातःकाल से सायंकाल तक काष्ठपट्ट पर विराजे हुए आप चिंतन, मनन एवं लेखन-पठनादि कार्यों में सदा संलग्न रहते थे। स्वल्प आहार आपकी अप्रमत्ता मे सहायक रहता था।

आपकी प्रवचन-धारा गहराइयों को स्पर्श करती हुई अनेक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देती और अनेक तथ्यों को उजागर करती हुई प्रवाहित होती थी। आपके प्रवचन आध्यात्मिक-नैतिक प्रेरणाओं से परिपूर्ण होते हुए खंडन मंडन से दूर रहते थे। यह एक प्रमुख कारक है जिसके कारण आचार्य हस्ती अन्य-अन्य जैन-जैनेतर सम्प्रदायों में भी श्रद्धास्पद वने हुए थे।

सद्गुरु की गुणवत्ता पर विचार करते श्रीमद् राजचन्द्र का कथन है— आचार्य गुरु तीन प्रकार के होते हैं—काष्ठ—स्वरूप, कागज स्वरूप और प्रस्तर स्वरूप। इसमें काष्ठस्वरूप ही सर्वोत्तम है क्योकि वे ही संसार रूपी समुद्र को पार कर सकते है और औरों को भी करा सकते है।

ऐसे महान् आचार्य के लक्षण हैं—

"आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग।
अपूर्व वाणी परम श्रुत, सद्गुरु लक्षण योग्य ॥"

आचार्य श्री हस्ती इन लक्षणो पर खरे उतरते थे।

आचार्य श्री दूरदृष्टा साहित्य-साधकों मे से थे, जिन्होंने न केवल जैन आगमों की जनसाधारण के लिए सुगम सुवोध व्याख्याएँ और टीकाएँ कीं वरन् आलमारियो में वन्द पड़े पुराने हस्तलिखित ग्रंथों को व्यवस्थित कर संरक्षित करने की प्रेरणा दी। 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास' चार भागों मे प्रस्तुत करने के पीछे आचार्यश्री का इतिहास-वोध प्रेरक कारक रहा है।

जीवन-निर्माण में सहयोगी वनने के उद्देश्य से आचार्यश्री ने स्थान-स्थान पर छात्रावास खोलने की प्रेरणा दी। आपके प्रयत्नों से कई स्थानों पर धार्मिक पाठशाला चलने लगीं। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में भी आशातीत प्रगति हुई।

आपके उपदेशों से अ. भा. सामायिक संघ का गठन हुआ और व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से स्थान-स्थान पर सामायिक साधना की अलख जगी। सामायिक केवल जड सामायिक वनकर न रहे, वह सच्चे अर्थ मे मन की सामायिक वने, उससे हृदय स्वच्छ, वुद्धि निर्मल और प्रज्ञा स्थिर वने, सामायिक साधक अपने अन्तर से जुड़े, अपना आत्म निरीक्षण करे, ऐसा होना स्वाध्याय से ही सम्भव है। श्रुतज्ञान रूप 'स्वाध्याय' जुड़ने से जीव 'पर' पदार्थों की ओर

ाकर्षित नहीं होता है। 'स्वाध्याय' के द्वारा अपने 'स्व' से, आत्मा से जुड़ ता है।

आचार्य हस्ती ने शुद्ध आचार की पालना करते हुए जन-जन में उनके ल्याण के लिए अपने ज्ञान का प्रकाश पिछले छः दशक तक किया था। अत्यन्त ल्प समय में अनेक ग्रंथों व शास्त्रों का अध्ययन कर प्राकृत-संस्कृत भाषा पर ल्लेखनीय अधिकार कर लिया था। साधु आचार की पालना में किसी भी कार की स्खलना बाल-वय होते हुए भी नही होने दी।

मनुष्य जब जन्म लेता है तब वह रोता है लेकिन संसार हँसता है। संसार ं आकर मानव को ऐसा काम करना चाहिए कि महाप्रयाण के समय वह ँसता हुआ जाय और संसार उसके लिए रोता रहे। आचार्य हस्ती अपनी वशेषताएँ अपने साथ ले गये पर संसार के लिए वे प्रेरणाएँ छोड़ गये। उनकी वशेषताओं को पुनर्जीवित करना समाज का काम है। मेरी विनम्र हार्दिक श्रद्धांजलि।

—खीचन (जोधपुर)

वचनामृत

- जैसे गर्म भट्टी पर चढ़ा हुआ जल बिना हिलाये ही अशान्त रहता है, उसी प्रकार मनुष्य भी जब तक कषाय (विकार) की भट्टी पर चढ़ा रहेगा, तब तक अशान्त और उद्विग्न बना रहेगा।
- चरित्रवान मानव नमक है, जो सारे संसार की सब्जी का जायका बदल देते है।
- मन को दौड़ने से बचाने के लिए ज्ञान की लगाम चाहिए।
- अन्न छोड़ना ही तप नहीं है। अन्न छोड़ने की तरह वस्त्र कम करना, इच्छा कम करना, सग्रहवृत्ति कम करना, कषायों को कम करना भी तप है।

—आचार्य हस्ती

वृद्धावस्था मे भी प्रात:काल से सायंकाल तक काष्ठपट्ट पर विराजे हुए आप चिंतन, मनन एवं लेखन-पठनादि कार्यों में सदा संलग्न रहते थे। स्वल्प आहार आपकी अप्रमत्ता में सहायक रहता था।

आपकी प्रवचन-धारा गहराइयों को स्पर्श करती हुई अनेक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देती और अनेक तथ्यों को उजागर करती हुई प्रवाहित होती थी। आपके प्रवचन आध्यात्मिक-नैतिक प्रेरणाओं से परिपूर्ण होते हुए खंडन-मंडन से दूर रहते थे। यह एक प्रमुख कारक है जिसके कारण आचार्य हस्ती अन्य-अन्य जैन-जैनेतर सम्प्रदायों में भी श्रद्धास्पद वने हुए थे।

सद्‌गुरु की गुणवत्ता पर विचार करते श्रीमद् राजचन्द्र का कथन है—आचार्य गुरु तीन प्रकार के होते हैं—काष्ठ–स्वरूप, कागज स्वरूप और प्रस्तर स्वरूप। इसमें काष्ठस्वरूप ही सर्वोत्तम है क्योकि वे ही संसार रूपी समुद्र को पार कर सकते हैं और औरों को भी करा सकते हैं।

ऐसे महान् आचार्य के लक्षण हैं—

"आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग।
अपूर्व वाणी परम श्रुत, सद्‌गुरु लक्षण योग्य ।।"

आचार्य श्री हस्ती इन लक्षणों पर खरे उतरते थे।

आचार्य श्री दूरदृष्टा साहित्य-साधकों मे से थे, जिन्होंने न केवल जैन आगमों की जनसाधारण के लिए सुगम सुवोध व्याख्याएँ और टीकाएँ की वरन् आलमारियों में बन्द पड़े पुराने हस्तलिखित ग्रंथों को व्यवस्थित कर संरक्षित करने की प्रेरणा दी। 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास' चार भागों में प्रस्तुत करने के पीछे आचार्यश्री का इतिहास-वोध प्रेरक कारक रहा है।

जीवन-निर्माण में सहयोगी वनने के उद्देश्य से आचार्यश्री ने स्थान-स्थान पर छात्रावास खोलने की प्रेरणा दी। आपके प्रयत्नो से कई स्थानों पर धार्मिक पाठशाला चलने लगीं। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे भी आशातीत प्रगति हुई।

आपके उपदेशों से अ. भा. सामायिक संघ का गठन हुआ और व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से स्थान-स्थान पर सामायिक साधना की अलख जगी। सामायिक केवल जड़ सामायिक वनकर न रहे, वह सच्चे अर्थ में मन की सामायिक वने, उसमे हृदय स्वच्छ, वुद्धि निर्मल और प्रज्ञा स्थिर वने, सामायिक साधक अपने अन्तर से जुड़ें, अपना आत्म निरीक्षण करें, ऐसा होना स्वाध्याय से ही सम्भव है। श्रुतज्ञान रूप 'स्वाध्याय' जुड़ने से जीव 'पर' पदार्थों की ओर

आकर्षित नहीं होता है। 'स्वाध्याय' के द्वारा अपने 'स्व' से, आत्मा से जुड़ जाता है।

आचार्य हस्ती ने शुद्ध आचार की पालना करते हुए जन-जन में उनके कल्याण के लिए अपने ज्ञान का प्रकाश पिछले छः दशक तक किया था। अत्यन्त अल्प समय में अनेक ग्रंथों व शास्त्रों का अध्ययन कर प्राकृत-संस्कृत भाषा पर उल्लेखनीय अधिकार कर लिया था। साधु आचार की पालना में किसी भी प्रकार की स्खलना बाल-वय होते हुए भी नहीं होने दी।

मनुष्य जब जन्म लेता है तब वह रोता है लेकिन संसार हँसता है। संसार में आकर मानव को ऐसा काम करना चाहिए कि महाप्रयाण के समय वह हँसता हुआ जाय और संसार उसके लिए रोता रहे। आचार्य हस्ती अपनी विशेषताएँ अपने साथ ले गये पर संसार के लिए वे प्रेरणाएँ छोड़ गये। उनकी विशेषताओं को पुनर्जीवित करना समाज का काम है। मेरी विनम्र हार्दिक श्रद्धांजलि।

—खीचन (जोधपुर)

वचनामृत

- जैसे गर्म भट्टी पर चढा हुआ जल बिना हिलाये ही अशान्त रहता है, उसी प्रकार मनुष्य भी जब तक कषाय (विकार) की भट्टी पर चढ़ा रहेगा, तब तक अशान्त और उद्विग्न बना रहेगा।
- चरित्रवान मानव नमक है, जो सारे संसार की सब्जी का जायका बदल देते है।
- मन को दौड़ने से बचाने के लिए ज्ञान की लगाम चाहिए।
- अन्न छोड़ना ही तप नही है। अन्न छोड़ने की तरह वस्त्र कम करना, इच्छा कम करना, संग्रहवृत्ति कम करना, कषायों को कम करना भी तप है।

—आचार्य हस्ती

संथारापूर्वक समाधिमरण

□ श्री उदयलाल जारोली

जैन धर्म की स्थानकवासी परम्परा के महान् आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज (८२ वर्ष) ने निमाज (जिला पाली) में संथारा कर समाधिमरण पाया। उन्होंने १० अप्रेल को (पूर्णतः निराहार) उपवास किया। दूसरे दिन वेला, तीसरे दिन तेला कर लिया। तेले के पारणे हेतु सन्तो ने सामग्री जुटाई और पारणे के लिए आग्रह किया परन्तु उन्होंने इंकार कर दिया। सब सोच में पड़ गए। चतुर्विध संघ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका) ने विचार-विमर्श किया। आचार्य श्री की दृढ भावना का समादर करते हुए पारणे का आग्रह छोड़ दिया। आचार्य श्री ने संथारा पचख लिया।

समाधि-साधना से सब सनातन-हिन्दू परम्पराएँ परिचित है। पर्वत गुफादि में साधनारत ऋषि-मुनि ऐसी समाधि लगा लेते थे। आज भी कुछ साधु समाधि लेते है, भूमिगत हो जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने मरण-समाधि ली थी। वर्तमान काल में आचार्य विनोवा भावे ने भी समाधिमरण पाया था।

संथारा जैन दर्शन का एक पारिभाषिक विशिष्ट शब्द और अनुपम साधना है। प्रत्येक धर्मानुरागी जैन प्रतिदिन तीन मनोरथ का चिन्तन करता है। (१) वह दिन धन्य होगा जिस दिन मै समस्त आरम्भ-परिग्रह से निवृत्त होऊँगा। (२) वह दिन धन्य होगा जिस दिन मै तीन करण, तीन योग से (मन-वचन-काया से करना-करवाना-अनुमोदन करना) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रत धारण कर अप्रमत्त आत्म-साधना में लीन होऊँगा और (३) वह दिन धन्य होगा जब जीवन का अन्त समय जानकर संलेखना-सथारा करके समाधिमरण (पंडित मरण) को प्राप्त होऊँगा।

संथारा अर्थात् सम्यक् लेखा-जोखा। अपने समस्त (मनुष्य) जीवन में किसी भी वाह्य-प्रवृत्ति के अन्तर्गत मन-वचन-काया से कोई दोष-पाप लगा हो, किसी भी जीव के प्रति कोई वैर-विरोध-घृणा हुई हो, उसकी विराधना की हो, तो साधक प्रत्येक दोष का अन्तरावलोकन करके पश्चात्ताप करता है, सभी जीवों से क्षमा-याचना करता है, पूर्व में जो व्रतादि लिए उनमें कोई अतिचार-दोष लगे हों, उन पर पश्चात्ताप करता है, आत्मा से परे ध्यान रखा हो, ध्यान गया हो उसकी आलोचना करता है, अपने दुष्कृत की स्व-निंदा करके, धिक्कारकर आत्मा को परिष्कृत करता है। यह तो हुई संलेखना। वैसे, साधक ऐसा प्रतिदिन दो वार करता है।

संथारा इस मनुष्य जीवन की अन्तिम उत्कृष्टतम आत्म-साधना है। संलेखना करके उसकी तैयारी करता है। फिर सद्‌गुरु को वन्दन कर, परमात्माओं को परोक्ष वन्दन-स्मरण कर, सथारे का प्रत्याख्यान करता है। अन्न-जल आदि समस्त आहार का त्याग कर देता है। मौन हो जाता है। ध्यानस्थ हो जाता है। एकाकी हो, शान्त-दान्त-क्षमाशील हो आत्मा में लीन हो, जाता है। इस देह के छूटने तक निरन्तर वैसी समाधि में रहता है।

विशिष्ट साधना के बल से साधक को देह छूटने का समय ज्ञात होना आश्चर्य की वात नही है। जब साधक यह जान लेता है तभी सथारा करता है। ऐसी जानकारी अन्य किसी विशिष्ट साधक या गुरु से हो जाए तब भी संथारा किया जाता है। देह की अनित्यता-अशुचिता-क्षण भंगुरता का भान तो साधक को प्रति समय बना रहता है। फिर भी उसे निरर्थक मानकर उसे नष्ट नहीं करता, घात नही करता। आत्म-साधना में क्वचित सहायक मानकर, संयम-साधना के निर्वाह हेतु ही उसका रक्षण करता है। मै जीऊँ, खाऊँ, पीऊँ, भोगूं—इन्ही के लिए जीऊँ ऐसा भाव तो उसका कभी नही रहता। वह जीविएषणा से परे हो जाता है। उसे बहुत अनुकूलताएँ—स्वस्थ शरीर, साधन-सम्पन्नता, पद, यशकीर्ति, सभी कुछ मिल जाए तब भी उनके बने रहने की इच्छा, उन्हें भोगते रहने की कामना, उस हेतु से बहुत काल तक जीता रहूँ, ऐसी भावना नहीं रहती। इसी प्रकार मृत्युएषणा भी नही रहती। बहुत प्रतिकूलताएँ आजाएँ, शरीर में भारी वेदना हो जाए तब भी मर जाने की भावना (विलाप) कभी नही करता। सुख-दु.ख मे समत्व धारण करता है।

साधक दृढ़तापूर्वक विश्वास रखता है कि आत्मा तो अजर-अमर-अविनाशी है। ज्ञाता-द्रष्टा और अनुभवकर्ता है। शरीर के साथ उसका संयोग संबंध है। उसका वियोग निश्चित है। इसी कारण जब मृत्यु निकट आती है, तब वह उत्कट-आत्म-साधना मे जुटकर इस अमूल्य मनुष्य जन्म को सार्थक कर लेना चाहता है। वह मृत्यु को भी साधना का सहयोगी मानता है। उसका सहर्ष स्वागत करता है। स्वयं मृत्यु का वरण करता है। मृत्युंजयी हो जाता है।

ऐसी ही उत्कट-उत्कृष्टतम आत्म-साधन मे रत रहे आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज। निमाज के छोटे से गांव मे अपूर्व धार्मिक वातावरण रहा। सुशीला भवन में नीरव शान्ति छा गई। आचार्य श्री एकदम शान्त, गम्भीर, आनंदातिरेक मे, आत्मानुभव लीन रहे। पूरे ग्यारह दिन। उनके आस-पास साधु-साध्वी धर्मशास्त्रों का वाचन-मनन करते रहे। आस-पास और दूर-दूर से हजारो धर्मप्रेमी भाई-वहनों का सैलाव उनके दर्शन हेतु उमड़ पड़ा था। लम्बी-लम्बी कतारे लगी रहती। वाहर मैदान मे उनके गुणगान, व्याख्यान-श्रवण,

सामायिक-साधना में जप-तप में लीन रहे सैकड़ों धर्मप्रेमी-श्रद्धालु, सैकड़ों भाई-बहन। एक अपूर्व आनन्द व्याप्त हुआ।

आचार्य हस्ती एक सम्प्रदाय के प्रमुख अवश्य थे पर मत-पथ-सम्प्रदाय का हठाग्रह नहीं था। उदार, सरल, निर्मल व्यक्तित्व के धनी थे। उनका तटस्थ दृष्टि से ही हजारों नर-नारी उनके अनुगामी बने।

शरीर की अन्तिम स्थिति जान-देख-अनुभव करके उन्होंने स्वयं ही सथारे का निर्णय ले लिया। उनके अनुयायी तो लाखों रुपए खर्च करके भी उपचार कराने को तत्पर थे परन्तु वे शरीर का उपचार नहीं आत्मा का उपचार, आत्मा की शुद्धि के लिए उद्यत हो गए। अपने पाप दोषों की सलेखना (लेखा-जोखा और पश्चात्ताप-आलोचना) की, सभी आहारो का त्याग किया। पूरे ग्यारह दिन सतत आत्म-साधनारत, अर्थात् मौन (आंखे वद) शान्त, शरीरादि से परे-मनातीत-वचनातीत-कायातीत आत्मानन्द मे लीन रहे और नश्वर देह को त्याग दिया। धर्म-समाज की अपूरणीय क्षति हुई। ऐसे आत्म-ज्ञान-ध्यान-समाधि में लीन रही आत्मा को शत-शत वन्दन और भावपूर्ण श्रद्धा अर्पित है।

—जारोली भवन, विजय टॉकीज के पास, नीमच

वचनामृत

- जीवन-रक्षा के लिए विज्ञान का उपभोग करते हुए भी धर्म को नहीं भूलें। भौतिकता के राग में परमार्थ का अनुराग मंद न होने दे। चाहे कुबेर का भडार और अमरपुर की देवांगनाएँ भी सामने क्यों न आजायें, अपने दिल को मेरु की तरह अडोल रखें।

- मुख की लक्ष्मी विवेकपूर्ण वोलना है, सुपात्र एवं सुशीला नारी गृह की लक्ष्मी है, ज्ञान आत्मा की लक्ष्मी है, दान धन की लक्ष्मी है।

- चकमक से अलग नही दिखने वाली आग भी जैसे चकमक पत्थर से भिन्न है, वैसे आत्मा शरीर से भिन्न नही दिखने पर भी वस्तुत: भिन्न है।

- जो भोजन वुद्धि में पवित्रता लाने वाला हो, वात्सल्य भावना भरने वाला हो, वही भोजन हितकारी, सुखकारी है और आत्मा को शान्ति देने वाला है।

—आचार्य हस्ती

जब मरण महोत्सव बन गया

☐ श्री चाँदमल करणावट

वैशाख बदी ८, इक्कीस अप्रेल, १९९१ का वह महान् दिवस, जिस दिन जन-जन के प्रिय सन्त, श्रद्धा केन्द्र, साधनाशील. जीवन के उच्च आदर्श, इस युग की एक महान् विभूति, महान् अध्यात्मयोगी, जैन जगत् के ज्योतिर्धर आचार्य श्री हस्ती ने पंडित मरण पूर्वक नश्वरदेह का त्यागकर अमर जीवन पा लिया। आचार्य प्रवर का जीवन तो आदर्श था ही, उन्होंने पंडितमरण या समाधिमरण वरण कर मृत्यु को भी धन्य बना लिया। भेद विज्ञान का प्रत्यक्ष उदाहरण था उनका अन्तिम समय।

निमाज की ओर प्रस्थान :

राजस्थान के पाली जिले का निमाज ग्राम तीर्थधाम बन गया जब से आचार्य प्रवर ने इस धरती पर अपने चरण रखे। पाली का अन्तिम चातुर्मास पूर्ण कर यहाँ के उपनगरों में बिराजने के बाद तो उन्होंने निमाज पधारने की रट ही लगा रखी थी, जिससे निमाज स्पर्शने का उनका वचन पूर्ण हो जाय और उनके कथनानुसार ही उन पर यह कर्ज न रह जाय। निमाज पधारने के बाद कुछ दिनों तक अस्वस्थता रही। ज्वर, दमा, खांसी आदि बने रहे। इस अस्वस्थता में भी उनकी अपनी नियमित संयम चर्या चलती रही। पाली से निमाज के लिए विहार किया, तब से ही संथारे की भी लगन लगी हुई थी— 'मुझे कहीं खाली मत भेज देना।' इन्ही दिनों में आचार्य प्रवर आहारादि की सलेखना करते गये। आहार न लेकर अत्यल्प मात्रा में पेय ही लेने से शरीर क्षीण हो गया था, परन्तु आपकी आत्मिक शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गई।

संथारे की मगल वेला :

शरीर की दुर्बलता देखकर आपने इन्ही दिनों में चतुर्विध संघ की साक्षी से आलोचना, प्रायश्चित्त कर समस्त जीवों से क्षमायाचना करली थी। वे अत्यन्त भावपूर्वक सलखना करते हुए समाधिमरण की ओर अग्रसर हो रहे थे। अन्त में ९ अप्रेल, १९९१ को उपवास की तपाराधना शुरू करदी। संत वर्ग ने बहुत प्रयास किया पारणा कराने के लिए परन्तु दूसरे उपवास के दिन बेला करने की शर्त पर पानी लेना स्वीकार किया। चौथे उपवास के दिन १२ अप्रेल, ९१ को कुछ भी लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और संथारे के लिए पूछने पर प्रसन्न मन से अपनी स्वीकृति दे दी। तब विधिवत आपको तिविहार संथारा करवा

दिया गया। संथारा ग्रहण करने के वाद आपका मुख मण्डल प्रसन्नता से चमक उठा था। ६ अप्रेल, १९६१ से उपवास की तपाराधना शुरू करने के वाद तो शरीर स्वस्थ होता गया। ज्वर, खांसी, कफ आदि की व्याधि कूच कर गई। मुख-मण्डल का तेज उत्तरोत्तर वढ़ता गया। चेहरा दिनकर सा देदीप्यमान होता गया।

मृत्यु की वेला भयानक होती है अज्ञानियों के लिए। परन्तु ज्ञानी और संयमी आत्माओं के लिए वह महोत्सव बन जाती है। कोई आत्मा यदि जीवन के संध्याकाल में आलोचना, प्रायश्चित्त, क्षमायाचना तथा सम्पूर्ण पापो का परित्याग किये विना देह त्याग दे तो उसकी जीवन पर्यन्त की साधना विशेष अर्थवान नही वनती। परन्तु आचार्य श्री की जीवनभर की साधना इतनी महान् थी और अन्तिम समय की जागृति इतनी अधिक कि उन्होने अपने जीवन के संध्याकाल में पंडितमरण प्राप्त कर लिया। यह समाधिमरण महान् महोत्सव था जिसमे उन्होने जीवन की अन्तिम साधना पूर्ण कर साधु जीवन का तीसरा और अन्तिम मनोरथ सिद्ध कर लिया। अन्तिम समय में इतनी निर्लिप्तता, ऐसी समता और शाति, देखने वालों को महान् आनन्द प्रदान करती थी, तो स्वय साधक आचार्य को कितना आनन्द अनुभव हुआ होगा! इसे आचार्य प्रवर के मुखमंडल पर विराजित अद्भुत सौम्यता, शाति और समता के भावो से कोई भी दर्शनार्थी ज्ञात कर सकता था।

भेद विज्ञान का प्रत्यक्ष उदाहरण—

आचार्य प्रवर ने जैसे मृत्यु को निमन्त्रण दे दिया था। शास्त्र की यह गाथा—

> एगो मे सासओ अप्पा, णाण दसण संजुओ।
> सेसा मे वाहिरा भाव, सव्व संजोग लक्खणा।।

—आचार्य प्रवर के रोम-रोम में रम गई थी। वे मृत्युंजयी वनने की सफल साधना कर रहे थे। आत्मा अजर-अमर है और देह नाशवान, इसकी अनूठी व्याख्या वे अपने जीवन से कर रहे थे। भेदविज्ञान का प्रत्यक्ष पाठ पढा रहे थे। उसका सम्यक्‌वोध करा रहे थे। कष्ट तो उन्हे था, मरण की भी अनन्त वेदना वताई गई है, परन्तु जैसा उनके सन्त वताते थे, उन्होने कभी उफ तक नही की। सच है, आत्म-स्वरूप मे रमण करने वाली आत्मा को इस वेदना का अनुभव ही कहाँ होता है? नाशवान शरीर का मोह त्याग कर अविनाशी आत्म-स्वरूप मे रमण करते रहने का यह सुपरिणाम था। जैसे वे भूल चुके थे कि मैं शरीर भी हूँ। जैसे आचार्य प्रवर देहातीत वन गये थे। उनकी आत्मरमणता

इतनी प्रखर बन गई थी और अन्तर्मुखी स्थिति इतनी उच्च बन चुकी थी कि जिस-तिस स्थिति में भी वे पूर्ण समभाव मे अवस्थित रहे। कष्ट तो उसे हो, जो उसका अनुभव करे। जिसका मन ही आत्मस्वरूप में मगन हो गया हो, उसे कष्ट कैसा ? आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' में रम गये थे वे।

समता की सीमा :

अन्तिम दिनों में करीब एक माह पूर्व से ही आचार्य श्री ने जैसे भुला दिया था कि उनका भी कोई सम्प्रदाय है, वे उनके आचार्य हैं, उनके सन्त-सती है, श्रावक-श्राविकाएँ है। इसका प्रमाण यह है कि अहर्निश उनके नेत्र बन्द ही रहते थे ओर होठ भी बन्द। ऐसा नही कि वे बोल नहीं सकते थे, देख नही सकते थे। परन्तु आपने स्वेच्छा से इन व्यवहारों को त्याग दिया था, जिससे मोहदशा की कोई स्थिति उनके समक्ष उपस्थिति ही न हो। जैसे वे मोहातीत बन गये हों। ममता, मोह का इस प्रकार का त्याग मोह-विजय की एक सीमा ही थी। बोलने और देखने के अलावा वे किसी प्रकार का संकेत भी नही करते थे। केवल प्रत्याख्यान के सम्बन्ध मे पूछने पर स्वीकृति सूचक संकेत ही किया करते। हर्ष-विवाद, सुख-दुःख से जैसे उनकी आत्मा ऊपर उठ गई थी। हर पल चेहरे पर सुशोभित समता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण थी। अन्तर्हृदय की अपार समाधि, समता और शांति बनकर मुख-मण्डल पर व्यक्त हो रही थी।

ध्यान, मौन, जप की अन्त.साधना :

आप जीवन भर ध्यान, मौन, जप, स्वाध्याय, लेखन, पठन-पाठन में निरत रहे। अस्वस्थता की दशा में जब स्वाध्याय, लेखन-पठन-पाठन सम्भव नही रहा तो इनका स्थान ध्यान, मौन और जप-तप ने ले लिया। ध्यान और जप की यह साधना उनके संयमी जीवन का अग बन चुकी थी। माला अन्तिम समय तक भी उनके हाथ से एक क्षण भी अलग नही हुई। अस्वस्थता की दशा में माला में ही उनका उपयोग एकाग्र बना था। ध्यान मे ही निमग्न रहते थे वे।

मरण महोत्सव का एक पक्ष यह भी :

आचार्य श्री द्वारा संथारा ग्रहण करने से पूर्व भी नवकार मंत्र का जाप चलता रहा। संथारा करने के बाद से तो यह अखण्ड रूप से चालू रहा। त्याग-प्रत्याख्यान तप की झडी लगी रही। पर्युषण पर्व से भी विशेष उत्साह साधकों मे दृष्टिगत हुआ। इस अवसर की साक्षी रूप महान् आचार्य के दर्शनों की तीव्र

इच्छा लिए विभिन्न सम्प्रदायो के आचार्यकल्प, सन्त-सती वर्ग का आगमन होता रहा। निमाज जैसे छोटे से ग्राम का कण-कण तप-त्याग से ओतप्रोत बन गया था।

रविवासरीय अवकाश के दिन १५-१५, २०-२० हजार दर्शनार्थियो की उपस्थिति रही। लाखों लोगो ने आचार्य प्रवर के पावन दर्शनो का लाभ प्राप्त कर अपने आपको धन्य माना। संथारा पूर्ण होने के बाद दाह-संस्कार के दिन तो लगभग एक लाख दर्शनार्थियों की उपस्थिति रही। इससे पूर्व तो प्रतिदिन ही सैकड़ों, हजारों की संख्या में दर्शनार्थी भाई-बहिनों का तांता लगा रहा। संथारा ग्रहण करने के बाद से यह सख्या कई गुना बढ़ गई। सूर्योदय से ही लम्बी कतारो में दर्शनार्थी अपने परमप्रिय आचार्य के दर्शनो के लिए लालायित रहते। त्याग, तप की कोई जाति नही होती तो त्यागी आत्मा के दर्शनार्थियों मे भी जात-पात का भेद नहीं रहता। हिन्दू-मुस्लिम आदि सभी जाति और धर्मों के लोगों की भारी भीड लगी रहती थी। दर्शनों के लिए दर्शन कर दर्शनार्थी तृप्त नही होते और अनेक बार कतारों मे पुनः-पुनः शामिल होकर पुनः-पुनः दर्शन कर अपने को धन्य मानते थे।

अध्यात्म महोत्सव की एक अद्भुत लहर :

आचार्य प्रवर के पंडित मरण महोत्सव में ऐसे बन्धु भी सक्रिय हुए जिनके हाथ खून से रंगे रहते थे। निमाज ग्राम के व्यावसायिक कत्लखाने चलाने वाले बन्धुओं के मानस भी बिना किसी की प्रेरणा के इस महान् पवित्र प्रसंग के वातावरण में बदल गये। "ऐसे महान् योगी पुरुष जहाँ जीवन को पवित्र बनाने हेतु मृत्यु से जूझ रहे हों वहाँ हम जीव हिसा का घृणित कार्य करें, यह हमारे लिए शोभास्पद नही। अत जब तक ये महान् सन्त निमाज की धरती पर विराजे रहेगे, हम कत्लखाने बिल्कुल बन्द रखेगे।" ये विचार व्याख्यान सभा में उनके एक प्रमुख मुसलमाल भाई ने रखे और अन्य बन्धुओ के संकल्प से धर्मसभा को अवगत कराया। धर्मसभा में उनका सम्मान किया गया। उनके इस त्याग भावना की सभा मे उपस्थित विशाल जनसमुदाय ने सराहना की। इस प्रकार इस महान् उत्सव में सैकड़ों जीवो को अभयदान मिला और १०-१२ दिन तक कत्लखाने स्वेच्छा से बन्द रखे गये। इसी क्रम मे करीब ३५० जीवों को ट्रक में भरकर कत्लघर मे ले जाया जा रहा था। सूचना मिलते ही धर्मसभा में उपस्थित भाई-बहनों ने उन्हे मुत्यु के मुंह से बचाने के लिए मुक्त हाथों से धनराशि दान की व सभी जीव बचा लिए गये और उन्हे जोधपुर अमर बकराशाला भिजवाने का निश्चय किया गया।

कीर्तिमान :

जैन इतिहास के विगत १००० वर्षों के सुदीर्घकाल में यह पहला अवसर था जब १६ वर्ष की वय में आचार्य हस्ती ने आचार्य पद का कार्यभार सम्भाला और २० वर्ष की अल्पायु में आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। यह भी प्रथम अवसर ही था जब लगभग दो शताब्दी के अन्तराल के साथ आचार्य हस्ती ने १३ दिन के तप संथारे की विशुद्ध आराधना सम्पन्न की।

आचार्य श्री की संयम-साधना संयमी आत्माओं के लिए आदर्श थी, अनुकरणीय एवं स्पृहणीय थी। अप्रमत्त जीवन के उदाहरण थे आचार्य श्री। मौन साधना उनके जीवन का अंग थी। मितभाषी थे वे। स्वाध्याय, धर्मध्यान के विषय में संक्षिप्त पूछताछ कर और प्रेरणा कर दर्शनार्थीगण से बात समाप्त कर देते थे और अपने लेखन-पठन में लग जाते थे। सात्विक आहार, वह भी अत्यल्प। आत्म-साधना में श्रमशील बने रहकर वे श्रमण का पद सार्थक कर रहे थे।

यह तो उनकी आत्मिक साधना का प्रबल पक्ष था, परन्तु वे केवल अपने लिए ही नहीं जिए, उनका जीवन प्राणिमात्र के हितार्थ समर्पित था। समाज निर्व्यसनी बने, समाज से हिसादि दोष दूर हों, ज्ञान का प्रकाश पाकर स्वावलंबी बनकर समाज क्रिया के मार्ग मे अग्रसर बने, इसके लिए उन्होंने समाज को स्वाध्याय और सामायिक का सन्देश दिया।

'गुरु हस्ती के दो फरमान, सामायिक स्वाध्याय महान्।'

वर्षों के कठोर अध्यवसाय से उन्होंने आगम और ग्रन्थों का विशाल साहित्य निर्माण किया। आगमों की उनकी टीकाएँ, और 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के विशालकाय ४ भाग उनकी अनवरत स्वाध्याय साधना व कठोरश्रम का परिणाम है। यह उनकी भारतीय इतिहास और जैनधर्म को मौलिक देन है। दिगम्बर–श्वेताम्बर जैन विद्वानों का एक संगठन—अ. भा. जैन विद्वत परिषद् के रूप में, अखिल भारतीय महावीर श्राविका समिति, स्वाध्यायी संघ, सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल आपकी प्रेरणा से स्थापित संस्थाएँ समाज-सेवा में निरत हैं। जैन विद्वानों को तैयार करने हेतु श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ जलगाँव, जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान जयपुर जैसी आचार्य श्री की प्रेरणा से स्थापित संस्थाएँ, जैन विद्वानों के निर्माण में संलग्न है। स्वाध्यायी वर्ग की विशाल वाहिनी उनकी अमर देन है। मुनि और गृहस्थ के बीच का गठित साधक वर्ग भी आज आचार्य देव की कृपा से अपना जीवन त्यागमय बना, समाज के लिए भी उपयोगी बना हुआ है।

वजनी वना दिया और फिर समाचार लेता रहा—उनके संथारे के और अ में उनकी पार्थिव काया के नहीं रहने के । सब कुछ, क्या से क्या हो गया ?

ऐसे शुद्ध साधुमना आचार्य प्रवर को मेरी विनम्र श्रद्धा-वंदनांजलि ।

—३५२, श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर-३१३००१

अपनी हस्ती के अद्वितीय आचार्य

☐ डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया

आचार्य श्री रत्नचन्द्र स्मृति व्याख्यान माला, जयपुर के अन्तर्गत मुझे आमन्त्रित किया गया था । बात तब की है । स्थानीय रवीन्द्रमंच पर व्याख्यान माला का मेरा तीसरा व्याख्यान १८ नवम्बर, १९८३ को रखा गया था । संयोजक श्री डॉ. नरेन्द्र भानावतजी ने मुझे आचार्य श्री के दर्शन कराये ।

दैदीप्यमान ललाट, विस्फारित नेत्र-मण्डल, मुस्कराती प्रभावक मुद्रा में आचार्य श्री की वंदना कर मुझे परम सुख और सन्तोष की अनुभूति हुई। संक्षिप्त चर्चा को सुन और समझकर मै उनके वैदुष्य और वात्सल्य-निधि से पूर्णत. अभिभूत हो गया ।

पीपाड़ शहर में दूसरी वार आचार्य श्री का सुखद सान्निध्य पाकर मैं धन्य हो गया । अपार जन-समूह स्त्री-पुरुष और वालवृन्द सभा-स्थल को समृद्ध बनाए हुए थे । इतने बड़े जनकुल में विना 'माइक' के वोलना प्रायः असम्भव फिर मुझ जैसे अदना व्याख्याता के लिए यह एकदम दुरुह और दुष्कर । मैंने आचार्य श्री के चरणों मे अपनी वंदना व्यक्त की और वोलने के लिए आशीर्वाद लेकर वोलने को वैठा तो आचार्यजी के एक हाथ के संकेत का प्रभाव कि सभा-भवन नि.शव्द । तव आचार्य श्री ने आशीर्वाद देकर मुझे किया था । सभा में उत्पन्न नि:शव्दता [illegible] कर दिया कि आचार्य श्री के प्रति सच्ची श्रद्धा-भक्ति [illegible] थी । आचार्य अनुशासन-प्रियता असाधारण थी ।

विद्वानो के प्रति उनमें अपार [illegible] रहता आध्यात्मिक जगत् के बेजोड़ व्यवस्थापक [illegible] के प्रभावशाली श्रेष्ठि तथा लोकप्रिय विधायक [illegible]

की प्रेरणा से श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ आदि उपयोगी और कल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वित किया था तब।

विद्वत् परिषद् द्वारा मुझे तब आमंत्रित किया गया था। सारी प्रगति को देख-सुनकर उस महान् आत्मा की आत्मोदयी आयोजन-शक्ति को देखकर मैं दंग रह गया। पकड़ की बात यह है कि आचार्य श्री मात्र बातों के विशारद नहीं, अपितु वे जन-कल्याणकारी कार्यक्रमों के प्रयोक्ता थे। आचार्य श्री लीक पर कभी नहीं चले, उन्होंने आगामी वातायन से नए-नए मार्ग स्थिर किए और जीवन भर चलते रहे, ठहरे कहीं कभी नहीं। 'चरैवेति चरैवेति' की उक्ति को चरितार्थ करने वाली पद-यात्री प्रवृत्ति आचार्य श्री की जीवनचर्या को जिनधर्मी प्रयोगशाला बना गयी। ऐसे महान तपस्वी, दिव्यद्रष्टा, साहित्य-स्रष्टा तथा सन्मार्ग-दिवाकर को मेरी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित है।

—निदेशक, जैन शोध अकादमी
३९४, सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.)

हस्ति उवाच-सिद्धं शरणं गच्छामि।

☐ श्री केशरीकिशोर नलवाया

मौत उसकी है करे जिसका जमाना अफसोस।
यूं तो दुनिया में सभी आये हैं मरने के लिये॥

परम पूज्य आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. ने तेले की उग्र तपस्या के पश्चात् ८२ वर्ष की आयु में दिनांक १२-४-९१ दोपहर १२ बजकर ४५ मिनट पर निमाज (जिला-पाली) में स्वेच्छापूर्वक सचेत अवस्था मे तिविहार संथारा लिया।

अखण्ड बाल ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेव ने १० वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की और ज्ञान-ध्यान की अखण्ड साधना में लीन हो गये। प्रकर्ष बुद्धि के धारक मुनि हस्ती, जैन, बौद्ध एवं वैदिक षट्दर्शनों का गहन अध्ययन, मनन और अनुशीलन कर प्रकाण्ड पंडित बन गये। उनकी ब्रह्मचर्य की साधना सफलता-पूर्वक सम्पन्न हुई।

उत्कृष्ट ध्यान योगी पूज्य गुरुदेव ने अपनी जीवन दिशा को तपाराधन एवं धर्म-ध्यान की ओर प्रवृत्त कर दिया। आपके ज्ञान, ध्यान और तप की त्रिवेणी ज्ञान, दर्शन, चारित्र की तीन धाराओ मे प्रवाहित होने लगी। आपकी ओजस्विता से प्रभावित होकर चतुर्विध संघ ने आपको २० वर्ष की अल्पआयु में आचार्य पद पर पदासीन कर दिया। इस लघुवय में आचार्य पद को सुशोभित करने वाले ये प्रथम साधु थे। सैकड़ो सालो के जैन इतिहास का यह एक असाधारण कीर्तिमान था।

सामायिक, स्वाध्याय के प्रवल समर्थक आचार्य देव ने मुमुक्षु जीवो के कल्याणार्थ धर्मोपदेशना और सत्साहित्य निर्माण की ओर अपनी चेतना को लगा दिया। जैन शास्त्र जो अर्धमागधी प्राकृत गाथा में उपलब्ध थे, उनका सर्व जन-हिताय, सरल सुबोध भापा मे अनुवाद करने का आपने बीडा उठाया और उसे पूर्ण किया। "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" नामक प्रामाणिक ग्रन्थ की रचना की।

आचार्य श्री उत्कृष्ट चारित्र धर्म के धारक थे। आपने राष्ट्रीय एकता एवं विश्व-शाति के लिये जनता-जनार्दन को आजीवन प्रतिबोध दिया। विनम्रता की तो आप साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। वोली में इतनी मिठास कि सामने वाला स्वतः नतमस्तक हो जाता था।

आप से मेरा पहला साक्षात्कार तव हुआ जव मैं सन् १९४०–४१ ई० मे छोटी सादड़ी जैन गुरु कुल का अध्ययन समाप्त कर जैन रत्न विद्यालय भोपालगढ (जोधपुर) मे अध्यापन हेतु गया। आचार्य प्रवर उन दिनों भोपालगढ़ मे ही विराजमान थे। प्रथम दिन जब मेरी आपश्री से वातचीत हुई और जब आपने जाना कि जीवन के कर्म क्षेत्र में मेरा यह प्रथम कदम ही है तब आपने धीर गम्भीर वाणी मे मुझे जो वात कही, वह मेरे जीवन के लिये मील का पत्थर सावित हुई। वे शब्द थे—"कार्य की सफलता तीन वातों पर निर्भर करती है। १. उचित ज्ञान, २. भरपूर प्रयत्न, व ३. अविचलित धैर्य। लक्ष्य की पूर्ति इन तीनों से हो सकती है, केवल एक से नहीं।" गुरुदेव ने अपने जीवन का निचोड़ ही इन शब्दो में रख दिया था। एक मिनट की वात ने मेरा मन मोह लिया। ।च। श्री मृदुभापी ही नहीं मितभापी भी थे। अतः इतना कह कर आप अपने न-ध्यान मे लग गये। मुझे ऐसा लगा मानो गुरुदेव ने सागर-तल से मोती कर मेरी झोली मे डाल दिये हों। मै चुपचाप नमन कर अपने स्थान पर लौट आया। दो वर्ष विद्यालय में सेवा दी, पश्चात् मै जम्मू (कश्मीर) जैन स्कूल में प्रधानाध्यापक वनकर चला गया। सन् १९४५ में मैं पुनः जैन रत्न विद्यालय भोपालगढ़ में प्रधानाध्यापक वनकर आ गया। सन् ४७ तक मैं यहाँ

रहा। इस बीच कई बार आचार्य श्री का सान्निध्य और सामीप्य प्राप्त हुआ। तीन-चार साल बाद जब मैंने गुरुदेव के दर्शन किये, तत्काल मुझे पहचान गये। मेरे धर्म-ध्यान के बारे में जानकारी ली। 'जिनवाणी' का सम्पादन भी मुझे दे दिया गया। सन् १९४८ में मैं छोटी सादड़ी गुरुकुल में आ गया।

आज से १२ वर्ष पूर्व जब पूज्य श्री का चातुर्मास इन्दौर में हुआ तो मुझे आचार्य श्री का सान्निध्य पुन. प्राप्त हुआ। ३३ वर्ष के अन्तराल के बाद भी गुरुदेव ने मुझे देखते ही पहचान लिया। चर्चावार्ता हुई। मै दर्शन-प्रवचन सुनने रोजाना जाने लगा। इसी चातुर्मास में पूज्य श्री ने एक त्रिवेणी की रचना दी। ज्ञानवान, धनवान और चारित्रवान व्यक्तियों का यदि मिलन करवा दिया जाय तो दुनिया का कठिनतम कार्य सरलतम बन सकता है। इन विचारों को क्रियान्वित करने के लिये "श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद" की स्थापना की गई। डॉ. नरेन्द्र भानावत इस परिषद् के महामन्त्री बनाये गये। गुरुदेव के आशीर्वाद और मार्ग-दर्शन में इस परिषद् ने आशातीत तरक्की की और अपने नाम को सार्थक कर दिखाया। इस परिषद् के माध्यम से मैं भी गुरुदेव के सान्निध्य में प्रति वर्ष आने लगा। अब उनकी कमी अखरेगी। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, पूज्य श्री के सत् साहित्य का प्रकाशन सतत रूप में कर रहा है। अनेकानेक संस्थाओं और विद्यालयों को अपनी प्रेरणा का सम्बल मिलता रहा है। जिससे वे चहुँमुखी प्रगति कर सके है। आचार्य श्री ने ६२ वर्ष तक आचार्य पद संभाल कर संघ को स्थायित्व दिया। समाज को अनुशासन और धर्म को दृढ़ आस्था दी। इस तरह ८२ वर्ष की अवस्था में आप सिद्ध भगवान की शरण में प्रस्थान कर गये। समाधिमरण द्वारा मुक्तिधाम प्राप्त कर लिया। हस्ती जैसी हस्तियो को मद्दे नजर रखकर ही किसी शायर ने लिखा था कि—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है?

इन्ही शब्दों के साथ मै अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—५२८/७, नेहरू नगर, इन्दौर (म० प्र०)

ईश्वरीय गुणों के पुंजीभूत प्रभावक सन्त

☐ डॉ० आर० के० अग्रवाल

श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज सा. का स्वर्गवास जैन समाज

की अपूरणीय क्षति तो है ही, पर इतर समाज की जीवन-शुद्धि के लिए भी उनके उपदेश वड़े प्रभावी और ज्ञानवान रहे। पिछले पाली चातुर्मास में ही डॉ. नरेन्द्र भानावतजी के निमन्त्रण पर मुझे उनके दर्शनों का सुयोग मिला तब विद्वत् परिषद के जैन विद्वानों का भी मुझे सान्निध्य मिला। एक धर्मसभा में डॉ० भानावतजी ने मेरा व्याख्यान भी रखवाया तब मैंने स्वस्थ शरीर और व्यसन-मुक्ति विषय पर अपनी कुछ जनोपयोगी व्यावहारिक वाते रखी जो सभी द्वारा वड़ी प्रशंसित रहीं। इससे मुझे भी वड़ी प्रेरणा मिली।

दिन को मैंने वहां पर एक प्रदर्शनी भी अपने द्वारा खींचे गये चित्रों की लगवाई जो मुख्यतः कैंसर, क्यों व कैसे होता है तथा विकलांगों के जीवन को लेकर थी। लगभग दो सौ चित्रों की इस प्रदर्शनी को सभी धर्म प्रेमियों ने देखा और वड़ी रुचि दिखाई।

इस अवसर पर आचार्य श्री भी वहाँ विराजे हुए थे। उन्होंने मुझे बुलाकर मेरे इस कार्य को जन-जन के लिए वड़ा उपयोगी और आवश्यक वताया और कहा कि समय-समय पर ऐसी प्रदर्शनियाँ और व्याख्यान आयोजित रहने चाहिये।

इस अवसर पर मैंने निवेदन किया कि यदि जैन जवानों की जमात के जँच जाय और वे जिम्मेदारी सभाल ले तो जनता, जमाना और जहान को वदल सकते हैं। विश्व में एक जैन समाज ही ऐसा समाज है जो दूसरो के दुःख को अपने ऊपर लेकर सुख को वांटने में अग्रसर रहता है। सच्चे जैनियों में किसी प्रकार का कोई दु.ख मैंने नहीं पाया। वे शरीर से अधिक आत्मिक धर्म को महत्त्व देते है इसीलिए मैं अक्सर कहा करता हूँ—

Where there is JAIN, there is no PAIN.

इस पर आचार्य श्री ने प्रमोद भाव व्यक्त किया।

आज आचार्य श्री पार्थिव रूप से हमारे वीच नहीं है, पर उनका आशीर्वाद व्यक्तिगत एवं सामाजिक कर्मक्षेत्र के लिये अमूल्य धरोहर वना हुआ है। वे सहज, सौम्य और सरलमना साधु थे, और ईश्वरीय गुणों के पुंजीभूत प्रभावक सन्त थे।

—सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं सर्जन, मेडिकल कॉलेज, सरदारपुरा, उदयपुर

इस युग के (महा) वीर सन्त

□ श्री मोतीलाल सुराना

मृत्यु अवश्यंभावी है, यह सभी जानते हैं। जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा ऽर मृत्यु का सामना कुछ तो वीरता के साथ करते हैं, पर ज्यादा लोग कायरता के साथ मृत्यु का सामना करते हैं।

हमारा सबसे बड़ा त्यौहार पर्युषण पर्व है। उन आठ दिनों में हम सभी घर के सदस्य स्थानक में जाकर साधुजी, साध्वीजी या उनकी अनुपस्थिति में स्वाध्यायियों से अंतगड़ सूत्र सुनते हैं जिसमें उन महान् आत्माओं का वर्णन है जिन्होंने अपना अंतिम समय एकान्त में जाकर धर्म साधना में बिताया तथा सभी जीवों से खमतखामना कर संथारा पूरा कर अपना जीवन सफल बनाया। बड़ी उम्र वालों को तो वह सब सुनकर अच्छा लगा, भावना भी शुद्ध हुई, पर नई पीढी वालों ने उस सारे वर्णन पर आश्चर्य प्रकट किया तथा अचंभे के वातावरण में सोचा, क्या ऐसा भी हो सकता है ?

पर जब निमाज (राजस्थान) में नई पीढ़ी वालों ने सन् १९९१ में भी वही सब अपनी नजरों में देखा तो लगा कि जब आज के युग में भी ऐसे वीर महापुरुष हैं तो उस समय भी होंगे, इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है ?

आप सभी को तो यह बात मालूम ही है कि ८१ वर्ष की उम्र में आचार्य प्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने तेला किया, खमतखामना कर संथारा ग्रहण किया तथा इस प्रकार अपना जीवन सफल बनाया।

आचार्य श्री के सबसे पहले मैने मेरी जन्मभूमि रामपुरा में दर्शन किये थे। इस बात को ५८ वर्ष बीत गये। तब मै १६ साल का था। महारानी संयोगिता बाई हाई स्कूल में १०वीं क्लास में पढ़ता था। मैंने ऐच्छिक विषय संस्कृत लिया था। उस समय आचार्य श्री लगभग २३ वर्ष के थे। दर्शन के समय बातचीत में उन्हें लगा कि मैं भी संस्कृत का छात्र हूँ तो उन्होंने मेरे हाथ में जो भंडारकर की प्रथम पुस्तक संस्कृत की थी, लेकर देखी थी। आचार्य श्री भी शास्त्रज्ञान के साथ-साथ उन दिनों पं. दु:खमोचनजी झा से संस्कृत का ज्ञानाभ्यास कर रहे थे।

उसके बाद तो कई स्थानों पर दर्शन करने का अवसर मिला तथा उनकी प्रेरणा से स्वाध्यायी भी बनकर भारत के कई नगरों में पर्युषण पर्व के दिनों में प्रवचन देने गया था।

आज भी वे सब दृश्य नजर के सामने चलचित्र की तरह घूम जाते हैं।

इस युग के (महा) वीर सन्त आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज सा. को कोटि-कोटि नमन!

—१७/३, न्यू पलासिया, इन्दौर–४५२ ००१

धर्माकाश के उज्ज्वल नक्षत्र

☐ श्री मिट्ठालाल मुरड़िया

संसार में अनेक प्राणी जन्म लेते है और काल के प्रवाह में बह जाते है, किन्तु कुछ ऐसी विशिष्ट आत्माएँ होती है जो देश-काल की परिस्थितियो से ऊपर उठकर अपने आत्म-कल्याग के साथ-साथ लोक-जीवन का भी उत्थान कर जाती हैं, ऐसी ही विशिष्ट आत्माओं में आचार्य श्री हस्तीमलज म० सा० की गणना की जा सकती है।

चतुर्विध संघ के आप महान् आचार्य और यशस्वी सन्त थे। प्रखर बुद्धि के प्रत्युत्पन्नमति थे, आगमों के पारगत पण्डित थे, कुशल वक्ता और वीर, वीर गम्भीर थे, स्वयं महान् थे और महानता के उपासक थे। आपकी स्मरण-शक्ति वेजोड थी। आप वहुश्रुत और प्रतिभा के खजाने थे। आप विचार-चिन्तन के शिरोमणि और धर्म के ज्योति-स्तम्भ थे। आप एक लम्बे समय से देश के कोने-कोने में ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की ज्योति जगा रहे थे। जन-जीवन में चेतना फैला रहे थे। आप 'उत्तराध्ययन' के अमर गायक और जीवन के गहरे पारखी थे। आपने राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु और कर्नाटक में लाखों व्यक्तियों को स्वाध्यायी बनाकर धर्म की ओर उन्मुख किया।

आपके दिल में समाज के लिए एक पीड़ा, एक दर्द, एक तड़पन और एक टीस थी। आप चाहते थे कि समाज का वच्चा-वच्चा सामायिक करे, स्वाध्याय करे और न्याय-नीति पर चले। भौतिक चकाचौंध से परे रहकर सच्चे इन्सान वने। प्रलोभन में आकर गुमराह न हों।

आप फक्कड़ और मस्तमौला थे। एक घुमक्कड़ संताचार्य थे। न किसी का लेना, न किसी का देना, न कोई लोभ, न कोई लालच, न कोई ममत्व, न किसी की निन्दा और न किसी की प्रशसा। आपके पास जो कुछ था, साफ था, स्पष्ट था, इसीसे आपके चारित्र्य-कलश से नवनीत छलक रहा था। आपके व्यक्तित्व की आभा और चमक के तेज के सम्मुख कोई सामान्य व्यक्ति ठहर नही सकता था। एक वार जिस पर आपकी दृष्टि पडकर गड़ जाती थी, वह निहाल हो जाता था। लोगों का विश्वास था कि आपकी वाणी फलती और फूलती थी। आपका एक ही महामंत्र था—सामायिक करो स्वाध्याय करो।

इस युग के आप महान् आचार्य थे, रत्नवंश की कीर्ति थे, जैन धर्माकाश के आप उज्ज्वल नक्षत्र थे, चतुर्विध संघ के मौलि मुकुट थे, धरा के धरोहर थे, अदम्य उत्साही थे, निरन्तर किसी न किसी लेखन कार्य में रत रहते थे। सभी पवित्रताओं, उत्तमताओं और मंगल के स्रोत थे। अपनी आन, बान और शान के चतुर चितेरे थे। महाव्रतो की मर्यादाओं में डूबे हुए थे, संकल्पों के महासागर थे, समाज के ज्योतिपुञ्ज थे, महाप्रतापी, महायशस्वी और स्वाध्याय का कीर्तिमान स्थापित करने वाले महामना थे। 'प्रबन्ध पट्टावली' और 'जैन धर्म के मौलिक इतिहास' (भाग १ से ४) के स्रष्टा थे। आपकी प्रेरणा से कई संस्थाओं का निर्माण हुआ।

आप स्वभाव के बड़े निर्मल और सरल थे, मक्खन की तरह कोमल और मोम की तरह दयार्द्र थे, सहज स्नेह झलकता था। ऐसे अनूठे सुपुत्र को पाकर पिता श्री केवलचन्दजी वोहरा और माता श्री रूपादेवी धन्य हो गई।

जब आप चलते थे तो पृथ्वी गूंजती थी, बोलते थे तो गगन निनादित होता था। जब आप साधनारत रहते थे तो एक अपूर्व वातावरण की सृष्टि होती थी। आपके धर्म के जयघोष से खेतों में लालिमा, फलों में रस भरता था और फूलों में महक उठती थी। तब गुलाब, चमेली और चम्पा झूमने लगते थे।

इस धराधाम को मंगलमय बनाने और अपने जीवन की महक लुटाकर पण्डित मरण के माध्यम से २१ अप्रेल की रात्रि को चतुर्विध संघ का एक दीपक बुझ गया। हंस उड़ गया, निमाज गांव में सैकड़ों लोग देखते रह गए।

ऐसे प्रतापी सन्त को शत-शत वन्दन।
ऐसे महिमामय आचार्य को शत-शत अभिनन्दन।

—श्री ह० मु० छात्रालय,
२०, प्रीमरोज रोड, बैंगलोर–२५

सरस्वती-पुत्र महान् आचार्य

☐ डॉ० कुसुमलता जैन

परम श्रद्धेय आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी महाराज साहब आज हमारे बीच नहीं रहे, यह सोचकर हृदय व्यथित होता है। अब हम उस तेजस्वी,

धर्माकाश के उज्ज्वल नक्षत्र

☐ श्री मिट्ठालाल मुरड़िया

संसार में अनेक प्राणी जन्म लेते है और काल के प्रवाह मे बह जाते हैं किन्तु कुछ ऐसी विशिष्ट आत्माएँ होती है जो देश-काल की परिस्थितियों से ऊपर उठकर अपने आत्म-कल्याण के साथ-साथ लोक-जीवन का भी उत्थान कर जाती है, ऐसी ही विशिष्ट आत्माओं मे आचार्य श्री हस्तीमलज म० सा० की गणना की जा सकती है।

चतुर्विध सघ के आप महान् आचार्य और यशस्वी सन्त थे। प्रखर बुद्धि के प्रत्युत्पन्नमति थे, आगमो के पारगत पण्डित थे, कुशल वक्ता और धीर, वीर गम्भीर थे, स्वयं महान् थे और महानता के उपासक थे। आपकी स्मरण-शक्ति बेजोड थी। आप बहुश्रुत और प्रतिभा के खजाने थे। आप विचार-चिन्तन के शिरोमणि और धर्म के ज्योति-स्तम्भ थे। आप एक लम्बे समय से देश के कोने-कोने में ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की ज्योति जगा रहे थे। जन-जीवन मे चेतना फैला रहे थे। आप 'उत्तराध्ययन' के अमर गायक और जीवन के गहरे पारखी थे। आपने राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु और कर्नाटक में लाखों व्यक्तियों को स्वाध्यायी बनाकर धर्म की ओर उन्मुख किया।

आपके दिल में समाज के लिए एक पीडा, एक दर्द, एक तड़पन और एक टीस थी। आप चाहते थे कि समाज का बच्चा-बच्चा सामायिक करे, स्वाध्याय करे और न्याय-नीति पर चले। भौतिक चकाचौंध से परे रहकर सच्चे इन्सान बने। प्रलोभन में आकर गुमराह न हों।

आप फक्कड़ और मस्तमौला थे। एक घुमक्कड़ संताचार्य थे। न किसी का लेना, न किसी का देना, न कोई लोभ, न कोई लालच, न कोई ममत्व, न किसी की निन्दा और न किसी की प्रशसा। आपके पास जो कुछ था, साफ था, स्पष्ट था, इसीसे आपके चारित्र्य-कलश से नवनीत छलक रहा था। आपके व्यक्तित्व की आभा और चमक के तेज के सम्मुख कोई सामान्य व्यक्ति ठहर नही सकता था। एक बार जिस पर आपकी दृष्टि पड़कर गड़ जाती थी, वह निहाल हो जाता था। लोगो का विश्वास था कि आपकी वाणी फलती और फूलती थी। आपका एक ही महामंत्र था—सामायिक करो, स्वाध्याय करो।

इस युग के आप महान् आचार्य थे, रत्नवंश की कीर्ति थे, जैन धर्माकाश
; आप उज्ज्वल नक्षत्र थे, चतुर्विध संघ के मौलि मुकुट थे, धरा के धरोहर
', अदम्य उत्साही थे, निरन्तर किसी न किसी लेखन कार्य में रत रहते थे।
भी पवित्रताओं, उत्तमताओं और मंगल के स्रोत थे। अपनी आन, बान और
ान के चतुर चितेरे थे। महाव्रतों की मर्यादाओं में डूबे हुए थे, संकल्पों के
हासागर थे, समाज के ज्योतिपुञ्ज थे, महाप्रतापी, महायशस्वी और स्वाध्याय
ा कीर्तिमान स्थापित करने वाले महामना थे। 'प्रबन्ध पट्टावली' और 'जैन
र्म के मौलिक इतिहास' (भाग १ से ४) के स्रष्टा थे। आपकी प्रेरणा से
ई संस्थाओं का निर्माण हुआ।

आप स्वभाव के बड़े निर्मल और सरल थे, मक्खन की तरह कोमल
ौर मोम की तरह दयार्द्र थे, सहज स्नेह झलकता था। ऐसे अनूठे
ुपुत्र को पाकर पिता श्री केवलचन्दजी बोहरा और माता श्री रूपादेवी
न्य हो गई।

जब आप चलते थे तो पृथ्वी गूंजती थी, बोलते थे तो गगन निनादित
ोता था। जब आप साधनारत रहते थे तो एक अपूर्व वातावरण की सृष्टि
ोती थी। आपके धर्म के जयघोष से खेतों में लालिमा, फलों में रस भरता
ा और फूलों में महक उठती थी। तब गुलाब, चमेली और चम्पा झूमने
गते थे।

इस धराधाम को मंगलमय बनाने और अपने जीवन की महक लुटाकर
ण्डित मरण के माध्यम से २१ अप्रेल की रात्रि को चतुर्विध संघ का
एक दीपक बुझ गया। हंस उड़ गया, निमाज गांव में सैकड़ों लोग देखते
रह गए।

ऐसे प्रतापी सन्त को शत-शत वन्दन।
ऐसे महिमामय आचार्य को शत-शत अभिनन्दन।

—श्री ह० मु० छात्रालय,
२०, प्रीमरोज रोड, बैंगलोर—२५

सरस्वती-पुत्र महान् आचार्य

☐ डॉ० कुसुमलता जैन

परम श्रद्धेय आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी महाराज साहब आज
हमारे बीच नहीं रहे, यह सोचकर हृदय व्यथित होता है। अब हम उस तेजस्वी,

चित्ताकर्षक, मन-मोहक चेहरे के साक्षात् कभी भी दर्शन नहीं कर पाएँगे। अब वह सन्ताप-निवारक, संकट-मोचक, सागरवत् गम्भीर रहने वाला, चतुर्विध संघ की राह प्रशस्त करने वाला, छोटे कद का दुबला-पतला शरीर किन्तु विचारों से हिमालय की तरह महान् और अडिग रहने वाला महापुरुष हमारे मध्य से विलीन हो गया है। वह महान् आत्मा हमें ज्योति प्रदान कर स्वयं ज्योतिपुंज में विलीन हो गई है।

पर उन ज्ञानात्मा की ज्ञान-ज्योति हमारे पास है, वही अब हमारा सम्बल है। साहित्य-स्रष्टा, विद्वान्, शास्त्रज्ञ महापुरुष हमारे लिए साहित्य का विपुल भण्डार धरोहर के रूप मे छोड़ गए है, वही साहित्य संसार की भटकन में हमारा सहारा है, और उसी साहित्य के रूप में वे आज भी हमारे मध्य उपस्थित हैं। आचार्य श्री ने विपुल साहित्य का सृजन कर जन-जन के मन में अपना गहरा स्थान बनाया है, जन-मानस उन्हें सदियों तक अथवा यों भी कहा जा सकता है कि कभी नही भुलाएगा।

आचार्य श्री ने अपनी सांस्कृतिक धरोहर आगम सूत्रों में से एक सूत्र निकाल कर प्रदान की थी—'वीर प्रभु के दो फरमान—सामायिक-स्वाध्याय महान्।' यद्यपि ये दोनों फरमान पहले से चल रहे थे किन्तु वर्तमान मे इन दोनों क्रियाओं में थोड़ी शिथिलता एवं उदासीनता आ गई थी। आचार्य श्री ने दोनों के प्रति पुनः श्रद्धा एवं जागृति पैदा की। आपकी प्रेरणा से अ० भा० जैन विद्वत् परिषद् ने तीन दिन के लिए 'सामायिक संगोष्ठी' का आयोजन जयपुर में किया। सामायिक के मूल अर्थ एवं भावों को आचार्य श्र। ने स्वयं स्पष्ट किया तथा विद्वान् सन्त-सतियों और विद्वत् श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा विचारों का आदान-प्रदान करवाया। 'जिनवाणी' के 'सामायिक विशेषांक' में उन सभी विचारों को संकलित करवा कर समाज को एक अमूल्य भेट प्रदान की।

स्वाध्याय के महत्त्व को आचार्य श्री ने पुनर्स्थापित किया। मन को एकाग्र करने के लिए स्वाध्याय ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। स्वाध्याय के द्वारा कर्मक्षय एवं ज्ञानार्जन दोनों ही लाभ हैं, अतः आचार्य श्री ने स्वाध्याय को अधिक महत्त्व प्रदान किया। स्वाध्याय से तात्पर्य न सिर्फ शास्त्रों का अध्ययन है बल्कि स्वयं का अध्ययन है अर्थात् प्रत्येक श्रद्धालु अथवा मुमुक्षु को स्वयं की वृत्तियों, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि का विश्लेषण करना तथा स्वयं का चिन्तन करना कि 'मैं इन वृत्तियों पर कितना अंकुश लगा पाया हूं या लगा पाई हूं। क्या मैंने सामायिक करते हुए जीवन में कुछ उन्नति की है या कोल्हू के बैल की तरह दिन भर चलते रहने के बाद भी

शाम को हम जहाँ से शुरू हुए थे, वहीं पर हैं, इसी चिन्तन का नाम स्वाध्याय है।

इतना ही नहीं, आचार्य श्री ने समाज के सरस्वती-पुत्रों और लक्ष्मी-पुत्रों को सामञ्जस्य के स्नेह-सूत्र में बाँधा, जिससे समाज का, देश का सही दिशा में विकास हो। आचार्य श्री ने इस लक्ष्य को मध्य-नजर रखकर अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद् की स्थापना की प्रेरणा इन्दौर चातुर्मास में दी। तब से आपके सान्निध्य में कई विद्वत् गोष्ठियाँ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। आपने समाज के प्रत्येक वर्ग के हित को सोचा। आपके भक्त न सिर्फ जैन बल्कि जैनेतर आदिवासी, ग्रामीण, शहरी सभी हैं।

आचार्य श्री गुणों के भण्डार ही नहीं गुणों की खान थे। खान की कभी इति हो जाती है परन्तु आपके गुण तो दिन दूने रात चौगुने, सरस्वती के भण्डार की तरह बढ़ते ही गए। गुरु-चरणों में मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि।

—१/१७, महेश नगर, इन्दौर–४५२००२

आचार्य श्री के प्रेरक प्रसंग

□ श्री सूरजराज भंसाली

श्रुत ज्ञान की अविरल धारा में साधु वर्ग का योग महत्त्वाकांक्षी ही नहीं अपितु सकारात्मक रहा है। सत्य धर्म के उजागर करने मे साधारण दैनिक क्रियाओं से लेकर अतिशय तक का आश्रय लिया गया है। इसका एकमात्र उद्देश्य रहा, सुप्त संसारी प्राणियों को जगाकर धर्म-मार्ग पर लाना। सही मार्ग का पथिक अपने ध्येय पर निर्विघ्न पहुँच ही जाता है। स्व-परोपकारी साधुजनों की यही आध्यात्मिक पहिचान है। आचार्य श्री भी उन दिवंगत पवित्रात्माओं में सूचिबद्ध हो गये जिन्होंने आत्मा और अनात्मा के भेदज्ञान को प्रकाशित कर, आचार-विचार शुद्धि की मर्यादापूर्वक पालना की।

सन् १९७४ में आचार्य श्री जयपुर (लाल भवन) में जिस समय विराजते थे, आदरणीय मित्र श्री गजसिंहजी राठौड़ मुझे वहाँ ले गये। गुरुदेव ने "जैन धर्म का मौलिक इतिहास—प्रथम भाग" में भगवान महावीर का जीवन जो उसकी आधी विपय वस्तु है, उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करने की प्रेरणा दी। मैं उस समय सेवा-निवृत्ति पूर्व अवकाश का सदुपयोग समझकर उस कार्य में जुट गया और करीव ३०० पृष्ठों में पूरा किया जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में है।

उसके बाद आचार्य श्री के दर्शनों का लाभ कई बार मिला। रातानाड़ा (जोधपुर) में तो आचार्य श्री ने बोलते ही पहिचान लिया यद्यपि रात्रि का समय था। लेखन-कार्य चालू रखने का आदेश दिया। घोड़ों के चौक में पिताजी भी साथ थे—एक सामायिक प्रतिदिन के व्रत का आदेश मिला (जिसकी यथा-सम्भव पालना का आशीर्वाद चाहता हूँ।)

सरदारपुरा (जोधपुर) मे मेरे बंधुवर सिरहमलजी जैन (सी. ए.) के साथ मिला। एक नव-दम्पति को गृहस्थ जीवन सम्बन्धी (अणुव्रत पालन हेतु) उपदेश निश्चय ही हृदयस्पर्शी बना। साधु जीवन का श्रावकों के जीवन को ढालने में कैसा योगदान होता है—इससे बढ़कर समाज-सुधार क्या है ?

आचार्यश्री श्रावक के जीवन में अपने को थोपते नहीं थे। उनकी गुणधारा आकर्षित करती थी। जब गुरुदेव से प्रथम समय मिला, मै मन्दिर-पूजा करता था और विधि अनुसार, अपने सिर पर तिलक लगाता था जो दिन भर लगा रहता (एवं पहिचान का एक चिह्न सा बन गया।) एक बार महाराज साहब के दर्शन हेतु लाल-भवन गया तो तिलक न देखकर, मौन से ही प्रश्न किया 'पूजा-पाठ चालू है ?' उनकी सांप्रदायिक सहृदयता से गद्‌गद् हो गया।

कुछ ही वर्ष पूर्व महाराज साहब जवाहर नगर (जयपुर) में पधारे। मैंने 'आचारांग सूत्र' के प्रथम स्कंध का अध्ययन प्रस्तुत किया। कई पृष्ठ रुचिपूर्वक देखकर कहा कि कुछ टिप्पणियां (Footnotes) जोड़ दो तो एक अच्छा प्रकाशन बन सकेगा। डॉ. भानावत से बात करना। कुछ समय बाद बोले "क्या भंसालीजी है ? इतने समय कहाँ थे ?" मेरा दिल साधु की स्मरण-शक्ति और धर्मवात्सल्य से प्रभावित हुआ।

आचार्य श्री के लेखन-कार्य चालू रखने के पुनः पुनः आदेश को मैं औद्देशिक समझता क्योंकि यह मेरे रुचि का एक विषय भी था। फलस्वरूप जैन धर्म का विशेष अध्ययन शुरू किया। "शब्दो" को ही साहित्य का और ज्ञान का अर्थ प्रेरक लेते हुए कतिपय हजार शब्दो का 'पारिभाषिक कोश' (१०००-२००पृष्ठों मे) संकलित किया। वह आशीर्वाद सम्भवतः प्रेरणा का रूप ही न रहकर "वस्तु रूप" बन गया। संयोग से, आचार्य श्री के संथारे के अन्तिम दिन वर्षों से चालू संकलन-कार्य भी सम्पन्न प्रायः हुआ।

जैनज्ञान-क्रिया के प्रोत्साहन हेतु आचार्य श्री के प्रवचनों के संकलन-सूत्रों के अनुवाद एवं विविध आयामी साहित्य सदा-सदा अध्ययन, मनन और आचरण की रुचि सजग रखेगा। व्याख्या की मार्मिक एव अविस्मरणीय शैली ही

हजारो श्रोताओं को लुभाने वाली थी। काल के प्रवाह में एक रत्न-त्रय धारक उच्च गति में प्रयाण कर गया, उसे शतशः शतशः वन्दन और श्रद्धांजलि—

तुम्हें कहते हैं मुर्दा कौन, तुम जिन्दों के जिन्दा हो,
तुम्हारी नेकियां बाकी, तुम्हारी खूबियां बाकी,
हम जिन्हें कहते है फनी, वे फना होते नहीं,
मरने वाले असल में, हमसे जुदा होते नहीं।

—१ ग ३, जवाहर नगर, जयपुर-४

ज्ञान का शिखर : साधना का शृंग

☐ डॉ० नरपतचन्द सिंघवी

अप्रतिम साधक, घोर तपस्वी, अध्यात्म योगी, ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की प्रतिमूर्ति, वीतरागी, अखण्ड बाल ब्रह्मचारी, जैन धर्म के आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज, अपने संथारा जो साम्य योग की पूर्ण साधना है, की सम्पूर्ति पर समाधिपूर्वक स्वैच्छिक मृत्यु का भीष्म पितामह की तरह वरण कर मुक्ति-मार्ग के पथिक बन गये। साठ वर्ष तक गौरवशाली आचार्य पद को गरिमा प्रदान कर, ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित करते रहे, धर्म के प्रति आस्था जागृत कर जन-मानस को उद्वेलित करते रहे। आत्मबल और मनोबल के प्रखर धनी कृशकाय मूर्धन्य आचार्य के दिव्य शब्दों में तीर्थंकरों के दिव्य संदेश रूपायित हुए। वे ज्ञान का अमृत जन-जन को पिलाते रहे, बांटते रहे। जीवन-दर्शन और जीवन-मूल्यों की व्याख्या करते हुए, नगर-नगर विचरण करते आत्म-शुद्धि का संदेश देते हुए, तप की महती प्रेरणा देते हुए, लोक-मंगल की साधना करते हुए, ये महर्षि २१ अप्रेल को इस देहरूपी नौका के द्वारा संसार-सागर को तैर गये। पीपाड़ की धरा धन्य है जिसे इस महर्षि की जन्म-भूमि बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। निमाज की भूमि पावन हो गई, जहाँ एक परमाराध्य समाधिगत हुए।

आचार्य श्री शोभाचन्दजी से वंदनीय हस्तीमलजी ने भागवती दीक्षा दस वर्ष की अल्पायु मे भक्त ध्रुव की तरह ग्रहण की। जैन आगम, पुराण, इतिहास, न्याय दर्शन और धर्म-शास्त्रों का अध्ययन कर उन्होने अनेक धर्म ग्रंथों का प्रणयन किया। उनके प्रवचन हर वर्ग के व्यक्ति को मानसिक शांति प्रदान करते थे।

जीवन जीने की कला सिखाई। जगह-जगह सामायिक-स्वाध्यायी संघों की स्थापना कर आध्यात्मिक चेतना जगाई। समूचा जैन समाज ही नहीं, अपितु अन्य समाज भी आपके कृतित्व-व्यक्तित्व पर गौरव अनुभव करता है।

परमपिता प्रभु से यही मंगल शुभ कामना है कि आपकी आत्मा निरन्तर अबाध गति से रत्नत्रय धर्म की आराधना करती हुई अप्रमत्त असग निर्ग्रन्थ होती हुई अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर शुद्ध-बुद्ध मुक्त बने। आपके पीछे सन्त मार्ग दर्शन के अभाव की भयंकर क्षति समाज को हुई है, उसकी पूर्ति हेतु चारों ओर समाज में दृढ़ निष्ठा, आत्मबल, आध्यात्मिक जाग्रति हो, स्व-पर उपकारी प्रवृत्तियाँ हों, यही अन्त.करण की श्रद्धा सुमनरूप श्रद्धांजलि अर्पित है।

—३८२, अशोक नगर, गौशाला के सामने, उदयपुर

परोपकारी सन्त

☐ श्री लालचन्द जैन

वह भी क्या समय था ? आजादी का दीवानापन। भावना में बह कर मैंने भी 'भारत छोडो' आन्दोलन में भाग ले लिया और जेल से फरार भी हो गया। वह सन् ४५ की बात होगी जब आन्दोलन काफी ठण्डा पड गया था, प्रचार के सिवाय कुछ ठोस कार्य नही था, समय बिताना कठिन हो गया था। मैंने सोचा क्यों न इस समय का सदुपयोग किया जाय। ढूढ़ते-ढूँढ़ते मैं उज्जैन आचार्य प्रवर के पास पहुँच गया। मैंने एकान्त में आचार्य श्री से अपनी कहानी बताते हुए कहा, "गुरुदेव ! यदि आप आज्ञा प्रदान करे तो मै आपके पास रह कर संस्कृत, प्राकृत एवं जैन शास्त्रों का अध्ययन करना चाहता हूं।" गुरुदेव ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की। मेरा नया नामकरण हुआ कपूरचन्द जैन और मैं वैरागी के रूप मे गुरुदेव के पास रहकर अध्ययन करने लगा। जेल के भगोड़े को शरण देकर इतनी जोखम उठाने को कोई महापुरुष ही तैयार हो सकते थे।

गुरुदेव मुझे बड़े प्रेम से अध्ययन कराने लगे। सबसे पहले 'अंतगड सूत्र', फिर 'दशवैकालिक सूत्र' और फिर 'उत्तराध्ययन सूत्र'। साथ ही प्राकृत, सस्कृत की व्याकरण और भाषा ज्ञान भी चलता रहता था। उज्जैन चातुर्मास के समय ही धार के एक भाई ने पर्युषण करवाने के लिए किसी को भेजने की वीनती की। आचार्य श्री ने मुझे आज्ञा प्रदान की और मैं सबसे प्रथम स्वाध्यायी

जिसने धार नगरी में बड़े धूमधाम से पर्युषण करवाया, जब स्वाध्याय संघ जन्म भी नहीं हुआ था। यह सब पूज्य गुरुदेव की ही कृपा और योगबल कि मेरी प्रथम पर्युषण सेवा सफल रही।

चातुर्मास के बाद गुरुदेव का उज्जैन से विहार हुआ। मैं भी आचार्य श्री साथ-साथ नंगे पाँव, दो चद्दर और दो जोड़ी धोती-कुर्ते से गाँव-गाँव, नगर-नगर हार करता रहा। इन्दौर में डामर की सड़क जलती थी फिर भी गुरुदेव कृपा से मेरे पाँव नहीं जलते थे। रास्ते में कई स्थानों पर तालाब के नारे पर बनी किसी मामूली सी धर्मशाला में भी ठहरे। कड़ाके की सर्दी हसूस नहीं हुई। उज्जैन से उदयपुर तक की वह विहार-यात्रा मेरे जीवन के रिवर्तन का कीर्ति-स्तम्भ बन गई। वह कभी भुलाये नहीं भूलेगी। यात्रा में भी-कभी स्व० पं० दु:खमोचनजी झा से भी ज्ञान प्राप्त करने का अवसर लता। जब कभी आचार्य श्री का किसी बड़े नगर में व्याख्यान होता मैं सके नोट्स लेता और उसके आधार पर लेख तैयार कर आचार्य श्री से शोधन करवा कर 'जिनवाणी' को भेजता जो कपूरचन्द जैन के नाम से पता। गाँवों की प्रार्थना-सभा में आचार्य श्री के पास बैठकर सस्वर भक्तामर स्तोत्र' का पाठ करने में जो आनन्द आता, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता।

उदयपुर में पूज्य गुरुदेव ने कृपा कर मुझे कर्मग्रन्थ सम्बन्धी लेखों की क गुजराती पुस्तक दी जिसका मुझे हिन्दी अनुवाद करना था। उस समय मुझे गुजराती भाषा का ज्ञान अधूरा ही था, फिर भी गुरु कृपा से मैं उसका नुवाद करने में सफल हुआ और वह पूरी पुस्तक 'जिनवाणी' में धारावाहिक रूप से कपूरचन्द जैन के नाम से छपी।

उदयपुर से चातुर्मास समाप्त कर आचार्य प्रवर का मारवाड़ की ओर जाने का कार्यक्रम था, पर मैं मारवाड़ में नहीं आ सकता था क्योंकि मेरी गिरफ्तारी का वारन्ट अभी भी जारी था। चारभुजा तक मैंने आचार्य श्री के साथ विहार किया। उसके बाद पूज्य गुरुदेव ने बड़ी कृपा कर मुझे भविष्य के अध्ययन के लिए प० पूर्णचन्दजी दक के पास इन्दौर भेज दिया। वहाँ रहकर मैंने संस्कृत मध्यमा और जैन सिद्धान्त शास्त्री की रतलाम से परीक्षा दी और मै प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ। बाद में पूर्णचन्दजी कानोड़ आ गये। मैं भी उनके साथ ही वहाँ आ गया। पण्डितजी भीलो में सदाचार एवं विद्या के प्रचार के लिए गाँवों में जाते थे। मै भी उनके साथ ही जाता था। वहाँ मेरी मुलाकात स्व० श्री माणकलालजी वर्मा से हुई और वे मुझे फिर राजनीति में खींचकर ले गए। आजादी होने तक मैं छोटी सादड़ी प्रजा मण्डल के

सेक्रेटरी के रूप में कार्य करता रहा। वहीं मेरे पास भोपालगढ से पत्र आया शुजालपुर (म० प्र०) में जाकर पर्युषण करवाने का। भीषण वर्षा में भीगता शुजालपुर पहुँचा, नदी पूर में, शहर में जाना कठिन। रात स्टेशन पर गुजारी। यह शायद १९४७ का वर्ष था। अभी स्वाध्याय संघ की स्थापना एक वर्ष पूर्व हुई थी। दूसरे दिन नदी उतरने पर शहर में गया। एक दिन देर से पर्युषण प्रारम्भ हो गया पर गुरु-कृपा से बहुत ही आनन्द-उल्लास से पर्वाराधन हुआ।

आजादी के बाद मैं व्यापार के लिये बर्मा, रंगून चला गया। फिर तो कभी-कभार आचार्य श्री के दर्शन का भी अवसर बड़ी कठिनाई से निकाल पाता। बर्मा में व्यापार का राष्ट्रीयकरण होने के बाद वापस लौटा तो पहली बार ब्यावर में गुरुदेव से भेंट हुई। ब्यावर चातुर्मास के समय गुरुदेव ने मुझे 'दीक्षा कुमारी के प्रवास' का गुजराती से हिन्दी में अनुवाद करने का आदेश दिया। गुरु-कृपा से वह अनुवाद यात्रा-उपन्यास के रूप में बहुत सुन्दर हो पाया जो 'जिनवाणी' मे धारावाहिक छपता रहा। 'दीक्षा कुमारी के प्रवास' का दूसरा भाग जो 'आचारांग सूत्र' पर आधारित है, उसका भी हिन्दी अनुवाद का आदेश प्राप्त हुजा और गुरु-कृपा से यह कार्य भी सम्पन्न हुआ जो धारावाहिक रूप से 'जिनवाणी' मे प्रकाशित हुआ।

आचार्य प्रवर ने मुझे एक अवसर और प्रदान किया उनकी सेवा मे रहने का। इन्दौर चातुर्मास से मैं फिर आचार्य देव की सेवा में पहुँच गया। यहाँ मुझे मण्डल के कार्य के अतिरिक्त 'उपमिति भव प्रपंच कथा' के अनुवाद का कार्य भी सौंपा गया, जिसमें पं० शशिकान्तजी झा का भी बहुत सहयोग प्राप्त हुआ। इन्दौर चातुर्मास मे मध्य प्रदेश स्वाध्याय संघ का उद्घाटन हुआ। आस-पास में जैन शालाएँ शुरू की गईं, जिनका उद्घाटन भी हुआ। इन्दौर के एक उप नगर शान्ति नगर में पर्युषण करवाने का मुझे आदेश हुआ, वह भी गुरु-कृपा से आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

इन्दौर से चातुर्मास समाप्त होने पर आचार्य प्रवर ने कृपा कर मुझे अहमदाबाद, लाल भाई, दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर में लोंकाशाह पर शोध करने भेजा। वहाँ करीब मैं ६ माह रहा और लोंकाशाह पर जो भी सामग्री प्राप्त हो सकी, वह भेजी। महाराष्ट्र में आचार्य श्री की सेवा मे फिर उपस्थित हो गया और अनेक स्थानों पर गुरुदेव के साथ पद-विहार किया। कई स्थानों पर स्वाध्यायी शिविर लगवाये, जैन शालाएँ प्रारम्भ करवाईं, पर वह सब अब मुझे याद नहीं है। किन्तु मालेगाँव का बहुत अद्

शिविर था जिसमें मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। गुरुदेव की अनुकम्पा थी कि मुझे उस शिविर में भाग लेने भेजा।

विहार करते-करते जलगाँव पहुँचे। वहाँ आचार्य प्रवर का ऐसा भव्य स्वागत हुआ कि जो मैंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। यहाँ भी महाराष्ट्र स्वाध्याय संघ की स्थापना हुई। स्वयं जलगाॅव में और आस-पास कुछ शिविर भी लगे। उनके नियन्त्रण और संचालन आदि का भार मुझ पर था। अन्त में श्री सुरेश भाई जैन के सहयोग से श्री महावीर जैन स्वाध्याय विद्यापीठ की स्थापना भी हुई, जिसका प्रारम्भिक संचालन श्री आनन्दराजजी जैन और मैंने ही किया था। बाद में श्री कन्हैयालालजी दक के आ जाने से मैं पद-भार से मुक्त हुआ। गुरु-कृपा से स्वाध्याय संघ की ओर से मैंने कई स्थानों पर पर्युषण सेवाएँ दीं और शिविर संचालन भी किया जिनमें जबलपुर और नागपुर जैसे प्रमुख नगर भी शामिल है। अन्य नगरों के नाम तो अभी मुझे याद नहीं आ रहे है।

आज मैं जो कुछ भी हूं, जैन शास्त्रों का ज्ञान, प्राकृत, संस्कृत, गुजराती भाषाओं का ज्ञान और व्यापक अनुवाद शैली आदि जिससे श्रीमद् राजचन्द्र साहित्य के अनुवाद का कार्य भी मुझे मिल सका है, वह सब कृपा और अनुकम्पा परम श्रद्धेय गुरुदेव की है। उनके ऋण से मै कभी उऋण नहीं हो सकता। ऐसे महान् परोपकारी सन्त को मेरी शत-शत श्रद्धाँजलि।

—१०/५६५, हाउसिग बोर्ड कॉलोनी, जोधपुर—३४२००८

उत्तुंग व्यक्तित्व : विपुल कृतित्व

☐ श्री नौरतन मेहता

आचार्य श्री दृढ़ मनोरथ के धनी थे। वे कभी विषम प्रसंग से विचलित नही हुए। जीवन में शुद्ध आचार-विचार और सिद्धान्तों के मामलों मे उन्होने कभी समझौता नहीं किया। वे दृढ़ अनुशासन एवं विशुद्ध साध्वाचार के हिमायती ही नही, पालक भी रहे। उन्होने सदैव औरों को जो उपदेश दिया, उसे अपने जीवन मे चरितार्थ कर दिखाया। 'तिरे सो तारणहार' उनका जीवनादर्श रहा।

आचार्य श्री निन्दा-विकथा से सदैव दूर रहे, वहीं 'गुणिषु प्रमोदं' की विरले साधकों की दृश्यगोचर भावना उनके जीवन और व्यवहार में कूट-कूट कर भरी हुई थी। उनका जीवन 'वज्रादपि कठोराणि मृदुणि कुसुमादपि' रहा। अनुशासन के मामले में कठोर निर्णय लेने में वे कभी नहीं हिचकिचाये। वे सदैव परदुःखकातर रहे। 'घृणा पाप से नहीं, पापी से' यही व्यवहार उनके जीवन से परिलक्षित हुआ।

आचार्य श्री सभी के प्रति सहज स्नेह और अविरल अनुराग की वर्षा करते रहे। जाति, धर्म, परम्परा, पद, प्रतिष्ठा एवं समृद्धि का कोई भी भेद उनके धर्मदरवार मे नहीं था। आचार्य श्री के भक्तजनों में विशिष्ट विद्वान् एवं लेखक, न्यायाधिपति, उद्योगपति, व्यवसायी, एडवोकेट, डॉक्टर, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, प्रोफेसर और बुद्धिजीवी लोगों की वहुलता रही, पर हस्ती की हस्ती से परे अपनी कोई हस्ती नही, ऐसा मानकर कृषक, आदिवासी, अनुसूचित भाई-वहिन सभी वर्गों के लोग उनके चरण-सरोजों में एक समान स्थान रखते थे। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को वरावर स्नेह दिया। उनके हृदय मे भेद-भाव था ही नहीं। आचार्य श्री के सान्निध्य मे जो भी आया, उसे जीवन-निर्माण की प्रेरणा ही मिली। आगत भाई-वहिन से उनका पहला प्रश्न होता—क्या करते हो? जैन हुआ तो सामायिक-स्वाध्याय या माला के वारे में जानकारी लेते और भावनानुसार नियम दिलाते। व्यसन की बुराई से वचने की उनकी प्रभावी प्ररणा से हजारों-हजार भाई-वहिनों ने लाभ उठाया। अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक आचार्य श्री की प्रेरणा जादू सा असर करती। निर्व्यसनी समाज वनाने मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

आचार्य श्री मे सरलता, सादगी, सहिष्णुता, सौम्यता, सहजता जैसे सद्‌गुण कूट-कूट कर भरे थे। वे इन्ही सद्‌गुणों की प्रेरणा करते। निर्व्यसनता, सदाचरण, स्वाध्याय (सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन) एवं ब्रह्मचर्य उनकी मुख्य प्रेरणाएँ थी। जिस किसी भाई के जीवन में उन्होंने सादगी, सेवा एवं समर्पण के गुण देखे, आचार्य श्री का कोमल मन उनके प्रति प्रमोद से भर जाता। जाति एवं सम्प्रदाय से परे विभिन्न वर्गों के लोग उनकी प्रेरणा से प्रभावित हो समाज, र्म एवं राष्ट्र की सेवा में जुड़े।

आचार्य श्री के जीवन में विभिन्न सद्‌गुणों का अद्‌भुत समन्वय रहा। जहाँ एक ओर आचार्य श्री संस्कृत-प्राकृत और आगम साहित्य के गहन अध्येता, प्रखर टीकाकार एवं अप्रतिम विद्वान् थे वही दूसरी ओर वे व्यक्तिगत चरित्र-साधना में दृढ रहे। उनकी अप्रमत्तता, सजगता एवं नियमितता देखकर सभी विस्मित थे। आचार्य श्री उच्च कोटि के ध्यान-साधक होने के साथ मौन एव जाप के आराधक रहे।

जहाँ एक ओर आचार्य श्री का व्यक्तित्व विशिष्ट साधक के रूप में रहा वही उनका कृतित्व सर्वहितकारी रहा ।

आचार्य श्री ने अपना जीवन तो आदर्श बनाया ही, साथ में अनेक मुमुक्षु आत्माओं का जीवन-निर्माण भी किया है । आपके शिष्यों में जैन-जैनेतर शिष्य सम्मिलित है । आचार्य श्री ने वय, जाति, धर्म या शिक्षा के स्तर का बिना भेदभाव किए, जिसमें भी वीतरागता के संस्कार देखे, उन्हें श्रमण धर्म की ओर प्रेरित किया ।

आचार्य श्री ने अपने जीवन के संध्याकाल में अपनी साधना को साकार रूप देकर अपने महनीय व्यक्तित्व को और ऊँचा किया । अन्त समय में क्षमा-याचना करना, संलेखना-संथारा कर मृत्यु को गले लगाना अपने आप में आदर्श है । संकल्प-विकल्प और इच्छा-आकांक्षा से परे रहकर विशुद्ध रूप से आत्मभाव में लीन हो जाना उनके महान् व्यक्तित्व का अनुपम उदाहरण है । संथारे के पूर्व तपाराधन का आदर्श एवं संथारे में आत्म-स्वरूप में रमण करना वस्तुतः चरम लक्ष्य की ओर बढ़ना है । आचार्यदेव ने समाधिमरण का जीवन्त आदर्श प्रस्तुत किया आचार्य श्री के उत्तुग व्यक्तित्व और विपुल कृतित्व को शब्दों में बाँधा नही जा सकता । आगम-महोदधि स्व० आचार्य श्री आत्माराम जी म० सा० के शब्दों में 'पुरुषवर गन्ध हत्थिणं' आचार्य श्री हस्ती को मैं सविनय वन्दन-नमन करता हूँ ।

—कार्यालय प्रभारी, अ० भा० जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राजस्थान)

कठोर साधनाव्रती योगी

☐ श्री प्रेमराज बोगावत

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज सा० चारित्रनिष्ठ जैन स्थानकवासी सन्त-परम्परा के एक अनुपम अध्यात्मयोगी युगपुरुष आचार्य हुए है । थोड़े काल में ही अपने अध्यवसाय से इस परम्परा में उन्होने एक उत्कृष्ट प्रभावक सन्तरत्नों में अपना स्थान बना लिया था ।

बाल्यावस्था में वे अपनी मातुश्री के साथ दीक्षित हुए । वे प्रखर मेधा शक्ति के धनी थे । दीक्षित होते ही आपने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषाओं, जैन दर्शन एवं जैनागमों का तलस्पर्शी अध्ययन प्रारम्भ किया । युवावय में पदार्पण करते-करते तो आप एक प्रखर प्रतिभाशाली आगम-मर्मज्ञ आचार्य बन गये । इतनी

आचार्य श्री निन्दा-विकथा से सदैव दूर रहे, वहीं 'गुणिषु प्रमोदं' की विरले साधकों की दृश्यगोचर भावना उनके जीवन और व्यवहार में कूट-कूट कर भरी हुई थी। उनका जीवन 'वज्रादपि कठोराणि मृदुणि कुसुमादपि' रहा। अनुशासन के मामले में कठोर निर्णय लेने मे वे कभी नही हिचकिचाये। वे सदैव परदु:खकातर रहे। 'घृणा पाप से नही, पापी से' यही व्यवहार उनके जीवन से परिलक्षित हुआ।

आचार्य श्री सभी के प्रति सहज स्नेह और अविरल अनुराग की वर्षा करते रहे। जाति, धर्म, परम्परा, पद, प्रतिष्ठा एवं समृद्धि का कोई भी भेद उनके धर्मदरबार में नही था। आचार्य श्री के भक्तजनों में विशिष्ट विद्वान् एव लेखक, न्यायाधिपति, उद्योगपति, व्यवसायी, एडवोकेट, डॉक्टर, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, प्रोफेसर और बुद्धिजीवी लोगों की बहुलता रही, पर हस्ती की हस्ती से परे अपनी कोई हस्ती नही, ऐसा मानकर कृषक, आदिवासी, अनुसूचित भाई-बहिन सभी वर्गों के लोग उनके चरण-सरोजों में एक समान स्थान रखते थे। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को बराबर स्नेह दिया। उनके हृदय मे भेद-भाव था ही नही। आचार्य श्री के सान्निध्य में जो भी आया, उसे जीवन-निर्माण की प्रेरणा ही मिली। आगत भाई-बहिन से उनका पहला प्रश्न होता—क्या करते हो? जैन हुआ तो सामायिक-स्वाध्याय या माला के बारे में जानकारी लेते और भावनानुसार नियम दिलाते। व्यसन की बुराई से बचने की उनकी प्रभावी प्रेरणा से हजारो-हजार भाई-बहिनों ने लाभ उठाया। अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक आचार्य श्री की प्रेरणा जादू सा असर करती। निर्व्यसनी समाज बनाने मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

आचार्य श्री मे सरलता, सादगी, सहिष्णुता, सौम्यता, सहजता जैसे सद्गुण कूट-कूट कर भरे थे। वे इन्ही सद्गुणो की प्रेरणा करते। निर्व्यसनता, सदाचरण, स्वाध्याय (सद्ग्रन्थो का पठन-पाठन) एवं ब्रह्मचर्य उनकी मुख्य प्रेरणाएँ थीं। जिस किसी भाई के जीवन मे उन्होंने सादगी, सेवा एवं समर्पण के गुण देखे, आचार्य श्री का कोमल मन उनके प्रति प्रमोद से भर जाता। जाति एव सम्प्रदाय से परे विभिन्न वर्गो के लोग उनकी प्रेरणा से प्रभावित हो समाज, धर्म एवं राष्ट्र की सेवा में जुड़े।

आचार्य श्री के जीवन मे विभिन्न सद्गुणों का अद्भुत समन्वय रहा। जहाँ एक ओर आचार्य श्री संस्कृत-प्राकृत और आगम साहित्य के गहन अध्येता, प्रखर टीकाकार एवं अप्रतिम विद्वान् थे वहीं दूसरी ओर वे व्यक्तिगत चरित्र-साधना में दृढ रहे। उनकी अप्रमत्तता, सजगता एवं नियमितता देखकर सभी विस्मित थे। आचार्य श्री उच्च कोटि के ध्यान-साधक होने के साथ मौन एवं जाप के आराधक रहे।

जहाँ एक ओर आचार्य श्री का व्यक्तित्व विशिष्ट साधक के रूप में रहा वही उनका कृतित्व सर्वहितकारी रहा।

आचार्य श्री ने अपना जीवन तो आदर्श बनाया ही, साथ में अनेक मुमुक्षु आत्माओं का जीवन-निर्माण भी किया है। आपके शिष्यों में जैन-जैनेतर शिष्य सम्मिलित हैं। आचार्य श्री ने वय, जाति, धर्म या शिक्षा के स्तर का बिना भेदभाव किए, जिसमें भी वीतरागता के संस्कार देखे, उन्हें श्रमण धर्म की ओर प्रेरित किया।

आचार्य श्री ने अपने जीवन के संध्याकाल में अपनी साधना को साकार रूप देकर अपने महनीय व्यक्तित्व को और ऊँचा किया। अन्त समय में क्षमा-याचना करना, संलेखना-संथारा कर मृत्यु को गले लगाना अपने आप में आदर्श है। संकल्प-विकल्प और इच्छा-आकांक्षा से परे रहकर विशुद्ध रूप से आत्मभाव में लीन हो जाना उनके महान् व्यक्तित्व का अनुपम उदाहरण है। संथारे के पूर्व तपाराधन का आदर्श एवं संथारे में आत्म-स्वरूप में रमण करना वस्तुतः चरम लक्ष्य की ओर बढ़ना है। आचार्यदेव ने समाधिमरण का जीवन्त आदर्श प्रस्तुत किया आचार्य श्री के उत्तुंग व्यक्तित्व और विपुल कृतित्व को शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता। आगम-महोदधि स्व० आचार्य श्री आत्माराम जी म० सा० के शब्दों में 'पुरुषवर गन्ध हत्थिणं' आचार्य श्री हस्ती को मै सविनय वन्दन-नमन करता हूँ।

—कार्यालय प्रभारी, अ० भा० जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राजस्थान)

कठोर साधनाव्रती योगी

□ श्री प्रेमराज बोगावत

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज सा० चारित्रनिष्ठ जैन स्थानकवासी सन्त-परम्परा के एक अनुपम अध्यात्मयोगी युगपुरुष आचार्य हुए हैं। थोड़े काल में ही अपने अध्यवसाय से इस परम्परा में उन्होंने एक उत्कृष्ट प्रभावक सन्तरत्नों में अपना स्थान बना लिया था।

बाल्यावस्था में वे अपनी मातुश्री के साथ दीक्षित हुए। वे प्रखर मेधा शक्ति के धनी थे। दीक्षित होते ही आपने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषाओं, जैन दर्शन एव जैनागमों का तलस्पर्शी अध्ययन प्रारम्भ किया। युवावय में पदार्पण करते-करते तो आप एक प्रखर प्रतिभाशाली आगम-मर्मज्ञ आचार्य बन गये। इतनी

अल्पायु में आचार्य पद पर अधिष्ठित होने वाले वर्तमान युग में वे प्रथम जैना-चार्य गिने जाते हैं।

जैनागमों के अध्ययन, अध्यापन, उपदेश एवं उनके तलस्पर्शी ज्ञान का लाभ जैन समाज एवं जन-जन को विविध प्रवृत्तियों के माध्यम से देने का जो क्रम आचार्य श्री ने अपनी युवावय से प्रारम्भ किया, उसे अनवरत रूप से आपने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक निभाया। समाज आपके इस उपकार से युगों-युगों तक उपकृत रहेगा।

समाज में आपने विविध प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ कीं। देश भर में स्वाध्याय संघों एवं सामायिक संघों का जाल बिछाया। 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका के माध्यम से जन-जन तक आगम का सम्यग्ज्ञान पहुँचाने की समाज को प्रबल प्रेरणा दी। आपने भारत के विभिन्न भागों में मरुधर प्रदेश के उत्तरी छोर से लेकर दक्षिणापथ के त्रिसागर तट पर्यन्त सुविशाल क्षेत्र के गाँव-गाँव, नगर-नगर में अप्रतिहत विहार करते हुए जैन धर्मानुयायियों एवं जन-जन को अपने आगम-रस से भरे-पूरे उपदेशों से लाभान्वित किया एवं अपनी चरण-रज से इस धरती को पावन किया।

आगम साहित्य निर्माण के लिये आपकी प्रेरणा से 'सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल' की स्थापना हुई जिसने आगम साहित्य निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया एवं आज भी दे रहा है।

कई आगमों का आपने पांडित्यपूर्ण लेखन व सम्पादन किया। आपके प्रवचन बड़े पांडित्यपूर्ण एवं आगम-मर्म से भरे-पूरे होते थे जिससे आपकी विद्वत्ता एवं अगाध आगम मर्मज्ञता का पूर्ण परिचय मिलता है। इनके सम्यग् प्रकाशन का लाभ भी समाज को बराबर मिलता रहा एवं आज भी मिल रहा है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल आगम प्रकाशन की आज एक प्रमुख संस्था बन चुकी है।

अजमेर नगर में हुए प्रसिद्ध 'स्थानकवासी साधु सम्मेलन' में भी आपने महान् आगममर्मज्ञ विद्वान् पंडित के रूप में ख्याति प्राप्त की। उसी साधना में 'जैन इतिहास' लेखन के एक महान् चुनौतीपूर्ण कार्य को साहस के साथ अपने सबल हाथों में लिया जिसका सफलतापूर्वक निर्वहन करके आप जैन जगत् में इतिहास मार्तण्ड के रूप में प्रसिद्ध हुए। यह आपकी बहुमुखी प्रतिभा का सदियों तक साक्षी रहेगा।

[illegible] में ही जब से आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए, विद्वानों के समूह में घिरे आप ऐसे शोभित होते थे जैसे तारागणों से सुशोभित शीतल

चन्द्रमा। आपकी सस्मित सौम्य मुख-मुद्रा ऐसी ही विलक्षण थी जो सबको अपनी ओर हठात् आकर्षित कर लेती थी। मैं तो जब से लगभग सन् १९४४-४५ से आपके सम्पर्क में आया, आपके इस रूप और ब्रह्मचर्य के तेज से प्रदीप्त सस्मित सौम्य मुखमुद्रा को देखकर विस्मय-विमुग्ध था और था आश्चर्यचकित आपकी कठोर साधनामय जीवनचर्या को देखकर। आपके जीवन के अन्तिम कुछ समय को छोड़कर मैंने कभी आपको दिन में लेटे हुए नहीं देखा। आप तो निरन्तर अहर्निश कठोर संयम-साधना, साहित्य-निर्माण और जनहित-चिन्तन में ही निरत रहते थे। इस चर्या को देखकर मैं अत्यन्त श्रद्धाभिभूत था। धन्य है वह जननी और वह आर्यधरा जिसने इस कठोर साधनाव्रती योगी महापुरुष को जन्म दिया। उस जननी का मातृत्व धन्य हो गया और वह धरा निहाल हो गई ऐसे योगीराज को पाकर। उस महान् जननी को और उस धरा को है मेरा शत-शत वन्दन।

—सी-११, मोती मार्ग, बापू नगर, जयपुर-३०२ ०१५

कर्तव्यप्रधान प्रभावी व्यक्तित्व

☐ श्री चाँदमल बाबेल

विश्व के उदयाचल पर विराट व्यक्तित्व सम्पन्न दिव्यात्माएँ समय-समय पर उदित होती रही है, जिनके आचार-विचार, ज्ञान और चारित्र का भव्य प्रकाश देश, धर्म और समाज के सभी अंचलों को आलोकित करता रहा है, जन-जन के जीवन में ज्योति भरता रहा है।

वस्तुतः भारत की शस्य श्यामला वसुन्धरा में युगों-युगों से धर्मधारा प्रवाहित होती रही है। बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण ने अपने अध्यात्म ज्ञान एवं धर्मोपदेश से इस देश के धर्ममयी स्वरूप को बचाये रखकर विश्व में विशिष्ट स्थान प्रदान किया। इस धरा पर प्रेम, त्याग, संयम, सदाचार की धाराएँ सदा बहती रही है जिसकी शीतलता में सारी मानवता आत्म-विभोर हो, अध्यात्म रंग मे रंगी रही है। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से महावीर तक के शासन-काल मे जहाँ हजारों संयमी मुमुक्षु आत्माएँ धर्म-पथ पर चलकर आत्म-कल्याण करती हुई मानव को सद्बोध देती रही है, इसके बाद भी पावन धर्म सलिला निरन्तर प्रवाहित होती रही है। यह क्रम आज तक चला आ रहा है। उसी क्रम में आचार्य श्री हस्तीमल जी म० इस वैज्ञानिक भौतिकवादी बीसवीं सदी में धर्म की ज्योति जलाये रखने में पूर्ण समर्थवान थे। उन्होंने अनेक आत्माओं को

संयम-पथ पर अग्रसर किया था, मानव के मन में प्रेम, करुणा, अपनत्व, संयम, सदाचार, स्नेह की वेला को हरी-भरी रखी थी। अपने आलोक से विश्व को चमत्कृत किया था। उनकी ज्योति ने अन्धकार में प्रकाश, निराशा में आशा की किरण को जन्म दिया था। अपने चिन्तन से प्रसूत विचार-कणों से माँ भारती के कंठ को सजाया था। आज वे हमारे मध्य से प्रस्थान कर गये, किन्तु इतिहास इन्ही की स्वर्णिम आभा से जगमगा रहा है वल्कि अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहा है। आज के इतिहास में ऐसी महान विभूतियों का मिलना असम्भव है।

आचार्य देव का व्यक्तित्व जलतरंगों के समान निरन्तर गतिमान, पुष्प-गंध के समान सदैव प्रसरणशील, रवि-रश्मियों के समान आलोकमय एवं जलोदधि के समान अति गंभीर था।

आचार्य देव मन से सरल, हृदय से भावनाशील, व्यवहार से मृदुल एवं चित्तवृत्तियों से शान्त एवं निर्मल थे, तभी तो अल्प आयु से इस आचार्य पद का निर्वाह पूर्ण उत्तरदायित्व से करते रहे।

इस अहिंसा के दिव्य सूर्य के दर्शन मात्र से दर्शकों का मन खिल जाता था। आपने अध्यात्म जागरण की अमर बाँसुरी को बहुत मधुर राग से अलाप कर अपने अमृतोपम वचनों से सांसारिक रुग्णता को समाप्त करने में किसी भी प्रकार की कमी नही रखी थी। आपके कर्तव्य प्रधान प्रभावी व्यक्तित्व के सामने क्या संत, क्या सती, क्या श्रावक क्या श्राविका- सभी सहज मन से श्रद्धायुक्त होकर स्वयं गौरवान्वित महसूस करते थे।

हे भारत के महान् सन्त ! महान् क्रान्तिकारी, महान् युग पुरुष, महान् सुधारक, महान् संगठन प्रेमी, समाज के सही नेतृत्वकर्ता, स्वाध्याय, सामायिक और साधना की ज्योति प्रज्वलित करने वाले ज्योतिर्धर ! आपका जीवन हमें प्रेरणा देता रहेगा, आपके वरद हस्त का अक्षुण्ण प्रभाव जन-जन को दीर्घ काल तक लाभान्वित करता रहेगा।

इस महान् विभूति, अमर आत्मा के चरणों में हृदय की असीम आस्था [illegible]क श्रद्धांजलि।

—सी-४६, डॉ० राधाकृष्णन नगर
भीलवाड़ा-३११००१

कहाँ ढूँढें हम आचार्य भगवन् को ?

□ श्री सूरजमल मेहता

है समय नदी की धार, कि जिसमें सब बह जाया करते हैं,
है समय बड़ा तूफ़ान प्रबल, पर्वत हिल जाया करते हैं ।
अक्सर दुनिया के लोग, समय में चक्कर खाया करते है,
लेकिन कुछ ऐसे होते जो, इतिहास बनाया करते हैं ।।

आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ऐसे ही महापुरुष थे जिनका जीवन ही अपने आप में इतिहास था । जिन्होंने ज्ञान-ज्योति से केवल अपना ही जीवन आलोकित नहीं किया, किन्तु अनेक मुमुक्षु आत्माओं के जीवन को आलोकित किया तथा हजारों ही नहीं लाखों नर-नारियों को वह मार्ग बतलाया जिससे वे भी अपने अज्ञानान्धकार को दूर कर अपने जीवन को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर सकें । ऐसा महान् ज्ञान का सूर्य दिनांक २१ अप्रेल, १९९१ को रात्रि सवा आठ बजे सदा-सदा के लिये निम्बाज में अस्त हो गया और लाखों नर-नारियों को रोता-बिलखता छोड़ गया ।

जब से आपने दीक्षा धारण की, तभी से अंतिम क्षण तक महाव्रतों का कठोरता से पालन किया । आपकी कथनी एवं करनी में बड़ा सामंजस्य देखने को मिला । आपके जीवन में अनोखी अप्रमत्तता देखने को मिलती थी । सूर्य की प्रथम किरण से ही आप अपनी साधना एवं पठन-पाठन तथा लेखन के कार्य में तन्मयता के साथ जुट जाया करते थे । जब भी आपको देखा प्रातः, मध्याह्न, सायं या रात्रि, हर समय आप किसी न किसी कार्य में व्यस्त नजर आते थे । आप बहुत ही कम समय विश्राम में लगाते थे । आपके पास कोई भी भाई, कोई जिज्ञासा लेकर आता तो उसे बड़ा संतोषजनक समाधान देते थे । ऐसे अनेक अवसर देखे थे जब जिज्ञासा लेकर आने वाले व्यक्ति के बिना जिज्ञासा बताये आपने समाधान कर दिया जिससे आने वाले व्यक्ति के हृदय पर आपकी गहरी छाप पड़ती थी । आगन्तुक को सदैव व्रत-नियम एवं सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा देते थे ।

कैसा भी संकट क्यों न हो आचार्य भगवन् का नाम लेते ही वह सकट काफूर हो जाता । कोई १३ वर्ष पुरानी घटना है । आचार्य श्री का बालोतरा चातुर्मास था । हर वर्ष की भांति मैं परिवार के साथ बालोतरा आचार्य श्री के दर्शनार्थ गया हुआ था । मेरा पौत्र राजू जो ५ वर्ष का था, वह भी मेरे साथ

था। बालोतरा से लौटते समय हमें जयपुर ठहरना था अतः पहले राजू को गाडी में से नीचे उतारा और प्लेटफार्म पर खड़ा करके कुली को बुलाकर सामान उतारने गाड़ी में चढ़ा। जैसे ही गाड़ी में चढ़ा तो राजू का एकदम ध्यान आया। नीचे उतर कर देखा तो राजू प्लेटफार्म पर नही था, चारों तरफ आँखे फाड़कर देखा, राजू कहीं नजर नहीं आया। अब तो पैर के नीचे की धरती भी जैसे खिसक रही हो, ऐसी हालत हो गई थी। उस समय मैं घबराया और मैंने प्लेटफार्म पर आँखे मूदकर आचार्य भगवन् का स्मरण किया और स्मरण करते ही ज्योंही आँखे खोलीं, मेरे हर्ष का पार नहीं था, राजू मेरी आंखों के सामने खड़ा था। इस प्रकार आचार्य श्री का नाम लेते ही संकट दूर हो गया।

अनेक घटनाये है जो आचार्य श्री के नाम-स्मरण का माहात्म्य प्रकट करती है।

आचार्य भगवन् ने जब अपना अंतिम समय नजदीक जाना, संलेखना-संथारा करके अपनी आत्मा में लीन हो गये और इस प्रकार उन्होने अपने तीसरे मनोरथ को प्राप्त किया। संथारे के समय आचार्य भगवन् जिस समाधि भाव से लीन थे, उसकी हर दर्शनार्थी पर छाप पड़ रही थी। आचार्य भगवन् ने जीने के साथ-साथ मरने की कला भी सिखला दी।

आचार्य भगवन् अपने पार्थिव शरीर से हमारे बीच नही है पर उन्हें हमारे दिलों से कोई दूर नही कर सकता, पर आचार्य श्री के हम सच्चे भक्त तभी कहलायेगे जब उनके गुणों को या कम से कम एक भी गुण को अपने जीवन में अपनायेगे। हम आज ही प्रतिज्ञा करे कि प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक करेगे और आधा घंटा स्वाध्याय करेगे। जो भाई या बहन वर्तमान में सामायिक कर रहे है, वे एक सामायिक और बढ़ायेगे, यही आचार्य श्री के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

मैं अल्प बुद्धि व्यक्ति आचार्य भगवन् के विराट स्वरूप व अनन्त गुणों को न तो अपनी जिह्वा से व्यक्त करने में सक्षम हूँ और न ही मेरी लेखनी उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट करने की सामर्थ्य रखती है। जो कुछ भी मै लिख पाया हूँ यह तो फूल की कुछ पंखुड़िया मात्र हैं।

अन्त में शासन देव से प्रार्थना करता हूँ कि आचार्य श्री जहां भी विराज रहे हों उन्हे पूर्ण शांति प्राप्त हो तथा वे बहुत शीघ्र ही 'सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त' होंवे और हम भी उनके बताये हुए मार्ग पर चल कर अपना आत्म-कल्याण करें। निम्न कड़ी लिखकर अपनी बात समाप्त करता हूँ —

हर दिल तू अजीज था ।
हम सबके करीब था ।
वाकई हस्ती तू एक हस्ती था ।

—छाजूसिंह के दरवाजे के सामने, अलवर ।

जैन-जगत् के देदीप्यमान नक्षत्र

□ श्री उमरावमल चौरड़िया

जैन-जगत् के दैदीप्यमान नक्षत्र, महान् साधक, कर्मयोगी आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. अपनी जीवन यात्रा को विराम देकर, एक मात्र लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति हेतु, अपनी अनवरत यात्रा के लिए दिनांक २१ अप्रेल, १९९१ को महाप्रयाण कर गये ।

मृत्यु को सखा के रूप में आलिंगन करने वाले ही महापुरुष होते हैं । सहज स्वाभाविक रूप में मृत्यु का भी महोत्सव के रूप में स्वागत, कल्पना की नहीं हकीकत की दास्तान है । आप चौंकिए नहीं, यह सत्य रूप में घटित हुआ है आचार्य श्री के जीवन के अंतिम चरण में । पिछली दो शताब्दियो में इस प्रकार का संथारा ग्रहण करने का यह एक अद्भुत प्रसंग है ।

जयपुर संघ का शिष्टमंडल आचार्य श्री की सेवा में स्थिरवास की विनती हेतु निमाज में प्रस्तुत हुआ था । जोधपुर के भी भाई वहाँ उपस्थित थे तथा वे लोग भी जोधपुर में स्थिरवास के लिये आग्रह भरी विनती कर रहे थे । जयपुर—जोधपुर की भावभरी विनतियाँ, आचार्य श्री सुनकर-समझकर भी मौन । सिर्फ एक ही अंतरतम भावना कि श्रमण संस्कृति की अक्षुण्णता बनी रहे । आचार्य श्री ने बाद में फरमाया बताया की देखो, कितने भोले लोग है, समझते ही नहीं, मुझे तो न जयपुर जाना है न जोधपुर । भावी के प्रति स्पष्टता तथा मृत्यु का भी उत्सव मनाने की तैयारी कैसी विलक्षण बात है !

हमारे परिवार पर तो आचार्य श्री की विशेष अनुकम्पा थी । पितामह स्वर्गीय श्री केसरीमलजी चौरड़िया जिन्होंने लगभग ४७ वर्ष पूर्व देह-विसर्जन किया था, के सम्बन्ध में आचार्य श्री फरमाया करते थे कि आज समाज को आवश्यकता है ऐसे धर्म एवं सेवानिष्ठ व्यक्तियों की ।

आचार्य हेमचन्द्र सूरी के पश्चात् जैन इतिहास के एक हजार वर्षों में २० वर्ष की लघु वय में आचार्य पद को सुशोभित करने वाले आप एक मात्र प्रथम आचार्य है जो सम्पूर्ण जैन-जगत् के इतिहास में एक कीर्तिमान हैं। सम्पूर्ण जैन समाज में आप श्री ही एकमात्र ऐसे आचार्य है जिन्होंने सर्वाधिक ६२ वर्षों तक आचार्य पद को सुशोभित कर जिन-शासन को खूब दीपाया।

जयपुर पर आप श्री की विशेष कृपा रही। आपने यहाँ लगभग ७ चातुर्मास किए तथा आपके दादागुरु श्री विनयचन्दजी म. सा. के १४ वर्षो के स्थिरवास ने यहाँ एक ऐसे आध्यात्मिक वातावरण का सृजन किया, जिसकी अनुगूंज आज भी सामायिक एव स्वाध्याय के रूप में अनुगुंजित है।

ऐसे महामानव—महापुरुष को शत-शत वन्दन—नमन।

—अध्यक्ष : एस० एस० जैन कांफ्रेन्स, राजस्थान संभाग एवं
वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जयपुर

दिव्य ज्ञानी

□ श्री लक्ष्मीचन्द तालेरा

आज से करीवन १६ वर्ष पूर्व मै टोंक जा रहा था। उस समय गुरुदेव चाकसू ग्राम में विराज रहे थे। मैंने दर्शन किये। उन्होंने मुझे पूछा—सामायिक करते हो ? मैंने कहा कि माला फेरता हूं। कितना समय लगता है ? करीवन आधा घण्टा लग जाता है। मुझे प्रेम से ऐसा समझाया कि मैंने सामायिक का पच्छक्खाण लिया जो आज तक चल रहा है।

गुरुदेव जयपुर का चौमासा पूर्ण कर रतनजी लोढ़ा के बंगले विराज रहे थे। दिसम्बर का महीना था। पूज्य माताजी ने मुझे सुवह कहा—गुरुदेव के पास जाकर कहना कि आप दर्शन देने पधारे। उनके दर्शनो के वाद ही दातुन करूँगी। मैंने जाकर देखा कि गुरुदेव की तवियत ठीक नही थी। सुशीलजी वैद्य वैठे थे। मैंने मान मुनिजी व हीरा मुनिजी को अर्ज किया। उन्होंने कहा—सन्तों को ले जाओ। आचार्य श्री को अर्ज कर देगे, तवीयत ठीक नहीं

है। मैने उन्हें माताजी की अर्ज आचार्य श्री की सेवा में निवेदन करने को कहा । मैं छोटे सन्त को लेकर घर आया तथा माताजी को कहा कि गुरुदेव की तबीयत ठीक नही है, आ नहीं सकते, आप दातून कर लेवें तथा मैं सामायिक मे बैठ गया।

थोड़ा समय ही हुआ होगा, गुरुदेव व शीतल मुनिजी मकान पूछते-पूछते पधार आये तथा माताजी को मॉगलिक सुनाया। माताजी ने हाथ फरसने का अर्ज किया तो शीतल मुनिजी ने मुझे कहा कि आचार्य श्री जब ही घर फरसते है जब आप एक साल का ब्रह्मचर्य का नियम लेवें। उस समय धर्मपत्नी से बात की तथा माताजी की मनोकामना पूरी हुई। नियम लिया, उसके तीन दिन बाद ही माताजी स्वर्गवासी हुई। गुरुदेव श्री को कितना दिव्य ज्ञान था कि उस आत्मा की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये खुद की अस्वस्थ अवस्था होते हुए भी पधारे जब कि मैने गुरुदेव के प्रत्यक्ष दर्शन कर अर्ज नही किया था।

मेरे पर गुरुदेव की असीम कृपा रही। जब भी जयपुर से अजमेर की तरफ पधारे या अजमेर से जयपुर की तरफ, हमारी फैक्ट्री को अवश्य पावन किया।

ऐसे महान् आत्मा की पूर्ति होना असम्भव है । मैं अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूं।

—गुलाब निवास, एम० आई० रोड, जयपुर–१

युग प्रवर्तक आचार्य श्री

□ श्री रिखबदास भंसाली

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के समाधिमरण से स्थानकवासी समाज की ही नहीं वरन् समग्र जैन समाज की महती क्षति हुई है। बीस वर्ष की अल्पायु में आचार्य पद को सुशोभित करना आपके अनूठे व्यक्तित्व का ही फल है। आपने अपने सदुपदेशों द्वारा जैन समाज को साधना, स्वाध्याय और सत्संग की प्रेरणा देकर जिन शासन को दीप्तिमान बनाया और सुसंस्कारों का बीजारोपण किया जिन्हें जैन समाज धरोहर के रूप मे स्वीकार कर सदैव आगे बढता रहेगा । 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के

रूप में एक प्रामाणिक ग्रन्थ प्रदान कर आपने अविस्मरणीय ख्याति प्राप्त की एवं भगवान महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। सम्प्रदायवाद से दूर रहकर आपने समाज का ध्यान आकृष्ट किया। आज के इस भौतिक युग में हम अध्यात्म से मुख मोड़ते चले जा रहे हैं, किन्तु परिणाम क्या होगा, इसकी तरफ हम दृष्टि नहीं डालते। बातें हम २१वी सदी की करते हैं। अगर यही प्रयास भौतिक सुखों को प्राप्त करने में रहा तो हमारा नैतिक स्तर गिर जायेगा एवं सिर्फ रहेगा "मैं"। इससे मानसिक अशांति की सृष्टि होगी और दुष्कर्मों की ओर झुकाव होगा। मानसिक तनाव व्यक्तित्व को समाप्त कर देगा एवं हम सभी विनाश के कगार पर पहुँच जाएँगे।

इस विनाश से मानव को बचाने के लिए स्वर्गीय आचार्य श्री ने यही प्रेरणा दी कि हे मानव! तुम अन्तरमुखी बनो। तुम्हारे में दानव से मानव, नर से नारायण और जन से 'जिन' बनने की शक्ति है। अपनी सुषुप्त ऊर्जा को जाग्रत करो। यदि तुम्हारे में वह शक्ति आ गई तो भवसागर से पार लग जाओगे। स्वर्ग और नरक की अनुभूति अपने आप आ जायेगी। सत्कर्म करोगे, स्वर्ग की अनुभूति होगी, कुकर्म करोगे नरक की अनुभूति होगी, लेकिन इस स्थिति तक पहुँचने के लिए प्रयास करना पड़ेगा। विकारों के जाल से मुक्त होकर ही सफलता प्राप्त हो सकती है। इसके लिए गहन चिन्तन की आवश्यकता है और वह सिर्फ स्वाध्याय और सत्संग से ही प्राप्त हो सकता है। इसीलिए आचार्य प्रवर ने कहा कि समतापूर्ण सामायिक ही जीवन को गति प्रदान कर सकती है और व्यक्ति को सत्कर्म करने की प्रेरणा देती है। शारीरिक दृष्टि से भी समता तनाव-मुक्त कर स्वास्थ्यवर्द्धक सिद्ध होती है। मानसिक दृष्टि से एक हल्कापन महसूस कराती है जो दीर्घायु की ओर अग्रसर करती है, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से दानवता को दूर कर प्रेम का संचार करती है और जीवन के सही लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक बनती है।

जैन समाज के समक्ष बार-बार यह प्रश्न आता है कि आचारों में परिवर्तन होना चाहिए किन्तु जो व्यक्ति अपने को 'जिन' सेवा के लिए समर्पित कर देता है, वह परिवर्तन की आवश्यकता ही नहीं समझता। अगर ऐसा होता तो धर्म में भी परिवर्तन की आवश्यकता होती, किन्तु श्रमण भगवान महावीर की वाणी आज २५०० वर्षों के बाद भी शाश्वत है और शाश्वत रहेगी। जब-जब अभाव महसूस होगा, ऐसे युग प्रवर्तक आचार्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विद्यमान रहेंगे। आज आचार्य श्री हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं किन्तु

उनका प्रखर व्यक्तित्व सदैव ही हमें प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। मैं उस महान् आत्मा के पावन चरणों में श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हूं एवं शासन देव से यही प्रार्थना करता हूं कि उनका परोक्ष आशीर्वाद ही प्राप्त कर सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धि कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकूं। यही दृढ़ संकल्प सच्चे रूप में उस महान् वीतरागी के लिए हमारी श्रद्धांजलि होगी।

—१५, नूरूमल्ल लोहिया लेन, कलकत्ता–७००००७

मृत्युंजयी बन गये

□ श्री उमरावमल ढढ्ढा

आचार्य श्री ने आजीवन ज्ञान, दर्शन, चारित्र की निरन्तर साधना की, अपने जीवन को सार्थक करते हुए हम सभी को दान, शील, तप और भाव मोक्ष के चार द्वार बतलाते हुए इस पर अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप चलने की महती प्रेरणा दी। उनकी प्रेरणा से हजारों भव्य जीवों ने कुशील का त्याग, व्यसन से मुक्ति, स्वधर्मी सेवा, जीव-दया, सामायिक-स्वाध्याय, समाज-सेवा आदि सद्मार्ग पर चलने के शुभ संकल्प ग्रहण किये।

आपने जैन संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए हजारों किलोमीटर की पदयात्रा करते हुए, प्रभु महावीर के शासन की प्रभावना करते हुए, मुमुक्षु प्राणियों को भी इसकी शान को अक्षुण्ण बनाये रखने का पावन सन्देश दिया।

उन्होंने अपने जीवन में पाँच महाव्रतों का दृढ़ता से पालन करते हुए समाज को जो अमूल्य निधि प्रदान की, हमें भी जो प्रेम और आत्मीयता प्रदान की, वह न केवल हमारे जीवन का अविस्मरणीय अध्याय ही बन गया है अपितु मूल्य-निधि भी बन गया है, जिसे हम सम्भाल कर रखेंगे।

अन्तिम दिनों में उन्होंने शास्त्र-सम्मत संथारा तप ग्रहण करते हुए स्वेच्छा से मृत्यु का वरण किया और मृत्युंजयी बन गये।

हम सभी को वीतराग देव शक्ति प्रदान करें जिससे हम उनके बताये गये सिद्धान्तों पर चलकर उनके प्रति सच्ची कृतज्ञता का ज्ञापन कर सके।

जयपुर संघ आचार्य देव के शुभ दर्शन करने निमाज गया तथा स्थिरवास के लिए विनम्र विनती की, उसमें मैं भी शामिल था। उस समय आचार्य श्री ने अस्वस्थ होते हुए भी, सन्तों के माध्यम से जयपुर संघ को आधुनिकता की चकाचौंध से अलग हटकर जैन संस्कृति की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहने की प्रेरणा दी। हम उनके सन्देशों को जीवन मे उतार कर मानव-समाज में प्रचारित करे, यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—अध्यक्ष, अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी
गणेश भवन, परतानियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

अद्भुत स्मरण शक्ति के धनी

☐ श्री शिरोमणिचन्द्र जैन

प्रातः स्मरणीय, धर्म धुरंधर विद्वान्, जैनाचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज तीसरे मनोरथ के अनुसार संथारा करके अंत समय तक सजग प्रहरी रहते हुए, पंडित मरण प्राप्त कर सिद्ध लोक के वासी हो गये। इसे जैनागमों के अनुसार उनके संताचार्य जीवन की सफल कमाई या महिमा कहना, अतिशयोक्ति नही होगी।

मेरा गुरुदेव से सन् ३१–३२ से परिचय था जब वे मेरी जन्मभूमि झालावाड़ पधारे थे और पूज्य पदवी पर आसीन हो चुके थे। उनके साथ वयोवृद्ध संत श्री सुजानमलजी महाराज तथा बड़े लक्ष्मीचन्दजी, छोटे लक्ष्मीचन्दजी महाराज आदि संत थे। मैं उनके दर्शन व वचनामृत से इतना प्रभावित हुआ कि मैंने करीब ३ वर्ष तक उनकी सेवा मे बराबर पत्र भेजे किन्तु कभी किसी पत्र का जवाब नही मिला। निराश होकर, मैंने पत्र लिखना बंद कर दिया। सन् १९६७ मे ३० वर्ष बाद जब सैलाना मे गुरुदेव के दर्शनार्थ रायपुर (झालावाड़) के सुश्रावक सेठ पूनमचन्दजी धूपिया (जो अभी ९६ वर्ष के है) गये, तो गुरुदेव ने मेरा नाम व सारी बातें लेकर उनसे पूछा कि शिरोमणिचन्द्र बड़ा प्रेमी श्रावक था, वह झालावाड़ में मिला था, अभी कहाँ है? उनके हमारे पास तीन

साल तक पत्र आये किन्तु हमने किसी का जवाब नहीं दिया, इसलिए उन्होंने पत्र लिखना बंद कर दिया। यह उनकी अद्भुत स्मरण-शक्ति का एक उदाहरण है कि उन्होने ३० वर्ष तक मेरा नाम व पत्रो की पहुँच याद रखकर, जब झालावाड़ क्षेत्र के एक सुश्रावक उनके सम्मुख उपस्थित हुए तो, उन्होंने याद करके इतनी बाते कहीं।

पूज्य गुरुदेव ने अपने जीवनकाल में सामायिक, स्वाध्याय का इतना प्रबल प्रचार किया कि आज देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर शहरों-नगरों में युवक-युवतियां जो धार्मिक ज्ञान से बिलकुल अनभिज्ञ थे, वे धर्माराधना के प्रति दृढ़ अनुरागी बनकर व बहुत से स्वाध्यायी बनकर, चातुर्मास पर्युषण पर्व में अनेक दुर्गम क्षेत्रों में जहाँ संतों के नहीं पहुँचने से धर्माराधना नही होती थी, वहां उनके जाने से धर्म की ज्योति जगी व उत्साह पैदा हुआ और संतों की अनुपस्थिति में संघ-समाज को धर्म जागृति का लाभ मिला। यह पूज्य गुरुदेव की विचक्षण सूझबूझ का ही परिणाम कहा जाना चाहिये।

महाकवि कालीदास इस संसार से चले गये किन्तु 'मेघदूत' और 'अभिज्ञान शाकुंतलं' के रूप में वे आज विद्यमान है। आदि कवि वाल्मीकि इस संसार में नहीं है, किन्तु 'वाल्मीकि रामायण' के रूप में आज वे संसार में मौजूद हैं। श्रीराम के गुण-गायक संत तुलसीदास पार्थिव रूप में नहीं है, किन्तु 'रामचरित मानस' के रूप में आज वे अमर है और संसार में मौजूद है। इसी भांति यद्यपि पूज्य हस्तीमलजी महाराज अपना अनित्य शरीर छोड़कर चले गये, किन्तु उनकी सुकृतियाँ आज जैन समाज के पास मौजूद हैं और वे इनके द्वारा संसार में अपना नाम अमर कर गये है और दुनिया सदैव उनको याद करती रहेगी।

मैं तुच्छ श्रावक उनके गुणगान करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ, पर उनकी महान् पवित्र आत्मा को, जहां कहीं भी हो, सविधि वंदन करता हूँ।

९/१, न्यू पलासिया,
इन्दौर (म० प्र०)

—वर्किंग ट्रस्टी व मंत्री
श्री गोविन्दराम सेकसरिया चैरिटी ट्रस्ट
व
अध्यक्ष
जे० एल० जैनी ट्रस्ट, इन्दौर

तात्त्विक होने के साथ सात्त्विक भी

□ न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमल लोढ़ा

जैन समाज में समय-समय पर अनेक युग पुरुष पैदा हुए है जिन्होंने समाज को नया कार्य, नयी वाणी और नया विचार दिया है। स्थानकवासी जैन समाज के युग पुरुषों की परम्परा की कड़ियों में श्रद्धेय पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० भी एक है।

आप श्री स्वकल्याण के साथ पर कल्याण करते थे। आपका सोचना, वोलना और कार्य करना सभी में जनहित व जन-कल्याण की भावना निहित थी। आप स्वयं अपने व्यक्तित्व व कृतित्व से वने थे।

भगवान महावीर ने सच्चे साधक के जीवन का विश्लेषण करते हुए कहा—सच्चे साधक का जीवन जैसा भीतर में होता है, वैसा ही वाहर में होता है और जैसा वाहर में होता है वैसा भीतर में होता है—

जहा अन्तो, तहा वाहिं ।
जहा वाहिं, तहा अन्तो ।।

यह उक्ति आप पर पूर्णतया लागू होती है।

आपका जीवन एक अखण्ड जीवन था। जीवन में न तो वनावट थी और न सजावट, किन्तु थी वास्तविकता। आपको दिखावट पसन्द नहीं थी। आपके जीवन में छल, प्रपंच, दुराव या छिपाव नही था। दोहरा जीवन व दोहरा व्यक्तित्व नही था। आप तात्त्विक होने के साथ सात्त्विक भी थे। आचार्य श्री जव व्यष्टि की सीमाओं का उल्लघन कर समष्टि वन गये तव आपका कार्य-क्षेत्र जनहिताय सर्व जनसुखाय वन गया। आपके जीवन का एक-एक क्षण कोहिनूर हीरे की तरह मूल्यवान वन गया और जन-जन की दृष्टि में श्रद्धा के केन्द्र वन गये। आपकी चेष्टाएँ, मानसिक व्यापार और वौद्धिक चिन्तन लाखों व्यक्तियों के जीवन में प्राण फूकने लगा। उनकी सुपुप्त भावनाओं की जागृति हुई।

जैन समाज के उत्कर्ष के लिये, समाज के संगठन के लिये प्रवल प्रयास आप जीवनपर्यन्त करते रहे। हजारों मीलों की पैदल यात्राएँ की, अगणित

कष्ट सहन किये, किन्तु कभी अपने कृतित्व का अहंकार नहीं किया। कार्य करके कभी उसके फल की आकांक्षा नहीं की। अनासक्त योगी थे।

'समयं गोयम मा पमायए" का सिद्धान्त आपने जीवन में साकार रूप से उतारा था। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की दिनोंदिन वृद्धि होती रहे, इसी लक्ष्य को सामने रखकर उपनिषद् की यह पुण्य पंक्ति "चरैवेति चरैवेति" अर्थात् चलते चलो, चलते चलो, आपके जीवन का आदर्श रहा था।

इसके अतिरिक्त शारीरिक सहनशीलता भी आपकी द्रष्टव्य थी। वेदना के क्षणों में आचार्य श्री का चिन्तन, मनन बढ़ जाता था। प्रमाद प्रवृत्ति आपके जीवन में बहुत दूर थी। उस समय आपके आचरण को देख कभी-कभी धीर, वीर गंभीर श्रमण भगवान महावीर का जीवन स्मृति-पटल पर आकर टकराने लगता था, जो जीवन में प्रेरणा का कार्य करता है।

आचार्य श्री गंगाजल के समान पवित्र, नवनीत से भी नरम, महान् परोपकारी, महान् साहित्य-साधक, ज्ञान-पिपासु, इतिहासज्ञ, संयम के आदर्श प्रतीक, सच्चे प्रवचनकार, कर्मयोगी, आत्म-विश्वासी, भविष्य-द्रष्टा, अपनी प्रशंसा से दूर, एकान्त व शान्तिप्रिय परमयोगी, सामायिक-साधना के संदेश वाहक, स्वाध्याय के प्रेरक और ज्ञान-क्रिया का समन्वय करने वाले महा-पुरुष थे।

गत चालीस वर्षों के अधिक समय में आचार्य श्री के सम्पर्क में आने का अनेक बार अवसर मिला था। कार्यपालिका के प्रतिष्ठित अधिकारीगण, न्याय-पालिका के न्यायाधीश, राजनैतिक नेता व समाजसेवको ने अनेक बार आपके दर्शन मेरे साथ किये थे। वे आचार्य श्री के फक्कड़पन, निर्मल विचार, सरसता-सरलता, आँखों से छलकती हुई सहज स्नेह-सुधा, मुख पर मधुर मुस्कान और संयम-साधना से प्रभावित हुए। उनका कहना था "आचार्य श्री जलचित्र की तरह है जो सन्निकट से देखने पर सुन्दर ही नही, अति सुन्दर लगते हैं।" अनेक उदाहरण हैं जबकि आपके दर्शन करके पतित से पतित और पापी से पापी व्यक्ति भी अपने जीवन में समुचित परिवर्तन करके आपकी शरण में आ गये, पापमय अजैन प्रवृत्तियों का परित्याग कर दिया। इतना ही नहीं, इन पंक्तियों के लेखक के अज्ञानान्धकार को दूर कर, आप श्री ने ज्ञान का प्रकाश दिया। उसी के फलस्वरूप रग-रग में जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा है। मेरे स्वयं के जीवन की कई घटनाएँ है जिनका उल्लेख करना संभव नहीं है। प्रसंग तो ऐसे कई है कि आप श्री के आदेशों की पालना में मेरा हित हुआ। आपका विरल व्यक्तित्व चित्ताकर्षक और सुहावना था जिसकी अमिट छाप धर्म में प्रवृत्ति करने

में सहायक हो रही है। वडे-वड़े महात्माओं और संतों के दर्शन से उतनी शांति नही मिली, जितनी कि आचार्य श्री के दर्शन व चरण-स्पर्श से।

आपके पथ-प्रदर्शन पर चलकर, सद् विचारों और सत्कर्मों की प्रेरणा लेते रहे, यही समाधिमरण को प्राप्त करने वाले महान् आचार्य के प्रति हमारी श्रद्धाञ्जलि है।

—पूर्व न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, राजस्थान,
अध्यक्ष : राज्य आयोग (उपभोक्ता संरक्षण) राजस्थान, जयपुर।
अध्यक्ष : जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर।

अत्यन्त दयालु और परोपकारी

☐ श्री रतनलाल सी. बाफणा

मैंने अपने जीवन मे किसी महात्मा में अगर परमात्म स्वरूप देखा है, तो वे हैं परम श्रद्धेय पू आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज, जिन्होंने प्रतियोगिता व प्रतिद्वन्द्विता के इस प्रवाह मे अपने आपको प्रसिद्धि से दूर रखकर, अपना कार्य सिद्ध कर लिया। वैसे उनका जीवन जन-जन की कल्याण भावनाओ से भरा हुआ था। हृदय से अत्यन्त दयालु, परोपकार की उत्कृष्ट भावना को लेकर उनके जीवन मे मुझसे सम्वन्धित सैकड़ों उदाहरण हैं। कोई भी दु.खी अगर अटल श्रद्धा और प्रवल भावना से उनके निकट गया, कभी खाली हाथ नही लौटा। हर सन्त यही कहते है कि आचार्य भगवन् की मुझ पर असीम कृपा थी, हर श्रावक यही कहता है कि मुझे गुरुदेव ने वचाया। व्यक्ति-व्यक्ति उनके जीवन से, परोपकार-वृत्ति से, आत्म-संयम व साधना से प्रभावित हुए विना नहीं रहा। इसके साथ यह भी कहना गलत नहीं होगा कि जो कुतर्क और विवादों को लेकर उनके सामने आया, वह जरूर खाली हाथ गया। इसके भी कई उदाहरण मेरे सामने हैं। जन-जन उनके जीवन से प्रभावित हुआ। यह उनके दरवार की निराली शान थी—

तेरे दरवार की दाता, निराली शान है देखी।
कि रहमत तेरी गलियो के है चक्कर काटते देखी।।
फैलाया जिसने कर, दाता तेरे दरवार के आगे।
तुझे देते नहीं देखा, मगर झोली भरी देखी।।

मेरा जीवन वचपन से लेकर अभी तक पू. गुरुदेव से पूर्णतया सम्वन्धित रहा। जीवन के कुछ संस्मरण इस लेख के माध्यम से देना चाहूँगा।

१. सन् १९७३ की २६ जनवरी को मैने १९ साल की सर्विस छोड़ी। सी समय मैने गोल्ड लाइसेन्स के लिए, नासिक विभाग में प्रार्थना पत्र पेश क्या। मेरा केस पूर्ण रूप से ठीक होने पर भी उस समय के सेन्ट्रल एक्साइज असि. कलेक्टर ने नामंजूर कर दिया। मैने पूना सेन्ट्रल एक्साइज कलेक्टर के ास अपील की। लाइसेन्स मिलने में एक प्रतिशत भी शंका नहीं थी परन्तु एन क्त पर अपील नामंजूर हो गयी। बड़ा दुःखी हुआ। मैंने रिवीजन अपील दिल्ली की। यह अन्तिम मौका था। मेरा उस समय तक का जीवन स्वर्ण व्यापार सम्बन्धित रहा। मै यही चाहता था कि मुझे गोल्ड लाइसेंस जल्दी मिले और अपनी कार्यशक्ति व अनुभव का परिचय दूँ, परन्तु लाइसेन्स के बिना सब कुछ सम्भव था। दिल्ली में कोई पहचान नहीं थी। कभी जाने का काम भी नहीं ड़ा। एकदम याद आया। क्या पू. गुरुदेव से अपील करूँ? बस विचार हो या और जयपुर सुबोध कॉलेज में जहाँ पू. गुरुदेव विराज रहे थे, शाम को हुँचा। संक्षेप में सारा दुःख-दर्द बताया। बोले—जो भी कमाओ, कम से कम % द्रव्यदान करते रहना। बस अब क्या था? अटल विश्वास हो गया। इतना ल्दी लाइसेंस मिल गया कि वहाँ सचिवालय में मुझे बताया गया कि ऐसे ामले वहाँ ३-३ साल से पेंडिंग है और आपका काम तीन महीनों में हो गया। गोल्ड लाइसेस क्या मिल गया, नया जीवन मुझे मिल गया। आल इण्डिया राफ एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री शीलचन्दजी जैन देहली वालों ने मुझे सहयोग रते हुए बताया कि मेरा केस इतना पूर्ण होते हुए भी लाइसेस लेने में मुझे जो ठिनाइयाँ हुई है, वैसी भारत में शायद किसी को नहीं। लाइसेस मिल गया, ह थी करुणा-सिन्धु की कृपा।

२. सन् १९८४ की बात। मेरे लघु भ्राता श्री कस्तूरचन्दजी बाफणा के रिवार की कहानी। अकस्मात् दैविक प्रकोप की शुरूआत। नव-विवाहित पुत्र ुशीलकुमार की सौ. विनणी के कपड़े अपने आप फटने लगे। चाहे वे पहने हुए ों, चाहे सूटकेस में हों, चाहे धोकर सुखाये गये हों। शुरू-शुरू में लगा कि वापरने ं कही असावधानी होती होगी, परन्तु क्रम बढ़ता गया, दिन में ४-५ साड़ियाँ रोज फटने लगी। छोटे बच्चे के गाल को काटा जाने लगा। कौन काटता है, देखता नहीं था। घर का प्रेममय वातावरण क्लेशमय हो गया। घर की शान्ति अशान्ति में बदल गई। नव-निर्मित घर ही काटने लग गया। सब तरफ परेशानी ही परेशानी। मै जब राजस्थान गया, देखा कि हालत काबू से बाहर है। मेरे लघु भ्राता का शरीर ५०% ही रह गया। घर का वातावरण ऐसा बन गया कि सब जिन्दा थे पर जानहीन। नजदीक, दूर जहाँ भी तांत्रिक, मांत्रिक थे, बुलाये र सब व्यर्थ। यहाँ तक कि पटना से एक बड़े तान्त्रिक को मैंने बुलाया, पर उसने भी यही कहा कि यह कार्य उसकी शक्ति के बाहर है। क्या करना, क्या नही करना, किंकर्तव्य विमूढ़ बन गया। अक्ल कुछ काम नही कर रही थी।

दैविक प्रकोप भी वहुत ही छलयुक्त था । सुहाने और लुभावने प्रलोभन देकर छला जा रहा था । तरह-तरह के दृश्य घर में उपस्थित किये जा रहे थे । घर के सारे सदस्यों की चिन्तनशक्ति लुप्त हो गई थी । पौत्र जन्म के बाद पहली बार घर पर आया तो उसके गले की पहनाई हुई स्वर्ण चैन गायब ।

८४ में आचार्य देव का चातुर्मास भोपालगढ़ में था । चातुर्मास के कामों की गुरुतर जवाबदारी मेरे छोटे भाई पर थी । वे सब काम करते पर पारिवारिक परेशानी से वहुत क्षीण हो रहे थे । सोचा, इस कष्ट को क्या पू. गुरुदेव दूर नहीं करेंगे ? वस क्या था ? सारा दुःख-दर्द पहले पू. हीरामुनिजी म.सा. को सुनाया। उन्होंने कहा—रे भाई, ऐसे महान् गुरु के होते हुए तुम इस तरह तकलीफ मे ? गुरु-चरणों मे अपनी बात कहो । संकट का निवारण हो जायगा । हिम्मत बंधी। सोच रहा था, गुरु चरणों में कैसे जाऊँ, कैसे अपनी व्यथा उन्हे सुनाऊँ ? मौके की तलाश मे था । एक दिन सुबह के समय आचार्य श्री कमरे में स्वाध्याय कर रहे थे, वन्दन करके सारी बात संक्षेप में कही । वे स्थिति को तत्काल समझ गये और लग गये प्रकोप को दूर करने की तैयारी में । २-३ रोज में ही वह भारी दैवी प्रकोप शनैः शनैः दूर होता गया और धीरे-धीरे शान्ति महसूस होने लगी। कपड़े फटने वन्द, घर का वातावरण प्रेममय वन गया और ऐसा लगने लगा कि जैसे घर मे कोई परेशानी थी ही नही । घर में पूर्ण अमन चैन । यह थी दयालु की दया । इतने वड़े प्रकोप का इस महापुरुष ने निवारण किया । सोच सकते है उनमे कितनी महान् आत्मशक्ति होगी ।

३. सन् १९८५ की वात । हर वर्ष ३-४ वार पू. गुरुदेव के दर्शन करने जाता था । पालासनी गुरुदेव विराज रहे थे । संध्या का समय था, चौविहार का वक्त था । मैं मागलिक लेने ऊपर गया । मांगलिक लेकर नीचे आया । १-२ मिनट वाद एक श्रावकजी आये और कहने लगे—पू. गुरुदेव ने आपको याद किया है । वापस आया । कहा कि सिर के वोझे को कम करने के लिए पोकेट का वोझा कम करते चलो । सरकारी परेशानी आ सकती है । पहले तो मैं घवराया, परन्तु हिम्मत रखी और गुरुदेव द्वारा वताये हुए मार्ग का अनुसरण किया । जलगाँव आते ही पता चला कि मेरे पीछे कुछ नजदीक के लोगों ने कितना वड़ा षड़यन्त्र रच रखा था । योगायोग व गुरु-कृपा ही समझिये कि सारा मामला अपने आप रफा-दफा हो गया ।

४. सन् १९८२ के जलगाँव चातुर्मास मे मेरे प्रिय साथी श्री दलीचन्दजी ने और मैंने सोचा कि गुरुदेव के नाम पर एक हॉस्पीटल खोला जाय । हम दोनों ने यह प्रस्ताव गुरुदेव के सामने रखा । नाम से तो पूर्णतया इन्कार किया परन्तु हॉस्पीटल खोलने की भावना को कार्यान्वित करने का संकल्प दिला दिया ।

बोले—भाई, बनियों की भावनाओं में और धार्मिक भावनाओं में बहुत जल्दी परिवर्तन आ जाता है, इसलिये संकल्प करवा दिया। शीघ्र ही महावीर जैन हॉस्पीटल के नाम से दवाखाने की शुरूआत हुई। गुरुदेव बहुत खुश हुए। आज एक नहीं दो हॉस्पीटल जलगाँव में महावीर जैन हॉस्पीटल के नाम से चल रहे है। हजारों जरूरतमंद उसका लाभ उठाते है।

५. १९९० में मैंने अक्षय तृतीया के दिन से एक सुन्दर जलमन्दिर की शुरूआत की। मैं चाहता था कि किसी तरह पू. गुरुदेव का नाम इस जलमन्दिर से जोड़ा जाय। जलमन्दिर पर तो गुरुदेव नाम लगाने नही देंगे। अगर नाम लगा भी दिया तो शिकायत जायेगी और नाम हटाना पड़ेगा। एक युक्ति ध्यान में आयी। अक्षय तृतीया का दिन था। एक शिलालेख तैयार करवाकर लगवाया—"पू. आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. के आचार्य पद आरोहण की ६०वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में जलमन्दिर का शुभारम्भ।" आचार्य श्री के कानों तक बात पहुँची। बोले—यह क्या किया? मैंने अरज किया। अन्नदाता! आपका नाम जलमन्दिर पर नहीं लगाया है। शिलालेख में थोड़ा उल्लेख किया है। हर व्यक्ति मेरे गुरु का नाम स्मरण करे, इसी भावना से इतना लिखा है। कई बार मुझे वह भी हटाने को कहा—पर मैंने नहीं हटाया।

६. जलगाँव में गत वर्ष एक स्वाध्याय भवन वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ को भेंट किया। सोचा था वो तो जलमन्दिर था, यह स्वाध्याय भवन है, जो आचार्य प्रवर के जीवन का सबसे प्रिय विषय है, उस पर उनका नाम दिया जाय, पर उनको यह बात अच्छी नहीं लगी। आखिर मुझे मेरा ही नाम 'रतनलाल सी. बाफणा जैन स्वाध्याय भवन' देना पड़ा। पर इसमें मैंने एक युक्ति निकाली। शिलालेख लिखवाया, उसमें इस तरह लिखवाया। 'परम श्रद्धेय पू. आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. के अनन्य भक्त श्री रतनलाल सी. बाफणा ने यह स्वाध्याय भवन समाज को समर्पित किया।'

इस बात की जानकारी मैंने पू. गुरुदेव को नहीं दी। क्योंकि मुझे मालूम था कि उनके दिल को दर्द होगा, उनके नाम से। साथ में यह भी सोच रहा था कि प्रतियोगिता व प्रतिद्वन्द्विता के इस युग में यह महापुरुष प्रसिद्धि से कितना दूर रहना चाहता है।

कोटि-वंदन है उनको।

जलगाँव में कई सम्प्रदायों के चातुर्मास हुए। मुझे कभी इस सम्बन्ध में कुछ भी संकेत नही दिया। मैं सभी सम्प्रदायों के साधुओं के साथ समान व्यवहार रखता था। हर चातुर्मास जलगाँव में सर्वश्रेष्ठ हो, सन्त भी जलगाँव संघ

का नाम सदा याद रखे। सेवाभक्ति, आदर-भाव, आतिथ्य-सत्कार में कहीं कमी न हो। कुछ भोले लोग पू. गुरुदेव के पास जाकर कह देते थे—'रतनलालजी का कोई सच्चा नहीं।' परन्तु आचार्य प्रवर ने कभी इस बाबत मुझे साम्प्रदायिकता की ओर विषम कट्टरता का संकेत नहीं दिया और यही कहा कि रतनलाल बड़ा समझ से काम लेता है और यही कारण है कि जलगाँव में हर सम्प्रदाय के चातुर्मास सफल रहे। पू. गुरुदेव की भूमिका स्पष्ट थी। वे एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी साम्प्रदायिक विष से स्वयं तो दूर रहे ही, अपने भक्तों को भी इस विष से दूर रखा। यही कारण है कि शुरू से लेकर अन्त तक उन्होंने न केवल रत्नवंश का नाम उज्ज्वल किया, न केवल स्थानकवासी समाज को ही ऊँचा उठाया अपितु समग्र जैन समाज को सर्वोपरि शिखर पर पहुँचाकर संलेखणा समाधिपूर्वक नश्वर देह का त्याग किया।

इस युग की महान् विभूति को समर्पित है ये काव्य पंक्तियां—

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. मुनिवर का रूप नहीं धारते,
यदि अपनी पावन वाणी से, जग का कल्याण नहीं करते।
मानवता मोद नहीं पाती, ये जीवित मंत्र नहीं होते,
यह भारत गारत हो जाता, गर ऐसे सन्त नहीं होते॥

—नयनतारा, सुभाष चौक, जलगाँव-४२५००१

एक अनुपम, ओजस्वी, प्रखर आभा

☐ श्री केशरीचंद सेठिया

आचार्य श्री का बहुआयामी व्यक्तित्व निराला था, अनूठा था। कृशकाय श्यामवर्ण लेकिन मुखमंडल पर एक अनुपम ओजस्वी प्रखर आभा। ललाट पर दृढ़ निश्चय, संयमी तेज की रेखाएँ उभरी हुई थीं। भारत के महर्षियों, मनीषियों की शृंखला में उनका नाम जुड़ा हुआ था।

अनुशासनप्रिय, अल्पभाषी किन्तु स्पष्टवादी, श्रमणाचर्या का कठोरता से पालन करने वाले, अन्धविश्वास व आडम्बर से दूर, वे लोक और आत्म-कल्याण की भावना से ओतप्रोत थे। उनमें जहाँ अगाध पांडित्य, पैनी जीवन-दृष्टि और चारित्रिक वैभव का अनूठा संगम था, वहीं सामाजिक जड़ता, बुराइयों एवं प्रदर्शन का उन्मूलन करने की लगन थी।

भारतीय श्रमण-परम्परा में आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० का पना विशेष स्थान था। विचक्षण प्रतिभा और ज्ञान एवं क्रिया से समन्वित ष्टि से आपने समाज को नया प्रकाश दिया था। एक ओर सामाजिक रूढ़ियों विकृतियो को दूर करने में आप 'हस्ती' की तरह गतिशील थे तो व्यक्ति के ीवन को साधना, चिन्तन, सामायिक, स्वाध्याय के माध्यम से अन्तर्मुखी बनाने तु आप ऐरावत हस्ती थे। शास्त्रों का मंथन, मनन, आलोड़न कर आपने उन्हें ये रूप में, आधुनिक भाषा-शैली में प्रस्तुत कर एक नवीन चेतना का संचार केया था।

आचार्यश्री ने सदैव अप्रमाद को महत्त्व दिया। सोते, जागते, आत्म-कल्याण, साधना एवं संयम पालन की भावना बनी रहे, ऐसा उपदेश देकर आपने महावीर के अनुयायियों में स्वाध्याय के प्रति आकर्षण बढ़ाया था। स्वाध्याय के माध्यम से ही वे अप्रमाद की स्थिति पाते थे और उन्हें मिली थी ई दृष्टि। समाज में व्याप्त बुराइयों जैसे—फैशनपरस्ती, राजनीति प्रेरित धार्मिक कार्य, चातुर्मास में फिजूलखर्ची, आडम्बर, वैवाहिक प्रसंगों पर सौदेबाजी व प्रदर्शन को आपने संक्रामक रोग मानकर सदैव इनसे मुक्ति पाने का संदेश दिया। आपके हर प्रवचन में आत्म-बोध के साथ सामाजिक चेतना का क्रांतिकारी शंखनाद रहता था।

आपने जब देखा कि स्थानकवासी समाज में चातुर्मास पर अत्यधिक भार समाज पर पड़ता है, खासकर समाज की ओर से चलाये जाने वाले निःशुल्क भोजनालय पर और इसी कारण छोटे-छोटे गाँव के श्रद्धालु श्रावक चातुर्मास की विनती करने में कठिनाई व संकोच अनुभव करते हैं तो आपने गहरा चिंतन कर घोषणा की कि जहाँ पर समाज की ओर से निःशुल्क भोजनालय चलेगा, वहाँ मैं चातुर्मास नहीं करूँगा। नगरों की भीड़-भाड़ से बचना भी एक कारण हो सकता है। यद्यपि आगे जाकर इसका प्रभावी अनुकरण व पालन नहीं हो सका पर आपकी ओर से लिया गया यह क्रान्तिकारी कदम था।

साधु-सम्मेलन पर बीकानेर में सेठिया कोटड़ी, जलगाँव व मद्रास के चातुर्मास मे मुझे उनके निकट सान्निध्य का विशेष अवसर मिला था। हमारे परिवार के प्रति पूज्य बाबूजी श्री भैरोदान जी व पूज्य पिताश्री जेठमल जी सेठिया के साथ उनका अति स्नेह था। उनके श्रीचरणों में मुझे भी कुछ सोचने-समझने और सीखने का अवसर मिला था। मैने देखा है—वे अत्यन्त अनुशासन-प्रिय थे। साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओ से जिन बातों की अपेक्षा रखते थे, स्वयं भी उनका कठोरता से पालन करते थे। संयम की साधना में उन्होने कभी किसी से समझौता नही किया।

प्रभु महावीर के इस लाड़ले का पार्थिव शरीर हमारे बीच से उठ गया, पर उनकी वाणी का उद्घोष शताब्दियों तक जन-जन के लिये प्रेरणा-स्रोत बना रहेगा।

हम सब श्रद्धानत है इस जिनशासन की जीवनपर्यन्त सेवा करने वाले महान् योगी के श्री चरणों में।

—संयोजक, साहित्य समिति, अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ
११, रंगनाथन एविन्यू, किलीज, मद्रास-६०००१।

इतिहास-मनीषी साधक संत

☐ डॉ० प्रेमसुमन जैन

सांस्कृतिक परम्परा के जीवन्त प्रतीक, आध्यात्मिक सन्त स्व० आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज सा० श्रमण संस्कृति के उन्नायक सन्त थे। उनका जितना सम्मान एवं आदर जैन परम्परा व समाज में था, उतना ही इतर परम्परा में। क्योंकि वे न केवल धार्मिक सन्त थे, अपितु कुशल लेखक, भाषा-शास्त्री एवं भारतीय इतिहास के बहुश्रुत मनीषी थे। उनके द्वारा रचित साहित्य शोध के क्षेत्र में प्रतिमान माना जाता है। 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' पुस्तक के चार भाग वास्तव मे जैन संघ और धर्म-दर्शन के विश्वकोश हैं। उनके अन्य ग्रन्थ भी शोधपूर्ण सामग्री से युक्त है। आचार्य श्री की लेखनी में पुरातन और आधुनिकता का सुन्दर समन्वय था। स्वाध्याय उनके जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य प्रतीत होता है, इसीलिए वे इतने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन कर सके।

पूज्य श्री स्व० आचार्य महाराज के दर्शन करने का मुझे ३-४ बार सुयोग प्राप्त हुआ। अत्यधिक व्यस्तता के उपरान्त भी विद्वानों के लिए वे प्राथमिकता देते थे। उनसे चर्चा करने मे उन्हे आनन्द मिलता था। जयपुर में लाल भवन में जब उनसे विचार-विमर्श का अवसर मिला तो उनका इस बात पर अधिक जोर था कि जो विद्वान् संस्कृत, प्राकृत भाषाओं के ज्ञाता हैं, उन्हें इन भाषाओं में रचना करना चाहिए। अनुवाद और शोध का कार्य तो अन्य विद्वान् भी कर लेंगे, किन्तु संस्कृत-प्राकृत मे लिखने का कार्य इन भाषाओं के विद्वानों द्वारा ही सम्भव है। इन भाषाओं की अप्रकाशित पाण्डुलिपियों के सम्पादन के कार्य को प्राथमिकता मिले, इसकी प्रेरणा वे देते रहते थे। संस्कृत-प्राकृत की कोई पत्रिका

किसी जैन विद्वान् द्वारा निकले, ऐसी भावना उनकी थी। 'प्राकृतविद्या' के सम्पादन के मूल में ऐसे ही सन्तों की प्रेरणा कार्य कर रही है। किन्तु जैन विद्वान् संस्कृत-प्राकृत में रचना करना अब भूल से गये हैं। दो-चार विद्वान् जो इस कार्य में संलग्न है, उन्हें प्रकाशन की, प्रोत्साहन की सुविधा नहीं है। अतः पूज्य आचार्य श्री को स्मरण करने का उत्तम तरीका हो सकता है, संस्कृत-प्राकृत की रचना-धर्मिता को जीवित रखना, उसमें सहभागी बनना।

पूज्य आचार्य श्री महाराज सा० जितना साहित्य के संरक्षण-संवर्धन के लिए प्रयत्नशील थे, उतने ही नयी पीढ़ी को सुसंस्कारित करने और स्वाध्यायी बनाने के प्रति भी। उनके निर्देशन में युवापीढ़ी के कई शिविर आयोजित हुए हैं। अ० भा० जैन विद्वत् परिषद के अधिवेशनों में विद्वानों ने आचार्य श्री को युवापीढी के चारित्र-निर्माण के प्रति सार्थक चर्चा करते हुए देखा है। इसके लिए उन्होंने कई योजनाएँ प्रस्तुत की है। सही बात कहने में आचार्य श्री कभी नहीं हिचकते थे। एक-दो संगोष्ठियों में तो उन्होंने विद्वानों की भी आचार-संहिता बना दी थी। शोध-पत्र पढ़ने के पूर्व वे विद्वान् से जानना चाहते थे कि वह कितने नैतिक आदर्शों का पालन करता है? उनकी वाणी का ऐसा प्रभाव था कि कई अजैन विद्वानों ने भी अनेक नियम उनके समक्ष ग्रहण किये थे। अपनी परम्परा का सम्यक् ज्ञान और अच्छे नागरिक के गुणों का परिपालन ये दो बातें वे हरेक के लिए अनिवार्य मानते थे। उनके समीप में चर्चा करने से इतिहास की कई नयी बातें जानने को मिलती थीं। ऐसे इतिहास-मनीषी और जीवन के जीवन्त साधक पूज्य आचार्य श्री पार्थिव रूप से हमारे बीच नहीं है, किन्तु उनकी सत्प्रेरणा, साहित्य-साधना और आध्यात्मिक नीतियाँ हमारे समक्ष है, जिनसे हमें अपना जीवन-पथ आलोकित करना है। ऐसे परोपकारी एवं आत्म-साधक मनीषी सन्त के लिए अनन्त प्रणाम।

—अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनविद्या विभाग,
सुखाड़िया वि० वि० उदयपुर एवं सम्पादक-प्राकृतविद्या

जन-जन के प्रेरणास्रोत

☐ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

मैं जब लगभग २० वर्ष का था तब आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म० सा० का केकड़ी पधारना हुआ। वहीं वार्त्तालाप में मैंने शून्य, एक, दो,

तथा अनंत इन गणितीय शब्दों के लाक्षणिक अर्थ में अनेक दर्शनों की विवेचना की जिसे सुनकर आचार्य श्री ने प्रमोद भाव प्रकट किया और फरमाया कि 'तुम लेख लिखा करो'। मैं उस समय तक लेख लिखना, उसे पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए देना आदि के सम्बन्ध में कुछ भी नही जानता था। मैंने अपनी यह स्थिति आचार्य श्री के समक्ष निवेदन कर दी। आचार्य श्री ने फरमाया कि तुम जैसा चिंतन करते हो, बोलते हो, समझते हो, समझाते हो उसी को उसी रूप मे लिख लिया करो। उसमें कुछ बातो की सावधानी रखना आवश्यक है जैसे—(१) पुनरावृत्ति न हो, (२) विषयांतर न हो (३) व्यर्थ विस्तार न हो (४) विषय अस्पष्ट न हो (५) प्रारम्भ से अन्त तक क्रमबद्धता हो तथा (६) प्रवाह बना रहे इत्यादि।

आचार्य श्री ने उसी दिन फिर एक विषय देकर उस पर लेख लिखने के लिए फरमाया। मैने लेख लिखा। आचार्य श्री ने उस लेख की कमियो से मुझे अवगत कराया तथा उन कमियों को सुधारने के सुझाव दिये। मैंने तदनुसार उस लेख का संशोधन, संवर्धन किया—तदनंतर उसे 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेज दिया। उस पत्रिका में यह लेख प्रकाशित हो गया। इससे मुझे अति सुखद आश्चर्य हुआ। मुझे प्रथम बार यह विश्वास हुआ कि अपना लेख भी प्रकाशित हो सकता है। इससे लेख लिखने की भावना जगी, लिखने की भावना का बीज वपन हुआ। भावना का यह बीज अंकुर अवस्था में ही मुरझा कर नष्ट न हो जाय इसके लिए मुझे आचार्य श्री की ओर से पत्रों के द्वारा निर्देशन, विषय-वस्तु व सुझाव निरन्तर मिलते रहे जिन्होने इस बीज को पनपाने, हराभरा पौधा बनाने में खाद्य व सिंचाई का कार्य किया। उसी के फलस्वरूप ये पंक्तियाँ भी लिखी जा रही है।

आचार्य प्रवर ने मुझे केवल लेख लिखने की ही प्रेरणा दी हो सो बात नहीं है, आप से मुझे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, रूप साधना के पथ पर आगे बढ़ने के लिये सतत प्रेरणा मिलती रही। जीवन प्रमाद मे न बीत जाये, इसके लिये आप मुझे सदैव सजग करते रहे। साथ ही सेवा भाव को भी जगाया व सक्रिय बनाया। इसी से मुझे स्वाध्याय संघ, साधना संघ, शिक्षण संस्थान आदि अनेक संस्थाओ में सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इससे मुझे जीवन के हर क्षेत्र मे आगे बढ़ने एव आत्म-विकास करने का सुअवसर मिला। यदि यह कहा जाय कि आज मैं जो कुछ हू, यह आचार्य श्री की प्रेरणा व महान् कृपा का ही परिणाम है तो भी अतिशयोक्ति न होगी। आचार्य श्री ने मुझे एक छोटे मे स्थान से आगे बढ़ाकर यहाँ तक पहुँचाया, मुक्ति का मार्ग दिखाया।

आचार्य श्री के इस महान् उपकार को कभी भुलाया नहीं जा सकता, इस ऋण को कभी चुकाया नहीं जा सकता।

आचार्य श्री ने मेरे जैसे ही अज्ञात, इधर-उधर बिखरे व छिपे पड़े लोगों को खोजा व पहचाना और उनकी प्रतिभा को चमकाया। इस दृष्टि से आचार्य श्री रत्न-पारखी थे। आज भी इस रत्न-गर्भा वसुन्धरा में अनगिनत रत्न है, गुदड़ी के लाल है परन्तु वे सागर-तल में, पर्वतों में, खंदकों में, मिट्टी व कीचड़ में छिपे हुए हैं। उनकी प्रभा पर आवरण आया हुआ है। उनका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। उनमें से जो रत्न जौहरी के हाथ लगते हैं, वे ही निखर पाते है। ऐसे ही जन-समुदाय में हजारों-लाखों नर-रत्न इधर-उधर बिखरे व छिपे पड़े है। आचार्य प्रवर जहाँ भी पधारे, वहीं पर नर-रत्नों को खोजा और जिसमें जो विशेष योग्यता व प्रतिभा थी, उसे उसी क्षेत्र में आगे बढाया। यथा—धनी व्यक्तियों को उदारता का महत्त्व समझाया और दान देकर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करने की प्रेरणा दी। जो व्यक्ति धार्मिक क्षेत्र से दूर व अपरिचित है, उन्हें जप, माला, भगवत्-स्मरण की प्रेरणा देकर धर्म के निकट लाये। जो व्यक्ति शिक्षित हैं, उन्हें स्वाध्याय की प्रेरणा देकर धर्म के सम्मुख किया। जो व्यक्ति मध्यम योग्यता के हैं, उन्हें सामायिक व्रत, प्रत्याख्यान की प्रेरणा देकर धर्म के पथ पर लगाया। जो साधना के क्षेत्र में विशेष रुचि रखते हैं उन्हें संयम, ध्यान, तप की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। इस प्रकार जो जैसा पात्र था, उसे उसकी पात्रता के अनुसार आगे बढ़ाते रहे।

इस प्रकार आचार्य प्रवर अपने सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को कुछ न कुछ प्रेरणा देते ही रहते थे। इससे हर व्यक्ति यही समझता था कि आचार्य प्रवर की मुझ पर महती कृपा है, आचार्य श्री मेरी सहायता के लिए हर समय मेरे साथ है। जैसे शीतल प्रभा वाले चन्द्रमा एवं प्रखर प्रभा वाले सूर्य की ओर देखते हुए चलने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सूर्य-चन्द्र मेरे साथ चल रहे है, मेरा साथ दे रहे है। यही उदाहरण आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० पर भी चरितार्थ होता है। ऊपर कह आये है कि आचार्य प्रवर कुशल रत्न-पारखी के रूप में जौहरी है, साथ ही संघ व समाज की कमियों-दोषों को दूर करने वाले आपने अनेक कार्यकर्ता रूप में जौहरी तैयार किये। इस रूप मे आप जौहरियों के गुरु भी है।

आचार्य प्रवर मैत्री, करुणा. वात्सल्य, दया, अनुकम्पा रूप मानवता के मूर्तिवन्त रूप थे। उनमें आत्मीय भाव कूट-कूटकर भरा हुआ था। उनका आत्मीय भाव असीम था। आप हर व्यक्ति को आत्मीय लगते

थे । आप महान् कृपालु व उदार थे । आपकी यह उदारता सहज व स्वाभाविक थी । अर्थात् अहेतुकी थी । किसी स्वार्थ, प्रतिफल की आशा हेतु व कारण को लेकर नहीं थी । गंगा के निर्मल जल के समान सदा प्रवाहमान थी । आप दया के सागर थे, महापुरुष थे । ऐसे महापुरुष को मेरा शत-सहस्र वार अभिवंदन ।

—अधिष्ठाता, श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान
ए-९, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर-१७

निर्भीक और निस्पृही

☐ श्री चंचलमल चोरड़िया

परम श्रद्धेय आचार्य श्री का व्यक्तित्व बहुआयामी था । नियमित मौन साधना, अप्रमत्त जीवन, ज्ञान एवं क्रिया का समन्वय, कथनी व करनी में एकरूपता प्राणीमात्र के प्रति हृदय में करुणा आपके जीवन की विशेषताएँ थीं । जहां आपका हृदय नवनीत सा कोमल था वहीं संयम-पथ पर आप चट्टान की भांति अडोल थे । सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी असाम्प्रदायिक मनोवृत्ति, व्यवहारकुशल, सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक श्रद्धालु को निःसंकोच व्यसन-मुक्ति, सेवा, सामायिक एवं स्वाध्याय की अनवरत प्रेरणा देना तथा जन-साधारण के जीवन-निर्माण हेतु आप सतत प्रयत्नशील रहते थे ।

निर्भयता की मूर्ति :—अज्ञान ही सभी दुःखों का मूल कारण है एवं जितना-जितना साधक सम्यग्ज्ञान के समीप पहुँचता है उसे भेद-विज्ञान होने लगता है । वह निर्भय बन जाता है एवं प्राणों का मोह छूट जाता है । आचार्य श्री के जीवन-काल में सर्प के जीवन बचाने के दो प्रसंग आये । सर्प को तो सभी अहिंसक विचार धारा वाले बचाना चाहते है, परन्तु जब तक स्वयं के प्राणों का मोह नहीं छूटता, सर्प को गले नही लगाया जा सकता । इतने निर्भय थे हमारे श्रद्धास्पद आचार्य श्री ।

गुणग्राहकता के पुजारी :—आचार्य श्री का ध्यान प्रत्येक व्यक्ति के गुणों की तरफ ही जाता था । पदाधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं की कमजोरियों को उन्होंने कभी महत्त्व नही दिया । प्रत्येक प्रभावशाली व्यक्ति को संघ एवं शासन-सेवा में जोड़ने हेतु वे सदैव प्रयत्नशील रहते थे । स्वाध्याय संघ के

सचिव पद पर कार्य करते समय जब चन्द व्यक्ति मेरी कार्य-पद्धति से संतुष्ट न थे तो मैंने सचिव पद-सेवा से मुक्त होने की इच्छा जाहिर की। उस समय आचार्य श्री ने कोसाणा में स्वास्थ्य की प्रतिकूलता होते हुये भी मुझे बुलाकर समझाया एवं बराबर कार्य करते रहने की प्रेरणा दी।

अहिंसात्मक चिकित्सा-पद्धति के प्रति आकर्षण :—आचार्य श्री जब कोसाणा का चातुर्मास समाप्त कर पीपाड़ से विहार कर जोधपुर पधारे तब उनका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था। तब मैंने डॉ० रामगोपालजी एवं श्री रंग-रूपमलजी डागा ने एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति द्वारा उपचार कराने का अनुरोध किया तो आपने सहज ही स्वीकृति दे दी। आप विकटतम परिस्थितियों मे भी ऐसी दवाइयां लेना पसन्द नहीं करते जिसमें प्रत्यक्ष / अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा होती हो। आपकी प्रबल भावना थी कि साधु एवं साध्वी समुदाय आवश्यकता पड़ने पर एक्यूप्रेशर जैसी सहज, सरल, अहिंसात्मक, निरवद्य पद्धति से अपना उपचार करें। इसी कारण जब बड़ौदा से एक्यूप्रेशर एवं चुम्बकीय चिकित्सा के विशेषज्ञ डॉ० श्री जितेनजी भट्ट पधारे तब उन्होंने अपनी शिष्ट मण्डली को इस पद्धति की जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया। जून १९९० में जब आचार्य श्री महावीर भवन सरदारपुरा, जोधपुर में विराज रहे थे, तब एक्यूप्रेशर प्रशिक्षण शिविर हेतु बम्बई से श्री विपिन भाई शाह भी जोधपुर पधारे हुए थे। मैं श्री शाह को एक्यूप्रेशर के सम्बन्ध में विशेष जानकारी सन्तों को देने के लिए ले गया, तब आचार्य श्री स्वयं इस पद्धति को समझने हेतु विराज गये। इतने सरल एवं सहज व जिज्ञासु थे पूज्य गुरुदेव।

सामायिक-स्वाध्याय के प्रेरणा-स्रोत :—पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में जैन/-अजैन बाल, युवा एवं वृद्ध, गरीब अथवा अमीर, मालिक अथवा नौकर तथा राजनेता जो भी आता, आप निःसंकोच उनकी क्षमतानुसार अपनी-अपनी साधना-पद्धतियों से नियमित साधना का संकल्प कराते। दुर्व्यसनी व्यक्तियों को, व्यसन मुक्त होने की प्रेरणा देते। आपने कभी भी जोड़-तोड़ करके अपने श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। निरन्तर सम्पर्क में आने वालों की स्वाध्याय एवं सामायिक की साधना में निरन्तर अभिवृद्धि हेतु प्रयत्नशील रहते। आपकी दूरदर्शिता के फलस्वरूप ही स्वाध्याय संघ, साधना संघ एवं जैन विद्वत् परिषद् जैसे संघों की स्थापना हुई एवं लाखों व्यक्ति जीवन-निर्माण के पथ पर आगे बढ़े।

वास्तव में आचार्य श्री का जीवन अपने आप में विराट था। जिस उत्साह, सजगता से साधना के पथ पर आप आगे बढ़े; उसी उत्साह से जीवन के

अन्तिम समय मृत्यु को महोत्सव में बदल दिया। संथारे की अवस्था मे अत्यधिक शारीरिक दुर्बलता के बावजूद तनिक भी प्रतिक्रिया नहीं कर समाज तथा शिष्य समुदाय से पूर्णरूपेण निस्पृही बन गये, जैसे किसी से कोई सम्बन्ध अथवा परिचय था ही नही।

आप अन्तिम समय देह में रहते हुये देहातीत हो गये। ऐसे परम श्रद्धेय गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० को शत-शत वन्दन!

—सचिव, स्वाध्याय संचालन समिति
चोरड़िया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-३४२००३

कितने कोमल-निर्मल! कितने सतर्क-सजग!!

☐ श्री ऋषभराज बाफणा

यही है जिंदगी अपनी, यही है बंदगी अपनी।
उनका नाम आया और गर्दन झुक गयी अपनी॥

निमाज से आये आज सत्ताइस दिन हो गये है। गुरुदेव की स्मृति से मैं अपने आपको अलग नही कर पाया हूँ। पाली चातुर्मास के पश्चात् उनकी तवियत मे निरन्तर गिरावट आती रही। जव भी समाचार मिलते भाग कर जाते। पाली से विहार कर सोजत सिटी पधारे। वहाँ भी स्वास्थ्य मे गड़वड रही। समाचार आये। सोजत पहुँचे। वंदन किया। पूछा—अन्नदाता! सुख साता है, तो एकदम वोल पड़े—अव मै सुखसाता से परे हो गया हूँ। उस समय बहुत सोचा पर कडियाँ जुड़ी नही। अव सोचता हूँ तो यह मन में आता है कि गुरुदेव ने ठीक ही फरमाया था। अभी दो दिन पहले ही श्रीमद् देवनंदि पूज्यपाद स्वामी रचित 'इष्टोपदेश' का स्वाध्याय कर रहा था—

वुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति॥

जिसने आत्म-स्वरूप के विपय मे स्थिरता प्राप्त कर ली है, ऐसा योगी वोलते हुए भी नही वोलता, चलते हुए भी नही चलता और देखते हुए भी नही देखता है।

खुद की खुदाई से, जो जुदा हो गया ।
खुदा की कसम, वो खुदा हो गया ।।

सोजत में श्री संघ के सभी प्रबुद्ध जनों ने गुरुदेव से करबद्ध प्रार्थना की कि आप अपने स्वाध्याय को देखते हुए जोधपुर ही पधारें। परन्तु उन्होने साधु भाषा में निश्चय दोहराया कि मुझे तो निमाज जाना है। छोटे संतों से पूछते तो वे कहते--गुरुदेव फरमाते है कि अब मुझे किसी विषय में रुचि नहीं है। मुझे कुछ भी खाना अच्छा नहीं लगता। अनाज से अब मेरी रुचि उतर गयी है। मुझे मेरे शरीर से मोह नहीं है। मुझे मेरी आत्मा का ख्याल रखना है। एक दिन सवेरे भी फरमाया—समुद्र से एक बूंद निकल जाये तो क्या और मिल जाये तो क्या ?

यथा यथा समायाति, संवितौ तत्त्वमुतमम् ।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ।।

इसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है :—

जस तस आतम तत्त्व में, अनुभव आता जाय ।
तस तस विषय सुलभ्य भी, ताको नहीं सुहाय ।।

ज्यों-ज्यों संविति (स्वानुभव) में उत्तम तत्त्व रूप का अनुभवन होता है त्यों-त्यों उस योगी को आसानी से प्राप्त होने वाले विषय भी अच्छे नहीं लगते।

गत भोपालगढ़ चातुर्मास में गुरुदेव के चरणों में निरन्तर पाँच महीने का रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका अप्रमत्त जीवन, प्रत्येक क्षण में सजगता, ऐसा कभी देखा नही कि उन्होंने अत्यल्प समय भी प्रमाद में बिताया हो। उनका हृदय कितना कोमल, कितना निर्मल ! सांसारिक कुटिलताओं से सर्वथा अज्ञ। करुणा के सागर। दुःखी जीव को देखते ही उनकी करुणा उमड़ पड़ती। जैनेतर लोग भी बड़ी संख्या में आते। उन्हें वंदन करते तो पूछते—भजन करते हो? राम-राम की माला फेरते हो ? सदा सजग रहने की प्रेरणा करते। मनुष्य-भव की दुर्लभता बताते। सबके प्रति आत्मीय भाव।

करूँ मैं दुश्मनी किससे, नहीं दुश्मन कोई मेरा ।
मोहब्बत ने नही छोड़ी, अदावत की जगह दिल में ।।

भोपालगढ चातुर्मास में पूज्य पिताजी श्री जालमचंद जी को संथारा का पच्छखाण कराने गुरुदेव ने घर पर पधार कर महती कृपा की। वापस उपाश्रय पधारते वक्त रास्ते में उन्होने बहुत-बहुत प्रमोद भाव व्यक्त किये। जालुजी ने

अपना काम पूरा कर लिया। बड़े हर्षित। गुरु के लिये भी यह तो हर्ष का विपय रहता ही है कि उनका शिष्य उनके सान्निध्य मे मृत्यु को महोत्सव बनाये।

पिताजी के देहोत्सर्ग के पहले मेरे छोटे भाई मनमोहन एवं पुत्र जंबुकुमार की धर्मपत्नी ने मासखमरण की तपस्या की। स्वधर्मी वात्सल्य भोज किया। शाम को पिताजी गुरुदेव के दर्शनार्थ उपाश्रय पधारे। कूल्हे की हड्डी टूटी होने की वजह से उनसे खड़ा नहीं हुआ जाता था। कुर्सी पर बैठे-बैठे वंदन करते। पूछा—"आज भोजन कहाँ किया ?" पिताजी बोले—"जहाँ सब लोगो का खाना वना था वहाँ मैंने खाना नही खाया। मैने तो अपने घर पर ही खाना खाया।" "अपना घर" शब्द उनके मुँह से निकलते ही वे बोले—"अरे भोलीया, हाल भी अपना घर समझे है, जरा ध्यान तो कर।" पिताजी को ध्यान आया, "मिच्छामि दुक्कड़म्" किया। गुरुदेव से क्षमा माँगी।

आज जब यह सब याद आता है तो हृदय गद्‌गद् हो जाता है। सोचता हूँ—गुरुदेव कितने सतर्क-सजग थे एक-एक शब्द के प्रति। मै तथा अन्य लोग गुरुदेव का चरण स्पर्श करना चाहते थे तो वे अक्सर अपने चरण कपड़े से ढक दिया करते। पिताजी से नीचे झुका नही जाता था, कुर्सी पर बैठे रहते। जब वे दर्शनार्थ जाते तो गुरुदेव खुद पैर ऊँचा करते। वे श्रद्धा सहित चरण स्पर्श करते तो उन्हें संतोष होता। यह मै रोज देखता था। अब सोचता हूँ कि उनके मन में कितना वात्सल्य भाव था।

जब गुरुदेव १६-१७ वर्ष के थे, उस समय की बात पिताजी सुनाया करते थे। वे सोते समय अपनी चद्दर के नीचे बगल में ककर रखकर सोते थे। करवट वदलते। कंकर चुभते। नीद खुल जाती। पिताजी पूछते, ऐसा क्यों कर रहे है?' तो जवाब देते—"नींद जल्दी खुल जाती है तो स्वाध्याय का समय मिल जाता है। दिन में सीखा हुआ पुनः याद कर लेता हूँ।' कितना अप्रमत्त जीवन था उनका इतनी अल्पवय में भी।

उनके देहोत्सर्ग से पूरे समाज की जो अपूरणीय क्षति हुई है, उसे पूरा नही किया जा सकेगा। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण उपादेय था, आदरणीय था। मैं अपने श्रद्धा-सुमन हार्दिक भाव से अर्पित करता हुआ विनती करता हूँ—

उजाले अपनी यादों के, हमारे साथ रहने दो।
न जाने किस गली में, जिंदगी की शाम हो जाये।।

—सुदर्शन पल्सेस, एच-२, एम. आई. डी. सी. एरिया
जलगांव (महाराष्ट्र) ४२५ ००३

नवनीत से भी कोमल

☐ श्रीमती मंजुला बोटादरा

इस धरातल में, विराट् विश्व में अनन्त प्राणी जन्मते हैं और अगले पड़ाव लिये रवाना हो जाते हैं पर कोई उन्हें याद नहीं करता पर दिव्यात्माएँ, य आत्माएँ अपनी विशिष्ट साधना के माध्यम से लोगों के दिल में सदियों क अपना विशिष्ट स्थान बना लेती हैं। परम श्रद्धेय हस्तीमलजी म० सा० सीम गुणों के पुन्ज, श्रमण-नभ के सहस्त्ररश्मि सूर्य थे। सर्व लब्धियों-द्धियों के स्वामी, ज्ञान के भण्डार, करुणा के कवि, सेवा के सेवक, विनय वट-वृक्ष, नम्रता के अमृत नीर एवं साधना के कल्प-वृक्ष थे।

आज आप पार्थिव शरीर से हमारे बीच नहीं हैं किन्तु आपका पावन उपदेश हमारे पास है। आपकी मधुर वाणी कानों में गूंजती है कि एक मिनिट का समय व्यर्थ न गमाओ, पाप का द्वार—आश्रव का द्वार बंद करो, अधिक से अधिक संवर भावना जीवन में अपनाओ, पाप की हाट हटाओ, तत्त्वप्रकाश का, शास्त्र का वाचन करो। आपके हृदय में प्राणी मात्र के लिये करुणा की ज्योति ज्वलंत थी। आपका हृदय नवतीत से भी कोमल था। नवनीत के पिण्ड को पिघलने में देर लगती है किन्तु आपका हृदय किसी का दुःखदर्द देखकर करुणा से भर जाता था।

आज से १२ वर्ष पूर्व की बात है। मैं रोगग्रस्त होने के कारण सम्पूर्ण आराम में थी। आप उज्जैन से विहार कर इन्दौर पधारे। भरी दोपहर में आप हीरा मुनिजी को साथ लेकर मेरे यहाँ पधारे। मेरा हृदय आनन्द-विभोर हो गया। खुशियों के फूल से हृदय झूम उठा। आँखों पर विश्वास नहीं हुआ कि इतनी महान् विभूति आचार्य श्री की इतनी महती कृपा? मुझे नव-जीवन मिला। मेरा रोग निर्मूल हो गया। वह पावन प्रसंग और पावन मूर्ति आज भी आँखों से ओझल नहीं है। यह चमत्कार नहीं, किन्तु आपकी कठोर साधना का सुफल जरूर है। भौतिक चकाचौंध एवं सांसारिक प्रलोभन से ऊपर उठकर १० वर्ष की अल्प आयु में ही आपने चारित्र अंगीकार किया था। ७० साल की संयम पर्याय में एक सैकेण्ड भी व्यर्थ न जाय, इसके प्रति आप सजग प्रहरी की तरह जाग्रत थे। जीवन के अंतिम पड़ाव पर भी आप जाग्रत एवं आत्म-साधना में संलग्न थे। जीवन के अंतिम श्वास तक आपके मुंहपति एवं हाथों मे माला चल रही थी। संथारा के दिनो में भी आपके मुंह पर असीम आनन्द एवं परम शांति का तेज था। इस उम्र में १३ दिन की तपस्या सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

आपके असीम गुणों से अंश मात्र भी हम आत्मसात कर सकें तो इससे बढ़कर और कोई श्रद्धांजलि नहीं होगी। इसी भावना से उस विराट् आत्मा के प्रति भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं।

—१७/४, स्नेहलता गंज, इन्दौर (म० प्र०)

ऐसे सद्गुरु पाना दुष्कर है

☐ श्री कान्तिलाल जैन

परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० जैसे दिव्य महापुरुष के पावन दर्शन का सौभाग्य मुझे गत २५ वर्षों से मिलता रहा है। मैं उनके जीवन से प्रभावित हुआ और निकट जाने पर मेरी श्रद्धा और भी बलवती होती गयी। उनका जीवन गंगा की तरह निर्मल, स्फटिक की तरह स्वच्छ, संगीत की तरह सुखद और उषा की तरह मोहक था।

आचार्य श्री पारम्परिक जीवन-मूल्यों के संवाहक होते हुये भी आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन-अध्यापन के पक्षधर रहे। आपकी बराबर यह भावना रही कि जैन तत्त्वों का विवेचन और परीक्षण वैज्ञानिक प्रक्रिया से हो और विज्ञान से परे जो अनुभूति-मूलक सत्य है उसकी ओर भी वैज्ञानिकों की दृष्टि जाये। आचार्य श्री आगमिक शास्त्रों के गूढ अध्येता और व्याख्याता थे। आपने स्वयं कई आगमों की व्याख्या और विवेचना की। आपका इतिहास-बोध अत्यन्त प्रखर और गहन था। भगवान महावीर की शासन-परम्परा के बिखरे हुये सूत्रों को जोड़कर उसमें धार्मिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों को उद्घाटित करने में आपने अत्यन्त श्रम-पुरुषार्थ किया जो 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के चार भागों में समाज के समक्ष प्रस्तुत है।

आचार्य श्री का महान् योगीराज श्री शांतिसूरीश्वरजी से भी सम्पर्क रहा। उनके विषय में आचार्य श्री ने फरमाया था कि "श्री शांतिसूरीश्वरजी एक महान् योगीराज एवं दिव्य महापुरुष थे।" मेरे द्वारा सम्पादित 'शान्ति-ज्योति' पत्रिका में उनकी गहरी रुचि थी। आचार्य श्री द्वारा 'शांतिज्योति' पत्रिका का भी अवलोकन किया गया। आचार्य श्री ने पत्रिका में विभिन्न सामाजिक जागृति विषयों पर भी प्रकाश डालने की मुझे प्रेरणा दी। सामाजिक चेतना हेतु आचार्य श्री ने फरमाया कि व्यक्ति और समाज की अपनी उन्नति के लिये, चतुर्विध संघ की प्रगति और सुदृढ़ता के लिये सद्शिक्षा,

द्साहित्य और सद्संस्कार ही मुख्य आधार है। महापुरुषों की छत्रछाया में, नके पावन चरणों में बैठकर जो आनन्दानुभूति हुई है, वह अनुभवगम्य है। से सर्वतोमुखी प्रतिभावान सन्त को खोकर जैन समाज अपने को अकिंचन नुभव कर रहा है।

उनका भौतिक शरीर निमाज कस्बे की पावन भूमि की गोद में अवश्य ी समा गया है किन्तु उनका यश:शरीर आज भी कायम है और युगों-युगों क उनके उपदेश सत्धर्म का प्रकाश देकर सत्पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा ते रहेंगे। इस दिव्य आत्मा को मैं अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित कर अपने को कृतकृत्य अनुभव करता हूं।

—सम्पादक, शांति ज्योति, २४, मोतीलाल बिल्डिंग, जोधपुर

आचार्य श्री की प्रेरणा

☐ श्री रणजीतसिंह कूमट

जैन शासन में आचार्य पद धर्मानुशासन, धर्म-प्रवर्तन और धर्म-संवर्धन के लिये रखा गया है और पंच परमेष्ठी (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) में वैसे तो तीसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है लेकिन प्रथम दो पद की अनुपस्थिति में आचार्य पद ही सर्वोच्च पद रह जाता है। कुछ पद परम्परा से प्राप्त होते है और कुछ उस उपलब्ध पद को आचार के अनुरूप सुशोभित करते है। यदि गत ४० या ५० वर्षो का अवलोकन किया जाय तो स्थानकवासी जैन समाज मे आचार्य हस्तीमलजी म० सा० का आचार्य पद केवल परम्परा से सुशोभित पद नहीं था बल्कि उन्हें इस युग के महान् आचार्य के रूप मे देखा जा सकता है। वे युगाचार्य थे, युग-पुरुष थे। बाल्यकाल से दीक्षित होकर अपनी विलक्षण बुद्धि और कठिन त्याग व तपस्या से उच्च आत्मोपलब्धि प्राप्त की और जैन-जगत में उच्चस्थ स्थान प्राप्त किया। वे स्वयं तो ऊपर उठे ही लेकिन लाखों नर-नारियों के जीवन में अपने ज्ञान और त्याग की एक अमिट छाप छोड़ी और उनके जीवन को ऊँचा उठाने में विशेष योगदान दिया।

उन लाखों नर-नारियों में एक अदना सा व्यक्ति मैं भी हूं। उनकी प्रेरणा और आशीर्वाद से जीवन में कुछ सीखा है, कुछ पाया है। बाल्यकाल

में ही उनसे परिचय होने से उनके उपदेश संस्कार स्वरूप मिले, नियमित रूप से सामायिक और स्वाध्याय करने के संस्कार पड़े। स्वाध्याय की प्रेरणा से ही मैं कई पुस्तके पढ़ पाया और उन्हीं की प्रेरणा से कुछ लिखना भी सीखा। सन् १९५९-६० में उनका चातुर्मास दिल्ली में था और वहां उनसे नजदीक का सम्पर्क बना। बार-बार उनकी प्रेरणा रही कि मैं नया अध्ययन करूँ और कुछ लिखूं। जब कुछ हिचकिचाहट जाहिर की तो प्रारम्भ में कुछ अंग्रेजी के लेखों को ही हिन्दी में रूपांतरित करने की प्रेरणा दी और कहा कि धीरे-धीरे कलम सधती है। सामायिक मे मैं हमेशा कुछ माला का जाप और भक्तामर स्तोत्र का पाठ करता था और इसी में ५० मिनट बीत जाते थे। आचार्य श्री का कथन था कि यह तो सामायिक का सही अर्थ नहीं है जो लोग पढ़ना-लिखना नही जानते, उनके लिये माला या पाठ का अवलम्बन है लेकिन जो पढ़ना जानते है उन्हें शास्त्रों का एवं अन्य अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिये। प्रारम्भ में १० मिनट का प्रति दिन स्वाध्याय का समय रखा लेकिन जैसे दिलचस्पी बढ़ी, यह समय बढ़ाया और कुछ वर्षों में अनुभव किया कि काफी पुस्तके पढ़ने में आ गई। रविवार को फुरसत के समय में सामायिक और लेखन कार्य भी किया। जो भी लेख लिखे है वे अलग-अलग समय पर 'जिनवाणी' व अन्य पत्रिकाओं में छपे और उनका संकलन कर पुस्तक रूप मे 'मुझे मोक्ष नहीं चाहिए' नाम की पुस्तक छपी है। वह मूलतः आचार्य श्री की देन है।

आचार्य श्री का उद्देश्य केवल स्वयं के लिए स्वाध्याय और मुक्ति का प्रयास ही नही था बल्कि समाज में सरसता व सेवा का प्रसार हो इस ओर भी पूरा ध्यान था। हमेशा अपने व्याख्यान में सेवा के नये आयाम हाथ में लें, इस पर अक्सर जोर रहता था। वर्ष १९६९ में जयपुर मे लाल भवन में व्याख्यान देते समय कुछ ऐसे प्रेरणा के शब्द कहे कि व्याख्यान के बाद उठकर आचार्य श्री से निवेदन किया कि वे मुझे इस बात का नियम दिलाएँ कि जब तक मैं ५ लाख रुपये का समाज-सेवा के लिए कोष स्थापित नहीं करूं तब तक मैं दूध या दूध से बनी वस्तु का सेवन नही करूंगा सिवाय चाय या काफी में दूध लेने के। उन्होंने यह नियम दिलाया और इस आधार पर शुरू में कुछ लोगों से मदद लेकर 'वर्द्धमान सेवा समिति' की स्थापना की और कुछ लोगों से चन्दा लिखाया किन्तु आशातीत प्रगति नहीं हुई। मेरा उद्देश्य यह था कि यह समिति जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों और खण्डों से ऊपर उठकर एक ऐसी समिति बने जिसमें सभी समुदाय एकत्रित हों और बिना किसी भेदभाव के मानव जाति की सेवा में कोष

लगे। किन्तु कुछ लोगों का मत था कि यह संस्था केवल एक सम्प्रदाय में बने और उसी तक सीमित रहे। मैं इससे सहमत नहीं था इसलिये विशेष प्रगति नहीं हुई।

आचार्य श्री का जयपुर से प्रस्थान हो गया और मेरा भी कुछ समय बाद जयपुर से स्थानांतरण हो गया जिससे कई वर्षों तक यह कार्य अधूरा रहा। नियम मेरा लगातार चलता रहा और अनुभव में पाया कि दूध व दूध की बनी वस्तु न लेने से स्वास्थ्य में विशेष फर्क नहीं आया और न कोई मजबूरी आई कि नियम तोड़ना पड़े। आचार्य श्री की कृपा से इस प्रण को पूरा होने में अधिक समय नहीं लगा और १९७५ में जब भगवान महावीर का २५००वाँ परिनिर्वाण महोत्सव मनाया जा रहा था और मैं अजमेर में जिलाधीश के पद पर कार्य कर रहा था, उस समय कुछ स्थायी कार्य के प्रस्ताव के लिये वहां के समाज में यह प्रस्ताव रखा गया कि क्यों न ५ लाख का कोष बनाया जाय और उससे सबकी सहमति हो गई तो सबके सहयोग से यह कोष स्थापित हुआ और 'महावीर सेवा समिति' की स्थापना हुई। आज उसका भवन है और जो कोष स्थापित हुआ वह गरीब छात्र, विधवाओं और रोगियों की सेवा में काम आ रहा है। इसके अतिरिक्त इस भवन में छात्रों को नौकरी के लिए विशेष प्रशिक्षण व निर्देशन दिया जाता है जिससे वे नौकरी प्राप्त कर सकें। आचार्य श्री का मन्तव्य भी कुछ इसी प्रकार का था। मुझे खुशी है कि उनकी प्रेरणा से यह कार्य हो सका। यों ८ वर्ष बाद सन् १९७७ में दूध-त्याग का नियम पूरा हुआ।

आचार्य श्री ने स्वाध्याय के साथ ध्यान के लिए भी प्रेरणा दी और वे चाहते थे कि जैन सूत्रों के आधार पर ध्यान की प्रक्रिया को पुनः जीवित किया जाय क्योंकि जैन शास्त्रों के अनुसार १२ तपों में स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग अंतरंग तप है और वे आत्म-शुद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विपश्यना पद्धति से गुजरने के बाद मैंने और श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा ने आचार्य श्री से निवेदन किया कि इस पद्धति के अनुरूप लोगों को हम ध्यान की पद्धति सिखाएँ तो प्रगति अच्छी होगी और इसके लिए 'आचारांग' के सूत्रों का भी प्रस्तुतिकरण किया जिससे उन्होंने सहमति प्रकट की कि ये ध्यान के सूत्र है जिन्हे अपनाना चाहिए। किन्तु इस क्षेत्र में कोई विशेष कार्य नहीं हुआ यद्यपि स्वाध्याय के क्षेत्र मे अच्छी प्रेरणा से न केवल जोधपुर बल्कि इन्दौर, मद्रास, जलगाँव व बैंगलौर में स्वाध्याय-केन्द्र स्थापित हुए और कई स्वाध्यायी बन्धु पर्युषण पर्व पर बाहर जाकर लोगों को धर्माराधन कराते हैं।

आचार्य श्री का स्वाध्याय, सामायिक, ध्यान, समाज-सेवा व नैतिक पक्ष पर पूरा जोर था और जब भी कोई व्यक्ति उनसे मिलता, यही पूछते– 'क्या स्वाध्याय बराबर चल रहा है और जीवन में प्रगति कर रहे हैं ?' हमेशा प्रेरणा के ऐसे शब्द मिलते रहते थे और यही सम्बल आज हमारे लिए बच रहा है। सच्ची श्रद्धांजलि देने के लिए हमें पूरे समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ाने और जीवन का नैतिक उद्धार करने के लिए प्रेरणा देनी है और स्थानकवासी समाज में यद्यपि शिक्षित पुरुषों व महिलाओं की संख्या काफी बढ़ी है परन्तु शास्त्रों के बारे मे जानकारी उसी अनुपात में नही बढ़ी। यह कहने में अतिशयोक्ति नही कि यह उल्टी घटी है। नव-युवको व नव-युवतियो में जैन शास्त्रो के बारे में जानकारी बढे, उसके लिए रुचि जगानी होगी और उनको अधिकाधिक आकृष्ट कर नये तरीके से धर्म के बारे मे अवगति देनी होगी जिससे वे इसको रूढि व सम्प्रदायवाद न मानकर जीवन को मगलमय बनाने के लिए सच्चा मार्ग माने। इसके किए ध्यान, कायोत्सर्ग व सेवा के आयामों को सुदृढ़ कर सुप्रचारित करना होगा। आशा है, हम इस ओर कदम उठा पायेंगे।

—अध्यक्ष, श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा
२० सी, हीराबाग,
जयपुर–३०२००४

सौम्य और गंभीर

☐ डॉ० नेमीचन्द जैन

२१ अप्रैल ९-४० का टी. वी. एक दुखद समाचार दे रहा—ब्यावर के पास नीमाज (राजस्थान) मे महान् अध्यात्म योगी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज का देहावसान हो गया। वे ८२ वर्ष के थे। उन्होने संथारा ले लिया। वे परम्परावादी थे और आचरणिक शुभचिताओ पर भरपूर आँख रखते थे। उनका संघ साध्य-साधन-शुचिता के लिए विख्यात था। उनका कालजयी अवदान है चार खण्डो मे लिखा वह ग्रन्थ जिसका शीर्षक है 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास।' यह उनकी अमर कृति है। एक साल पहले जोधपुर में उनके दर्शन

कये थे। तब भी वे अस्वस्थ थे और श्री चंचलमल चौरड़िया के नेतृत्व में एक्यू-
शर का उपचार ले रहे थे। उनसे लगभग एक घंटे बातचीत हुई। वे कितने
ौम्य और गहरे थे, इसका अनुमान मुझे तब लगा जब उन्होंने कहा—"मैं अज्ञ
। कुछ नहीं जानता। आप सब विद्वान् हैं। जैन धर्म की नाव आप सबके
जिम्मे है।"

उनका यह वाक्य आज भी अनगुंजित है। मैं समझता हूँ उनके ये शब्द
ायद और कोई सुन नहीं सका था। सब अपने में व्यस्त थे। दर्शनार्थी थे।
र्शन ही जिनके लिए चरम उपलब्धि होता है, श्रद्धाभक्ति-से-उफने ऐसे श्रावकों
ो ही साधु-संस्था की रक्षा की है। ऐसे लोग तर्क नही करते—स्वस्थ परम्पराओं
ी परवरिश करते है।

तीन-चार बार जब भी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज के दर्शनार्थ मै
ाया हूँ, मैंने उनके मुख-मण्डल पर सबके लिए ममत्व की दीप्ति देखी है। ऐसे
्रावकों को जब उद्बोधित करते थे, तब उनकी करुणावन्त छवि देखते ही
नती थी।

उन्हें मेरी, 'तीर्थंकर' की श्रद्धांजलि! विनयावनत प्रणति!!

—सम्पादक, 'तीर्थंकर' ६५, पत्रकार कॉलोनी, इन्दौर-१

अमरता के महायात्री

□ श्री चन्दनमल 'चाँद'

स्व. आचार्य श्री हस्तीमलजी का नश्वर तन नष्ट हुआ है किन्तु वे मरे नहीं वल्कि अमर हो गये। पंडित मरण प्राप्त कर उन्होंने अपनी संयम-साधना को स्वर्ण कलश चढ़ा दिया। ७२ वर्षो के दीक्षा पर्याय में आप सतत जागरूक, पापभीरु एवं अध्यात्म के प्रति उन्मुख रहे। अनेक भापाओं के विद्वान, शास्त्रों के पंडित होते हुए भी सरलता, सहजता एवं निस्पृहता आपकी विशेपता थी। 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' आपकी अमर कृति है।

साधुत्व की मर्यादाओं में स्वयं जागरूक एवं पूरे धर्म संघ को जागरूक रखने वाले आचार्य श्री ने लोकेपणा एवं यश की कामना से परे आत्मचिंतन और आत्मकल्याण को ही सदा प्रमुखता दी। आपके श्रावक साधारण व्यक्ति से लेकर न्यायाधीश, वकील, डॉक्टर सभी क्षेत्रों के लोग थे। आम आदमी से अमीर

आदमी तक में आपने पैसा, पद नहीं देखकर उसे चरित्र निष्ठा के आधार पर महत्त्व दिया। आधुनिक प्रचारयुग एवं वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से दूर आत्मार्थी सन्त के रूप मे आप सुविख्यात रहे। उनकी प्रेरणा से हजार स्वाध्यायी वने जो वर्षो से पर्युषण मे जहाँ साधु-साध्वी नही होते है, वहाँ धर्माराधना का कार्य करते है। ज्ञान, ध्यान एवं साधना की विशेष प्रेरणा वे सदा देते रहते थे।

जो जन्म लेता है उसे मरना ही पड़ता है। कुछ मरते है और कुछ मौत को ललकारते हुए पडितमरण प्राप्त कर अमर वन जाते है। ऐसे ही अमरता के महायात्री स्व. पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी की दिव्यात्मा को भारत जैन महामंडल एवं 'जैन जगत्' परिवार की भावभरी श्रद्धांजलि।

—सम्पादक, 'जैन जगत' एवं मंत्री, भारत जैन महामंडल, वम्बई

आध्यात्मिक गुणों के धारक

☐ श्री नेमीचन्द बांठिया

दिनांक २१–४–९१ को स्वाध्याय-सामायिक के प्रणेता बाल ब्रह्मचारी आचार्य १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. का निमाज (जिला–पाली) में लम्बे संथारे के साथ पंडित मरण हुआ। सचमुच वे संयम और तप से, विद्या और विनय से, शान्ति और सहिष्णुता से समुन्नत होकर हमारी दृष्टि से ओझल हो गये।

अनेकानेक आध्यात्मिक गुणो के धारक पूज्य श्री मात्र १० वर्ष की अवस्था मे आचार्य श्री शोभाचन्दजी म. सा. के पास दीक्षित हुए और ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना मे तल्लीन हो गये। सहसा गुरुदेव की छत्रछाया उठ गई तो चतुर्विध सघ ने आपकी उत्कृष्ट साधना, विचक्षण बुद्धि, आगमों के तलस्पर्शी ज्ञान आदि विविध गुणों के कारण २० वर्ष की युवा अवस्था मे आचार्य पद पर सुशोभित किया। आपका सम्पूर्ण जीवन पठन-पाठन, स्वाध्याय-ध्यान, लेखन आदि मे लीन रहा। स्वाध्याय और सामायिक के तो आप प्रवल प्रेरक रहे। आपकी प्रेरणा से अनेक युवक धर्म की ओर सन्मुख हुए।

आपके संथारे के वाद जव-जव भी निमाज दर्शन करने गया तो चेहरे पर अपूर्व शान्ति के दर्शन हुए। ऐसे आध्यात्मिक संत के चेहरे पर अपूर्व शान्ति का होना कोई नई वात नही क्योंकि जिनका सम्पूर्ण जीवन ही साधनामय हो, उनके अन्तिम समय शान्ति झलकना स्वाभाविक ही था।

पूज्यश्री के स्वर्गवास से न केवल रत्नवंश को अपितु सम्पूर्ण स्थानकवासी जैन समाज को जो क्षति हुई है, वह अपूरणीय है। मैं अपनी ओर से, 'सम्यग-दर्शन' परिवार की ओर से, 'अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ' की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। शासनदेव से प्रार्थना करता हूँ कि स्वर्गीय आत्मा को शाश्वत शान्ति प्राप्त हो व आपका शिष्य समुदाय आपके अभाव की पूर्ति करे।

—सम्पादक, सम्यग्दर्शन, मंत्री, अ. भा. साधु. जैन संस्कृति रक्षक संघ
बांठिया सदन, नेहरू गेट, ब्यावर-३०५९०१

स्वाध्याय व चिन्तन की जीती जागती प्रतिमा

☐ श्री हीरालाल जैन

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने श्रमण संघ के निर्माण में व उसे सुदृढ़ बनाने में मुख्य भूमिका निभाई थी। १९५२ में सादड़ी सम्मेलन में जब श्रमण संघ का निर्माण हुआ और इसे संजोया गया तो इसमें पूर्णतया मार्गदर्शन व सहयोग आचार्यश्री का था।

तप और संयम, स्वाध्याय और चिन्तन की वे जीती-जागती प्रतिमा थे। पिछले दिनों आपका अमृत महोत्सव भव्य रूप में मनाया गया जबकि दिल्ली में न तो आचार्य श्री खुद विराजमान थे और न ही उनके आज्ञानुवर्ती शिष्य मंडली में से कोई वहाँ विराजमान था। मगर सकल संघ के सन्तों ने, उनके अनुयायियों ने व समुदायों ने मिलजुलकर भारत की राजधानी दिल्ली में पूर्ण निष्ठा व आदर के साथ महोत्सव मनाया जिसमें भारत सरकार की ओर से अभिनन्दन करने और आचार्यश्री के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करने प्रधानमन्त्री माननीय श्री चन्द्रशेखरजी, ऊर्जामन्त्री श्री कल्याणसिंहजी कालवी, हाउसिंग मिनिस्टर श्री दौलतरामजी सारण, केन्द्रीयमन्त्री श्री यादवजी पधारे। उन्होंने उनका गुणगान करते हुए अभिनन्दन किया।

जैन आगमों के आपश्री प्रकाण्ड पंडित थे। गहन स्वाध्याय व चिन्तन आपके जीवन का मूल लक्ष्य रहा है। जीवन का काफी समय मौन व्रत में व्यतीत किया। आपके मौन में भी खामोशी की एक जुबां होती थी। उस अवस्था में भी जीवन को ऊँचा उठाने की दिशा प्रदान करते थे। आपकी क्षति माला के जो मुख्य मनके हैं, उनमें से एक मनके की क्षति है।

—पूर्व महामंत्री, अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस, लुधियाना

संयम के सजग प्रहरी

☐ कमला माताजी

महान् विभूति आचार्य प्रवर के गुणों का उल्लेख करने की न कलम मे शक्ति है न जिह्वा मे। फिर भी यत्किंचित भावों मे व्यक्त करने के लिए मन मचल उठा।

कथनी और करनी में समानता। शासन की महती सेवाओं में प्रतिक्षण सजग ! अल्प वय में सघ-संचालन का उत्तरदायित्व (आचार्य पद) कितने सुचारु रूप से लम्बे समय तक एकछत्र किया। सच कहा जाये तो इस युग मे महान् अवतारी पुरुष थे। सूर्य सा तेज। चन्द्र सी शीतल वहार प्रतिक्षण प्रवाहित रहती थी। सामायिक-स्वाध्याय के प्रेरक ! गुणियों के प्रति महती कृपा-दृष्टि। ऐसी महान् आत्मा का हम सबके बीच से उठ जाना, महान् रिक्तता का अनुभव हो रहा है। इस युग मे तो यह क्षतिपूर्ति होना कठिन है।

परम श्रद्धेय पूज्य श्री आचार्य भगवन् ! आप श्री की अमृतमयी कृपा-दृष्टि एवं आप श्री की अमृतमयी वाणी का झरना प्रतिक्षण भव्य आत्माओं के हृदय में प्रवाहित होता रहेगा। इन्ही आशाओं के साथ—

कोटि-कोटि वन्दन अभिनन्दन के साथ अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रही हूँ अश्रुपूरित नेत्रों से।

—५, त्रिवेणी कॉलोनी (माणकबाग रोड), इन्दौर-४५२००४

स्वाध्याय-साधना के सुमेरु

☐ श्री भँवरलाल कोठारी

स्वाध्याय-साधना-प्रेरक आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. इस युग मे केवल जैन जगत् ही नहीं, सम्पूर्ण आध्यात्मिक जगत् के उत्कृष्ट सन्त-शिरोमणि थे।

दस वर्ष की अल्पायु मे आप संयम-पथ पर आरूढ़ हो गये। सोलह वर्ष की बाल्यावस्था में ही आपने ज्ञान-ध्यान व संयम-साधना मे इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली कि जैनाचार्य के सर्वोच्च पद के लिए आपका मनोनयन कर दिया गया। बीस वर्ष की उम्र में ही पदारूढ़ होकर संघ नायक का गुरुतर दायित्व आपने सम्भाला और इकसठ वर्ष तक परम प्रभावी आचार्य के रूप में अहर्निश जागृत,

अप्रमत्त व स्वाध्यायरत रह कर समभाव मूलक सामायिक साधना और अन्त-रावलोकन युक्त स्वाध्याय को जन-जन में प्रतिष्ठित करने का जो भागीरथी कार्य आपने किया, उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती ।

आप स्वाध्याय-साधना के सुमेरु थे । अहिंसा, संयम और तप के मंगल मार्ग की ओर आपका जीवनपर्यन्त अनवरत आरोहण-क्रम बना रहा । अन्तिम क्षण तक संलेखनापूर्वक संथारा अथवा निर्विकल्प समाधि की चरम स्थिति प्राप्त कर आपने साधना के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने का जीवन लक्ष्य प्राप्त किया जो विरल महानात्माओं को ही प्राप्त होता है । आपका साधनामय जीवन भव्य आत्माओं को युगों-युगों तक सम्यक् प्रेरणा प्रदान करता रहेगा । उन्हें मेरा भावपूर्वक श्रद्धायुक्त नमन ।

—महामंत्री, राजस्थान गो सेवा संघ, रानी बाजार, बीकानेर

शुद्धाचार के प्रति दृढ़ आस्था और विश्वास

☐ श्री चम्पालाल डागा

परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. के संथारापूर्वक समाधि-मरण के अवसर पर निमाज श्री संघ ने धर्म-प्रभावना का जो अलौकिक दृश्य उपस्थित किया, वह स्वर्गीय आचार्य श्री की जीवन-साधना का अतिशय और संघ के उत्कट धर्मानुराग का एक चिरस्मरणीय अध्याय बनकर जिनशासन में सदैव अक्षुण्ण रहेगा ।

स्वर्गीय आचार्य श्री जी म. सा. ने अपनी सुदीर्घ साधना-यात्रा में जिन-शासन की जो महान् सेवा की है, वह इतिहास में सदा स्वर्णिम पत्र पर अंकित रहेगी । स्व. आचार्य श्री जी ने जीवन पर्यन्त सामायिक एवं स्वाध्याय के प्रति लोक-जीवन में जो प्रेरणा का मंत्र-दान किया, वह युग-सत्य और काल-बोध सदैव समाज और राष्ट्र को अनुप्रेरित करता रहेगा ।

परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा. एवं परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का भोपालगढ़ में जो स्नेह मिलन हुआ और उससे देश भर में शुद्धाचार के प्रति आस्था और विश्वास जिस प्रकार दृढ़तर हुआ, उससे जिनशासन की महान् सेवा हुई है ।

मैं अपनी ओर से तथा श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर की ओर से स्व. आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के महाप्रयाण पर हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

उनकी तप:पूत आत्मा मोक्षमार्ग की अनुगामी बने, यही शासन देव से प्रार्थना है।

—मंत्री, अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, समता भवन,
रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

श्रमण संस्कृति के गौरव

☐ श्री पारसमल चंडालिया

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० ने शुद्ध संयम पालन कर श्रमण संस्कृति के गौरव को बढ़ाया है और भारत के कई प्रांतों में विचरण करते हुए अपने सामायिक और स्वाध्याय के संदेश द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की महती प्रेरणा प्रदान की हैं।

आप संस्कृत, प्राकृत आदि भाषा के महान् पडित एवं आगमो के ज्ञाता थे। इतने वड़े आचार्य और विद्वान् होते हुए भी आपका जीवन सादा और सरल था। आपका सन् १९६२ मे सैलाना में ऐतिहासिक चातुर्मास हुआ था जिसकी स्मृतियाँ आज भी तरोताजा हैं।

ऐसे संयमनिष्ठ आचार्य प्रवर के स्वर्गवास से न केवल रत्नवंश में ही अपितु सम्पूर्ण जैन समाज मे महती क्षति हुई है जिसकी पूर्ति निकट भविष्य मे दु:शक्य है। आचार्य श्री की तन की ज्योति भले ही अस्त हो गई है, किन्तु उनके पवित्र जीवन की अमर ज्योति चिरकाल तक प्रकाशमान रहेगी।

आज की यह सभा ऐसे सन्तरत्न के शीघ्रातिशीघ्र शाश्वत सुख प्राप्त करने की कामना करती हुई अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करती है।

—सचिव, श्री वर्द्ध. स्था, जैन श्रावक संघ, सैलाना

अमिट प्रेरणा : अपार तेजस्विता

☐ डॉ० शान्ता भानावत

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. भारतीय संत-परम्परा के ज्वाज्वल्यमान नक्षत्र थे। भगवान महावीर ने अहिंसा, संयम और तप रूप जिस धर्म का उपदेश दिया, जीवन के अरुणोदय से लेकर जीवन की संध्या तक न केवल वे उस पर चलते रहे वरन् जो भी उनके सम्पर्क में आया, उसे अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार इसे अपनाने की प्रेरणा दी। आचार्य श्री सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के मूर्त रूप थे। जीवन-व्यवहार में वे जितने ही सरल और सौम्य थे, सयम-साधना में वे उतने ही कठोर और निर्मल थे। उनकी वाणी में साधना का तेज और स्वाध्याय का माधुर्य छलका पड़ता था। वे मितभाषी थे पर सम्पर्क में आने वाले पर अमित प्रभाव छोड़ते थे।

स्थानकवासी परम्परा के रत्न वंशीय सम्प्रदाय के वे सप्तम आचार्य थे, ऐसे आचार्य जिनका आचार्यकाल वर्तमान मे सर्वाधिक ६१ वर्ष का था, पर विचारों में उदारता और सभी सम्प्रदायों व परम्पराओं के प्रति सहिष्णुता का भाव था।

मुझे कई बार आचार्य श्री के दर्शनों का और उनके सान्निध्य में विचार-चर्चा का सौभाग्य मिला। उनकी बराबर यह प्रेरणा रहती कि चतुर्विध संघ की सर्वांगीण उन्नति हो। साधु-साध्वी अपने ज्ञान-ध्यान और साधना में आगे बढ़ें, साथ ही उनके अनुयायी श्रावक-श्राविका और भाई-बहिन भी धर्म को सही अर्थों में समझें और उसे अपने जीवन में उतारे। आचार्य श्री का बराबर इस बात पर बल रहता कि धर्म का पालन केवल दस्तूर रूप में न हो, वह हमारे व्यवहार को प्रभावित करे और जीवन को सरल और सादगीपूर्ण बनाये।

आचार्य श्री जब गर्भ में थे तभी प्लेग की महामारी के कारण उनके पिता का निधन हो गया था। माता रूपादेवी ने गर्भावस्था में ही जो धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कार दिये वे उनके संयमी जीवन में प्रेरणाभूत सिद्ध हुए और मात्र १० वर्ष की अवस्था में ही वे अपनी मातुश्री के साथ दीक्षित हो गये, संयम-पथ के पथिक बन गये। इस परिवेश में आचार्य श्री का यह बराबर चिन्तन चलता रहा कि धर्म की धुरा महिलाओं के हाथ में है। महिलाएँ यदि धर्म के स्वरूप को अच्छी तरह समझ ले तो परिवार और समाज सच्चे अर्थों में धर्ममय बन सकता है। इसके लिये आचार्य श्री ने महिला-शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया।

राजस्थान का महिला समाज विशेष रूप से मारवाड़ी जैन समाज आज से ५० वर्ष पूर्व कई प्रकार की कुरीतियों से ग्रस्त था। बाल विवाह, मृत्यु भोज, पर्दाप्रथा ने समाज को संकीर्ण और जड़ बना दिया था। यहां तक कि धार्मिक अनुष्ठान भी रूढ़िग्रस्त हो गये थे। माताएँ और बहने सामायिक तो करती थी पर सामायिक के मर्म को कम समझती थी। अधिकांशतः सामायिक में घर-गृहस्थी की बाते चलती थी। ऐसी स्थिति में आचार्य श्री ने सामायिक के साथ स्वाध्याय करने की प्रेरणा देकर धर्माराधना के क्षेत्र मे अद्भुत क्रांति की। आचार्य श्री कहा करते थे कि ज्ञान रहित क्रिया भारभूत है। सामायिक के साथ जब स्वाध्याय और ध्यान जुड़ता है तब उसमें नई चमक, नई शक्ति और तेजस्विता आ जाती है। हजारों भाई-बहिनों को स्वाध्यायपूर्वक सामायिक करने के नियम दिलाकर आचार्य श्री ने उनके जीवन की दिशा बदल दी।

देश की आजादी के बाद महिला-शिक्षा का प्रचार-प्रसार काफी बढ़ा, फलस्वरूप आज जैन समाज में बी. ए., एम. ए. पास महिलाओं की संख्या काफी है। उन्हें उच्च श्रेणी का तथाकथित व्यावहारिक ज्ञान तो है पर धार्मिक क्रिया एवं तत्त्व-चिन्तन से वे शून्य है। ऐसी महिलाओं को आचार्य श्री नियमित सामायिक-स्वाध्याय करने की प्रेरणा देते थे ताकि मस्तिष्क की तर्कशक्ति के साथ-साथ हृदय की प्रेमवृत्ति और करुणा भावना भी बढे। महिलाओं को संगठित करने की दृष्टि से आपकी प्रेरणा से श्री अखिल भारतीय महावीर जैन श्राविका सघ की स्थापना हुई जिसकी ओर से 'वीर उपासिका' मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया गया। श्राविका संघ के कई अधिवेशनों में सम्मिलित होने का मुझे अवसर भी मिला। इन अधिवेशनों में आभूषण प्रियता, फैशनपरस्ती, समाज में बढ़ते हुए प्रदर्शन, आडम्बर, दहेज प्रथा, बढते हुए व्यसन, मादक पदार्थो के सेवन आदि के खिलाफ चर्चा होती। जीवन सरल और सादा बने, बच्चो में अच्छे संस्कार आये, इस दिशा में योजना बनाई जाती और कार्यक्रम भी निर्धारित किया जाता। आज महिला समाज में जो जागृति दिखाई देती है, उसका अधिकाधिक श्रेय आचार्य श्री की प्रेरणा और देशना को है।

मैने जब-जब आचार्य श्री के दर्शन किये, वे यही फरमाते—"सामायिक-स्वाध्याय का क्रम बराबर चलता है न! इसको निरन्तर चालू रक्खो। उपासक दशांग पढ़ो, उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ो, अपनी बहिनों को आगे लाओ। महिलाएँ, सामायिक, स्वाध्याय के क्षेत्र मे आगे आयेंगी तो पुरुष वर्ग अपने आप आगे आयेगा।" आचार्य श्री यह भी कहते थे—"तुम तो कॉलेज में प्रिन्सीपल हो, वहाँ की बालिकाओं को सद्शास्त्रो के अध्ययन की प्रेरणा दो, स्वाध्याय से जोड़ो, स्वाध्याय-मंडल गठित करो। उसमें सुविधानुसार मासिक या पाक्षिक गोष्ठी हो

तत्त्व चर्चा हो। समाज की बड़ी-बड़ी महिलाओं और नवयुवतियों को एक मंच पर लाओ। दोनों पीढ़ियों के समन्वय-सन्तुलन से परम्परा और आधुनिकता, की अच्छाइयाँ सामने आयेंगी और इससे सही दिशा में समाज का विकास होगा।

व्यस्तता एवं प्रमाद के कारण इस दिशा में कुछ विशेष प्रयत्न नहीं किया जा सका पर मै समझती हूँ कि इस दिशा में हमें सक्रिय होकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है। महिलाएँ लेखन की ओर प्रवृत्त हों, इस ओर भी आचार्य श्री प्रेरणा देते थे। मुझे 'जिनवाणी' के सम्पादन से जुड़ने में उनकी सद्प्रेरणा रही।

महावीर जयन्ती पर निमाज में मैने उनके दर्शन किये थे। तब उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उन्होंने मौन व्रत ले लिया था। मौन रूप में ही संकेत कर उन्होंने मुझे सद्शास्त्रों के अध्ययन-मनन की प्रेरणा दी। उनके अन्तिम दर्शन मैने १४ अप्रेल को किये, जव उन्होंने संथारा धारण कर लिया था। शरीर के कृश होने पर भी उनके मुख-मंडल पर अपार तेजस्विता थी। पार्थिव रूप से आज वे हमारे बीच नहीं है, पर उनके उपदेश सदा हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेगे। उनकी दिवगत आत्मा को कोटि-कोटि वंदन एवं हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

—प्रिंसिपल, श्री वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर–३

युगसृष्टा महान् सन्त

☐ कुमारी सुनीता भंडारी

गुरु हस्ती तुम्हारे चरणों में,
श्रद्धा के फूल चढ़ायें हम।
जो टूट गई मोती-माला,
हम इधर-उधर सब बिखर गये।
इतनी शक्ति, तुम दो हमको,
इक प्रेम-सूत्र में जोड़ इन्हें।
फिर सुन्दर माला वनाये हम,
और सच्ची सेवा कर पाये हम॥

आचार्य श्री श्रमण-जीवन में सदा साधनारत रहते थे। देह के रहते हुये भी किस प्रकार विदेह वना जा सकता है, यह दिव्य सिद्धि आपने प्राप्त कर ली थी।

चाहे कितनी भयंकर व्याधि अथवा पीड़ा क्यों न होती, रूपा के नन्दन के कण्ठ से कराह तो दूर, ललाट पर सलवट तक भी अन्तिम समय तक किसी ने नहीं देखी थी। सदा सेवा में रहने वाले शिष्य वर्ग और असह्य पीड़ा की अवस्था में पास रहने वाले श्रद्धालु अतिविस्मित हो जाते थे, किन्तु आचार्य देव उस अवस्था में भी घण्टों तक प्रभु नाम-स्मरण व माला में लीन रहते थे। डॉक्टर के पूछने पर भी वे सहज में फरमाते—'आनन्द है।'

गुरु भगवन् अनन्त गुणों के धारक थे। वे प्रारम्भ से ही बड़े विनम्र संयम के आदर्श प्रतीक, आध्यात्मिक क्रांति के उत्प्रेरक, हिमगिरी सा अनन्त व्यक्तित्व, वात्सल्य के सागर, साहित्य रसिक और प्रकृष्ट प्रतिभा के धनी थे। आचार्य देव को वर्तमान के अरिहन्त की, जिन व केवली की उपमा दी जाये तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सुदूर प्रान्तों में अलख जगाने वाले आराध्य देव हस्तीमलजी म० सा. स्वकल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण का भी पूरा ध्यान रखते थे। भक्तों के भगवान आचार्य श्री द्वारा किये गये स्व तथा पर-कल्याण के कार्यों का यदि हम लेखा-जोखा करने का प्रयास करें तो वस्तुतः हम थक जायेंगे। आपके सत्संग में जो भी आता, वह अपने आपको धन्य मानता था, जो पापी आता वह भी पावन बन जाता था।

मुझे महागुणी, गुणों के सागर आचार्य भगवान् का सत्संग मिला था जिसके कारण आज मेरी रुचि धर्मध्यान की ओर अग्रसर हुई। आचार्य देव की प्रेरणा से ही मुझे धर्म के मार्ग में आगे बढने का अवसर मिला और मेरा रुझान सामायिक व स्वाध्याय की ओर गतिमान हुआ।

आचार्य भगवन् ने युवक-युवतियों को सर्वोपरि स्थान देकर हजारों-लाखों को धर्म के पथ पर लगाया तथा आगम के अनुसार मान्यता, मर्यादा मे चलने की प्रेरणा दी। आपकी जोड़ने व तोड़ने की शैली अनूठी थी। ६ वर्ष की अवस्था में आपने ममता के बन्धन तोड़ दिये और संयम व साधना से अपने को जोड़ लिया। गुरुदेव सदैव सम्प्रदाय से परे रहते थे। संघ की मान-मर्यादा बनाये रखते थे।

आपकी चित्तवृत्ति अत्यन्त निर्मल थी। दर्पणवत भूत-भविष्य, वर्तमान को आप देख लेते थे। और यथायोग्य सभी को प्रेरणा देते रहते थे।

आप संघ की एकता के लिए सदैव प्रयत्नरत रहे पर समय आने पर इतने

नेर्लेप और असंग बन गये कि अपने चरणों में आये सभी सन्तों से नाता तोड़ लेया और महाप्रयाण कर गये।

लोग कहते हैं कि आराध्य देव चले गये, लेकिन वे गये नहीं, वे हैं और रहेंगे। वे आज हमारे समक्ष भौतिक रूप में नहीं है किन्तु ज्ञान, तप, साधना व उपदेश से आज भी हमारे समक्ष यथास्वरूप में हैं और रहेंगे।

आचार्य देव के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि तभी होगी जब हम सब मिलकर समाज को आगे बढ़ायें, भगवन् के दिये हुये उपदेशों को ग्रहण करें तथा उनके फरमान को घर-घर तक पहुँचाये।

अन्त में—

आप यूं ही सदा याद आते रहें,
हम चरणों में शीश झुकाते रहें।
'जैन धर्म इतिहास' आपकी अमर देन है,
जिसके लिए ऋणी सदा ही जगत् जैन है ।।
श्रद्धा में अगर जान है तो गुरु हस्ती 'सुनीता' से दूर नहीं,
कोटि-कोटि प्रणाम है, युग स्रष्टा उस महान् सन्त को।

—सुपुत्री श्री तेजराजजी भण्डारी
भंडारी एम्पोरियम, एम० आई० रोड, जयपुर

आचार्य श्री की समय-व्याख्या

☐ ओंकार श्री

मारवाड़ के 'कोसाना' ग्राम में आचार्य श्री पूज्य हस्तीमलजी म. सा. के सन् १९८९ के चातुर्मास काल में अ० भा० जैन विद्वत् परिषद् द्वारा आयोजित एक विचार-गोष्ठी सभा में मुझे डॉ. भानावत के निमन्त्रण पर पत्र-वाचन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अस्वस्थतावश म. सा. सभा में उपस्थित न हो सके थे। इलेक्ट्रोनिक मीडिया युग में धर्माध्यात्म प्रचार-पक्ष पर मेरा पत्र वाचन था।

भाषा की प्रखरता और सपाट शैली में मैने आज के युग में देश काल परिस्थिति के तेज तकाजे और विज्ञान की अवाध गतिमयता के पहलू को उजागर करते हुए धर्म-सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने के पक्ष में ध्वनि-विस्तारक यन्त्र, केमरा, टी. वी., रेडियो, वीडियो आदि की प्रयोग-धर्मिता पर वल देने में कोई कसर नही रखी ।

मेरे विचारों को विचार-सभा में उपस्थित जैन समुदाय के प्रवुद्ध श्रावकों, विद्वानों एवं साधु-साध्वी वृन्द ने पूरी चौकसी से सुना । पत्र-वाचन काल में ही मुझे कुछ मुख-मुद्राएँ तनाव-ग्रस्त दिखाई पड़ीं । आचार्य श्री के पंथ-मतानुयाइयो द्वारा प्रचारधर्मी वैज्ञानिक उपकरणों के कठोर निषेध का अहसास मुझे था पर मेरी बात की काट किसी ने नही की । मुनि-पाट पर विराजित आचार्य श्री के शिष्य प्रवर पूज्य हीरा मुनिजी ने अपने उद्वोधन में मेरे व पत्रकार वन्धु डॉ. भंवर सुराणा के विचारों की वडी मार्मिक श्लाघामयी सहिष्णुता के साथ न केवल विश्लेषण की वल्कि वाणी के वेलाग-पन की तरफदारी भी की ।

महापुरुषों की गति अगम होती है । उनका हृदय नवनीतवत् होता है । मेरे पत्र-वाचन की सचोट सटीक शैली का सार म. सा. तक पहुँचा और वे सवेदित हो उठे । विचार-सभा के वक्ताओं, पत्रवाचकों व विशिष्ट श्रावकों के साथ मुझे पूज्य म. सा. के आशीर्वाद का सौभाग्य तो मिला ही पर यह सन्देश भी कि विदा होने से पहले म. सा. से आप अवश्य मिलते जाएँ ।

पूज्य हीरा मुनिजी की कृपा व अनुकम्पा से मुझे आचार्य श्री के चरणों मे वार्त्ता की जो वैठकी मिली उसे मै आजीवन स्मरण रखूंगा ।

शात-गंभीर एवं भाव प्रवण मुद्रा के साथ 'वयोवृद्ध आचार्य श्री ने हँसते हुए कहा "लेखनी सदा देखनी । मर्यादा देखनी काल संलेखनी । काल का निकट पर्याय समय । समय की समझ समय मे है । सामायिकी मे यही समय समझ है । समय की व्याख्या समझो । सम-य—सम है जो—विपम नही ! "इत्यलम्-शुभम्" ।

महाराज श्री ने समय की इस युगांतरकारिणी व्याख्या के साथ मौन धार लिया—मै उठा । कालवोध-प्रतिवोधित हुआ । आज आँखो के सामने 'हस्ती का अभय हस्त' मेरे शीष पर आशीष वरसाता संस्थित है । सम-य रूप आचार्य श्री के चरणों में शव्द-शव्द नि.शव्द वन्दन ।

—सचिव, वीकानेर संभाग विकास परिषद्,
रानी वाजार, वीकानेर

महा मनीषी

☐ श्री पार्श्वकुमार मेहता

चिन्मय ज्योतिपुञ्ज, अनन्त विभा, लोक-तृष्णा से पूर्ण मुक्त, काम और विभव-तृष्णा से आजीवन दूर रहे अखण्ड बालब्रह्मचारी आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. जन-जन के आराध्य, संयम-साधना में लोहपुरुष, महान् क्रियोद्धारक, अध्यात्मयोगी थे। आपकी स्वाध्याय-सामायिक की सेवाएँ हम सबके लिए दीपस्तम्भ के समान मार्गदर्शक है।

अंग्रेज लेखक बेकन के अनुसार—

Reading makes a full man,
Speaking a perfect man,
Writing an exact man.

अर्थात् अध्ययन (स्वाध्याय) मनुष्य को पूर्ण मनुष्यत्व प्रदान करता है, भाषण परिपूर्ण और लेखन प्रामाणिकता प्रदान करता है। शरीर-पुष्टि के लिए जैसे व्यायाम, भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिए स्वाध्याय।

आपकी आध्यात्मिक, सामाजिक, पारस्परिक स्वधर्मी वात्सल्य प्रेरणा संघ एवं आत्मिक विकास में प्रबल सहभागी है। आप में दूरदर्शिता, सूझबूझ, चिन्तन, गवेषणा अपूर्व थी।

मुझे याद है जब संघ व मण्डल की मद्रास मीटिंग के बाद मैं, डॉ. नरेन्द्रजी भानावत, चैतन्यमलजी ढड्ढा, डॉ. श्रीमती शांता भानावत एवं प्रसन्नमलजी लोढ़ा पांडिचेरी गये थे और वहाँ सेवा का हृदयग्राही स्वरूप देखा था। आचार्य प्रवर के सामने मैंने पांडिचेरी का विस्तृत स्वरूप प्रदर्शित किया, आचार्य प्रवर ने कहा था—हमें भी समाज के लिए ऐसे सेवाभावी कार्यकर्ता चाहिए जो निशदिन समाज-सेवा में निरत रहें और उनके परिवार की कठिनाइयों को समाज के श्रेष्ठिवर्ग दूर करें।

आज समाज में ऐसे सेवाभावी कार्यकर्ता प्रण करलें व श्रेष्ठिवर्ग उनके परिवार का उत्तरदायित्व वहन करें तो संघ, मण्डल व समाज की अन्य संस्थाएँ निश्चित रूप से उजागर होकर प्रगति-पथ पर अग्रसर होंगी। कृपया

इस पर विचार-मंथन कर समर्पित निष्ठावान कार्यकर्ता तैयार करेंगे तो आचार्य प्रवर का स्वप्न साकार हो सकेगा।

आचार्य प्रवर ने दिशा-निर्देश देकर, प्रेरणा देकर विद्वानों, समाज-सेवकों, स्वाध्यायियों को समाज के सम्मुख अग्रिम पंक्ति में खडा किया है। आचार्य प्रवर की अनुकम्पा के कारण ही मेरे मन-मस्तिष्क में सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के प्रति रुचि जाग्रत हुई। मैं अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित कर उस महा मनीषी के प्रति अपनी भावांजलि अर्पित करता हूं।

—संयुक्त मंत्री, श्री अ० भा० जैन विद्वत् परिषद्
१/६६, मालवीय नगर, जयपुर-३०२०१७

साधना के साकार स्वरूप

☐ श्रीमती स्नेहलता मेहता

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का जीवन ज्ञान-क्रिया एवं तप-साधना का अद्भुत त्रिवेणी संगम रहा। आप सादगी, सरलता एवं आडंबर रहित साधना के साकार स्वरूप थे। घोर साधना, कठोर तप, नियमित जप एवं मौन के प्रति आपकी सहज रुचि थी। इच्छा, आकांक्षा व पद-प्रतिष्ठा से परे पूर्णरूपेण आत्म-भाव में लीन रहना, आपकी साधना, साधुत्व एवं व्यक्तित्व की विशेषता थी।

आचार्य प्रवर ओजस्वी प्रवचनकार, युगद्रष्टा, प्रतिभा-सम्पन्न लेखक, पुरातत्त्व शास्त्र संरक्षक एवं व्यसन-निवारण के प्रति प्रेरणा के पुञ्ज थे। आप शुद्ध चारित्र-पालन, दृढ आत्म-विश्वास, अद्भुत स्मरण-शक्ति एवं शुद्ध सात्विक विचार के धनी थे। यही कारण है कि आप श्री के प्रवचनों का श्रवण कर अनेक जैन एवं अजैन लोगों ने मांस, मदिरा, सिगरेट आदि अनेक दुर्व्यसनों का त्याग किया।

जीवन पर्यन्त आप सम्यक्-ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र की साधना में एकनिष्ठ भावना से लीन रहे। जीवन के अंतिम दिनों में जब आपका स्वास्थ्य निरन्तर गड़बड़ा रहा था, तप एवं साधना में शरीर बाधक बन रहा था, तब आप शरीर को सम्पूर्ण विश्राम देने की भावना से तप-पूर्वक

संथारा अंगीकार कर पूर्ण-रूपेण आत्म-भाव में लीन हो गए। इस अति विशिष्ट साधना में चाहे आपने कठिन उपसर्ग सहन किए हों, मगर अन्त समय तक चेहरे पर तेजस्विता की ही अभिव्यक्ति झलकती रही और धन्य हो गई पाली जिले के निमाज कस्बे की वह भूमि, जहाँ ऐसे तपोपूत अध्यात्म-योगी ने आत्मोत्सर्ग किया। ऐसे सन्त-शिरोमणि, महान् अध्यात्म योगी, युगपुरुष को श्रद्धा सहित शत-शत वन्दन, शत-शत नमन।

—एडवोकेट, राज. उच्च न्यायालय
रावतों का बास, जोधपुर

ओजस्वी, तेजस्वी, प्राणवान व्यक्तित्व

□ श्री पी० एम० चौरड़िया

आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. जैन श्रमण-परम्परा के महान् आचार्य हुए हैं, जिन्हें सदियों तक स्मरण किया जाएगा। आपका व्यक्तित्व ओजस्वी, तेजस्वी और प्राणवान था। आपका हृदय नवनीत सा कोमल और द्राक्ष जैसा मधुर था। आपके हृदय में करुणा और वात्सल्य का सागर लहराता था। यही कारण था कि जो एक बार आपके निकट सम्पर्क में आता, वह प्रभावित हो जाता था। आपकी सहन-शक्ति अपरिमित थी। आपके दीर्घ संयम जीवन में ऐसी कई प्रतिकूल परिस्थितियाँ आई, लेकिन आपने मुस्कराते हुए उनका सामना किया। आप अपनी साधना के धनी थे और जो एक बार निर्णय कर लेते, उस पर मेरु के समान अडोल और अकम्प रहते। आपका व्यक्तित्व बहुरंगी और बहुमुखी था। गम्भीरता, धैर्य, निस्पृहता, सतत जागरुकता, अप्रमत्तता और फकीर सी फक्कड़ता का अद्भुत समन्वय था आपके व्यक्तित्व में।

मुझे आपके दर्शनों एवं उपदेशों का लाभ बचपन से मिलता रहा। धर्म के संस्कार एवं स्वाध्याय की प्रेरणा मुझे आपसे ही मिली। भगवान महावीर के शासन-काल में तीन प्रभावशाली "आचार्य हस्ती" हुए। प्रथम "आचार्य सुहस्ती" जो आचार्य स्थूलभद्र के शिष्य थे। ये भगवान महावीर के आठवें पट्टधर थे एवं उनका चारित्र पर्याय ६० वर्ष रहा। दूसरे आचार्य "नाग हस्ती" हुए जो भगवान महावीर के १८वे पट्टधर थे।

आपको कर्म-प्रकृति का प्रधान ज्ञाता बताया जाता है। वर्तमान काल में "आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा." ऐसे आचार्य हुए हैं जिन्होंने आचार्य सुहस्ती की तरह ६० वर्ष का चारित्र पर्याय का पालन कर जिन शासन की सेवा की। आपने सामायिक एवं स्वाध्याय का विशेष प्रचार किया। आपने जीवन-शुद्धि, सामाजिक प्रगति और राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण के लिए सदैव उपदेश दिया। ऐसी महान् आत्मा को मैं नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ।

—89, Audiappa Naicken Street
Sowcarpet, Madras-600029

महान् प्रभावशाली आचार्य

☐ श्री शान्तिलाल पोखरना

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. अपने युग के एक महान् प्रभावशाली आचार्य हुए है जिनका जीवन युगों-युगों तक प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। श्रमण संघ के निर्माण में जहाँ उनका उल्लेखनीय योगदान रहा वहीं उन्होंने जैन धर्म का इतिहास लिखकर समाज की बड़ी सेवा की है, जो कभी भुलाई नहीं जा सकती। स्वाध्याय और सामायिक उनका विशेष लक्ष्य रहा, जो आज की महती आवश्यकता है।

आचार्य श्री से अनेक सामाजिक व श्रमण संघ के प्रश्नों पर विचार-विमर्श में वैचारिक मतभेद भी रहता था परन्तु मन-भेद कभी नहीं होता था। इसी कारण उनका सतत मार्ग-दर्शन समाज व श्रमण संघ-हित में मिलता रहता था और भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के श्रावकों की भी उनके प्रति अटूट आस्था व श्रद्धा थी।

आपकी दृष्टि बहुत पैनी थी। आप भीलवाड़ा पधारे तब महासतियांजी श्री जशकंवरजी म. सा. की प्रेरणा से जोगणिया माताजी में जो अहिंसा का कार्य हुआ उससे प्रभावित होकर आपने उनको 'शासन प्रभाविका' के नाम से विभूषित किया, जो उपस्थित जनमानस को काफी रुचिकर लगा। ऐसे महान् आचार्य को मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि।

—७५, काशीपुरी, भीलवाड़ा—३११००१

परम शान्त आत्मा

□ श्री चन्दनराज मेहता

परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. जैतारन के निकट निमाज ग्राम में दिनांक १२-४-६१ को यावज्जीवन तिविहार संथारा का प्रत्याख्यान करके २१ अप्रेल, १९६१ की रात्रि में अपना पार्थिव शरीर त्याग कर अमर हो गये। इस अवसर पर लाखों श्रद्धालुओं ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और उनमें एक मै भी था। उन्होने बाल अवस्था में दीक्षा ग्रहण की और ८१ वर्ष की आयु तक शुद्ध साधुपन का पालन करते रहे और लाखों-लाखों लोगों से सम्पर्क किया और उन्हें सदा निर्व्यसनी व नैतिक बनने को प्रेरित किया। पिछले कई वर्षो में मैंने यदाकदा उनके दर्शन किए तो वे यही प्रेरणा देते, प्रश्न करते कि नमस्कार मंत्र की माला फेरते हो, या सामायिक करते हो अथवा स्वाध्याय करते हो ? अगर 'नहीं' में उत्तर होता तो करने के लिए प्रेरणा देते और अगर 'हां' में उत्तर होता तो और अधिक करने के लिए प्रेरित करते। बहुत ही शान्त भाव से मंगलीक फरमाते। उनके दर्शन जब भी करता तब यही अनुभव होता जैसे उनके कषाय बहुत अल्प होते जा रहे है और उनके आभा-मण्डल में खड़े व बैठे रहने पर परम शांति का अनुभव होता।

पिछले कई वर्षो से वे प्रायः मौन की ही साधना करते और बोलना ही होता तो बहुत अल्प शब्दों में बहुत कुछ कह देते। त्याग, तप व स्वाध्याय, ज्ञान-ध्यान की ही बात कहते। उनके त्याग, तपस्या, स्वच्छ साधुपना पालन व कषायों की अल्पता का निरन्तर अभ्यास करते रहने से कौन नही प्रभावित होता ? अन्य सम्प्रदाय का होने पर भी मै जब कभी उनके दर्शन करता तो उचित सम्मान देकर ही वे त्याग-तपस्या, ज्ञान-ध्यान का ही उपदेश देते। उनका पार्थिव शरीर तो अब पंच तत्त्व में विलीन हो गया इसलिए उनकी अमर आत्मा के प्रति मै अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—७ अ १ 'अपूर्व' नन्दनवन, जोधपुर

साधना फलवती हुई

□ श्री सुमतिचन्द कोठारी

साधना तभी फलवती होती है, जबकि उसका अधिकारी योग्य हो।

सामायिक साधना एक उच्च कोटि की साधना है जिसका मूल्य एक मात्र मोक्ष के अतिरिक्त और कुछ भी नही।

आचार्य श्री ने (आजीवन) सामायिक समभाव की उपासना की। समभाव का अर्थ राग-द्वेष का परित्याग, अर्थात् छोटे-बड़े सब जीवों पर समभाव रखना, पांचों इन्द्रियों को अपने वश में रखना। ये सब आचार्य श्री ने जीवन-पर्यन्त किया।

श्रावक भी सामायिक करने पर साधु जैसा हो जाता है, वासनाओं से जीवन को बहुत कुछ अलग कर लेता है, अतः श्रावक का कर्तव्य है कि वह प्रति दिन सामायिक ग्रहण करे, समता-भाव का आचरण करे, तभी पूज्य गुरुदेव को सच्ची श्रद्धांजलि देना कहलायेगा।

—ए ३१, तिलक नगर, जयपुर

देश को अहिंसा के विचारों से जोड़ा

☐ श्री मुरारीलाल तिवारी

सन्त किसी सम्प्रदाय विशेष से बंधे नही होते है, आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज का जीवन महासागर के समान था, जिसमें प्राणीमात्र के कल्याण की पवित्र लहरे विद्यमान थीं। उन्होंने व्यक्ति को सामायिक और स्वाध्याय के माध्यम से जनपथ से जिनपथ पर ले जाने का सद्प्रयास किया। वे सर्व धर्म की विपुल सम्पदा थे तथा उन्होंने अपने ६० वर्ष के दीर्घ आचार्यकाल में देश को अहिंसा के विचारो से जोड़ने का महान् कार्य किया।

—पूर्व न्यायाधीश, इन्दौर

तेजस्वी सन्त रत्न

☐ श्री उत्तमचन्द डागा

जीवन में आदि से अन्त तक धर्म साधना व ज्ञान की ज्योति को अखण्ड रूप से आप सदैव प्रज्वलित करते हुए, जहाँ एक ओर आपने तप-त्याग से खुद

जीवन को संवारा वहीं समाज को भी नई दिशा, नया चिंतन सदैव देते थे। आप एक सिद्धहस्त लेखक ही नहीं ज्ञान के अपूर्व भण्डार थे। ३२ आगम एवं तत्त्वों के ज्ञाता तो आप थे ही, साथ ही साहित्य के क्षेत्र में भी आपकी लेखनी अविराम चलती रही। जैन धर्म का मौलिक इतिहास ग्रंथ, ...त्र एव सत् साहित्य आपकी अद्भुत देन समाज को है। सादा आहार, सादा वस्त्र एवं सरल विचार, हँसमुख प्रकृति, चुम्बक सी शक्ति एवं महान् आशय के धनी आप तेजस्वी संत-रत्न थे। मुख्य रूप से आपका विहार राजस्थान तो था ही पर मध्य प्रदेश, मेवाड़, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, दक्षिण भारत मे मद्रास, बंगलौर, गुजरात में भी विचरण हुआ। स्थान-स्थान पर समाज को आप भगवान महावीर के दिव्य संदेशों के उद्घोषों से प्रेरणा देते रहते थे।

—सयुक्तमंत्री, वर्धमान स्था. जैन श्रावक संघ, जयपुर

जैन शासन की अपूर्व प्रभावना की

☐ श्री मलूकचन्द आर. शाह

परम पूज्य बाल ब्रह्मचारी आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. के महावसान के समाचार जानकर हमारे जैन फैडरेशन ऑफ अमेरिका के समस्त जैन समाज को गहरे आघात का अनुभव हुआ है। अपने दीर्घ दीक्षा पर्याय में उन्होंने जैन शासन की अपूर्व प्रभावना की थी।

'गुरु हस्ती के दो फरमान—सामायिक स्वाध्याय महान्' इस सूत्र से उन्होंने जैन समाज मे सामायिक और स्वाध्याय को भारी वेग दिया था। उनके इस सदेश को जीवन में उतार कर ही हम उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते है।

स्वर्गस्थ की भव्य आत्मा को शाश्वत शांति प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना के साथ हम सभी उस दिव्यात्मा को पुनः-पुनः वंदना और स्मरणांजलि अर्पित करते है।

—फैडरेशन ऑफ जैन एसोशियेसंस इन नॉर्थ अमेरिका (जैना)
डायरेक्टर (इण्डिया प्रोजेक्ट)
बी–८, वर्धमानकृपा, सोला रोड, अहमदाबाद–३८००६१

ऐसे थे हमारे गुरुदेव !

◇ श्रीमती प्रेमकुमारी मेहता

पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज साहब अनन्त गुणों के भण्डार थे। उनके गुणगान करने मे मेरी जिह्वा असमर्थ है। मैने जाना, माना और समझा है कि उनके नाम को लेते ही संकट दूर हो जाते थे। फिर दर्शन का कहना ही क्या ? मेरे लिए हर समय परीक्षा की घड़ियाँ आती थी लेकिन गुरुदेव का स्मरण करते ही सब संकट भाग जाते थे। उदाहरण के तौर पर मेरा बच्चा आँखों से अन्धा हो गया था। मै कोई देवी-देवता को नही मानती। मैने गुरुदेव से ३५ वर्ष पूर्व नियम लिये थे कि मै लक्ष्मी का पूजन भी नहीं करूँगी। मेरी यही भावना रहती है कि जो नियम ले लिये, उनका पूर्णरूपेण पालन करूँगी। मेरे बच्चे की आँख की रोशनी वापिस आने के लिये कोई डॉक्टर भी विश्वास नहीं दिलाता था। मेरे परिवार वालों ने कहा—कि 'ऐसे नियम मे क्या रखा है, क्या बच्चा तेरे को प्यारा नही है ?' मैंने उत्तर दिया कि, "बच्चे से ज्यादा मेरा धर्म प्रिय है।" मेरे तीन साल के बच्चे की भी इतनी आस्था कि वह कहता कि मेरे को वीतराग भगवान व गुरु भगवान ही ठीक करेंगे। और यह गुरुदेव की ही कृपा थी कि मेरे बच्चे की खोयी हुई आँख की रोशनी वापिस आ गई।

दूसरे, मेरी ३ वर्ष की पोती को गुरुदेव के दर्शनार्थ जलगांव जाते समय खंडवा के स्टेशन पर रात को १२ बजे कोई आदमी लेकर चला गया। चारों ओर स्टेशन पर भगदड मच गई। हमने गुरुदेव का स्मरण चालू कर दिया। उसकी माँ बच्ची को ढूंढते प्लेट फार्म के बहुत आगे चली गई और अंधेरे में ले जाते हुए एक आदमी की गोदी में से बच्ची को छीना।

तीसरा उदाहरण यह है कि मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल सही नही रहता। आज इस गुरु योगी की कृपा से मै अपना सब कार्य करने मे सक्षम हूँ। और भी क्या कहूँ, जितना कहूँ उतना ही थोड़ा है।

गुरुदेव ने जब अपना अन्तिम समय निकट जाना तो पहले तेला किया और चौले के दिन संथारा पच्चख लिया। संथारे में जो आपको समाधि भाव रहा, उसका वर्णन नही किया जा सकता। गुरुदेव हम सबको रोता-बिलखता छोड़ अपने गंतव्य को प्राप्त हो गये।

गुरुदेव ! अब मेरा क्या होगा, कौन मेरी सुनेगा, किसके आगे जाकर मैं पना मन हलका करूँगी ? कौन मुझे बड़ी बाई कहेगा ?

अन्त में, शासन देव से प्रार्थना है कि गुरुदेव की स्वर्गस्थ आत्मा को न्ति प्राप्त हो तथा गुरुदेव बहुत ही निकट भवी हों तथा मुझे समय से पूर्व ता दे जिससे मै भी संलेखना-संथारा कर यहां से प्रयाण करूँ और मैं भी रुदेव के बताए मार्ग का अनुसरण करके शीघ्र ही आत्म-कल्याण करूँ ।

—छाजूसिह के दरवाजे के सामने, अलवर–301 001

प्रेरणा जो जीवन को नया मोड़ दे गई

☐ श्री अशोककुमार जैन

मै जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान मे अध्ययनरत था । मुझे आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का चातुर्मास वर्ष १९८२ में व्याख्यान सुनने व लिपिबद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मै प्रतिदिन आचार्य श्री, पं. रत्न मान मुनिजी म. सा., पं. रत्न हीरा मुनिजी म. सा. के व्याख्यान आशुलिपि में लिखता और यह सोचता था कि लिपिबद्ध तो कर लिया अब कल टंकित कर लेगे या समय मिलेगा तब टंकित कर लेंगे ।

एक दिन आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. यों ही पूछ बैठे कि आप रोजाना सामायिक करते हो, स्वाध्याय करते हो ? मैने आचार्य श्री को उत्तर दिया—जिस दिन व्याख्यान नोट (लिपिबद्ध) करता हूँ उस दिन तो सामायिक, स्वाध्याय कर लेता हूँ अन्यथा यह सोच लेता हूँ कि कल दो सामायिक कर लूंगा । फिर आचार्य श्री ने पूछा, क्या तुम फिर कल दो सामायिक कर लेते हो, मैंने उत्तर दिया—नहीं । फिर आचार्य श्री ने पूछा, तुमने जो व्याख्यान नोट किये है, टंकित कर लिये ? मैंने आचार्य श्री को निवेदन किया, मै सात दिन के इकट्ठे कर लूंगा । किन्तु जब मैं सात दिन बाद लिपिबद्ध किये व्याख्यानों को टंकण करने बैठा तो कुछ समझ में ही नही आया । सात दिन बाद फिर आचार्य श्री ने मुझ से पूछा—पूर्व के व्याख्यान टंकित कर लिये ? मैंने उत्तर दिया—नही, वे तो समझ मे नही आये ।

तब आचार्य श्री ने मुझे से कहा—जिस तरह तुमने आज का कार्य कल

पर टाल दिया और समय बीत गया, कार्य पूर्ण नहीं हो सका, उसी तरह आज में भी सामायिक, स्वाध्याय प्रतिदिन ही होनी चाहिये, कल दो कर लूँगा, परसों तीन कर लूँगा, समय बीतता जाता है, होता कुछ भी नहीं।

तभी से मैं अपने जीवन में अधिकांश कार्य कल के स्थान पर आज ही करने की कोशिश करता हूँ। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की यह प्रेरणा मेरे जीवन को नया मोड़ दे गई। आज मैं जिस दिन के कार्य को उसी दिन निपटाने की कोशिश करता हूँ तो प्रसन्नता की अनुभूति होती है। मैं अपने भाई-बहनों से यही कहना चाहूँगा कि आचार्य श्री की इस प्रेरणा को अपने जीवन का अंग बनावे।

—निजी सहायक :
वन संरक्षक (वन्य जीव) जयपुर (राज०)

प्रखर ज्ञान-सूर्य

☐ श्री चन्दनमल बनवट

परम पूज्य, आगम वारि महोदधि, स्वाध्याय योगी, बालब्रह्मचारी, सम्यक्ज्ञान के महाप्रेरक, महान् साधक एवं असंख्य साधकों के परम आराध्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. अभी-अभी मैं राजस्थान की यात्रा पर था तो सोजत सिटी के जैन स्थानक भवन में विराजित थे। मैंने सपरिवार उनके फलदायी दर्शनों का लाभ लिया था, जो अन्तिम था, अब प्राप्त नही हो सकेगा।

जैनाकाश का एक प्रखर ज्ञान-सूर्य अस्त हो गया। आचार्य श्री ने अपने "ऋषि जीवन" में साधु, गणिप्रवर, उपाध्याय पद एवं आचार्य प्रवर इन महान् पदों को शोभित एवं विभूषित कर इन पदों को धन्य किया एवं प्राप्त दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक बना दिया।

उनके न रहने से बड़ी भारी रिक्तता आई है, जो कभी भी भरी नहीं जा सकती। उनकी काल धर्म-प्राप्ति समाज एवं भक्तजनों के लिए अत्यन्त दुःखदायी है। यह मोह का कारण नही, बल्कि ज्ञान-सूर्य के अस्त होने का दुःख है।

—पूर्व विधायक एवं स्वतन्त्रता सेनानी, आष्टा (सीहोर) म० प्र०

अमित प्रेरणा

☐ श्री सुमतिप्रकाश जैन

आपको आचार्य पद से अलंकृत किया गया। अर्थात् वि० सं० १९८७ में अक्षय तृतीया को जोधपुर में आप आचार्य बन गये। ६१ वर्ष तक देश के अधिकतर प्रान्तों में भ्रमण कर आपने जैन धर्म, मानव धर्म भगवान महावीर की उपदेश वाटिका को पल्लवित और पुष्पित किया। जहाँ आज का मानव अपनी उद्विग्नताओं से ही त्राण नही पायेगा, वह बुद्धिगम्य, आस्थामूलक स्थायी समाधान भी पा जायेगा। विनम्रता, सरलता, सहिष्णुता, गुण ग्राहकता, अध्ययन, अध्यापनशीलता, मिलनसारिता आदि एक नही अनेक व्यावहारिक विशेषताएँ आपके दैनिक जीवन चर्या में थी। आपने धार्मिक, व्यावहारिक, सामाजिक, दार्शनिक साहित्य-जगत् को अनेक रचनाएँ, ग्रन्थ समर्पित किये। सामायिक एवं स्वाध्याय पर आपने विशेष जोर दिया। आपने बताया कि "आत्मा में लीन होना व आत्मस्थ होना ही सामायिक है। सामायिक समभाव की साधना है।" आपकी प्रेरणा से अखिल भारतीय सामायिक संघ आज भी प्रदीप्त है। आपने विशेष बल देते हुये कहा कि "समभाव की पुष्टि के लिये स्वाध्याय अति आवश्यक है।"

गुलाब के फूल सा विहंसता आकर्षक चेहरा, समत्व साधना युक्त स्नेह, वर्षाती निर्मल आँखे, सुगठित गौरवर्ण देह, गम्भीर घोष युक्त, बुलन्द वाणी जो सीधी जनमानस के हृदय को छू जाती, श्वेत सीमित परिधान में अति भव्य, प्रभावशाली और विशिष्ट व्यक्तित्व की छवि, जैन जगत् के नक्षत्र, मानव मात्र के प्रेरणा स्रोत, दार्शनिक, प्रवचनकार आज प्रत्यक्ष में हमारे सक्षम नही हैं। पर आपकी प्रेरणाएँ अमिट है।

—महावीर मार्ग, अलवर

ताकि सनद रहे, वक्त जरूरत काम आये

☐ श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

सतत गतिशील समय एवं मानव-मन के पारखी, युगद्रष्टा आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज सा० का पावन चितन था कि समाज एवं राष्ट्र ने

सत्य, समता, सदाचार, सद्‌विचार एवं अमन और अहिंसा को समुचित स्थान मिले। मानव-जीवन मे विपमता, चिंता, तनाव एवं मनमुटाव मिटे, कथनी एवं करनी एकाकार हो, सर्वत्र सुख, सन्तुष्टि एवं शांति का साम्राज्य हो।

वे जानते थे, मानते थे कि यह तभी संभव है जब मानव धर्म, दर्शन, शुभचिंतन, स्वाध्याय एवं सामायिक से जुड़े, समता उसके जीवन में प्रत्यक्ष परिलक्षित हो, जीवन-निर्वाहकारी शिक्षा के साथ-साथ जीवन-निर्माणकारी सद् साहित्य सरलता से सर्व सुलभ हो।

आचार्य प्रवर के इस सर्व-हिताय, सर्व सुखाय दूरदर्शी चिंतन को, रत्न-वंशीय प्रबुद्ध भद्र श्रावकों ने समझा और आचार्य प्रवर की प्रेरणा से मानवता के मंगल के लिए कई संस्थाएँ स्थापित की—ऐसी ही संस्था जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ से मासिक पत्रिका 'जिनवाणी' चालू हुई जो वर्तमान में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर से जुड़ी होकर अपनी चेतनापूर्ण प्रेरक सामग्री के माध्यम से, देश के इस छोर से उस छोर तक सत्य, समता, सद्‌व्यवहार, सदाचार-सद्‌विचार एवं अमन और अहिंसा के पावन पैगाम पहुँचाने मे संलग्न है। इस पत्रिका का 'बाल कथा स्तंभ, नन्हे मासूम मुन्नों मे नैतिकता के संस्कार उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रहा है। इस पत्रिका के विशेषांक भारतीय वाङ्‌मय की अमिट धरोहर है। सद्‌साहित्य जीवन-निर्माण में कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर जाता है, इसका प्रमाण है 'जिनवाणी' के 'कर्म-सिद्धान्त विशेषांक, की पृष्ठभूमि में, अभिभाषक संघ, भवानीमंडी के कक्ष मे घटी यह घटना।

जैन धर्म दर्शन के अध्ययन में रुचि रखने वाले अपने अभिन्न भावुक मित्र श्री द्वारकालाल जी कुलमी, एडवोकेट को मैंने 'जिनवाणी' का 'कर्म-सिद्धान्त विशेषांक' पढ़ने को दिया। २० मई, ८५ को प्रभात में उन्होंने जब उक्त विशेषांक मुझे लौटाया तो मैं सहज भाव से प्रश्न कर बैठा....कैसा लगा आपको यह विशेषांक ? प्रश्न ने उन्हें भाव-विभोर कर दिया... चिंतन की गहराई में डूबे कुछ गंभीर हो हर्षित तन, पुलकित मन उन्होंने हौले से कहा—

मुझ अल्पज्ञ की कर्म फिलासफी ने आँखे खोल दीं। दूसरों को दोष देने की प्रवृत्ति समूल नष्ट करदी। जन्म, मरण एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सतही तौर पर मानता था, पर इस मानने के अतिरिक्त और कुछ नही जानता था.... अब नये चिंतन—नई दिशा, नये आयाम ने मेरी आँखे खोल दी। कह नहीं सकता कहाँ तक क्या कर पाऊँगा पर अन्तर्मन से संकल्प कर कहता हूँ कि मन, वचन, कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा पहुँचाए बगैर मैं चलता रहूँगा, चलता

[ग]ंगा सन्मार्ग पर बिना अटके, बिना भटके, बिना रुके और जन-जीवन की [अं]तिम संध्या, अंतिम पड़ाव आ जावे तो तब प्राणी मात्र से अपने अपराधों की [क्ष]मायाचना करते, अपनी भूलों का प्रायश्चित्त करते यहाँ से विदा लूँ" कहते, [क]हते वे काफी भावुक हो उठे। कुछ रुके, संभले और कहने लगे—

तो मित्र-बंधुओ ! इतना ध्यान रखना कि मेरे विछोह में कोई अश्रु न [ब]हाये, आहें न भरे, आर्त्तनाद न करे क्योंकि संसार की असारता एवं जीवन की [न]श्वरता एक शाश्वत सत्य है···और मृत्यु और कुछ नही जीवन का ही दूसरा [छ]ोर है···सत्य के लिए हाय—विलाप क्यों ?"

सारे कक्ष का वातावरण गहन-गंभीर और नम हो गया। कुलमी सा० [क]े पावन चिंतन ने, उनकी भावुकता ने सबको झकझोर डाला। विषयान्तर की [दृ]ष्टि से उस गंभीर वातावरण को मोड़ देते मैने बात चलादी बीते अतीत की, नैतिकता की, मानव-जीवन मूल्यों की, और तभी संदर्भ से अनजाने ही जुड़ गई [फ्]रांस के जानेमाने बैरिस्टर के जीवन की वह प्रामाणिकता कि भूलवश न्यायालय मे पक्षकार द्वारा प्रदत्त दस्तावेज पेश नहीं करने के कारण वे मुकद्दमा हार गये तो प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने अपनी सारी चल-अचल सम्पत्ति ही उस पक्षकार के नाम करदी···

और···और···तभी कर्म-सिद्धान्त के तल-स्पर्शी चितन में डूबे भाई श्री कुलमी सा० ने सभी अभिभाषक बंधुओं के समक्ष घोषणा करते कहा—

आप सबों के समक्ष ईश्वर को साक्षी कर घोषणा करता हूँ कि यदि मेरी किंचित् मात्र असावधानी से मेरा कोई पक्षकार मुकद्दमा हार गया तो मै उससे ली गई पूरी फीस वापिस कर दूंगा और यदि मेरा कोई पक्षकार मुकद्दमा हार गया और मेरे अन्तर्मन ने साक्षी दी कि वस्तुत: वह अभावग्रस्त है तो भी मैं उसकी फीस वापिस लौटा दूंगा क्योंकि अब शुभ कर्मो के प्रति मेरी आस्था अटूट हो गई है।

हम सब स्तब्ध थे और इससे भी अधिक स्तब्ध उस समय हो गये जब उन्होने उस संकल्प की हस्तलिखित, हस्ताक्षरित प्रति तत्कालीन अध्यक्ष महोदय अभिभाषक सघ श्री पी. डी. गुप्ता साहब के हवाले की और तभी मैं सहज भाव से कुलमी सा० से प्रश्न कर बैठा—"आपकी घोषणा ही पर्याप्त थी, इसकी क्या जरूरत थी ?··· तो उनका संक्षिप्त सा उत्तर था—"ताकि सनद रहे और वक्त जरूरत काम आवे।"

इस नगर मे भाई कुलमी साहब ने आध्यात्मिक इतिहास में एक उजला

पृष्ठ जोड़ा ।…सोचता हूँ आचार्य प्रवर ने अपने व्यक्तित्व, कृतित्व, प्रवचन एव सद् साहित्य के माध्यम से कितने व्यक्तियों का जीवन-निर्माण किया होगा ? आध्यात्मिक इतिहास मे कितने उजले पृष्ठ जोड़े होगे ? यह शोध का विषय है। आज आचार्य प्रवर हमारे बीच मे नही है पर उन द्वारा प्रदत्त आध्यात्मिक आलोक सदैव हमारा मार्ग-दर्शन करता रहेगा । मानवता आचार्य प्रवर के प्रति सदैव कृतज्ञतापूर्ण ऋणी रहेगी ।

—एडवोकेट, भवानीमंडी

जाते-जाते जागृत कर गये

☐ श्री सौभाग्यमल 'छाजेड़' जागीरदार

भारत की राजधानी दिल्ली मे माननीय तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर जी के मुख्य आतिथ्य में ३० दिसम्बर, १६६० को आयोजित हुये आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज सा० के हीरक जयन्ती समारोह के साथे, उसी दिन धर्म प्राण नगरी भवानीमंडी में भी आचार्य प्रवर का ८१ वां जन्म जयन्ती समारोह मनाये जाने के निमंत्रण पत्र तो जारी कर दिए गये, पर रह-रहकर एक ही पीड़ा साल रही थी कि समयाभाव से सबको सूचना नही मिल पायेगी, पर 'राजस्थान पत्रिका' कोटा ने अपने २६ दिसम्बर के अंक मे इस समारोह के समाचार प्रकाशित कर समस्या का समाधान कर दिया ।

भाई चंदालाल जी जैन की अध्यक्षता एवं भाई फूलचंद जी कोठारी के मुख्य आतिथ्य मे सम्पन्न इस ऐतिहासिक समारोह मे आचार्य प्रवर की जीवनी पर प्रकाश डाला गया । फिर आई नगर के ६८ बालकों को 'वीर उपासिका पुरस्कार' वितरण की वह बारी जिसके लिए नन्हे मुन्ने सूर्योदय से ही बेतरबी से प्रतीक्षा कर रहे थे । बडे सुखद, बड़े दुर्लभ वे क्षण जब एक-एक बालक मच की ओर बढ़ता और मुस्कान बिखेरता पुरस्कार थामे अपने स्थान पर लौटता । फिर मच की ओर प्रतिभाशाली छात्र श्री नूरमोहम्मद अगवान आये । उनके सम्बन्ध में जब बताया गया कि बाल्यकाल से ही पत्रिका 'जिनवाणी' से जुड़े भाई अगवान ने महासती छगनकुँवर जी के विगत चातुर्मास मे जीवनपर्यन्त के लिए मास-मदिरा का त्याग कर दिया था और ये अब अहिसा प्रचार समिति पचपहाड से जुड़कर अहिसा-प्रचार मे सलग्न है, तो सभी श्रोताओं की नजर उन पर टिक

वे श्रोताओं की मंगल कामनाओं से सरोबार हो उठे। और…और 'वीर
संका पुरस्कार' के समापन पश्चात् जब भाई माणकचंद जी बोहरा, अध्यक्ष
ा प्रचार समिति पचपहाड़ की ओर से इस क्षेत्र के वर्ष ९० में 'जिनवाणी'
ाल कथामृत स्तंभ' मे पुरस्कृत बालकों को अतिरिक्त पुरस्कार प्रदान किए
तो उनमे एक अगवान भी थे। जब श्री नूरमोहम्मद अगवान ने बताया कि
नवाणी' ने मुझे शाकाहारी बनाया। मेरे जीवन में सुखद मोड़ आया।' तो
ा बन्धु स्तब्ध थे उनकी प्रतिभा और सात्विकता पर।

उपस्थित बाल समूह को जब पता चला कि 'जिनवाणी' हर माह बालकों
पुरस्कृत करती है तो वे बतियाने लगे—"म्हाने असी मालम होती तो मै भी
तेयोगिता में भाग लेता।" बालको की यह बाल सुलभ चर्चा पास ही खड़े
ई कैलाश जी बोहरा, अध्यक्ष, जैन युवा संघ ने सुनी, समझी और इस चितन
साये कि 'जिनवाणी' हर बालक को सुलभ हो, उन्होंने बालकों को आश्वस्त
कया कि आपको 'जिनवाणी' मिलेगी और…और....जनवरी, सन् ९१ से ही
न्होंने भवानी मंडी की कुल पाठशालाओं को वर्ष पर्यन्त के लिए अपनी ओर से
नवाणी' चालू कर दी। निकटतम ग्राम पचपहाड़ से भी बालकों की ऐसी ही
ग आई तो उनकी मातुश्री ने वहाँ की सभी पाठशालाओं को 'जिनवाणी'
लू करा दी। आज दोनों स्थानो के बालक 'जिनवाणी' से जुड़ प्रतियोगिता में
ाग ले रहे हैं।

अनेक उपलब्धियों से परिपूर्ण यह समारोह कई उजली स्मृतियाँ छोड़
ाया। आचार्य प्रवर के प्रिय स्वाध्याय एवं सद् साहित्य प्रचार को नये आयाम
ऐ गया। आचार्य प्रवर जीवन भर सुप्त मानवता को जाग्रत करने में संलग्न
रहे। इसे अद्भुत संयोग ही कहूँगा कि यह समारोह नई दिशा दे गया। कई
प्रबुद्ध धर्मबंधु निरंतर 'जिनवाणी' पत्रिका से जुड़े उसे घर-घर पहुँचाने में
संलग्न है। आज यहाँ 'जिनवाणी' जन-जीवन से जुड़ गई है। कई उदारमना बंधु
नन्हे मुन्ने बालको को प्रोत्साहित करते, उन्हें धर्म, दर्शन एवं नैतिक सस्कारों से
जोड़ने को 'बाल-कथामृत' में पुरस्कारों की संख्या बढाने में संलग्न हैं। आज आचार्य
प्रवर नही हैं पर जाते-जाते भी वे हम सब को जाग्रत कर गये। हम उस महान्
आत्मा को शत-शत नमन करते इतना भर निवेदन कर देना चाहते है कि हम
बिना अटके, बिना भटके, बिना रुके जीवन-निर्माणकारी साहित्य को घर-घर,
दर-दर पहुँचाने में कोई कसर बाकी नही रखेंगे।

—उपाध्यक्ष, स्थानकवासी जैन श्री संघ,
भवानीमण्डी (राज०)

किशनगढ मे चातुर्मास किया तव उनसे विविध विषयों पर चर्चा हुई और सम्पर्क गहरा होता गया। मेरे काकीसा पानाकंवरजी ने आचार्य श्री की सद्प्रेरणा से छोगाजी म. सा. से दीक्षा ग्रहण की। उस दीक्षा की अनुमति मैंने ही दी थी। श्री सागरमलजी म. सा. का किशनगढ़ में ही लम्वा संथारा चला, उस समय श्री आचार्य श्री से विशेष प्रेरणा मिलती रही। आचार्य श्री की प्रेरणा से ही उनकी स्मृति मे सागर विद्यालय की स्थापना हुई जिसका मैं ५० वर्ष तक अध्यक्ष रहा।

जव कभी भी मुझे अन्तर्वेदना होती थी, आचार्य श्री के चरणों मे जाने से व वचनामृत सुनने से अद्भुत शांति मिलती थी। जव कार-दुर्घटना मे मेरी पुत्री सम्पतकंवर का निधन हो गया तथा मेरी पत्नी व वड़ी पुत्री के पैरो मे चोट आई व मेरे सिर में गहरा घाव लगा, उस समय आचार्य श्री ने पधार कर मुझे धैर्य वंधाया जिससे उस कठिन परिस्थिति में मैं अपने को सम्भाल सका।

—पूर्व कमिश्नर, जी-१, अशोक मार्ग, 'सी'-स्कीम, जयपुर-

कुछ विस्मयकारी संस्मरण

☐ श्रीमती सुशीला बोहरा

अवसर्पिणीकाल के मनीषी, रत्नवंश के गौरव, महामहिम आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज साहिव यद्यपि महाप्रयाण कर चुके, लेकिन उनकी यादे यत्र, तत्र, सर्वत्र विखरी हुई है। वे अधिकांशतः आत्मज्ञान, आत्मध्यान, आत्मसमाधि में निमग्न, चिन्तन, मनन, ध्यान, स्वाध्याय, लेखन, माला आदि में ही लगे रहते थे। सथारे के समय में भी उनकी माला वरावर चलती रही। सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होने के कारण उन्हे चतुर्विध संघ का संचालन अवश्य करना पड़ता था लेकिन उनकी दृष्टि सदा आत्मा पर ही रही। श्रावक-श्राविकाओं से भी वे हमेशा यही अपेक्षा रखते थे कि वे माला, सामायिक व स्वाध्याय को दैनिक जीवन की क्रियाओ के अंग बनाये, फिर भी यदा-कदा ऐसे कई प्रसंग विस्मयकारी घटनाये सुनने व देखने को मिलती है।

(१) वात कुछ पुरानी है। मोहनलालजी गोगेवालो की सुपुत्री शा... धर्मपत्नी अनिलचदजी भंडारी को कई वार वेहोशी आ जाती थी, जो तीन-चार घटे लगातार रहती। एक वार वे अपने ससुरजी व काकी ससुरजी के साथ क... में पीपाड़ दर्शनार्थ गई। सायकाल ससुरजी आचार्य प्रवर के पास जाने वाले लेकिन वे जा नही सके। दूसरे दिन सवेरे ससुरजी आचार्य श्री के दर्शनार्थ ग... तव आचार्य भगवन् ने पूछ लिया—"श्रावकजी! रात को दया नही पाली या

थानक नहीं आये ।" ससुरजी ने विनम्रतापूर्वक अर्ज की—"भगवन् ! पुत्रवधू को ई बार फिट्स आ जाते हैं । कल सायं भी फिट्स आ गया तथा दो तीन घंटे होश रही । इसलिये सेवा में उपस्थित नहीं हो सका । गुरुदेव अशुभ का उदय इसलिये पीपाड़ आकर भी सेवा में पहुँच नहीं सका । पुत्रवधू निकट ही खड़ी ी, आचार्य भगवन् ने मांगलिक फरमाया । वह दिन गया, आज तक उन्हें कभी फिट्स नहीं आया ।

(२) यह घटना ६–७ वर्ष पुरानी है । गुरुदेव के परम भक्त विलमचंदजी भंडारी की सुपुत्री उच्छब भंडारी जो सेन्ट प्रेक्टिस विद्यालय में प्राध्यापिका है, के गले में थायराइड के कारण बॉल के आकार की एक गांठ हो गई थी । बहुत इलाज कराने पर भी गला ठीक नहीं हुआ । तब बम्बई के सबसे अच्छे अस्पताल जसलोक में डॉ. डी. जी. ओझा ने सारे परीक्षण, एक्सरे आदि कर यह निष्कर्ष निकाला कि तत्काल इसका ऑपरेशन करवाना उचित रहेगा । मन मे गुरुदेव के प्रति असीम श्रद्धा थी । गुरुदेव उस समय जयपुर विराज रहे थे । डॉक्टर से अनुमति लेकर वे ऑपरेशन से पूर्व गुरुदेव से मांगलिक लेने आयी थी । गुरुदेव के उस समय आंखों का ऑपरेशन हुआ था । दर्शन होने की संभावना कम थी, लेकिन दरवाजे के बाहर खड़ी रही । गुरुदेव की नजर उन पर पड़ी तो इशारे से अन्दर बुलवाया ।

आचार्य भगवन् को वंदन करते समय उनकी आँखों से आंसू आ गये तथा भर्रायी हुई आवाज में मांगलिक देने की अनुनय विनय की । गुरुदेव ने पूछा—बहन ! इतनी विकल क्यों हो रही है ? विनम्र भाव से उत्तर देते हुए बोली—मेरे दो-तीन दिन में गले का बड़ा ऑपरेशन होने वाला है । डॉ. एस. आर. मेहता ने भी सारी जांच कर ली है। बीमारी ठीक नहीं हुई तो मेरी सेवा कौन करेगा ? यह कह कर बहन फफक पड़ी । सान्त्वना देते हुए गुरुदेव ने फरमाया—कर्मो की गति बड़ी विचित्र है। कर्म बंधे है, उन्हे भोगना पड़ेगा, कर्जा है उसे चुकाना पड़ेगा ।

फिर गुरुदेव ने उन्हें नवकार मंत्र की माला निरन्तर फेरते रहने का फरमाकर मांगलिक प्रदान किया । दूसरे दिन प्रातः उठकर देखा—गांठ गायब हो चुकी थी । वे तुरन्त डॉ. के पास गई । डॉक्टर बोला—शायद गांठ पेट में उतर गई हो । फिर सारे परीक्षण हुए, लेकिन गांठ हमेशा के लिए मिट चुकी थी । डॉक्टर अचम्भित था—बहिन, बम्बई से जाने के बाद ५ दिन तक किनसे इलाज करवाया जिससे आपकी गांठ बिखर गई है ।

मैंने किसी से इलाज नहीं करवाया, उच्छव कंवर बोली ।

ऐसा हो नहीं सकता । ५ दिन पूर्व की जांच रिपोर्ट में ब्रॉन के आकार की गांठ थी और आज उसका नामोनिशान भी नहीं । कहीं रोगी बदल तो नहीं गया ? फिर बोला—फिर भी बहिन, आपने कुछ तो किया होगा ।

नहीं डॉ. साहब, मैंने कोई दवाई नहीं खायी । यह तो मेरे गुरुदेव की कृपा का फल है । एक मंगल पाठ के प्रभाव से ही यह सारा चमत्कार हुआ ।

आत्मिक शक्ति के सामने उनका विज्ञान फेल हो चुका था । मन ही मन डॉक्टर उनके प्रति नतमस्तक हो गया और धीरे से बोला—राजस्थान आने पर उनके दर्शन अवश्य करूँगा । ऐसी विभूति न तो मैंने कभी देखी और न सुनी ।

(३) अब मैं अपनी आपबीती सुना रही हूँ । बात अक्टूबर, १९८९ की है । हम लोग गोहाटी (आसाम) गये थे । वहाँ से मारुति कार में शिलांग, चैरापूंजी आदि भ्रमणार्थ गये । रात्रि के करीब ९.०० बजे भयंकर जंगल के बीच हमारी कार एकाएक झटके से बन्द हो गयी । उसकी सारी बत्तियाँ एक साथ बुझ गयी । चारों ओर घोर अन्धियारा, हाथ से हाथ नहीं दिखाई दे रहा था, केवल ट्रकों के आवागमन से अवश्य प्रकाश की कोई किरण दिख जाती थी । सायं-सायं हवा चल रही थी । रास्ते में किसी व्यक्ति की शक्ल तो क्या पदचाप की आवाज भी सुनाई नहीं दे रही थी । हमारी कार चलाने वालों को मारुति को मशीनरी की बिल्कुल जानकारी नहीं थी और न हमारे पास टार्च थी । हम सब घबराकर नीचे उतर गये । हमने बहुत प्रयास किया कि कोई ट्रक ड्राइवर हमारी सहायता करे, लेकिन किसी को फुर्सत नहीं और न ही कोई मारुति कार की मशीनरी में सिद्धहस्त थे । कार ड्राइव करने वाले मेरी पुत्रवधू के भाई थे । उन्होंने कहा—अब तो सब अपने-अपने इष्ट को याद करो, वे ही बचा सकते हैं अन्यथा यह रात्रि कालरात्रि है ।

मैंने मन ही मन गुरुदेव का स्मरण किया । इसी बीच एक ट्रक निकला । उसका ड्राइवर राजस्थानी था । वह रुका लेकिन मारुति कार की मशीनरी से वह भी अनभिज्ञ था । उसने हमें अपनी टार्च दे दी, फिर बोला—अच्छा, आपकी गाड़ी मेरी ट्रक के पीछे टोचिंग (बांध) कर दो । हालांकि इसमें रिस्क है, क्योंकि घुमावदार पहाड़ियों का रास्ता है, थोड़ी सी गड़बड़ हो गयी तो आपकी गाड़ी खड्डे में गिर जायेगी और उसके खिंचाव से मेरी ट्रक भी । लेकिन घने जंगल में आप लोगों को अकेले नहीं छोड़ा जा सकता । अतएव, आप गाड़ी में बैठिये । ज्योंही हम लोग कार में बैठे, यकायक सारी बत्तियां जल उठीं । मैंने मन ही मन गुरुदेव को नमन किया । मेरे बेटे की बहू के भाई बोल पड़े—यह तो किसी भक्त

पुकार प्रभु ने सुनी है। मैंने अपने गुरुदेव के नाम-स्मरण का कमाल बताया तो वे भी बोल पड़े—आपके इन गुरु के तो हमें भी दर्शन करने होंगे। फिर हम आगे चले। रात के करीब १२.०० बजे शहर के दस मील पहले हमने कार रोकी ताकि ट्रक ड्राइवर को उसकी टार्च दे सकें। करीब आधा घंटे तक भी वह नही आया तो हम चल पड़े। घर जाकर सो गये। दूसरे दिन उठे। उन्होंने ज्योंही कार सम्भाली वह स्टार्ट नहीं हुई। मैकेनिक को घर बुलाया। वह अचम्भित था। सारे इलैक्ट्रिक तार टूटे हुए थे। पुत्रवधू के भाई बोल पड़े—यह तो आचार्य प्रवर की कृपा का फल है कि हमारी जान बच गयी। मैंने गुरुदेव को सारी घटना सुनाई तो उन्होंने मुस्कराते हुए कहा कि यह तो तेरी श्रद्धा व भक्ति का प्रताप है। गुरुदेव की निरभिमानता देखिये, शुभ कार्य सम्पन्न हो जाय या किसी परिषह से मुक्त हो जाय तो वे उसे अपने ऊपर न लेकर भक्त की भक्ति का ही परिचायक मानते थे न कि अपनी शक्ति का प्रतिफल। ऐसे निष्पृही गुरुवर को कोटिशः वंदन।

(४) यह घटना जिसका वर्णन मैं कर रही हूँ, वह करीब ४० वर्ष पुरानी है। जिसे मैंने स्वयं नही देखा लेकिन मेरी दादीजी भाव-विभोर हो बताया करती थी तथा उनकी सुपुत्री ने भी इसका कई बार जिक्र किया। उन दिनों विलमचन्दजी भंडारी, वित्त सचिव, राजस्थान सरकार थे। लोगों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनकी धर्मपत्नी अशुभ कर्मो के उदय से १२ वर्ष तक मानसिक रूप से विक्षिप्त रहीं। उन्हें कई बार बांधकर कमरे में रखा जाता था। परिवार के सदस्य उनकी असाता देख बहुत दुखित थे, लेकिन वे डॉ० के इलाज के अलावा कुछ भी नही कर सकते थे।

आचार्य भगवन् का जोधपुर पधारना हुआ। सभी भक्तगण सेवा में हाजिर हुए। उस समय आचार्य भगवन् रोगी, अशक्त या तपस्वी को निर्देश देने, मांगलिक सुनाने पधारते रहते थे। एक दिन श्री विलमचन्दजी ने गुरुदेव को अपनी पत्नी को मागलिक सुनाने का अनुरोध किया। गुरुदेव मांगलिक देने घर पधारे और भावपूर्ण मांगलिक प्रदान किया। मांगलिक सुनते-सुनते ही उनकी शारीरिक क्रियाओं में अन्तर दृष्टिगोचर होने लगा। उन्होने यकायक गुरुदेव को नमन किया। गुरुदेव 'दया पालो' कह कर पधार चुके थे।

दिन ज्यों-ज्यों ढलता गया, वे अपनी व्यथा से मुक्त होती गई। सारे घर मे खुशी की लहर छा गयी। सब लोग अचम्भित थे। भण्डारी साहब गुरुदेव के पास दौड़े गये और चरण पकड़ लिये। खुशी के आंसू ढुलक गये। गद्गद् होते बोले—गुरुदेव ! आपने मेरे परिवार को नई जिन्दगी दे दी। भगवान् की भक्ति और गुरु-भक्ति आत्मार्थ के मार्ग में तो रंग लाती ही है लेकिन सांसारिक जीवन

में भी परेशानियों से मुक्त कर देती है। आज मैंने साक्षात् अनुभव कर लिया, मैं आज कृतार्थ हुआ।

'यह सच है, गेहूँ की खेती करने से भूसा तो मिलता ही है', कह कर गुरुदेव मुस्करा दिये।

(५) मेरे पुत्र अनिल की शादी ५ वर्ष पूर्व हुई थी। उन दिनों गुरुदेव मेड़ता विराज रहे थे। हम लोग शादी के २-३ दिन वाद गुरुदेव के दर्शनार्थ नई वहू को लेकर गये। आचार्य भगवन् ने मांगलिक दिया और पूछा—अव कहाँ जा रहे हो? उसने जवाव दिया—अपने गाँव जात देने जा रहे हैं। आचार्य भगवन् ने फरमाया—'सुशीला, क्या अव भी तू इसमे विश्वास करती है?'

मुझे लगा अरिहन्त भगवान् में निष्ठा रखने वाले लोग इधर-उधर देवी-देवताओं की मनौती करते फिरे, यह उचित नही, हालांकि मैं किसी देवी-देवता को नही धौकती, फिर भी शादी के मौके पर रस्म-रिवाज के रूप में कर लेते हैं। मैंने कहा—गुरुदेव, वैसा ही होगा, जैसा आप कह रहे हैं और वही किया भी। मैं अपने गाँव किसी कारण रुक गयी और वे कार से वापसी मे लौट रहे थे, रास्ते में कार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी। कार की ऐसी स्थिति हो गयी कि स्टेरिंग, क्लच, एक्सीलेटर सव क्षतविक्षत हो गये लेकिन ड्राइवर सहित पांचों व्यक्तियों के खंरोच भी नही आयी।

गुरुदेव से जव कुछ दिन वाद निवेदन किया तो मुस्कराते हुए वोले—किसी के चोट तो नही आयी, अरिहन्त श्रद्धा पक्की हो तो वाल भी वांका नहीं होता। वस, परीक्षा जरूर होती है। मुझे लगा उस दिन और कुछ होने वाला था, यह तो गुरुदेव की कृपा से टल ही गया।

उनके वारे में जितना भी कहा जाय, वह कम है। आज वे साक्षात् रूप मे नहीं रहे लेकिन उनके गुणों की सौरभ चारों ओर विखरी पड़ी है। आवश्यकता है उन्हें वटोरने वालों की।

ऐसे निष्प्रही गुरुवर को कोटिशः वंदन।

—परियोजना निदेशक, जिला महिला विकास अभिकरण, जोधपुर

गुरु एक विश्वास

◇ डॉ० धनराज चौधरी

अपने से बिसुरे 'महाराज' के श्री होठों से मर्म भरे बोलों की संतवाणी [.]स्रोत हो रही है। गम्भीर तथा धर्मेच्छुओं की उस मण्डली में संज्ञा शून्य-सा [.] मैं हूँ। कुछ हो चला है भीतर कि नम नेत्र आँसू टपकाने लगे है। गुरु का [.]मरण मन-मस्तिष्क को अभिभूत किए है। 'सब मुलकरा में छबि छाई, म्हारे [.]ह गई हिरदै के मांही। मैं सब जग ढूढ़ण जावू, वा सूरत कठैइ नहीं पाऊँ।' [.]द्गुरु के नश्वर शरीर के न रहने मात्र की हो तो यह बात नहीं है जो हिचकियां [.]ंधने का उद्यम आरम्भ हो चुका है। विवेक समझा रहा है कि उचित समय पर [.]ंच तत्त्वों ने विशिष्ट रूप और आकार लिया था, वह लोकहित में जितना खप [.]कता था, खर्च हुआ और कृपा ही कृपा स्मृति के रूप में शेष रह गई........मगर [.]ेरी इस एकाग्रता को संतवाणी की अतिम पंक्तियां स्पष्ट कर रही है—'जन [.]दरिया मोक्ष सिधारिया, म्हारा नैंण उमड़ कर आया। जन सुखराम कहे संदेसौ, गुरु मिल्यांइ जाय अंदेसो'—निश्चय ही सद्गुरु प्राप्त होना सर्वोच्च उपलब्धि है जीव की, क्योंकि वे ही 'औषध शबद' पिलाय के भव-रोग दूर करने में सक्षम है।

मैने आचार्य प्रवर को नही देखा था मगर काकीसा को तो समझ आने से देखा है। काकीसा जिनके परिचय मे मेरी बाईजी ने कहा था, "हस्तीमलजी महारज सा. दुनियावी सबंधो मे इनके काका हैं।" यद्यपि काकीसा के जरिये, फिर भी पूरी तरह स्व प्रेरणा द्वारा ही, मुझे अरसे से लगता है कि आचार्य श्री मे इच्छित चुम्बक है काकीसा जैसी सामान्य गृहस्थिन दया और अहिसा को आचरण में दक्षता से उतार चुकी है। तो वे जो कि सांसारिकता को त्याग-परम की ओर किशोरावस्था मे ही चल दिए, उनका तो लेखा-जोखा...........फिर भी बीस से अधिक वर्षो तक श्री गुरुदेव के मै दर्शन न कर पाया। शायद तब तक वास्तविक जरूरत ही महसूस नहीं हुई हो। विज्ञान, जो कि दर्शनीय सत्य की ही व्याख्या कर सकता है कि सीमाएँ नजर आने पर ही इस आवश्यकता का फंदा कसता गया—'गुरु बिन ज्ञान ध्यान सब फीका, फीका है नेम अचारो। हो दाता म्हारे अब के तो जनम सुधारो'....

यादगार भेंट का अवसर प्राप्त हुआ भी प्रयोजन लिए हुए। कार्तिक पूर्णिमा पर कोसाणा जाना है जहाँ पर कि आचार्य श्री चातुर्मास पर्यन्त विराजे है। मुनियों के सान्निध्य में जैन विद्वत् परिषद् के तत्त्वावधान में धर्म के प्रचार-प्रसार पर विचार-विमर्श होगा। उस समय जबकि पीपाड़ से कोसाणा की ओर बस द्वारा हम जा रहे थे, मुझ में बैठे 'जीव' ने विद्रोह किया—'यदि किसी क्रिया या तपस्या व्रत जैसी किसी बात की मुझे सौगन्ध दिला दी गई तो....' वा

करना, लोक दिखावे के लिए स्वीकार कर लेना और फिर निर्वाह न कर पाना तब झूठ, छल, दिखावा न जाने किस-किस बात के लिए बेमन विवश हो जाना—अनुष्ठानों की भरमार, प्रदर्शनों की होड़, वैज्ञानिकता और तार्किकता के अभाव के अतिरिक्त ये भी कारण रहे कि मुझ में प्रचलित धर्म के प्रति अरुचि रही—और अध्यात्म से रूबरू होने का उपक्रम अरसे तक न बना पाया।

दोपहर बाद की बात—आचार्य श्री संबोधित करेंगे परिषद् को—मैं जरा दूर से देखता हूँ, बीमारी के कारण काया से कमजोर, मगर शांत-सौम्य-प्रदीप्त मूरत "अरस परस" है और जैसे ही सम्हालता हूँ मैं अपने आपे को, तो हिये का अंदेसा ढूंढे नहीं मिलता। अंग-प्रत्यंग नटखटपन भूल कभी के मुदित हो उठे हैं। बिना जताये मौन अवश्य ही उपयोगी कार्य कर पास से गुजरा है। सामाजिक परिचय स्वरूप और भी बातें होती हैं, मगर जिसे भूलूंगा नहीं, जो है ही मर्म की बात, वह यह कि आचार्य श्री फरमाते हैं—"नवकार मंत्र पढ़ते हो!" मैं स्वीकार करता हूँ, उस क्षण के साथ ही संतों के अनमोल बोल—"गुरु बिन मन का भरम नहीं जावे। ज्यों किस्तूरी मिरगा भुलावे" अपने ही रक्त का घट हो बन जाते हैं। सारतत्त्व है नवकार मंत्र, उसका सुमिरन निर्बाध रहे, वही है ज्ञान तप, पूजा, आचार....

याद पड़ता है, उस रात मेरी पत्नी सारे प्रयत्नों के बावजूद सो नहीं पा रही थी और प्रातः के अखबार में मुख्य पृष्ठ पर छपे समाचार के साथ तो वह सिसकने लगी थी। कैसा अनूठा है व्यक्तित्व जो कि जीवनपर्यन्त विज्ञापित होने से प्रकाश वर्षों दूर रहा, वही पंचतत्त्व में लीन होने से कुछ दिनों पूर्व बहुतेरों की प्रेरणा और नितांत अपना हो चला। सत्य है कि संत कभी नहीं मरते। वे उद्धारक कथन हैं जो सब जगह सब काल में एक सी ऊर्जा लिए विद्यमान रहते हैं। भरे गले से पत्नी कहती है और वही अनुभव है उनके भाई साहब का। हां, कहीं पढ़ा था 'धार्मिक की धर्म रक्षा करता है', कार्यरत आर [illegible] कौन से होते हैं पता नहीं ऐसा एक नैज अनुभव है भाई साहब का या उनके पूरे परिवार का ही। जैसे कि कुछ भी महत्त्वपूर्ण घटित न हुआ हो, बस एक औपचारिकता, हाल-चाल पूछने के स्वर में ही गुरु ने पूछा था। भाई सा. की जीवन-मृत्यु के संघर्ष के दूसरे दिन —"रात तो ठीक से गुजरी न!" इसके पूर्व ही भाई साहब को [illegible] आश्वासन मिल चुका था आचार्य प्रवर के उठे हुए हाथ से कि कोई माई का लाल तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता। घटना का पूरा विवरण जब सुना था तो चमत्कारपूर्ण परिस्थिति पर विश्वास कर [illegible] सहज नहीं हो पा रहा था। मगर, गुरु प्रदर्शन के लिए चमत्कार नहीं [illegible] ऐसा करते हैं धर्म की रक्षा हेतु, विज्ञापनभावना और श्रद्धा बढ़े इस प्रयोजन से।

भाई साहब के साथ जितने अरसे रहा हूँ, उस दौरान एक ही बात सीखना चाही है, वह है आचरण की शुद्धता। पचास से अधिक वर्षों तक आचार्य श्री के संपर्क में रहे। उनकी उपलब्धि है—'सतगुरु मिल निर्भय भया, गुरु एक विश्वास!'

—एसोशियेट प्रोफेसर, भौतिक शास्त्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

तेजस्वी और कर्मठ व्यक्तित्व

☐ डॉ० संजीव भानावत

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० भारतीय सन्त-परम्परा के आदर्श थे। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। अपनी रचनात्मकता और कल्पनाशीलता से उन्होंने न सिर्फ जैन समुदाय वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का पथ प्रशस्त किया था। अ० भा० जैन विद्वत् परिषद् के विभिन्न आयोजनों के दौरान मुझे आचार्य श्री का सान्निध्य मिला। जब-जब मैंने उनके दर्शन किये, मैं उनके तेजस्वी और कर्मठ व्यक्तित्व से अभिभूत हुए बिना न रह सका।

आचार्य श्री ने जीवन में सदा स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी। उनके साथ हुई बातचीत में मैंने सदा यह महसूस किया कि आचार्य श्री जहाँ एक ओर परम्पराओं का कठोरता से अनुसरण करने में विश्वास रखते थे, वहीं दूसरी ओर उनके विचारों में काफी उदारता थी। परम्परा और आधुनिकता का यह अद्भुत सामंजस्य उनके व्यक्तित्व की अनूठी विशेषता थी।

आचार्य श्री युवकों के लिये विशेष प्रेरणास्रोत थे। उन्होंने आचरण की पवित्रता पर सदा बल दिया। वे कहा करते थे कि मनुष्य जीवन को उच्चता की ओर उठाने तथा अधमता से बचाने का प्रमुख साधन सद्आचरण है। उनका मानना था कि ज्ञान और दर्शन ये दोनों तब तक निष्फल हैं, जब तक कि व्यक्ति आचरण-धर्म (चारित्र) की आराधना में इनका उपयोग न करे।

वर्तमान युग में जिस प्रकार हिंसा का वातावरण पनप रहा है, उससे आचार्य श्री काफी चिन्तित रहते थे। उन्होंने अहिंसा का वातावरण तैयार करने के लिए युवकों से विशेष आह्वान किया। आचार्य श्री का मानना था कि अहिंसा हमारा लक्ष्य है और जीवन को अहिंसामय बनाने के लिए संयम और तप ये दो

उसके साधन है। अहिंसा की पुष्टि के लिए एक अंग है संयम और दूसरा है तप। जिसके मन में, तन में और वाणी में संयम होगा, वह व्यक्ति अहिंसा का ठीक रीति से पालन कर सकेगा। संयम और तप के इसी मर्म को उन्होंने युवकों को समझाया तथा संयमित जीवन जीने की प्रेरणा दी।

आचार्य श्री का पार्थिव शरीर हमारे बीच में नहीं है, किन्तु उनके तेजस्वी और प्रेरक विचार आने वाले समय में हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेंगे तथा उनके द्वारा निर्देशित सामायिक-स्वाध्याय, आदर्श जीवन जीने की कला सिखाते रहेंगे।

—सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं मानद निदेशक-कम्यूनिकेशन ब्यूरो,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

अनन्त करुणा, अनन्त मैत्री, अनन्त समता

☐ डॉ० रामगोपाल

मुझे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० का सान्निध्य तीन बार मिला। इन अवसरों में मानसिक संभाषण द्वारा ध्यान-तप की सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम स्थितियों का अनुभव करते हुए सत्-चित्त-आनन्द रूप निर्वाणिक अवस्था का साक्षात्कार किया। निर्वाण में परम सुख है व निर्वाण ही परम सुख है। २१ अप्रेल, १९९१, महाप्रयाण का पावन दिवस, निमाज की पावन-भूमि और प्रातः १० से ११ बजे के मध्य इस महान् योगी की समाधिष्ट देह के अणु-अणु से प्रस्फुटित होती अनन्त करुणा, अनन्त मैत्री और अनन्त समता के संदेश की अनुभूति प्राप्त करने का सुयोग मुझे कृतार्थ कर गया। इस महाव्रती के दर्शनों को उमड़ती साधकों और श्रद्धालुओं की भीड़ को आज सदा उठने वाले दाहिने हाथ से मांगलिक नहीं उलीची जा रही थी पर शरीर का अणु-अणु सभी जन्मों की अर्जित पुण्य पूंजी सदाव्रती महान् कारुणिक लुटा रहा था नभ-थल-जल के सभी जीवों को—तेरा मंगल हो—तेरा कल्याण हो।

महाराज श्री ने सदा यही कहा 'मेरी कायिक सेवा नहीं, मानसिक सेवा करो और सच्ची सेवा 'स्वाध्याय' और 'माला फेरना' है। क्या सामायिक करते हो? करो। आज भी वे उसी भक्तिभाव से, विह्वलता से और अनुराग से इस तप को करने को कह रहे है, जो उन्होंने १० वर्ष की अल्पआयु में महान् आचार्य

श्री शोभाचन्दजी म० सा० से दीक्षित हो आरम्भ किया और २० वर्ष की आचार्यत्व प्राप्त करने की अवस्था से आज ८१ वर्ष की आयु तक अनवरत रूप से, पूर्ण कर्मठता से सतत करते रहे। क्या होती है निर्वाणिक अवस्था, परम सुख की अनुभूति, परम सुख में आकंठ डूबे साधक की स्थिति और अणु-अणु से प्रकम्पित होती आनन्द की अनुभूति। साधको और श्रद्धालुओ! उन सच्चिदानंद हस्तीमलजी म० सा० को देखो, स्वर्गारोहण को प्रस्थान करते ज्योतिपुंज को देखो। तत्त्व का तत्व में मिलन। पंचमहाभूतों का विघटन और अनन्त में समा जाना।

—उपनिदेशक (वैज्ञानिक) रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर–३४२ ००१

सरलता, सहजता और अध्ययनशीलता

☐ कुमारी आशा बिड़ला

जैनाचार्य पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. से अप्रेल, १९९० में एक्युप्रेशर एवं चुम्बकीय चिकित्सा जैसी अहिंसक चिकित्सा-पद्धति के बारे में जानकारी करने-कराने के माध्यम से पहली बार दर्शन एवं परिचय का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। शान्त, सौम्य, ओजस्वी मुख-मुद्रा ने सहज ही मुझे श्रद्धा एवं भक्ति भाव से अभिभूत कर दिया। चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञ डॉ. जितेनजी भट्ट वड़ौदा वाले एवं श्री चचलमलजी चोरड़िया आदि अनेक कार्यकर्ता आचार्य श्री एवं सन्त-सती मण्डल की सेवा में उपस्थित हुए थे। यह जानकर कि यह पद्धति, बिना दवा के, पूर्णतः अहिंसक, निरवद्य एवं निःशुल्क है, आचार्य प्रवर ने अपने सन्त एवं सती वर्ग को जानकारी करने हेतु प्रेरित किया, तदनुरूप जानकारी भी प्राप्त की गयी।

मेरा परिचय आचार्य श्री से सेवाधर्म के माध्यम से ही हुआ। आचार्य श्री ने मुझ पर कभी धर्म थोपा नहीं वरन् सरल और सरस ढंग से धर्म का स्वरूप प्रतिपादित किया जिससे मेरी भावना भी सहज ही उसे स्वीकार करने की हुई और यथाशक्ति स्वीकार भी किया। मुझे ऐसा नहीं लगा कि आचार्य श्री से हम केवल जैनधर्म की ही बात करें। हम आचार्य श्री से एक्युप्रेशर के माध्यम से इतनी सहज बात करते मानो अपने पिता और दादाजी से बात कर रहे हों। इतने बड़े रत्नवंश के गौरवशाली आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होते हुए भी आप में

अहं भाव का नामोनिशान भी देखने को नहीं मिला। जब भी देखा वही सरलता. सहजता और अध्ययनशीलता देखने को मिली।

आचार्य श्री ने मुझे आशीर्वाद दिया—आशा, सेवा की अखण्ड ज्योति से दीपमाला बनेगी और सहज प्राप्त इन अहिंसक चिकित्सा-पद्धतियो से सम्पूर्ण मानव समाज जगमगा उठेगा। तुम विश्व-वात्सल्य का भाव लिए इस क्षेत्र मे निरन्तर आगे बढती रहो। लगता है, आचार्य श्री पंचतत्त्व में विलीन नही हुए अपितु अपना विशाल रूप लेकर कण-कण में समा गये है। वे गये नही है, आप और हम सबको प्रतिपल अपना कर्तव्य याद दिलाते है। सत्य, अहिंसा एवं प्रेम का पाठ पढ़ाते है। आओ, आज हम सभी प्रार्थना के साथ स्वयं की भी अहिंसा पर बल देते हुए सेवा करें। जीवों पर दया करें। उन्हें स्वस्थ रखने मे सहयोगी बनें, यही आचार्य प्रवर का सन्देश है और यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि।

—जोधपुर, (राज०)

समता, साधना एवं स्वाध्याय की त्रिवेणी

☐ श्री ए० एस० मेहता

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के दर्शन एवं आशीर्वचन का लाभ मुझे पिछले ५–६ वर्षो से मिलता रहा है। आचार्य श्री के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए विना कोई रह नही सकता। जहाँ समता, साधना एवं स्वाध्याय की त्रिवेणी मिलती है, वहाँ से कोई विना उसका आनन्द लिए कैसे रह सकता है?

आचार्य श्री की प्रेरणा का ही परिणाम है कि सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के स्वाध्यायी पर्युपण पर्व पर दूरदराज के क्षेत्रों में जैन समाज को वीतराग वाणी से लाभान्वित करते हैं। मण्डल जैनागम-शोध एवं प्रकाशन तथा वितरण में भी अपनी मुख्य भूमिका निभा रहा है।

आचार्य श्री जी कथनी के साथ करणी के महत्त्व पर जोर देते रहे हैं। ज्ञान के साथ क्रिया की उत्कृष्टता से ही सार्थक परिणाम मिल सकता है, ऐसी मान्यता सदैव रही। इसी परिप्रेक्ष्य में कुव्यसन त्याग पर विशेप जोर देकर आचार्य श्री ने अनगिनत भाइयो को व्यसनमुक्त होने की प्रेरणा दी।

ऐसा व्यक्तित्व जो समभाव एवं समता की प्रतिमूर्ति था एवं जिनका सम्पूर्ण जीवन प्रेरणास्पद रहा, उन्हे मै कभी भुला नहीं पाऊँगा। उन परमाराध्य पवित्र महामानव को हार्दिक श्रद्धांजलि।

—वित्त प्रबन्धक, जे. के. टायर फैक्ट्री, कांकरोली

कठिन परिस्थिति में सम्बल

☐ श्री हुक्मीचन्द चौपड़ा

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. विशिष्ट ज्ञानी, दूरद्रष्टा और परम कारुणिय सन्त थे। इनका १९८१ का चातुर्मास रायचूर (कर्नाटक) मे था। मेरे पिता श्री हीरालालजी चौपड़ा, जो जैन रत्न समाज में चौधरी के नाम से मशहूर थे, आचार्य श्री के दर्शनार्थ संघ के साथ रायचूर पहुँचे। जैसे ही प्रवचन सभा मे सामायिक लेने बैठे, अचानक पक्षाघात व हेमरेज का दौरा पड़ा व वही गिर गये। बडी बेहोशी की हालत थी। तुरन्त उपचार की व्यवस्था की गई पर स्थिति मे सुधार नही था। आचार्य श्री ने ध्यानस्थ हो मंगल पाठ सुनाया लगभग १५ मिनट तक। पिताश्री को होश आया। उन्होने आँखे खोली व गुरुदेव के दर्शन किये। आचार्य श्री दिन में दो-तीन बार मंगल पाठ सुनाते।

सूचना मिलने पर मै रायचूर पहुँचा। पिता श्री धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। कभी-कभी प्रवचन-सभा में भी आते। ८-१० दिन बाद हम सकुशल जोधपुर आये। पिता श्री कमजोर अवश्य थे पर स्वाध्याय-चिन्तन में उनका मन लगा रहता। बारह दिन बाद पक्षाघात का दूसरा दौरा पड़ा और उनका निधन हो गया। आज वे पार्थिव रूप से हमारे बीच नहीं हैं। पर आचार्य श्री के वे शब्द अब भी मेरे कानों में गूँजते रहते है—"चिन्ता न करे। आज तक ऐसा हुआ नहीं कि संघ के साथ आये श्रावक का देहान्त वही हुआ हो।" पता नहीं, वह कौनसी शक्ति थी जिसने पिता श्री को रायचूर में कठिन परिस्थिति में सम्बल प्रदान किया और वे संभल सके।

—३७०, II पोलो, जोधपुर

सच्ची श्रद्धांजलि

☐ श्री उम्मेदमल जैन

हम आचार्य श्री को श्रद्धा-सुमन चढ़ाते हैं, श्रद्धा-सुमन चढ़ा नत मस्तक होते है, नतमस्तक होकर आपके पद-चिह्नों पर चलने को प्रेरित होते है, प्रेरित होकर जीवन सफल बनाने का संकल्प भी लेते है।

आपने सामायिक-स्वाध्याय का नाद गुंजाया। सामायिक-स्वाध्याय का नाद गुंजाकर लोगों के जीवन को सफल बनाया। सामायिक-स्वाध्याय की ओर अग्रसर होना ही श्रद्धा-सुमन चढ़ाना है। आपके पद-चिह्नों पर चलना ही आपको श्रद्धांजलि देना है। श्रद्धांजलि देकर इस देह को इस भव, पर भव को सफल बनाना है।

आपका संदेश था कि मानव-मन मन्दिर है। इसमें मानवता का दीप जलाओ। सद्विचारों का तेल डालकर ज्ञान की ज्योति जगाओ। ज्ञान की ज्योति जलाकर खुद प्रकाशित हो जाओ। जो सो रहे हैं, उनको भी ज्ञान-रूपी सूर्य की किरणों से जगाओ। द्वेष को हटाकर प्रेम को आपस में बढ़ाओ। दुर्गुणों को त्यागकर सद्गुणों को अपनाओ। सद्गुणों को अपना कर इस जीवन को सफल बनाओ। इस जीवन को सफल बनाना ही सच्ची श्रद्धांजलि देना है। सच्ची श्रद्धांजलि देकर ही गुरु-भक्ति के ऋण से मुक्त होना है।

—भगवान महावीर विकलांग सहायता समिति,
एस० एम० एस० हॉस्पिटल, जयपुर

एक चैतन्यशील संस्था

☐ पं० कन्हैयालाल दक

आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० महान् शास्त्रज्ञ, उत्कृष्ट साधक एवं अध्यात्म-साधना के प्रति सदा जागरूक होने के साथ-साथ सच्चे अर्थ में क्रियावान् सन्त थे। सर्वप्रथम उनके दर्शन करने का सौभाग्य मुझे सन् १९३३ में प्राप्त

हुआ। श्री श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स के अजमेर अधिवेशन में तथा उसके ५-७ मास पश्चात् छोटी सादड़ी में उनके दर्शन किये, तब मेरी उम्र केवल १२-१३ वर्ष की थी। आचार्य श्री की अवस्था उस समय केवल २३ वर्ष की थी। यह महान् आश्चर्य का विषय था कि इतनी अल्पायु में एक युवक साधु एक आचार्य के पद को सुशोभित करे और इस युवावस्था मे दृढ़ संयम का पालन करे और अपनी सर्वांगीण विद्वत्ता से समाज को चमत्कृत करदे। आचार्य श्री की शास्त्रीय शिक्षा अपने गुरु के अतिरिक्त पं० दु:खमोचन जी झा के सान्निध्य में हुई। आपने संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं का उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त किया एवं निरन्तर समाज की यथेष्ट उन्नति के प्रति प्रयत्नशील रहे।

'ज्ञानं भार: क्रिया बिना' इस संस्कृतोक्ति के आचार्य श्री प्रबल समर्थक थे। 'नाणस्स सव्वस्स पगासणाए' इस शास्त्रीय गाथा को ध्यान में रखकर आपने भोपालगढ मे 'जैन रत्न विद्यालय' की स्थापना करने की तात्कालिक समाज को जबर्दस्त प्रेरणा दी, जो जोधपुर संभाग के जैन समाज के लिये वरदान बन गया। अनेक चरित्रवान् व समाजसेवी विद्वान् इस संस्था से तैयार हुए जो आज भी समाज की सक्रिय सेवा में तत्पर है। आचार्य श्री का जीवन चिन्तन-प्रधान जीवन था। वे समाज की नस-नाडी को बड़ी सूक्ष्मता से परखते थे। कहना चाहिये कि वे अपने श्रद्धालु भक्तों के लिये आध्यात्मिक वैद्य थे। 'जैन रत्न विद्यालय' की स्थापना से ही आपको सन्तोष नहीं हुआ, आपने 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका का सफल संचालन करने का मंत्र भोपालगढ़ के कार्यकर्ता विद्वान् अध्यापकों को दिया, जो लगभग ४८ साल से समाज की सेवा कर रही है। इस पत्रिका से बहुत मूल्यवान व विचार-प्रधान सामग्री समाज के युवकों, युवतियों, बालकों, वृद्धों को प्राप्त होती चली आ रही है।

आचार्य श्री की एक ठोस मान्यता थी कि केवल पढ़-लिख जाना व डिग्रियाँ प्राप्त कर लेना ही विद्वत्ता नही है। विद्वान् के जीवन में श्रद्धा होनी परमावश्यक है, उसका चरित्र उज्ज्वल होना नितान्त आवश्यक है। आचार्य श्री कहा करते थे—'यस्तु क्रियावान् पुरुष:, स विद्वान्' समाज में विद्वानों की बड़ी कमी है, यह बात आचार्य श्री को बहुत खटकती थी, और सद्भाग्य से कुछ विद्वान् हैं तो उनका समाज में कोई सम्मान नहीं है, यह आचार्य श्री के हृदय की एक जबर्दस्त पीड़ा थी। इस पीड़ा से प्रेरणा पाकर आचार्य श्री ने अपने इन्दौर चातुर्मास में 'श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत्परिषद्' की स्थापना करने का संकेत समाज के मूर्धन्य विद्वानों व कार्यकर्ताओं को दिया। यह परिषद् विद्वानों, श्रीमन्तों, विचारकों तथा समाजसेवकों के बीच एक सेतु का कार्य कर रही है तथा निरन्तर प्रगतिशील है। आचार्य श्री जब-जब परिषद् के विद्वानों से मिलते थे, आनन्द-विभोर हो जाते थे।

अपने ज्ञान को अपने तक सीमित न रखकर उसका जितना प्रसारण किया जाय, वह कम है। वह जन-कल्याण के लिये परमोपयोगी होता है। इस आन्तरिक भावना से प्रेरित होकर आचार्य श्री ने 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' नामक ग्रन्थ का चार खण्डों में प्रणयन किया जो आपकी साहित्यिक कीर्ति-पताका को सदा अक्षुण्ण बनाये रखेगा। इस महान् ग्रन्थ के शोध-कार्य व भागीरथ प्रयत्न को देखकर समाज ने श्रद्धा के वशीभूत होकर आपको 'इतिहास मार्तण्ड' की सम्माननीय उपाधि से विभूषित किया। इसी प्रकार से आपने कई आगमों व स्तुतियों का राष्ट्रभाषा हिन्दी में पद्यबद्ध अनुवाद करके विद्वत्समाज के समक्ष अपनी कवित्व शक्ति का अद्भुत परिचय दिया।

समाज में बढ़ती हुई कुरीतियों को देखकर तथा वैचारिक शिथिलता को देखकर आपने जयपुर में 'सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल' की स्थापना करने का निर्देश समाज के निष्ठावान् श्रावकों को दिया। आज 'जिनवाणी' का प्रकाशन इसी संस्था द्वारा होता है तथा अन्य कई मूल्यवान् ग्रन्थो का प्रकाशन यह संस्था करती है। और भी समाज-सेवा के कई रचनात्मक-कार्य इस संस्था द्वारा किये जाते हैं।

आचार्य श्री के हृदय में स्थानकवासी समाज के बच्चे-बच्चे के प्रति बड़ी करुणा की भावना थी। वे चाहते थे कि इस समाज के बालक से लेकर युवक तथा वृद्ध का जीवन सदा सामायिकमय-समतामय बन जाय। सामायिक सबके जीवन का प्रधान अंग बन जाय और हर साक्षर व्यक्ति, चाहे वह युवक हो, युवती हो, बालक हो या वृद्ध हो—'स्वाध्याय' के रंग में रंग जाय। स्वाध्याय आत्मोन्नति का प्रथम सोपान है, स्वाध्याय करना समय का सदुपयोग है। स्वाध्याय से जीवन पवित्र व संस्कारी बनता है। अपने जीवन के पिछले १५ वर्षों में आपने स्थानकवासी जैन समाज को सामायिक तथा स्वाध्याय का अमोघ अस्त्र दिया था और महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में उसकी सक्रिय शाखाएँ स्थापित करके एक ओर समग्र जैन समाज के लिए आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया तो दूसरी ओर इस मंत्र के शंखनाद से अपनी अजर-अमर कीर्ति-पताका सारे देश में प्रस्थापित कर दी। वे जन-जन के आराध्य, पूजक तथा कण्ठ के हार बन गये। आचार्य श्री की अनेक विशेषताओं में एक विशेषता थी—तीव्र स्मरण-शक्ति। सारे देश के अनेक हिस्सों में आपके श्रद्धालु भक्त रहते हैं। वे दूरी के कारण २-४ या ५ वर्षों में सुविधानुसार आपके दर्शन को आया करते हैं। उनमें से प्रत्येक को बहुत निकट से पहिचानकर और प्रत्येक के धार्मिक जीवन का गम्भीरता से जायजा लेकर उन्हें नवकार महामन्त्र की माला नियमित रूप से गिनने, सामायिक करने तथा नियमित स्वाध्याय करने की प्रेरणा देना, आपके प्रधान कार्य थे। इन प्रवृत्तियों से प्रत्येक श्रावक

था श्राविका की आपके प्रति अनन्य आत्मीयतापूर्ण श्रद्धा-भक्ति बनी रहती। इस प्रकार आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० अनेक मौलिक विशेषताओं के भण्डार थे। सच कहा जाय तो वे अपने आप में एक चैतन्यशील संस्था थे। वे आत्म-शुद्धि के लिये, सामाजिक सौहार्द के लिये, राष्ट्रीय एकता और विश्व-शान्ति के लिए जीवन पर्यन्त साधनारत रहे, जागृत रहे। ऐसे साधनाशील और अनेक विशेषताओं से महिमा-मण्डित व्यक्तित्व को कोटिशः वन्दन।

—२५३, सैक्टर ३, हिरण मगरी, उदयपुर-३१३ ००१

मौन से ही मूक श्रद्धांजलि

☐ श्री उमरावमल ढढ्ढा

आचार्य श्री से मेरा निकट का सम्पर्क रहा है। उनमें संयम-साधना एवं साधक जीवन की इतनी विशेषताएँ है कि किन-किन का स्मरण करूँ? उनकी श्रद्धांजलि के लिए कोई उपयुक्त शब्द ही नहीं पा रहा हूँ। उस महान् विभूति को मौन से ही मूक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—संरक्षक, अ० भा० जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, नया बाजार, अजमेर

दिव्य दिवाकर को शत-शत वन्दन

☐ श्री जगदीशमल कुंभट

युग-द्रष्टा, युग-निर्माता, युग-पुरुष महामहिम आचार्य प्रवर पूज्य श्री हस्ती-मल जी म. सा. ने लघु वय में संयम जीवन अंगीकार कर विशिष्ट साधनामय जीवन बिताया और अहिंसा-सत्य-सदाचार के प्रति जन-जन को प्रेरित-प्रभावित किया, ऐसे दिव्य दिवाकर को शत-शत वन्दन!

स्वयं ध्यान-मौन की साधना के साथ अध्ययन-मनन-चिन्तन-अनुसंधान कर जन-जन में ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित करने वाले महापुरुष का सादर अभि-वन्दन!

घर-घर और जन-जन में सामायिक-स्वाध्याय का संदेश पहुँचाने वाले धीर-वीर-गंभीर महा उपकारी महापुरुष के श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन!

जीवन की संध्या वेला में मोह-ममता का परित्याग कर विशुद्ध आत्मभाव में रमण करने वाले, अद्‌भुत योगी, हजारों-हजार भक्तों को कष्ट सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया और समाधिभाव में समाधिमरण का आदर्श प्रस्तुत किया। आराध्य आचार्यदेव की अनवरत आत्म-साधना जन-जन को युगों-युगों तक प्रेरणा देती रहेगी। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मेरा हार्दिक नमन....अभिवन्दन!

—महामंत्री, अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर

ये श्रद्धा-सुमन स्वीकार करें!

☐ श्री पुखराज कुचेरिया

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का जन्म माता रूपा की कुक्षि से उस वक्त हुआ जब पिता केवलचन्दजी स्वर्गस्थ हो गये। माता ने आँखों से आंसू बहाते हुये आपको देखा होगा और स्तन-पान के साथ आत्मा की इस आवाज को हस्ती के हृदय में पहुँचा दिया होगा कि हे बालक! यह जीवन नश्वर है। हो सके तो बड़ा होकर अपनी आत्मा का कल्याण करना। माता के देव तुल्य वचनों को सार्थक करने के लिये बालक हस्ती ने ९ वर्ष की अवस्था में अपनी माता से कहा—मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। माता इसी दिन की इंतजार में थी। माता और पुत्र हस्ती दोनों ने उस वक्त दीक्षा अंगीकार की। २० वर्ष की भर जवानी की उम्र में आप रत्नवंश के सप्तम आचार्य के रूप में विराजमान हुए। आश्चर्य है ६१ साल तक आप हर क्षण, हर पल साधना में रत रहते हुए आचार्य पद पर विराजमान रहे। काल की गति निराली है। ८१वें वर्ष में आपको काल ने सम्मान सहित उस मोक्ष की यात्रा के लिये संथारा-संलेखना रूपी जहाज में बिठा दिया। यह जहाज एक भव लगायेगा या दो भव लगायेगा या तीन भव लगायेगा, मैं नहीं कह सकता। पर जहाँ भी आपका इस वक्त मुकाम हो, मेरे गुरु भगवन्! मेरे ये श्रद्धा-सुमन स्वीकार करें।

—जयपुर

त्याग और संयम की प्रेरणा-मूर्ति

☐ लता काजल 'सम्बोधि'

"जो लक्ष्य से चूक जाए, वह तीर ही क्या !
मृत्यु को न जीत सके, ऐसा वीर ही क्या !!"

जीवन-पर्याय पर जब मृत्यु का आक्रमण होता है, उस समय की असह्य वेदना को समभाव से सहने वाली एक ज्वलंत हस्ती २१ अप्रेल को जब महा-प्रयाण को प्रस्थित हुई तो जगत् देखता ही रह गया। सामायिक-स्वाध्याय, त्याग और संयम की प्रेरणा-मूर्ति वह दिव्य ज्योति दिवंगत हो गई। मृत्यु सर्वभक्षी है, उसने उस विभूति को भी नही छोड़ा, किन्तु मृत्यु पर विजय प्राप्त करके आचार्य श्री हस्तीमलजी ने एक अनूठा आदर्श बताया। १० वर्ष की लघुवय में दीक्षा के असिपथ को स्वीकार करने वाला वह महामहिम तेजस्वी व्यक्तित्व २० वर्ष की तरुणाई में आचार्य पद को सुशोभित करने वाला बना। पूज्य हस्तीमलजी सचमुच हस्ती ही थे। जैन-जगत् के भव्य गगन मंडल पर चमकने वाले दैदीप्यमान नक्षत्र थे। पूरा जीवन अप्रमत्त भाव से साधना करने में व्यतीत करके, लोक जीवन और साहित्य को अनेक उत्कृष्ट देनें देकर आपने मरण के समय भी चमत्कारपूर्ण साहस और प्रेरणास्पद साधु जीवन का कीर्तिमान बनाया। सामायिक एवं स्वाध्याय को जीवन के व्यावहारिक धरातल पर समन्वित करते हुए आचार्य श्री भव्य जनों के महान् उपकारी बने। जीवन की संध्या मे भी शारीरिक दुर्बलता और वृद्धावस्था के बावजूद भी क्षण-क्षण साधना को समर्पित रहे।

"महामृत्यु के भय से भी जो अविचल रह सकता है,
क्षण-क्षण निज-पर को उद्‌बोधन दिया-लिया करता है।

क्षण-सापेक्ष वनी जो हस्ती, विशुद्ध हुई अपने में,
युग-सृष्टा, युग दृष्टा वह तो अमर रहा करता है।

सत्य चिरन्तन जिसकी अनुपम थाती बन जाता है,
मृत्युंजय कह उसको सारा जग वंदन करता है।"

मृत्यु को वरण करने की जो रीति महान् आत्माएँ अपनाती है, उससे मृत्यु-मृत्यु न रहकर एक शानदार महोत्सव बन जाती है।

द्वारा—छगनलालजी गन्ना, भीम (राज.)

मृत्यु ने हार मान ली !

☐ श्री जे. के. संघवी

मृत्यु एक ध्रुव सत्य है, अवश्यंभावी है, किन्तु उसे सहर्ष स्वीकार करना सभी के वश की बात नहीं है। विरल व्यक्ति ही उसे जीत सकते है। आचार्य श्री हस्तीमलजी के आगे मृत्यु ने हार मान ली। सामायिक और स्वाध्याय को जीवन के रग-रग में ओतप्रोत बनाने के कारण यह सम्भव हो पाया। लाख-लाख वंदन है उनकी आत्मा को !

—सम्पादक—'शाश्वत धर्म'
नामली नाका, थाने–४०० ६०१

पूज्य गुरुवर हर पल हमारे साथ हैं

☐ श्री राजेन्द्र पटवा

पूज्य आचार्य गुरुवर, हर पल, हर समय, हर दिन, हमारे साथ हैं, मैं ऐसा महसूस करता हूँ और विशेष तौर पर जब मैं सामायिक साधना एवं स्वाध्याय करता हूँ अथवा किसी कठिन परिस्थिति मैं होता हूँ तब तो साक्षात् उन्हें सामने ही पाता हूँ। अब आप ही बताये मैं अपनी श्रद्धांजलि उन्हे कैसे अर्पित कर सकता हूँ ?

मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाता हूँ कि अगर आप सामायिक-स्वाध्याय मे बैठेंगे, ध्यान लगायेंगे और देखेंगे तो निश्चित रूप से वे आपको भी आपके नजदीक ही मिलेंगे।

—संयोजक—अ. भा. सामायिक संघ
३/१०१, जवाहर नगर, जयपुर

जिन शासन की प्रभावना की

☐ श्री प्रमोदचन्द जैन

आचार्य प्रवर ने बाल्यावस्था में ही जैन भागवती दीक्षा ग्रहण कर, संयम पूर्वक, स्व और पर का भेद जानकर, शरीर को साधना का साधन समझा।

आचार्य प्रवर ने आत्मा को परमात्मा बनाने का महामंत्र जीवन में उतारा, आत्मा के कल्याण के साथ-साथ हम जैसे अल्प बुद्धि वाले मुमुक्षु जनों को साधना का महत्त्व समझाया तथा जिनशासन की प्रभावना की।

युवा कांफ्रेंस के सभी सदस्य, तथा चाँदनी चौक, श्री संघ के सभी नर-नारी वीर प्रभु से यही मंगल कामना करते हैं कि आचार्य प्रवर अपने लक्ष्य को समाधि पूर्वक प्राप्त करें। समस्त मुनिवर शिष्य समुदाय इस अलौकिक घड़ी में धैर्य पूर्वक समाज को नेतृत्व प्रदान करें।

—अध्यक्ष—युवा कांफ्रेंस,
मंत्री—चाँदनी चौक, दिल्ली

जन-जन के हृदय-सम्राट

☐ श्री विनोद सेठ

कष्ट साध्य वहु-बाह्य तपों से, तन को, मन को जला दिया।
आभ्यन्तर तप उद्दीपित हो, यही प्रयोजन बना लिया॥
आर्त्त-ध्यान को रौद्र-ध्यान को, पूर्णध्यान से हटा लिया।
धर्म ध्यान में, शुक्ल ध्यान में, क्रमशः निज को बिठा लिया॥

हमारे जीवन से प्रकाश चला गया। जिस सूर्य ने हमें प्रकाश एवं ऊर्जा प्रदान की, वह अस्त हो गया और हम सभी सर्दी में ठिठुर रहे है, अन्धकार में भटक रहे है।

मेरे पूज्य पिताजी श्री उमरावमलजी सेठ उत्कंट भक्त-शिरोमणि थे। ...६ साल हर पूनम को वेला-तेला करके भी दर्शन कर पानी पीते थे। आचार्य ...त्र स्वयं मेरी ममतामयी माँ सज्जनदेवी के लिए स्वयं अपने श्रीमुख से कहते थे ...कि सेठानी में कैसी स्वधर्मी वत्सलता थी। मेरी बहन व भानजे ने दीक्षा ली। ...ब ऐसे समय में हमें कौन सहारा देवे, मार्गदर्शन देवे। सामायिक और स्वाध्याय ...का तेजस्वी अग्रदूत चला गया। महान् व्यक्तियों का जीवन हमें याद दिलाता है ...कि हम भी अपने जीवन को उनके अनुरूप बनाये। समय रूपी बालू रेत पर जो ... अपने पदचिह्न छोड़ गये हैं उनका अनुसरण करें। जब भी हमारी जीवन-...नौका मंझधार में हो, हम उनका अवलम्बन लेवे।

हे गुरुदेव! आपकी वाणी हमारी किताबों में नहीं, मनों में छपे, हमारी

पताकाओं में नहीं, चिन्तन की पताकाओं में फहरे, हमारे नारों में नहीं, हमारी अन्तरआत्मा में गूंजे।

किसी पुरुप के अल्प गुणों का, वढा-चढा कर यश गाना।
जग में वुध जन कविजन कहते, स्तुति का वस है यह वाना ।।

पूज्य वने हो, गुरुदेव वने हो, अगणित गुण के धाम वने।
ऐसी स्थिति में आप कहो, फिर कैसे स्तुति का काम वने ।।

यद्यपि गुरु की स्तुति करना, रवि को दीपक दिखलाना।
तदपि भक्तिवश मचल रहा, कुछ मन कहने को अनजाना ।।

तथा अल्प भी जो तव यश का, भविक यहाँ गुणगान करे।
शुचितम वनता क्यों न फिर हम, तव श्रुति रस का पान करे ।।

जव तक इस पृथ्वी पर चाँद और सितारे मौजूद है, गुरु हस्ती की वाणी विश्व के कण-कण में गूंजती रहेगी।

हम सव पारिवारिकजन विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते है।

—रामललाजी का रास्ता, जौहरी वाजार, जयपुर

करुणामय प्रसन्न मूर्ति

☐ श्री जवाहरलाल बाघमार

ऐसे आचार्य निकट भविष्य में होना असम्भव है।

मैं अपने अनन्त भवो के पुण्योदय से पिछले ७–८ साल से आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी महाराज साहव के काफी निकट संसर्ग में आ गया था। कोसाणा के चातुर्मास के वाद तो काफी ससर्ग में आ गया था। महाराज श्री की करुणामय प्रसन्नमूर्ति देखकर आनन्द से फूला नही समाता था और महाराज श्री से प्रेरणा पाकर मेरा जीवन धर्मोन्मुख-धर्मानुगामी वनकर पूर्ण रूप से वदल गया। यह सव आचार्य प्रवर की देन थी। आचार्य प्रवर के सान्निध्य में ही गौतम मुनि की प्रेरणा से मेरा भाव-विश्व जाग उठा, फिल्मी गीत गाने का शौक भक्ति गीत, भाव गीत, भजन गीत गाने में परिवर्तित हो गया। यह सव आचार्य प्रवर की कृपा थी। मैं तो ऐसे आचार्य प्रवर को कभी भी नही भूल सकता।

जाने है जिनको सारा जहान, महिमा है जिनकी सवसे महान्।
वड़े उपकारी हैं मेरे हस्ती गुरु, वड़े गुणधारी है मेरे हस्ती गुरु ।।

अतः में मैं और मेरा परिवार आचार्य प्रवर को शत-शत वन्दना करता हूँ। निमाज के श्री तेजराजजी भण्डारी को और गंगवाल परिवार को वहाँ के और जैन भाइयों को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इतनी बड़ी सेवा करके अपना और निमाज का नाम जैन इतिहास में अमर कर दिया।

—6, Chandrappa Mudali Street,
Sowcarpet, Madras-600079

जीवन की सफलता के लिए प्रेरणा-सूत्र

☐ श्री रत्नेशकुमार बांठिया

मैंने १२वीं कक्षा उत्तीर्ण करके ND (डॉक्टर ऑफ नेचरोपैथी) का कोर्स किया, साथ-साथ कम्प्यूटर का भी कोर्स किया। बाद में पायलट बनने हेतु मिलट्री डॉक्टरों ने स्वास्थ्य-परीक्षण किया, योग्य पाकर मुझे पायलेट ट्रेनिग की अनुमति मिली। मैंने Aero Mobile की Radio Telephonic की परीक्षा पास की और पायलट ट्रेनिंग हेतु कुछ उड़ानें भी कीं। पर धार्मिक संस्कारों के कारण धर्म-दृष्टि से हिंसा-अहिंसा का चिन्तन हुआ एवं नौकरी नहीं करना, इस हेतु से पायलट बनने का विचार छोड़कर मैंने बम्बई में पंचरत्न में हीरे परखने की ट्रेनिंग प्राप्त की और इस व्यवसाय में लग गया। ८ व ९ अप्रेल को मैं परम आराध्य, स्वाध्याय-सामायिक के प्रबल प्रेरक आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. के चरणों में निमाज पहुँचा। वहाँ पर दर्शन एवं भाव-भीनी वन्दना कर आशीर्वाद प्राप्त कर १८-४-९१ को बम्बई से बैंकाक के लिए रवाना हुआ। आचार्य श्री ने जीवन की सफलता के लिए निम्न तीन प्रेरक सूत्र प्रदान किये, जो मेरे लिए मार्गदर्शक हैं—

१. 'पढमं नाणं तओ दया'—पहले ज्ञान, बाद में तप, दया आदि व्रत। अर्थात् ज्ञान से भानपूर्वक उपयोग सहित समतापूर्वक व्रत किया तो उसका अत्यन्त लाभ है। आध्यात्मिक ज्ञान जो जीवन को ऊँचा उठाने वाला, इहलोक-परलोक सुधारने वाला है, स्वाध्याय से ही प्राप्त हो सकता है। अतः प्रतिदिन सामायिक पूर्वक नियमित स्वाध्याय करो।

२. सात्विक आहार-विहार—शुद्ध सात्विक आहार-विहार का विचारों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः सप्त कुव्यसनों का त्याग कर शुद्ध शाकाहार लो व मादक पदार्थों के सेवन से सदैव बचो।

३. सादा जीवन उच्च विचार—अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखकर आवश्यकताएँ कम करो, जीवन में सादगी वरतो व मन में शुभ विचार लाओ।

—द्वारा, नवरतनचन्द ओस्तवाल, श्री शांति एम्पोरियम
४८, डरुलप्पन स्ट्रीट (एलीफेंटगेट) साहूकारपेठ, मद्रास-३

अध्यात्म-गगन का सूर्य

☐ श्री महावीर जैन

आप सामायिक-स्वाध्याय के प्रवल प्रेरक थे। सामायिक (समभाव की साधना) और स्वाध्याय (सद्शास्त्रों का वाचन व शुभ संकल्पों का चिंतन मनन) पर आपने विशेष वल दिया। इस हेतु आप स्वयं प्रतिदिन १२ बजे से २ बजे तक मौन रखते थे।

आप साहित्य एवं संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन की प्रेरणा देते रहते थे। आपने पंच महाव्रत, ज्ञान, दर्शन चारित्र एवं तप का स्वयं पालन किया एवं दूसरों को भी सदैव प्रेरणा दी।

आपने कृष्णा नदी पर वने मन्दिर में पशु वलि रुकवाकर पशुओं को अभय दान दिया।

आपने उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक पर टीकाएँ लिखीं साथ ही इनका हिन्दी अनुवाद पद्य रूप में किया। 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' नाम से आपने जैन धर्म का प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध कराया।

२१ अप्रेल, रविवार को अध्यात्म-गगन का यह सूर्य अस्त हो गया। इसकी कभी भी पूर्ति नहीं होगी। ऐसे महान् सन्त को कोटि-कोटि नमन।

—द्वारा, रतनलालजी जैन, भदेसर (चित्तौड़गढ़)

जगमगाते दिव्य तेज

☐ श्री श्रीपाल देशलहरा 'स्वयंसेवक'

विश्व-इतिहास में ऐसे महापुरुषों को श्रद्धा से देखा गया जिन्होंने दानव को मानव और मानव को महामानव वना दिया। ऐसी महानात्मा किसी एक

जाति, देश सम्प्रदाय अथवा धर्म की सम्पत्ति न होकर समस्त मानव जाति की सम्पत्ति होती है। ऐसे ही महापुरुषों का गुणानुवाद समस्त जनसमूह करता है। वे ही इस भौतिक संसार में अमर बन जाते हैं। कहा भी है—

फूल तो बहुत खिलते हैं, सुगन्ध देता है कोई-कोई।
पूजा तो बहुत करते हैं, पूजनीय बनता है कोई-कोई ।।

महापुरुष स्व और पर कल्याण दोनों में रत रहते हैं। स्वयं पर हजारों मुसीबतें सहन कर परोपकार में संलग्न होते हैं। अतः उनका स्मरण हम जन्म-जन्मान्तर तक नहीं भुला सकते।

ऐसे महापुरुषों के मध्य पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज भी एक जगमगाते दिव्य तेज थे। आपका संयत जीवन त्याग-वैराग्य का ज्वलन्त नमूना था। वे इस कलिकाल के एक महान् युगपुरुष थे। उनके जीवन में एक अद्भुत निष्ठा थी। उन जैसा ज्ञान-बल एवं चारित्र-बल बहुत कम मुनियों में मिलता है। उनके उज्ज्वल संयमी जीवन का प्रभाव जैनों में ही नहीं, बल्कि अजैनों में भी गहरा और अमिट था।

भौतिक शरीर से न सही पर यशः शरीर से आप जनमन में आज भी जीवित है। उन महान् आत्मा की पावनधारा हमें आह्वान कर रही है कि हम उनके जीवनरूपी सुन्दर वाटिका से गुणरूपी सुरभित एवं सुगन्धित पुष्पों को चुन कर स्व और पर का कल्याण करें और अपने को संयमी बनायें। जब हम उनके बताये हुए रास्तों पर चलेंगे तभी हमारी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित होगी।

आपकी ध्यान-साधना आज भी विश्व-विख्यात है।
आपकी ज्ञान-आराधना आज भी जग प्रख्यात है।
बेजोड़ बेमिसाल योगी थे अध्यात्म-जगत् के—
आपकी मौन उपासना आज भी आलम-आख्यान है ।।

—श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान,
ए-६, साधना भवन, बजाज नगर, जयपुर-३०२०१७ (राज.)

बहता पानी निर्मला

□ श्री सागरमल पींचा

कहते है बहता हुआ जल अमृत तुल्य, स्वच्छ, शुद्ध एवं पीने योग्य होता है। यही जल जब एक जगह ठहर जाय तो गन्दा होकर सड़ान्ध पैदा करता है

तथा जानलेवा भी हो सकता है। साधु की मर्यादा के लिए भी ऐसा ही नियम बताया गया है। उसके लिए चातुर्मास के अलावा शेष काल मे एक स्थान पर २६ दिन से अधिक-ठहरना सुखे समाधे निषिद्ध है।

मैंने देखा, उच्च साधना में रत ८१ वर्षीय एक जैनाचार्य गत १० मार्च को अपनी शिष्य मण्डली सहित मारवाड़ के निमाज गाँव पधारे। ७१ वर्ष की सुदीर्घ संत-साधना, वृद्धावस्था एवं स्वास्थ्य की घोर प्रतिकूलता रहते हुए भी २६ दिवस धर्म-ध्यान मे वहाँ विराजे। चूंकि शेष काल में २६ दिन से अधिक एक स्थान पर साधु को ठहरना नही कल्पता, अतः ३०वे दिन ६ अप्रेल को प्रातःकाल तप संथारे के साथ विहार हेतु महाप्रयाण यात्रा पर चल पड़े। ध्यान के चढ़ते भावों एव तेरह दिन के तप संथारे के साथ अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गये। अपना तीसरा मनोरथ भी साध लिया। ऐसे थे जन-जन के आचार्य हस्ती, जो जाते-जाते भी सन्त समाचारी की एक अविस्मरणीय झलक सबको दिखा गये। उस महामुनीश्वर हस्ती गुरु को कोटि-कोटि वन्दन! नमन!

—लोढों का चौक, नागौर-३४१००१

महान् अध्यात्म योगी

☐ श्री कुन्दन सुराण

जैन स्था. समाज के आचार्य प्रवर हस्तीमलजी म. सा. का महाप्रयाण पाली जिले के निमाज कस्बे मे ता. २१-४-६१ को १३ दिन के संथारे से हो गया। निमाज, जैतारण से करीव दस किलोमीटर दूरी पर है। जैतारण में श्रमणसूर्य मरुधर केशरी का पावन धाम भी वना हुआ है। धन्य हो गई जैतारण व निमाज की धरती, जहाँ इस शताव्दी के अध्यात्म-जगत् के दो महान् साधकों का महाप्रयाण हो गया।

आचार्य श्रीजी का यशस्वी, तपस्वी, मनस्वी जीवन चिरस्मरणीय रहेगा। करीव १० साल की वय मे दीक्षा, ६०-६५ वर्ष आचार्य पद व जीवन के ८१ वसन्त तक वे स्व-पर कल्याण में तल्लीन रहे। सामायिक व स्वाध्याय के प्रति उनकी विशेष प्रेरणा रही। आने वाले हर दर्शनार्थी को वे व्रतनियम की प्रेरणा देते रहते थे। श्रमण संघ में भी वे कुछ समय उपाध्याय पद पर सुशोभित रहे।

भारत के कई प्रान्तों की उन्होंने पदयात्रा की। उनकी प्रेरणा से कई संस्थान आज भी गतिशील हैं। सौभाग्य से उनका चातुर्मास व शेषकाल करीव ८ महीने पाली में रहा। ऐसी कम उम्र मे आचार्य पद ग्रहण करने वाले व

अन्तिम समय १३ दिन तक संथारा करने वाले इस शताब्दी के वे एकमात्र साधक (महायोगी) हुए हैं।

ऐसे महान् अध्यात्मयोगी आचार्य श्रीजी को हृदय की असीम श्रद्धा से शतशत वन्दन।

—८, सत्यनारायण मार्ग, पाली (राज.)

ज्योति पुरुष

☐ श्री बुद्धिप्रकाश जैन

प्राची में सूर्य का उदय होने पर केवल प्रकृति ही नहीं, अपितु समस्त जगत् ही हर्ष-विभोर हो जाता है। केतकी का फूल जब डाल पर खिलता है, तब डाल ही नहीं बल्कि समग्र मधुवन ही मधुर सुवास से महक उठता है और जब किसी असाधारण विभूति का इस धरातल पर अवतरण होता है तब केवल एक परिवार ही नही, सारा विश्वोद्यान ही प्रफुल्लित हो उठता है।

परम श्रद्धेय आत्म-द्रष्टा आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. भी ऐसे ही दिव्य विभूति थे, जिनके स्मृति-सौरभ से जैन मधुवन महक रहा है। महामहिम गुरुदेव की गुण-गरिमा का गान करना मेरी कथनी और लेखनी की शक्ति-सीमा से बाहर है, कारण यह है कि वर्ण ससीम है और उनके गुण अनन्त है।

आचार्यश्री के जीवन में सरलता, चिन्तन में सूक्ष्मता, विचारों में अनन्तता, संयम-साधना में वज्र सम कठोरता, हृदय में फूल सी मृदुता, कण-कण में परिलक्षित होती थी। ऐसे गुण महापुरुषों में होते हैं। आचार्य श्री महापुरुषों में भी उच्चकोटि के महापुरुष थे। महापुरुष करते है, कहते नही। आपने समाज को बहुत कुछ दिया। शास्त्रों का गहन अध्ययन कर, अपने शब्दों में उनकी सरल व्याख्या हमारे सामने प्रस्तुत की। सारा समाज आपकी वाणी से प्रभावित था क्योंकि आपकी वाणी में मधुरता थी। आपके सान्निध्य व वात्सल्य रूपी छाया में जो भी आया, वही आनन्दित हो उठा।

यद्यपि आचार्य श्री हमारे बीच नहीं है किन्तु 'यशः शरीरेणाद्यपि जीवति' अर्थात् आप अपने यश रूपी शरीर से हमारे पास ही हैं। आपकी साधना के दिव्य पथ का हम सुचारु रूप से अनुसरण करे। यही आपके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, जयपुर

प्रभावक शक्ति के रोचक प्रसंग

☐ स्व० पं० शशिकान्त झा

[१]

जोधपुर के सिहपोल में ६ महान् संतों का संयुक्त चातुर्मास था। उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म०, प्रधान मंत्री श्री आनन्द ऋषिजी म०, उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द्र जी म०, व्याख्यान-वाचस्पति श्रद्धेय श्री मदनलाल जी म०, श्रमण श्रेष्ठ पंडित प्रवर श्री समरथमल जी म० और आचार्य श्री हस्तीमल जी म० आदि सन्त प्रवर अपने शिष्यवृन्दों के संग विराजमान थे। अपने ढंग का यह चातुर्मास निराला था। श्रमण संघ वनने के बाद राजस्थान के प्रमुख नगर जोधपुर को ही यह सुअवसर प्राप्त हुआ था।

मै आचार्य श्री हस्तीमल जी म० की सेवा में कार्यरत था। मेरे पिता पं० श्री दु:खमोचन जी झा भोपालगढ़ (वडलू) में सतियों के अध्यापन के लिए विराजित थे। मैं पूज्य श्री के पास बैठा हुआ अपना कार्य कर रहा था कि भोपालगढ़ से आयी बस का एक कन्डक्टर वहाँ आया और मुझे बोला कि मैं अभी भोपालगढ से आ रहा हूँ। वहाँ एक झा साहव पंडित जी वीमारी की इस स्थिति में पहुँच गये है कि अब उनका वचना बिल्कुल संभव नही है। अत: वहाँ के संघ के प्रमुख लोगो ने पूज्य श्री के पास काम करने वाले उनके सुपुत्र पं० शशिकान्त जी को पंडित जी के अग्नि संस्कार के लिए अविलम्ब बुलावा भेजा है। यह कह कर वह सन्देशवाहक चला गया।

सन्देश सुनते ही मै हक्का-वक्का हो गया और फूट-फूट कर जोर-जोर से रोने लगा। पास ही वैठे पूज्यश्री ने मुझे पास बुलाया और कहा कि—"नर हो न निराश करो मन को।" इस तरह रोना, अधीर होना, पुरुषों का काम नहीं है और पंडित जी न सिर्फ पिता होने से आपके प्यारे है, वे हम संतों के भी प्यारे और हजारों के मान्य है। वे अभी जीवित है। उनका कुछ नहीं बिगड़ा है। आप विजयमल्ल जी कुंभट के साथ वड़लू जाना चाहे तो जाकर पंडित जी को साथ लेकर आ सकते है।

कुंभट जी को भी पूज्य श्री ने यही कहा कि पंडित जी को साथ लेकर यहाँ चले आये। मै फिर भी धीरे-धीरे सिसक रहा था और पूज्यश्री के वचन को सान्त्वना समझ रहा था। जव कुंभट जी कार में वैठाकर मुझे ले गये और

ास्ते भर समझाते रहे कि पंडित जी को अभी कुछ नहीं होगा, वे मजे में हैं और पन सबको भले चंगे रूप में ही मिलेगे।

रास्ते भर पितृ-वियोग की अव्यक्त वेदना से व्यथित मन से मैं शाम को "जैन रत्न विद्यालय" भोपालगढ पहुँचा और दौड़कर पिताजी के कमरे में गया। तो वे बैठे-बैठे हलुवा और पापड़ खा रहे थे। मुझे उस समय जितना आनन्द हुआ, वह वर्णन से परे है। साथ ही पूज्य श्री के प्रति जो गहरी श्रद्धा और असीम निष्ठा जगी, वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। पिताजी मेरे साथ ही जोधपुर आये और कुछ दिनों तक पूज्य श्री की सेवा में रह कर पुनः भोपालगढ़ वापिस चले गये।

[२]

उसी संयुक्त चातुर्मास मे मै सिहपोल के पास वाले सुनारों की घाटी पर एक मकान में ठहरा हुआ था। दूसरे मुनिराजों की सेवा मे रहने वाले पंडितगरण जिसमें श्री पूर्णचन्द्र जी दक, लालचन्द जी मुणोत एवम् दूसरे भी थे, सब उसी मकान में ठहरे हुए थे। मुझे जोरों का ज्वर चढ़ा और बहुत तेज खांसी भी आने लगी। पास के लोगों ने अफवाह फैला दी कि तपैदिक का रोगी हो गया हूं। फेर क्या था? वे सभी पंडित जी मुझे छोड़कर अन्यत्र चले गये। इतने वड़े मकान में मैं मात्र अकेला रह गया। बीमारी और जनशून्यता के कारण मेरी ड़ी बुरी दशा हो रही थी।

आचार्य श्री को इस बात की सूचना मिली तो वे मुझे मांगलिक सुनाने तथा ढाढस बँधाने दिन में वहाँ पधारे। उनको देखते ही मैं अधीर बन गया तथा पेट में जोरों का दर्द उठा। मांगलिक सुनाकर वे चले गये। उनके जाने के बाद मैं गिरता-पडता शौचालय गया। वहाँ जोरों का एक दस्त हुआ और शरीर के भीतर जमा सारा मल निकल गया तथा शरीर पसीना-पसीना हो गया। मैं किसी तरह पसीने में लथपथ विस्तर पर आते-आते बेहोश हो गया। तब से तो न एक बार खांसी आयी और न वह भयंकर बुखार ही।

यह खबर जब आचार्य श्री की सेवा में पहुँची तो उनकी ओर से पूर्ण विश्राम की सूचना मिली। मगर मेरा मन तो आचार्य श्री की सेवा में बैठने तथा क्षय के भूत-भय से भागने वाले, दयामय धर्म के सेवकों व अपने तथाकथित सहपाठियों को यह दिखाने को तड़प रहा था कि मैं अभी तक मरा नहीं और न अब जल्द मरने वाला ही हूँ। इसी तरह उसी दिन दोपहर को मैं पूज्य श्री

की सेवा में पहुँचा और उनको विस्मय-विमुग्ध-दृष्टि से देखता रहा कि वे मुझ पर कौनसा चमत्कार कर आये।

[३]

घटना हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच होने वाले युद्ध काल की है। जब पाकिस्तानी वायुयान जोधपुर पर बम गिरा रहे थे और चारों ओर उन्होने अपना आतंक जमा रखा था। उस समय पूज्य श्री का चातुर्मास बालोतरा में था। गडरा रोड दोनों देशों के बीच का सीमा स्थल था जो बालोतरा से बहुत दूर नही था। टैंको, सामान से लदी लारियों, और युद्धोपयोगी अस्त्र-शस्त्रों से लदी फौजी गाड़ियों के आवागमन से बालोतरा संग्राम-स्थल की तरह दिखाई देता था। जहाँ संत विराजते थे, उसके आस-पास भी बमों से बचने के लिए खाइयाँ खोदी जा रही थी, गड्ढे बनाये गये थे।

आचार्य श्री के भक्तो की राय थी कि संतगण इस आपातकाल मे बालोतरा को छोड़कर कही शांत स्थान में अन्यत्र चले जाएँ। वे अपने बीच संतों पर आने वाली किसी भी आपदा को देखना पसन्द नही करते थे। मगर आचार्य श्री ने सबको विश्वास बंधाया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि मृत्यु को आना होगा तो कही भी आ सकती है फिर भागकर कायरता क्यों बताना? खुले मन से धर्म-ध्यान का साधन करो, कोई घबराने की बात नहीं है।

निरन्तर हवाई जहाजो के आसमान मे मंडराने तथा जोधपुर के आस-पास जहा-तहां बम गिराने से बालोतरा की खिड़कियाँ काँप उठती और दरवाजे कड़कड़ाने लग जाते थे। बड़ी ही विषम स्थिति हो गई थी। ऐसी विकट घड़ी में यह भरोसा करना कि बालोतरा सुरक्षित रह जाएगा, हम सब पर कोई खतरा नहीं आयेगा, मन को रास नही आता था। मगर बात कुछ निराली ही थी और वह यह कि बालोतरा को सुरक्षित रहने की बात कहने वाले, कोई साधारण जन नहीं वरन् एक महान् असाधारण संत-शिरोमणि थे, जो स्वयं अपने संतवृन्द के साथ वहाँ ही ठहरे हुए थे।

एक दिन सुनने मे आया कि युद्धबन्दी की घोषणा हो गई है। हवाई जहाजों का आना-जाना बन्द हो गया, बालोतरा ज्यों का त्यों रह गया। आए संकट टल गए। मैं जो मन ही मन जीवन हार चुका था और वापस घर पहुँचने की आशा भी खो चुका था, हर्ष एवं आनन्द विभोर होकर पूज्य श्री के वचनों पर आस्था जमाये बालोतरा की सड़कों पर पुनः निश्शंक भाव से घूमने लगा।

[४]

सं. २०११ के जयपुर चातुर्मास के समय जोधपुर के एक श्रावक लाल भवन में आचार्य श्री की सेवा में पधारे। उनका चेहरा उदास और दुःखी था। देखने से ही पता चलता था कि ये किसी भयंकर चिन्ता से व्यथित हैं। घट-घट के जाननहार पूज्य श्री ने कहा—श्रावकजी! धर्म-स्थान में भी ऐसी उदासी क्यों? यहाँ तो लोग उदासी और चिन्ता को भूलने के लिए आते है और एक आप है कि यहाँ पर भी चिन्तित बने हुए है। धर्म-ध्यान करिये। उदासी हटाइये।

श्रावकजी बोले—बावजी! हम सब गृहस्थी वाले हैं और जहाँ जाते हैं गृहस्थी की चिन्ता संग-संग चलती है। क्या बताऊं? मेरा एक बाबू पाकिस्तान में है और बहुत दिनों से वहाँ से कोई पत्र नहीं आया है। वहाँ की हवा अच्छी नहीं है। आचार्य श्री ने फरमाया पत्र आता ही होगा और जब वे घर आये तो कुशलता का पत्र आ गया था।

[५]

कुछ वर्षों पूर्व बहुश्रुत पण्डित श्री समरथमलजी म. सा. बालोतरा विराज रहे थे। आचार्य श्री अपने शिष्यवृन्द के संग कहीं दूसरी जगह विराजते थे। बहुश्रुतजी का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था। फिर भी भक्त और डॉ. हिम्मत लगाये हुए थे कि पण्डितजी को स्वस्थ करके रहेंगे। उपचार पूर्ण सावधानी से हो रहा था।

एक रात करीब दस बजे आचार्य श्री ने पं. र. श्री हीरामुनिजी को जगाया और कहा कि "बहुश्रुत श्री समरथमलजी म. को संथारा करा रहा हूँ, तुम्हारी साक्षी है। सवेरे उनकी सेवा में विहार करना है, इस पर ध्यान रखना। सवेरा हुआ और आचार्य श्री ने उनके दर्शनार्थ विहार कर दिया। विचित्र बात थी न! कहीं से कोई सन्देश था न पत्र। फिर भी दूर से ही संथारा करा देना और उनके दर्शनों के लिए चल देना।

—पण्डितजी की दैनन्दिनी डायरी से उद्धृत,
मञ्जु बम्ब के सौजन्य से प्राप्त

• • •

चमत्कारी महापुरुष

□ श्रीमती कंचनदेवी जैन

पूज्य गुरुदेव का जीवन बड़ा ही महान् व उच्चकोटि का था। आपकी गुण-गाथाओं का वर्णन मेरी एक जुबान से हो नही सकता। आप महान् परोपकारी थे। आपने हमारे पर कई उपकार किए हैं। उन उपकारों का ऋण हम इस जीवन में क्या, अनन्त भवों में भी नही चुका सकते हैं।

मैं सनातन धर्म प्रकाशक वरिष्ठ उपाध्याय, संस्कृत विद्यालय, ब्यावर में अध्यापिका के पद पर कार्यरत हूं। सन् १९७६ में तृतीय ग्रेड की कुछ पोस्ट संस्कृत डिपार्टमेन्ट ने कम करदी, इस कारग मुझे सस्कृत विभाग से नोटिस मिल गया कि आपको अविलम्व सेवा-मुक्त किया जाता है। सेवा में बने रहने की मैंने खूब कोशिश की। इधर जोधपुर में माणक मुनिजी म. सा. का संथारा सम्पूर्ण हो गया और वे देवलोक सिधार गये। मैंने जाकर अर्ज की कि भगवन्! मेरे मे सकट आ गया है। सहज में आचार्य भगवन् के मुंह से शब्द निकल गये कि तेरे पर कोई संकट नही। तेरे लिए तो सारी समाज खुली है। सच मानिये कि आचार्य भगवन् की कृपा से एक रोज की सर्विस भी ब्रेक नहीं हुई। लगातार आज तक बनी ही रही। यह है आचार्य श्री की वाणी का चमत्कार।

दूसरी घटना, जहाँ आचार्य भगवन् विराजे, वहाँ के शुद्ध पुद्गल से संकट के अन्त होने की है।

मेरे भैया स्व. पुखराजजी खीवसरा ब्यावर, आत्मज स्व. सेठ श्री सुगनचन्दजी खीवसरा। उन्हे करीवन चौदह वर्प की उम्र मे खतरनाक बीमारी लग गई। डॉक्टरों ने मृगी रोग बताया तो झाड़े-झपाटे वालों ने भूत-प्रेत का उपद्रव वताया। उनको पिताश्री कलकत्ते के पास कटक लेजाकर, इलाहावाद लेजाकर इलाज करवाया। ब्यावर मे ही डॉ. कुञ्जविहारी का इलाज खूव वर्षों तक चला। जव दवा ली तव तक ठीक और फिर दौरे पड जाते। मुंह में झाग आ जाना, आँखे फटी-की-फटी रह जाना, हाथ पैरों का अकड़ जाना, अन्दर ही पेशाव वगैरहा आ जाना आदि। उन्होंने इस असाध्य रोग से खूव तकलीफ पाई। सन् १९७५ का चातुर्मास आचार्य भगवन् का ब्यावर पीपलिया वाजार स्थानक में था। मेरे भाई साहव पुखराजजी ने आचार्य भगवन् की खूव सेवा की और चातुर्मास की शुरुआत से जव तक जिन्दे

रहे, स्थानक में ही सोये। कहने का तात्पर्य है कि उनके असाध्य और कई वर्षों का रोग समाप्त सा हो गया।

तीसरी घटना आचार्य भगवन् के मांगलिक श्रवण से असाध्य रोग के पलायन होने की है।

सन् १९८७ की घटना है। मेरी भतीजी श्रीमती सुमनलता बाबेल आत्मजा श्री माणकचन्दजी खींवसरा ब्यावर। शादी से पहले सुमन को बुखार, खांसी व खूब सारा बलगम गिरता था। डॉक्टरी जॉच हुई। डॉक्टर ने टी. वी. घोषित कर दी। इधर साता वेदनीय का उदय आया था कि आचार्य भगवन् होली चातुर्मास हेतु ब्यावर पधारे। इस बच्ची को आचार्य भगवन् के मांगलिक पर अटूट श्रद्धा थी। सुमन कहती कि मुझे आचार्य श्री के श्री मुख से मांगलिक श्रवण व दर्शन की इच्छा है। मै रोजाना तांगे में सुमन को बिठाकर विनोद नगर ले जाती, दर्शन करवाती और मांगलिक सुनवाती। फिर उसके शरीर में कमजोरी बढ़ती ही गई। दर्शन व श्रवण के लिए जाना बन्द कर दिया। फिर आचार्य भगवन् से अर्ज की गई कि भगवन् सुमन आपके दर्शन व मांगलिक की प्यासी है। कृपा करके आप घर पर पधार कर सुमन को दर्शन दिरावे और मांगलिक सुनाने की कृपा करावें। आचार्य श्री ने महती कृपा की और कई सन्तों को साथ में लेकर इतनी दूर से घर पर पधार दर्शन दिये और मांगलिक सुनाया। उस दर्शन व मांगलिक का इतना जबरदस्त चमत्कार हुआ कि मानों बुझते हुए दीपक को तेल मिल गया हो। बस फिर क्या था, सुमन की तबियत शनैः शनैः ठीक हो गई।

ऐसे आचार्य भगवन् को मेरा शत-शत वन्दन।

—अध्यापिका, सनातन धर्म प्रकाशक संस्कृत विद्यालय, ब्यावर

महान् उपकारी

☐ श्री तेजमल अग्रवाल जैन

आचार्य श्री को क्या उपमा दी जावे, मेरे पास कोई शब्द नहीं हैं। आपने भी संसारी आत्माओं को प्रतिबोध देकर सन्मार्ग पर लगाया। मुझे भी

समय-समय पर आचार्य श्री के दर्शन एवं प्रवचन-श्रवण का लाभ मिलता रहा । मैंने यथा-शक्ति आचार्य श्री की प्रेरणा से त्याग-प्रत्याख्यान ग्रहण किये, जो आज भी चालू है ।

सं. २०२४ में आचार्य श्री मेरे गाँव देई पधारे तब मैंने श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किए थे । सं. २०३५ के इन्दौर चातुर्मास में विहार के बाद ब्रह्मचर्य व्रत के नियम लिए थे । सं. २०४४ के अजमेर चातुर्मास मे मैंने जीवन-पर्यन्त भोजन मे तीन विगय से ज्यादा नही लेने का प्रत्याख्यान किया । सं. २०४६ के कोसाणा चातुर्मास मे मैंने अपने जीवन का निरीक्षण कर अब तक हुए अतिचारों के लिए आचार्य श्री के चरणों में लिखित निवेदन किया और प्रायश्चित्त ग्रहण किया । मेरे पर आचार्य श्री का महान् उपकार रहा है । उनकी प्रेरणा से मैं धर्म-क्रिया मे बढ़ सका हूँ । मेरी अभिलाषा है कि अन्तिम समय में मैं भी श्रावक के तीसरे मनोरथ का चिन्तन करता हुआ देह-त्याग करूँ । यही मेरी सच्ची श्रद्धांजलि है ।

—देई (बून्दी) राजस्थान

मर्यादाओं के दृढ़ संरक्षक

☐ श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल

साधुत्व की कर्मठ विभूति आचार्य श्री इस देश की सन्त-परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र रहे हैं । संस्कारों की महान् देन ही मानना होगा कि केवल दस वर्ष की अल्प आयु मे ससार से विरक्त हो, जैन साधु के कठिनतम मार्ग पर चलना अंगीकार किया । आगमों का गहन अध्ययन कर और साधुत्व की कठिन परिचर्या मे सफलतापूर्वक रहकर मात्र २० वर्ष की आयु में उन्होंने आचार्य पद प्राप्त किया । यह उनकी तेजस्विता, गहन ज्ञान-गरिमा, त्याग और तपस्या का अनोखा उदाहरण है ।

साधुत्व के इस दीर्घ जीवन काल मे उन्होने देश में दूर-दूर की पद-यात्रा की । अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी उन्होने पद-यात्रा का कठिनतम प्रयाण किया और भगवान महावीर के उपदेशों का प्रचार-प्रसार किया । उनकी सदैव यह प्रेरणा रहती थी कि सम्यक् चरित्र रूप सामायिक

एवं सम्यक् ज्ञान रूप स्वाध्याय साधना का मानव दैनिक अभ्यास करे। इस प्रचार के लिए अनेक व्यक्ति और अनेक संस्थाओं को प्रोत्साहित किया जो आज भी लोक कल्याण एवं आत्मोत्थान जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में तन-मन-धन से कार्यरत है।

उनकी वाणी में जादू का सा असर था। हो सकता है साधना, ध्यान और योग का अमोघ बल रहा हो। उनके प्रवचनों से जीवन के नैराश्य में आशा की दिव्य किरण और आस्था तथा श्रद्धा का बड़ा सम्बल मिलता रहा है। आज भी उनके द्वारा दिए गए सामयिक प्रवचन भूले-भटकों के लिए मार्ग-दर्शक सिद्ध होंगे। जीवन निर्माणकारी शिक्षाओं से सम्बद्ध एवं प्रेरणादायी विचारों से ओत-प्रोत सभी प्रवचन पाठकों को आज भी सफल मार्ग-दर्शन देते रहेंगे।

महाराज श्री के प्रथम दर्शनों का लाभ, मेरे बचपन में, किशनगढ़ (राजस्थान) में मुझे प्राप्त हुआ। उनकी आयु में और मेरी आयु में २–३ साल का अन्तर रहा। अतः मुझे स्नेह प्राप्त करने का अधिकारी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। सम्भवतः उस समय महाराज श्री स्व. अमरचन्दजी का संथारा था। अतः आने-जाने वाले लोगों का तांता लगा रहता था। मैं बच्चा था। अत. सभी की इच्छा हुई कि उपस्थित जनसमूह को मैं कुछ गाकर सुनाऊँ। पिताजी का आग्रह था अतः मै हिम्मत कर खड़ा हो गया और पूज्य महाराज श्री की उपस्थिति मे कुछ बोलने का प्रयत्न किया। मेरे जीवन का यह प्रथम अवसर था। सब ओर से शाबासी प्राप्त होने लगी। प्रोत्साहन का वह क्षण आज भी मन-पटल से लुप्त नहीं हुआ है। पूज्य श्री भी शाबासी देने वालों में थे। जब कभी महाराज श्री के दर्शनों का अवसर प्राप्त होता, वे सदैव आत्म-चिन्तन-मनन का उपदेश देते। सामायिक एवं स्वाध्याय के लिए समय न निकाल पाने की अपनी असमर्थता बताने पर बड़ी निराशा दिखाते। उन्होंने आग्रह कर यह प्रतिज्ञा तो करवा दी थी कि प्रतिदिन नवकार मंत्र की एक माला फेरे बिना अन्न-जल नहीं लेना। वह प्रतिज्ञा आज भी अबाध गति से कायम है। उन संस्कारों से इस दिशा में आगे कुछ करने का श्रेय स्व. पूज्य श्री को ही है।

सवाईमाधोपुर चातुर्मास से मारवाड़ की ओर जाने का लक्ष्य होते हुए भी जयपुर होकर जाने का आग्रह श्रावकों का मानकर आचार्य श्री जयपुर आए। जयपुर से १०–१२ मील के फासले पर आने की जानकारी मिलने पर मैं भी दर्शनार्थ जा पहुँचा। मुझे चलने-फिरने में दिक्कत थी। अतः

लाचारी मैंने अर्ज की । उन्होंने कहा—शरीर का मोह छोड़ो, आत्मा का चिन्तन करो । इस कष्ट में भी वह बड़ा सम्बल होगा । मैंने सहारा बटोरा और मंगल-पाठ सुना । शरीर की वेदना मिट सी गई ।

वे मंगल मूर्ति थे, उनमें चारित्रिक ऊर्जा थी । वे युग-पुरुष थे । असंख्यात के मनोदेवता थे, वे ज्ञान और कर्म के अनूठे योगी थे । श्रमण परम्परा के गौरव थे । मर्यादाओं के दृढ़ संरक्षक थे ।

ऐसी महान् विभूति को उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को कृतकृत्य मानता हूँ । मेरा विनम्र नमन ।

—बी–८१, राजेन्द्र मार्ग, बापू नगर, जयपुर–१५

इतिहासवेत्ता और आगमिक विद्वान्

□ श्री भुंवरलाल जुगराज लुणावत

आचार्य श्री भारतीय संत-परम्परा के महान् तेजस्वी, अध्यात्मयोगी, इतिहासवेत्ता और आगमिक विद्वान् थे । आपने भारत के बहुतांग प्रदेशों में उग्र पद यात्रा कर जन-मानस को सम्यक्ज्ञान का स्वाध्याय तथा सम्यक्चारित्र्य रूप सामायिक साधना की प्रेरणा दी । फलस्वरूप अनेक व्यक्ति और संस्थाएँ आत्मोत्थान एवं लोक कल्याण के कार्य में सक्रिय हैं । आपकी अनेक पुस्तकें, प्रवचन संग्रह प्रकाशित हुए हैं । 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका, भोपालगढ़ विद्यालय, जैन विद्वत् परिषद् जयपुर आदि समाज जागृति के कार्य कर रहे हैं ।

—अध्यक्ष, व० स्था० जैन संघ, चिंचवड़, पूना

□□□

द्वितीय खण्ड



काव्यांजलि



कवियों और गीतकारों
द्वारा
अर्पित श्रद्धा-सुमन

कवियों और गीतकारों द्वारा अर्पित श्रद्धा-सुमन

गुरु हस्ती संथारा-गीत

□ श्री गौतम मुनि

[१]

निमाज री नगरी में देखो, मोटो–२ मेलो लाग्यो है ।

[तर्ज : गाज्यो-गाज्यो जेठ........]

निमाज री नगरी में देखो, मोटो मेलो लाग्यो हो ।
संथारो धार्‌यो है गुरु देवजी ।। टेर ।।
मां रूपा रा लाल दुलारा, केवल कुल रा जाया हो ।
जनम लियो है पीपाड़ में........।। १ ।।
वीस वरस री उमर मांहि, आचारज पद पायो हो ।
धूम मचाई धर्म ध्यान की........।। २ ।।
हस्तीमलजी नाम आपरो, शोभा गुरु रा चेला हो ।
वालपण संयम धारियो........।। ३ ।।
सामायिक स्वाध्याय करो यूं, जग में विगुल वजायो हो ।
ज्योति जगाई सद्ज्ञान री........।। ४ ।।
करुणा रा अवतारी गुरुवर, भगता रां भगवान है ।
मरता बचाया काला नाग ने........।। ५ ।।

नश्वर है सव जग री माया, मोह ममता जंजाल है ।
संदेशो देकर संथारो धार्‌यो.......॥ ६ ॥
ऐसो काम थे कीनो गुरुवर, एक इतिहास वनायो रे ।
भूले ला नहीं दुनिया थाँरा नाम ने.......॥ ७ ॥
जब तक ओ सूरज चमकेला, गुण थाँरा सव गावेला ।
नाम रेवेला संसार में.......॥ ८ ॥
हुयो न होसी ऐसो योगी, इण कलयुग रे मांय रे ।
जोयो न मिलेला ऐसो संत जी.......॥ ९ ॥
दर्शन तांई जनता सारी, दौड़-दौड़ ने आवे हो ।
हर्ष मनावे चित चाव सूं.......॥ १० ॥
शीष झुकावां चरणां मांहि, 'मुनि गौतम' गुण गावे हो ।
म्हानें तिराजो संसार सूं.......॥ ११ ॥

[२]

गुरु हस्ती भगवान संथारा धार लिया

[तर्ज : पंछी बावरिया..........]

गुरु हस्ती भगवान संथारा धार लिया,
ऊँचे चढ़ते भाव संथारा धार लिया ।
उच्च भावना थी वहु दिन से, करूं संथारो अपने मन से,
सफल बना मन भाव ॥ संथारा धार.......॥ १ ॥
अजर अमर चेतन अविनाशी, तन, धन में मत वनो विलासी ।
कहकर गुरु महाराज ॥ संथारा धार.......॥ २ ॥
क्षणभंगुर पुद्‌गल की माया, मोह ममता में क्यों भरमाया ।
देकर ये सद्ज्ञान ॥ संथारा धार.......॥ ३ ॥
आत्मशक्ति अनुपम वतलाई, चकित सभी है बाई-भाई ।
धन्य-धन्य गुरुराज ॥ संथारा धार.......॥ ४ ॥
जन-जन की है यही जुवानी, बन गई है इक अमर कहानी ।
गूंजेगा यश गान ॥ संथारा धार.......॥ ५ ॥

बाल उमर में संयम धारा, लाखों भक्तों को फिर तारा ।
ज्ञानी बने महान् ।। संथारा धार.......।।६।।
तप संयम का भाव सुनहरा, ओज तेज से चमके चेरा ।
अन्तर आनन्द धाम ।। संथारा धार.......।। ७ ।।
लाखों बार हो नमन हमारा, क्या-क्या गुण हम गायें तुम्हारा ।
गुण है अनंत अपार ।। संथारा धार.......।। ८ ।।
गांव निमाज में है तीरथ मेला, भक्तों का जहां जमघट रेला ।
गाये 'गौतम' गान ।। संथारा धार ।। ९ ।।

[३]

हो म्हारा हस्ती गुरु भगवान री देखो भावना रे

[तर्ज : सीतामाता री गोदी]

हो म्हारा हस्ती गुरु भगवान री देखो भावना रे ।
कीनो संथारो स्वीकार, अजब है साधना रे ।।टेर।।
खाली हाथ न अंतिम जाऊं, दीजो साज यह भावना भाऊं ।
कहते बारम्बार सुनाय, बात चित लावणा रे ।।१।।
कर तेलो दृढ़ता दर्शाई, अब मत रोको मेरे भाई ।
कीना चौथे दिन पच्चक्खाण, धन्य है भावना रे ।।२।।
मन में दृढ़ता से यह ठाना, जीवन भर अब कुछ नहीं खाना ।
होकर लीन समाधि भाव, सभी बिसरावना रे ।।३।।
स्थिर हैं आत्म-स्वभाव में गुरुवर, चेहरो चमके जैसे दिनकर ।
अन्तर आनन्द का है झरना, नित्य बहवाना रे ।।४।।
हैं ये केवल कुल रा चन्दा, माता रूपकंवर का नन्दा ।
बोहरा कुल का है अवतार, हर्ष बधावना रे ।।५।।
लीनो जन्म पीपाड़ शहर में, धूम मचा दी सारे जग में ।
वणग्या भगतां रा भगवान, सभी ने तारणा रे ।।६।।
है होता तीजा मनोरथ उत्तम, धारे कोई विरला 'गौतम' ।
हुआ धन्य-धन्य गुरु राज, भाव दिल ठावना रे ।।७।।
तीरथ धाम निमाज वण्यो है, संथारा सूं ठाठ लग्यो है ।
आवे दौड़-दौड़ नर-नार, दरस सुख पावना रे ।।८।।

—सौजन्य : श्री जवाहरलाल बाघमार
६, चन्द्राप्पा, मुदली स्ट्रीट, मद्रास-७९

धन्य-धन्य अवतार गुरुवर हस्



[तर्ज : गुरु हस्ती गुणवान हमारा वंदन हो....

धन्य-धन्य अवतार गुरुवर हस्ती है
स्वयं लिया संथारा, अनुपम हस्ती है

मृत्यु से सब प्राणी डरते, दुःख अनंत सहते नहीं म
(पर जो), मृत्यु को स्वयं बुलावे, ऐसे गुरु हस्ती

मरने को सब ही मरते हैं, (पर), पंडित मरण कोई करते
जो शीघ्र मुक्ति पहुँचावे, ऐसे गुरु हस्ती

गणि पद इकसठ वर्ष दिपाया, ऐसा उदाहरण अन्य न पा
ऐसा रत्न महान्, हमारी जगती

उत्तम ज्ञान-क्रिया के धारी, शुद्ध संयम और दृढ आचा
कथनी-करनी एक, नाम गुरु हस्ती

ऐसा गुरु जग में नहीं पाया, तीर्थंकर सा सब मन भा
अजब-गजब की शक्ति, लाभ लो भक्ति

दर्शन को लाखो जन आया, तीरथ धाम निमाज बना
'डागा' चरण-रज चाहे, गुरुवर हस्ती

—डागा सदन, संघ

दो मुक्तक

१. पा लिया

बचपन के आंगन में श्रमणत्व पा लिय
यौवन की देहलीज पर आचार्यत्व पा लिया
ज्ञान, दर्शन चारित्र की साक्षात् प्रतिमा
सांध्य वेला में संथारे से समत्व पा लिया

२. प्रणाम

अप्रमत्त संयम साधना करते रहे अविरा
श्रमण-संस्कृति को दिया यथार्थ आयाम
स्वाध्याय-सामायिक का निर्मल स्रोत बहा
उन प्रज्ञा पुरुष गुरु हस्ती को कोटिशः प्रणाम

आचार्य हस्ती रा दूहा

☐ डॉ० नरेन्द्र भानावत

[१]

मन-मन्दिर में जगमगै, नित हस्ती री जोत ।
मिथ्या तम री जड़ कटै, रोम-रोम उद्योत ।।

[२]

विषम वेग नै थामता, दे समता री थाप ।
मनसा वाचा मौन व्रत, जपता अजपा जाप ।।

[३]

करणी में करड़ा घणा, नरमाई विवहार ।
कथनी में मीठा घणा, सब रै हिय रा हार ।।

[४]

ज्ञान-डोर में पोवता, मोती नेह लगाय ।
भरम, भेद, भय जीव रा, देता दूर भगाय ।।

[५]

सोयोड़ो इतिहास-घर, खोल्या बन्द किंवाड़ ।
धूल-धूसरित पानड़ा, खूब लड़ाया लाड़ ।।

[६]

भूखा-तिरसा आवता, सरणै जाता धाप ।
दु:ख री ज्वाला दरस पा, मिटती आपोआप ।।

[७]

छोटे कद, झूक जावतो, हेमाळो गुण देख ।
सागर उमड़्यो आवतो, रुकतो पग री रेख ।।

[८]

काल-नाग चरणां झुक्यौ, मुसकाई मणि माथ ।
आळम वी परमातमा, तप संथारै साथ ।।

—सी–२२५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर, जयपुर–४

श्रद्धा पंचरत्न

☐ प्रवर्तक श्री रूपचन्दजी म० 'रजत

गन्ध हस्ती धर्म ध्वज महारथी शान्त दान्त,
शैलेशी प्रतिमा के धारक महान् थे।
शारदेय, विद्या विशारद, इतिहास-रवि,
श्रद्धा के भाजन विश्वास सुर विमान थे।

मेधावी मनीषी पावन अजात शत्रु,
पंच महाव्रतधारी श्रमण मतिमान थे।
रत्नगच्छ मणिरूप राशि दिव्य रूप,
अमल हस्तीमल आचार्य सिद्ध वरदान थे ॥१॥

श्रमण संघ घटक पूज्य कल्प निष्ठ भावकल्प,
सौभाग्य चन्द्र शिष्य आगम निष्णात थे।
वोरा कुलोद्भूत उपाध्यायाचार्य पदवीधर,
निरुपाध सहमन्त्री संघ पारिजात थे।

अल्पवय दीक्षा धृत सर्वगुण समापन्न,
परम व्युत्पन्न मतिव्रती समास्पति थे।
वाग्मी स्वनाम धन्य रूप ज्येष्ठ रूपायित,
शीलैरायत हस्तीमल विश्व विख्यात थे ॥२॥

छायाश्चस्य शीतल मरुस्थल के सौख्य सप्त,
मलयगिरि सौरभ-सम संयम पर्याय था।
निष्कलंक सरल सुलभ तापस तुरियातीत,
प्रज्ञा प्रकर्ष विमल अक्षय (ध्वनि) स्वाध्याय था।

आर्हती अहिंसा का अवतंस आचारण,
विनय विवेक पुष्ट मानस प्रदाय था।
पौरुष मृगेन्द्रता का अविकल समानार्थी,
रूपातीत हस्तीमल-पद अध्यवसाय था ।।३।।

श्रमण सुहृद पुण्य श्लोक समीक्षेय समालोक,
समता सुमेरु सुरसरिता-प्रवाह थे।
वीतराग वाणी प्रवाचक सुयाचक सित,
प्रथित अनगार अमित स्वसित्व वारिवाह थे ।।

मुक्ति परिधान आशुतोष आधिभौतिक स्वर,
अनाघ्रात संवेगी संघ निर्वाह थे।
दानशील तप भाव परिमा चतुष्टय चर,
शरच्चन्द्र ज्योत्स्ना पूत अद्भुरसवाह थे ।।४।।

वन्दनीय प्रातः स्मरणीय ब्रह्मवर्चसयुत,
अनुपम अखेद मुनि रूप को प्रणाम है।
स्मृति शेष यशः काय अग्रज अगेहानन्द,
जिनका कृतित्व लोक मंगल का धाम है ।।

जिनके पद चिह्नों में निर्मित अनाम तीर्थ,
जिनका मुखमण्डल शशि बिम्ब सम ललाम है।
शतः शतः है नमन उस चित्त रूप सम्भव को,
'रजत' जिसकी महिमा सर्वत्र अभिराम है ।।५।।

—प्रेषक : राजेश भण्डारी, आबू पर्वत

श्रद्धांजलिः

□ पं. र. श्री घेवरचन्दजी म. 'वीर पुत्र'

पीपाड़ नाम नगरे शुभलब्धजन्मा,
पूज्यः पिता विमल 'केवलचन्द्र' नामा।
'रूपा' सती गुणवती जननी सुधन्या,
भक्त्या भजन्तु भविनो ! गणि हस्तिमल्लम् ॥१॥

बाल्येऽपि संयमरुचिं रुचिरं सुविज्ञं,
कान्तं च सौम्यवदनं सदनं गुणानाम्।
मौनेन ध्यान सहितेन जपेन युक्त,
भक्त्या भजन्तु भविनो ! गणि हस्तिमल्लम् ॥२॥

औदार्य धैर्य सहितं सुविचक्षणं च,
स्वाध्याय संघ रचने प्रथमं प्रसिद्धम्।
सामायिके प्रबल प्रेरक मीशमिद्धं,
जप्यं जपन्तु जपिनं गणि हस्तिमल्लम् ॥३॥
(प्राज्ञं जपन्तु जपिनं गणि हस्तिमल्लम्)
(पूज्यं जपन्तु जपिनं गणि हस्तिमल्लम्)

दृष्टेः सदा स्रवति यस्य सुधा समूहो,
यस्यार्द्र शुद्ध हृदयात् करुणा प्रपूरः।

यस्यानने वहति सौम्य [illegible]

हा हन्त ! हस्ति गणिराज ! दिवं प्रयातः ॥४॥

(हा हा ! [illegible] [illegible] दिवं प्रयातः)

(आचार्य हस्तिगणिराज दिवं प्रयातः)

येनैकदापि तव वाक् [illegible] कृता न,

[illegible] [illegible] तव [illegible] [illegible]

आजीवनं मनसि [illegible] [illegible]

हा हन्त ! हस्ति गणिराज दिवं प्रयातः ॥५॥

लब्धा त्वया धवलकीर्तिरति विशाला,

प्राप्तं यशश्च विमलं विशदं विशुद्धम् ।

कल्पान्त कालमविनाशम खण्डलं च,

हा हन्त ! हस्तिगणिराज दिवं प्रयातः ॥६॥

सोढा त्वया समतया परमा हि पीडा,

नोच्चारितं निज मुखेन कदापि किञ्चित् ।

शान्ता सदा स्मितयुत्ता तव वक्त्र मुद्रा,

हा हन्त ! हस्ति गणिराज दिवं प्रयातः ॥७॥

श्रीमद् वियोग इह साधु समाज निष्ठान्,

दुःखीकरोति सुतरां सुजनान् सुभक्तान् ।

शिष्यांस्तथैव सकलान् तव पाद लीनान्,

हा हन्त ! हस्ति गणिराज दिवं प्रयातः ॥८॥

श्रद्धांजलि समर्प्यैमां, वीर पुत्रः समिच्छति ।

आत्मा ते परमां शान्ति, शीघ्रं प्राप्नोतु शाश्वतीम् ॥९॥ □

खिद्यते मे हृदयम्

□ श्री रमेश मुनि शास्त्री
[उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी के शिष्य]

व्याप्तः सर्वत्र भूमौ शशधरधवलः शुम्भुहासापहासी,
कीर्तिस्तोमो यदीयो जनयति परितः क्षीर पाथोधिशङ्काम् ।
यस्मिन् सम्मग्नकाया अमरपतिगजो दिग्गजाश्चन्द्रतारा,
जाताः सर्वाङ्गशुभ्रा मुनिजन महितः सोऽपि यातो दिवं हा ॥१॥

आसीद यः प्रतिभा प्रभुगुंणनिधि विश्वंम्भरा विश्रुत,
आचार्यो मुनिपुङ्गवोऽमलमनाः श्री हस्तिमल्लाभिधः ।
कालेनापहृतस्तदद्य नितरा शोकाकुला मेदिनी,
साधूनामपि मानसं व्यथयति प्रारब्धशोक स्वरैः ॥२॥

दृष्टो यः प्रथमं मया निकटतो नागौर मध्ये ततः,
पाल्यां सूर्यसमप्रभः स मुनिराट् श्री हस्तिमल्ल. प्रभुः ।
तस्मिन्नस्तमितेऽद्य गाढतिमिरं व्याप्तं समन्तात् तत.,
सन्मार्गानवलोकनात् प्रतिपदं भ्रश्यन्ति सर्वेजनाः ॥३॥

लोकाभ्यर्चित पादपद्म युगलानाचार्यवर्यानपि,
हृत्वा काल न लज्जसे कथमहो किं वच्म्यतस्त्वां प्रति ।
त्वं भूयाः सदयः सदेति मनसा वाञ्छत्यसौ केवलम्,
श्रीमत्पुष्कर पादपद्म निलयः शिष्यो रमेशो मुनिः ॥४॥

हस्तिमलऽमलचेताः श्री जिन धर्म प्रसारकाचार्यः ।
स्वस्य स्मृत्या सुखयतु पुष्कर शिष्यं रमेश मुनिम् ॥५॥

—गढ़ सिवाना

श्रद्धा – सुमन

□ श्री रंग मुनि

[१]

आचार्य प्रवर पूज्य हस्तीमलजी
जिनशासन के थे श्रृंगार।
सामायिक-स्वाध्याय प्रणेता,
धर्म दिवाकर थे अनगार।।

[२]

जैन जगत के प्राण मनोहर,
अध्यात्म योगी निस्पृह मुनिराज।
इतिहास जैन मार्तण्ड प्राज्ञवर,
विद्वज्जन में थे सिर ताज।।

[३]

लेखक वक्ता कवि सुध्यानी,
रत्नवंश के थे अवतंस।
पटकाया प्रतिपाल, संस्कृति के,
रक्षक थे गुणग्राही हंस।।

[४]

दस ही वर्ष की लघु अवस्था,
ले लीनी दीक्षा अजमेर।
ज्ञानी ध्यानी बने विचक्षण,
तत्त्व ज्ञान की वढ़ती लहर।।

[५]

कथनी, करनी नहीं विषमता,
सादा जीवन उच्च विचार।
देश धर्म हित मिलता रहता,
मणि कांचनमय तत्त्वाचार।।

[६]

उम्र हुई जब वीस वर्ष की,
बन गये पूज्याचार्य महान्।
जोधपुर की जनता ने मिल,
किया तुम्हारा ही गुणगान।।

[७]

वर्ष इकोत्तर संयम पाला,
निर्मल मनसे विमलाचार।
अन्तिम चौमासा पाली में,
हुई जहाँ पर जयजयकार।।

[८]

मारवाड़ निमाज पधारे,
जानी तन की स्थिति असार।
कर आलोचना क्षमायाचना,
सहित लियो सन्थारो धार।।

[९]

देश-देश की लाखों जनता,
पहुँची दर्शन को निम्बाज।
पावन दर्शन हम भी पाये,
सफल हुए सब मनके काज।।

[१०]

दस दिन का सन्थारा सीझा,
किया स्वर्ग में महाप्रयाण।
भण्डारी श्री तेजराजजी,
तनमन सेवा करी महान्।।

[११]

जिनशासन की तनमन सेवा,
गरिमामय जो करी अपार।
उपकृत हो न सकेगी जनता,
जीवन भर माने उपकार।।

[१२]

देह विलय हो गई आपकी,
यश जीवन से है विद्यमान।
श्रद्धा सुमन समर्पित करता,
'रंग मुनि' गाता गुणगान।।

महा रत्न निधि हस्ती गुरुवर

☐ आचार्य श्री नानेश की सुशिष्याएँ—पैपनानूं सती मण्डल

[तर्ज—बाबुल की दुआएँ]

जीवन रो नहीं भरोसो है, पल में कई घटना घट जावे।
महारत्न निधि हस्ती गुरुवर, जो स्वर्ग धाम को प्राप्त हुवे ।।होऽऽऽ।।
केवलचन्दजी थे पिता जिनके, माता रूपा का प्यार मिला,
पीपाड़ शहर में जन्म लिया, बोहरा वंश का एक फूल खिला।
जननी संग दीक्षा ली जिसने, सब मोह ममता को ठुकरावे ।।१।। होऽऽऽ
ज्ञानार्थी और आत्मार्थी बने, स्वाध्याय से स्व-अध्याय किया,
साठ वर्ष तक शासन कर, आचार्य के पद को दिपाय दिया।
भण्डकरण्डक देह जानी, फिर पण्डित मरण को अपनावे ।।२।। होऽऽऽ
ओ वीर शासन के सेनानी, तुमने तो जीवन निखार लिया,
तेरह दिन तप संथार किया, तुमने तो संघ में कमाल किया।
पी. एन. मण्डल अंतरदिल से, श्रद्धा के पुष्प है चढ़ावे ।।३।। होऽऽऽ

—प्रेषक—गौतमचन्द ओस्तवाल, श्रीरामपुरम्, बैंगलोर

जन-जन प्यारा दिव्य दिवाकर

☐ साध्वी सुधा

[महासती श्री यशकंवरजी की शिष्या]

[तर्ज—मिलो न तुम तो]

जन-जन प्यारा, दिव्य दिवाकर छोड़ चला मझधार।
अस्त वह हो गया है २........ ....
तप:साधना अजब निराली, चकित हुआ संसार।
अस्त वह हो गया है २..................
संयम साधना के स्रोत निराले आप थे,
ज्ञान सुधाकर श्रेष्ठ मनस्वी आप थे,
ज्ञान-क्रिया की ज्योति जगाई, महिमा अपरम्पार......।
सत्य अहिंसा का बिगुल बजाया आपने,
स्वाध्याय समता का संदेश दिया आपने,
पावन पथ का पावन राही, सद्गुण का भण्डार........।
समता के सिन्धु, गुरुवर रूपातनुज अभिराम थे,
दिव्य तपोधनी, हस्ती गुरु गुण-धाम थे,
केवल नंदन, दु:ख निकन्दन, जन-जन प्राणाधार... ....।
श्रद्धा-सुमन अर्पित करती, 'सुधा' इस बार है,
मंगल महिमा गाए, वंदन शत-शत बार है,
जिन शासन की दिव्य विभूति, बोलो जय जयकार........।

जय हस्ती-हस्ती गाये जा

□ श्री जवाहरलाल बाघमार

जय हस्ती-हस्ती गाए जा, चरणों में शीश झुकाये जा ।
केवल के लाल निराले है,
रूपा माता के जाये है ।
पीपाड़ नगर सरसाये जा ।।१।। जय हस्ती-हस्ती गाए जा ।
शोभ गुरु ने उपदेश दिया,
झट सयम जा अजमेर लिया ।
तनमन की चिता हटायेजा ।।२।। जय हस्ती-हस्ती गाए जा ।
गुरुज्ञान ध्यान तो खूब किया,
सामायिक स्वाध्याय का उपदेश दिया ।
प्याली जिनवर की पिए जा ।।३।। जय हस्ती-हस्ती गाए जा ।
जीवन में कितनी सरलता है,
अध्यात्म योगी और वक्ता है ।
मांगलिक तो इनका पायेजा ।।४।। जय हस्ती-हस्ती गायेजा ।
गुरुवर हस्ती का नाम रटो,
अज्ञान अंधेर से दूर हटो ।
यह गीत 'जवाहर' सुनाए जा ।।५।। जय हस्ती-हस्ती गाये जा ।

—६, चन्द्रप्पा मुदली स्ट्रीट, मद्रास-७९

कालजयी गुरुदेव तुमको लाखों प्रणाम

□ श्री कस्तूरचन्द बाफना

मृत्युजयी गुरुदेव तुमको लाखों प्रणाम ।
तुमको लाखों प्रणाम ।
लघुवय में लिया महाव्रत धारी,
सत्तर साल की साधना भारी ।
दिव्य गुणों के धारक तुमको लाखों प्रणाम.. ....२
माँ रूपा के तुम नंदन हो,
'केवल' सुत तुमको वंदन हो ।
जिन शासन नायक तुमको लाखों प्रणाम..............२
निमाज शहर रा भाग्य खुलिया है,
तीरथ वणियो गुरु मिलिया है ।
महावीर के लाल तुमको लाखों प्रणाम..............२
मृत्यु से सब ही डरते है,
पर योद्धा निर्भय लडते है ।
कालजयी गुरुदेव तुमको लाखों प्रणाम..............२

—जलगाँव (महाराष्ट्र)

वन्दन सत गुरु चरण में

□ श्री शिरोमणिचन्द्र जैन

हस्तीमल गुरुदेव थे, जग में वंदन योग।
जिनकी कृपा-कटाक्ष से, कटते संशय सोग ॥१॥

तीन लोक के थे धनी, जगत्पति जगदीश।
वंदन सत गुरु चरण में, श्रद्धा से धर शीश ॥२॥

सब सुखदाता थे गुरु, आनंद शक्ति भंडार।
जो ध्याते गुरु चरण को, पाते सुक्ख अपार ॥३॥

हस्ती वचनों की सुधा, करते थे जो पान।
काल-भुजंग की त्रास से, पाते सहज ही त्राण ॥४॥

माह कठिन भव सिंधु में, लहरे उठत गंभीर।
गुरु शरण जिसने गही, वे ही लागे तीर ॥५॥

आठ पहर हिय में करो, हस्ती गुरु का ध्यान।
उस सेवक का होयगा, निश्चय ही कल्याण ॥६॥

सब सुख ताको सुलभ है, जो ध्यावे गुरु नाम।
दुःख-दुविधा लागे नहीं, पावेगा सुख ठाम ॥७॥

परम पुरुष हस्ती गुरु, सच्चिदानंद स्वरूप।
आए जीव उबारने, धर आचारज रूप ॥८॥

प्रभुजी की महिमा अगम, अकथ, अनंत अपार।
विधि हरि हर सुर नर मुनि, कोई न पावे पार ॥९॥

सेवा कुछ भी नही बनी, करूँ आपका ध्यान।
'शिरोमणि' को दीजिए, केवल यह वरदान ॥१०॥

—६/१, न्यू पलासिया, इन्दौर–४५२ ००

गजेन्द्र गुणी गुणवान

□ पं. र. श्री पार्श्व मुनि

गजेन्द्र गणी गुणवान,
कार्य निज कर लीना,
रत्नवंश सर हंस, ममत तन तज दीना।

भेद विज्ञान विशेष विचार्यो।
मन मतंग रा मद ने गार्यो ।।
झील्या ज्ञान समंद समत रस में भीना ।।

अनशन कर आतम बल दाख्यो,
आदर्श अनुपम गणिवर राख्यो।
रुपा सती के नंद, सुधारस तुम पीना ।।

साधक साधना फल संथारो,
आगम में उल्लेख निहारो।
स्थिर रहे रण में, तान के दृढ़ सीना ।।

शोभा गुरु की शोभा साजी,
घट सूँ ज्यांरी कुमती भाजी,
सुजस वा झंकार बाज रही है वीणा ।।

शुभ पारस सग पदम सुहाया,
तुम दर्शन हित सत्वर आया।
पूरी हो गयी आश, हिया में कुछ रीना ।।



जयति हस्ती

□ श्री रामकरण नाहैलिया

चल मनवा डगर, सत्य की ।।

जहाँ है गुरु हस्ति, है महान् विभूति,
चल शरण महावीर की
चल मनवा............।।१।।

जयति रूपा नन्दन, तुम्हें अभिनन्दन,
जो सदा ब्रह्मानन्द, वन्दना कर उनकी,
चल मनवा............।।२।।

सदा बाल ब्रह्मचारी, सर्व जन हितकारी,
अखण्ड तपधारी, वन्दना कर उनकी,
चल मनवा........... ।।३।।

है महान् गुरु हस्ति, है सत्य अनुभूति,
जगत की अनुपम शक्ति,
वन्दना कर उनकी,
चल मनवा............।।४।।

स्वाध्याय पाठ पढ़ाया,
सामायिक सिखलाया,
मैने भी उन्हें ही ध्याया,
वन्दना कर उनकी,
चल मनवा.... ....।।५।।

—छापला-३४२६०१
(जोधपुर) राज.



मानवता के मान थे

☐ श्रीमती हुकमकवरी कर्णावट

गुण के निधान थे, आचार्य महान् थे।
मानवता के मान थे, जैन धर्म की शान थे।

गर्भ में ही पिता सिधाए, माता बनी वैरागी,
बेटे को संस्कारी बना, माँ बेटे ने दीक्षा धारी,
अजमेर में मुनि पद धारा, शोभा गुरु को पाए,
महद् दयालु, परम कृपालु, व्रत-नियम में चट्टान थे ॥१॥

नौ वर्ष की बाल वय से, गुरु सेवा में लीन हुए,
बीस वर्ष की लघु वय में, आचार्य पद आसीन हुए,
शास्त्रों को गुरु ज्ञान सीखकर, कई शास्त्र खुद लिख डाले,
बाल ब्रह्मचारी थे गुरुवर, योगी एक महान् थे ॥२॥

ज्ञान ध्यान में लगे रहे थे, दिन-रात का पता नहीं,
कहाँ उगा, कहाँ अस्त हुआ, खाने का भी पता नही,
अल्प आहारी, बुद्धि भारी, दोष कोई लगा नहीं,
सामायिक स्वाध्याय का नारा, ज्ञान-क्रिया के भान थे ॥३॥

छेला चौमासा किया पाली, निमाज पधारने के कामी,
चोले के दिन किया संथारा, धन्य-धन्य तुम शिवगामी,
निमाज मे आहार नहीं लीन्हा, लीन्हा केवल पानी,
'हुकमकुवर' का वन्दन अभिनन्दन, जगत के तारणहार थे ॥४॥

—३५, अहिंसापुरी, फतहपुरा, उदयपुर

सदा रहे हैं, सदा रहेंगे

□ कविरत्न श्री गौतम मुनि

नाम था जिनका प्यारा हस्ती, जैन जगत् की हस्ती थी ।
रूपा नन्दन, केवल तारे, जीवन में बहु मस्ती थी ।।

पदवी से जितने थे ऊँचे, उससे भी ऊँचा था ज्ञान ।
ऊँची त्याग-तपस्या उनकी, गहरा-गहरा करते ध्यान ।।

कानों से तो सुना, आँख से, पढ़ा 'पत्रिका राजस्थान' ।
नहीं रहे अब पूज्य गजेन्द्र, हुआ निमाज में हा ! अवसान ।।

'नहीं रहे' यह बात जची नहीं, सदा रहे हैं, सदा रहेंगे ।
गुरु की पूजा तब तक होगी, जब तक सूरज-चाँद ढलेंगे ।।

चरम लक्ष्य को प्राप्त करेंगे, प्राप्त करें बस यही कामना ।
जो कुछ भी गर हुई अवज्ञा, 'मुनि गौतम' की क्षमा याचना ।।

—प्रेषक, वैरागी इन्द्रेश कोठारी, हस्तिनापुर

श्रद्धांजलि – सप्तदशी

□ श्री एस. जयसिंह छाजेड़ 'रत्नेश'

श्रमणरत्न इक फिर से छीना, हाय ! काल तू है विकराल ।
कभी दया नहीं आई तुझको, सदा सर्वदा वार कराल ।।१।।

चुस्त बहुत इक्यासी की जो, आयु बड़ी भी पाकर थे ।
आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी, सच्चे जैन सुधाकर थे ।।२।।

केवलचन्दजी पिता आपके, माता रूपा सती न्यारी थी ।
वोहरा वंश के कुल दीपक, नगर पीपाड़ जन्म मंझारी थी ।।३।।

मनमोहन सूरत महान् थी, ज्ञान-ध्यान यम-नियम खान ।
शांत धीर अरु नम्र सरल थी, रत्नवंश जिनशासन शान ।।४।।

आगम रत्नाकर, इतिहास मार्तण्ड, जगत् यशस्वी महिमावान ।
सौभागी गुरु हस्तीमलजी, बने आप अति प्रिय विद्वान् ।।५।।

जैनागम के गहरे ज्ञाता, जादूगर थे वाणी के ।
सामायिक-स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, हितचिन्तक हर प्राणी के ।।६।

जगह-जगह पर घूम-घूमकर, जैन ध्वजा फहराई थी ।
आगम वाणी सत्य सुनाकर, दुनिया सुप्त जगाई थी ।।७।।

उन्नत जीवन हो यह जिससे, ऐसा हो आचार-विचार ।
जगह-जगह पर ऐसा उत्तम, निशदिन करते रहे विचार ।।८।।

जगत निवासी जीवों पर जो, किये आपने है उपकार ।
उनका कुछ भी पार नहीं है, कैसे कोई करे शुमार ।।९।।

दश वर्ष में दीक्षा ले अरु, आचार्य पद वीस वर्ष में धारा था ।
इस युग में यह चमत्कार से, कहिये कैसे कुछ न्यारा था ।।१०।।

मक्खन सा मन कोमल सा तन, निर्मल नयन विरागी थे ।
जब भी जो भी दर्शन करते, समझो वे बड़भागी थे ।।११।।

जो भी दर्शन करने आते, सामायिक-स्वाध्याय प्रेरणा सदैव ।
ज्ञान-चारित्र के प्रबल पक्षधर, मैत्री साधक थे स्वयमेव ।।१२।।

मेरा भी सौभाग्य बडा था, निमाज नगरी पहुँचा उस बार ।
संथारेयुत दिव्यात्मा के, दर्शन अनुपम चरण मझार ।।१३।।

संथारे की अवधि में इक, दृश्य नजर यह आया था ।
नाग ने गुरु दर्शन करके फिर, सादर शीश झुकाया था ।।१४।।

जैनसंघ की शोभा भारी, ऐसी ही थी मुनियों से ।
सचमुच तप-जप सजता है अति, गहरे ज्ञानी गुणियो से ।।१५।।

संथारा करके स्वर्ग लोक में, जाकर उनने किया निवास ।
दो हजार अड़तालीस का हा ! कैसा आया बैसाख मास ।।१६।।

"रत्नेश" चरण कमल में उनके, रखता है ये श्रद्धा फूल ।
देवलोक में बैठे भी वे, करे प्रेम से इन्हे कबूल ।।१७।।

—संयोजक, श्री वर्धमान जैन स्वाध्याय संघ, समदड़ी-३४४०२१

□ □ □

गुरु हस्ती ज्ञाता ज्ञानी थे

□ श्री गौतमचन्द ओस्तवाल

(तर्ज—जीवन उन्नत करना चाहो तो, सामायिक साधन करलो)

गणिवर उत्तम थे श्रमण श्रेष्ठ, गुरु हस्ती ज्ञाता ज्ञानी थे।
था गहन ज्ञान श्रुत आगम का, गुणियों में जो अगवानी थे ।।टेर।।

पीपाड ग्राम में जन्मे थे, बोहरा कुल को उजवाल दिया।
माता रूपा के प्रिय अंगज, महामानव बन जग नाम किया ।।
केवलचन्द नन्दन तुम तो, मुनि चर्या में लासानी थे ।।१।।

सत्तर की थी शुक्ल दूज, माघ मास संयम धारा।
शिष्य कुशल थे रत्नवंश के, शोभा से जीवन तारा ।।
कोमल नवनीत से दृढ़ता में, चट्टान से निरअभिमानी थे ।।२।।

साध्वाचार उत्तम पाला, ईकोत्तर वर्ष दीपाय दिया।
लघुवय में गणि पद पाकर के, जिनशासन को चमकाय दिया ।।
निज आतम के अवलोकन में, बिताते जो जिन्दगानी थे ।।३।।

थे सरल शान्त विनम्र गुणी, देखा नहीं किणारा भी दूषण।
थे भूधर, कुशल, रत्न वंश के, निर्ग्रन्थ मुनि मण्डल भूषण ।।
निज अनुभव के ज्ञानावल पर, मौलिक इतिहास रचाये थे ।।४।।

थी उम्र इक्यासी वरस की, जिनशासन खूब दीपाया था।
महावीर से गणि हस्ती पद तक, इक्यासीवां पाट निभाया था ।।
संवत् सैतालिसे पाली में, अन्तिम चौमासा ठाये थे ।।५।।

दो हजार अड़तालीस को, निमाज ग्राम के प्रांगण में।
वैशाख सुदी आठम दिन को, संथारा सीजा रवि क्षण में ।।
श्रद्धाजलि पुष्प 'गौतम' धरे, भवसागर तारक नामी थे ।।६।।

—मनीष गारमेन्टस्, ५२२-ए-वी, १०वीं मेन रोड,
II ब्लॉक, राजाजी नगर, बंगलौर-५६००१०

हस्तीमल महाराज !

□ खटका राजस्थ

जैन जगत नित कर रहा, अविरल जिन पर नाज ।
त्याग तपस्या के धनी, हस्तीमल महाराज ।।

चर्चा जिनकी देश में, गाँव गली घर आज
जन-जन के अन्तर वसे, हस्तीमल महाराज

सवके वनकर के रहे, माने सकल समाज ।
हे ! धन्य-धन्य तपमूर्ति, हस्तीमल महाराज ।।

जग को नित ऐसे लगे, तारण तिरण जहाज
सवके मन को भा गये, हस्तीमल महाराज

अल्प आयु में आपने, सुन मन की आवाज ।
महावीर पथ पर चले, हस्तीमल महाराज ।।

मोहित सवको कर गया, जीवन का अन्दाज
स्मृति जिनकी शेप अव तो, हस्तीमल महाराज

चरण धूल छू आपकी, गद् गद् हुआ निमाज ।
थामे पग छोड़े नही, हस्तीमल महाराज ।।

संथारा धारण किया, खोला जीवन-राज
क्षमा भाव धारण किया, हस्तीमल महाराज ।

अमर हुए 'शशिकर' मुनि, टूटी मन पर गाज ।
पंच तत्त्व में खो गये, हस्तीमल महाराज ।।

—कवि कुटीर
विजय नगर (अजमेर)

हस्ती गणि गुणधारी

□ श्री राजमल ओस्तवाल

(तर्ज :—षट्कर्माराधन री करो कमाई)

न्य हो गये हस्ती गणि गुणधारी, जिन शासन में श्रमण श्रेष्ठ व्रतधारी ।
वल नन्दन बोहरा कुल के उजियारे, जन्मे पीपाड़ में रूपा माँ के प्यारे ।
गणीसे सतसठ विक्रम संवत् आया, पौष चाँदनी चवदस हर्ष बधाया ।
रुधर के धोरी संत रत्न सुखकारी, धन्य हो गये........ ॥१॥

त संघ के संत विचरता आया, जिनवाणी ज्ञानामृत था बरसाया ।
चन-सुधा कर पान जगे द्वय प्राणी, मुनिचर्या ले लेना दिल में ठानी ।
ग, जड़ पुद्गल, ममता ने ठोकर मारी, धन्य हो गये........ ॥२॥

घ शुक्ल की दूज सितत्तर वर्षे, माँ रूपा, नन्दन हस्ती हिवड़ा हर्षे ।
भा गुरु के श्रीमुख से दीक्षा धारी, माँ बेटा दोनों बन गये महाव्रतधारी ।
ती कटरा अजमेर नगर सुखकारी, धन्य हो गये........ ॥३॥

नयमूल जिनधर्म मंत्र अपनाया, आगम ज्ञान सीखण में ध्यान लगाया ।
द वर्ष में लघुमुनि बन गये ज्ञानी, शोभा गुरु सोचे होनहार यह प्राणी ।
वी संघ नायक हस्ती बने, मनधारी, धन्य हो गये........ ॥४॥

मावस सावण साल तयांसी आया, शोभा गुरुवर जोधाणे स्वर्ग सिधाया ।
न चतुर्विध मिल यह निर्णय कीना, संचालन गुरुत्तर भार स्वामीजी को दीना ।
ण चादर ओढ़ाणी बात विचारी, धन्य हो गये........ ॥५॥

खातीज सितयासी जोधाणा मांई, हस्ती मुनिवर आचारज पदवी पाई ।
रत्न हीरा पहिचान गुरु जो कीनी, जिणने तो सांची आप चौगुणी कीनी ।
न मारग सूरा रत्न त्रयी के धारी, धन्य हो गये........ ॥६॥

जस्थान, यू. पी., दिल्ली, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र अरु तेलंगाना ।
..., तामिलनाड, गुजरात विचरिया, सामायिक स्वाध्याय करो उच्चरिया ।
धर्म के रसिक बने नर नारी, धन्य हो गये........ ॥७॥

ापरक सत्त तथ्य का शोधन करके, जैन धर्म इतिहास लिखा श्रम करके ।
जैन समाज रहेगी ऋणी तुम्हारी, समिति-गुप्ति शुद्ध पालक समता धारी ।
पल जागृत अप्रमत्तपणा था भारी, धन्य हो गये........ ॥८॥

क्त के वश सहा परिषह भारी, पर निमाज पधारे करुणा धारी ।
... अवसर जाण संथारा धारे, इक्कीस चार इकराणु स्वर्ग सिधारे ।
महाश्रमण थे आप धन्य बलिहारी, धन्य हो गये........ ॥९॥

न व शिक्षा आप तणी अवधारे, जिन शासन सेवा संघ व्यावस्था सारे ।
आत्मोन्नति में लगें सभी नर नारी, तस संघ राष्ट्र में सम्प प्रेम रहे भारी ।
... की श्रद्धाञ्जलि लो स्वीकारी, धन्य हो गये........ ॥१०॥

—Bokdiya Mension, 3, Erulappan
Street, Sowcarpet, Madras-600079

मुकुटमणि है जैन जग रा सितारा

☐ श्री जीतमल चोपड़ा

(तर्ज—मीठा, मीठा, मीठा, ज्यूँ अमृत प्याला मा.)

जय जय जय म्हारा हस्ती गुरु की वोलो सा।
जाय विराज्या मुक्ति महल में ॥ जय ॥टे

शासन रा अधिष्ठाता विनती स्वीकारो सा,
चिर शान्ति दीजो गुरुदेव ने ॥ जय ॥

थाँरा ही शासन की एक जगमग ज्योति है,
खूब ही दीपायो जिन धर्म ने ॥ जय ॥

हस्ती गुरु सो सन्त फेर हुये नहीं, होवेला,
श्रमणां री माला मे मोटी मणि ॥ जय ॥

रूपांदे रो लाल केवल कुल उजियारो सा,
सफल वनाई मानव देह ने ॥ जय ॥

मुकुटमणि है जैन जग रा सितारा सा,
शोभा री दीपाई गादी जोर सूँ ॥ जय ॥

श्रमण संघ रा सहमंत्री, उपाध्याय प्यारा सा,
आज आचार्य हा रत्न वंश रा ॥ जय ॥

तिरण तारण जहाज, आज पार लागी सा,
खूव संभाली पतवार ने ॥ जय ॥

हस्ती री मस्ती रो कोई पार नही पायो सा,
संथारो लेतां ही हँसिया जोर सूं ॥ जय ॥

आज म्हारा जीवन री साध पूरी होवे है,
पार लगाइजो दीनानाथ जी ॥ जय ॥

धन्य धन्य श्रावक तेजराज सा भण्डारी ने,
सेवा सव कीनी दिल खोल ने ॥ जय ॥

...त मरण ऐसो विरलाही पावे सा,
साधना रो धणी झून्यो शान सूं ॥ जय ॥

शिव रमणी रा नाथ मुक्ति महल मांही जाजो सा,
"जीत" रे माथे रखजो हाथ सा ॥ जय ॥

—लाखन कोटड़ी, ...

गुरु चरणों में भाव-भीनी वंदना

☐ श्री मोहनलाल देशलहरा

श्री वीतराग को नमन कर, श्रद्धा के पुष्प चढ़ाऊँ ।
उन्हीं पथ पर चलने वाले को, मैं नित्य शीश झुकाऊँ ॥
हस्ती नाम की ज्योति जली थी, पीपाड़ शहर के मांय ।
इस ज्योति ने दीप जलाया, हर ग्राम नगर के मांय ॥
मरुधरा के श्री केवलजी ने, देखो कैसी ज्योति जलाई ।
माता रूपा सती ने अपनी, कूख से क्या माया बरसाई ॥
आकर दुनिया में गुरुवर ने, सच्चा मुनि धर्म निभाया था ।
सत्य की ज्योति जलाने को, स्वाध्याय सन्देश सुनाया था ॥
पहले निज आत्मतत्व जगा, चले संसार जगाने को ।
सत्य, अहिंसा का दीपक, घर-घर में चले जलाने को ॥
थे त्याग-तपस्या की मूर्ति, मन में उपकार समाया था ।
लोहे से कुन्दन बना दिया, जो सम्पर्क में आया था ॥
बिना भेद-भाव के गुरुवर ने, था अमृत सबको पिला दिया ।
अपनी भक्ति की शक्ति से, संसार मात्र को हिला दिया ॥
स्नेहमयी अमृत वाणी, सच्ची सीधी बतलाते थे ।
जो आते खाली हाथ लिये, झोली भर-भर ले जाते थे ॥
जहां पग धरा महापुरुष ने, धरा का भाग्य बदल गया ।
दानव को मानव में बदला, विष को अमृत कर गया ॥
तेजोमय आभा के आगे, रवि-मण्डल भी शरमाता था ।
जो भी शब्द निकला मुख से, वही पूर्ण हो जाता था ॥
ऐसी मधुर मनोहर बोली, जो सुनता हर्षाता था ।
दिव्य तेज कुछ ऐसा था, नाथ नरेन्द्र झुक जाता था ॥
ज्ञान चरित्र की गंगा से, पापी के पाप भी धुल जाते ।
महामुनि थे महागुणी, महिमा जिनकी सुरेन्द्र गाते ॥
जैन बौद्ध हिन्दू व मुस्लिम भी, एकत्रित हो आये सिक्ख ईसाई ।
हे आगम ज्ञाता ! तेरी मृदु वाणी ने, जन्म-जन्म की नींद जगाई ॥
हस्तीमलजी, धन्य तुम्हारा हो गया चिन्तन ।
धन्य तुम्हारी भारत भू को, एक अनोखा हो गया सिन्चन ॥
हो गया पथिक तुम्हारे, पद चिह्नों पर चल कर ।
दिव्य आलोक तुम्हीं ने, दीप-शिखा सा जल कर ॥

सन्त-शिरोमणि

□ श्रीमती चन्दनबाला 'मारू'

संत सूर्य को देखो मुख पर, कैसी शोभित शान है,
सामायिक स्वाध्याय करो नित, गुरु हस्ती फरमान है।
यह गुरु हस्ती का गान है ।।

खिलता बचपन रग लाया, और माता संग संयम धारा,
वय किशोर आचार्य बना, पीपाड़ नगर का यह तारा।
नागराज झोली में धर बना, यह करुणा का निधान है,
ज्योतिर्धर नक्षत्र बना, किया जन-जन का उत्थान है।
यह गुरु हस्ती... ....

क्रोध लोभ था दूर सदा जहाँ, मोहभाव सुदूर था,
मान डरा, मिथ्यात्व भगा, घट दयाभाव भरपूर था।
राग-द्वेष पा सके न प्रवेश, मुख पर वह मुसकान है,
उदय अस्त समभाव मुखी का, समताऽऽ देश महान् है ।।
यह गुरु हस्ती........

माला कर में, ध्यान से ताले, लगा दिये थे पापों के,
मौन भाव प्रधान रखे, थे टीकाकार आगमों के।
त्यागी साधक और आराधक, मरुभूमि का मान है,
साधना स्वाध्याय करो, यह गुरु का फरमान है ।।
यह गुरु हस्ती... ....

उग्र विहारी गुरु बलिहारी को, शत शत प्रणाम है,
किया निमाज निराहार वास, बस पहुँचे शिवपुर धाम है।
शुद्ध भावों से संथारा धर, पंडित मरण सुकाम है,
चरणों मे नित वन्दन 'चन्दन' वालाएँ नर-नार है ।।
यह गुरु हस्ती.......

—उदयपुर (राज०)

काव्यांजलि | □ छंदराज पारदर्शी

(घनाक्षरी छन्द)

गुरु हस्ती हैं महान्, अन्तिम समय जान,
आत्म-साधना में लीन, नवकार ध्यान है।
सन् उन्नीसौ इक्याणु, बारह अप्रैल गुरु,
तिविहार संथारे का, किया पच्चक्खान है।
धन्य नगर निमाज, शोकाकुल है समाज,
इक्कीस अप्रैल गुरु, छोड़ा ये जहान है।
आचार्य हस्तीमल के, प्रमुख दो फरमान,
'पारदर्शी' सामायिक, स्वाध्याय महान् है।

[२]

जागती ये ज्योत जले, किये कई काम भले,
जयपुर, जलगाँव, इन्दौर गवाही है।
प्रबल प्रहरी बन, बढ़ाया जिन-शासन,
सत्य-प्रेम व अहिंसा, शान्ति समझाई है।
खुला बगीचा था प्यारा, हस्ति गुरुजी हमारा,
अन्धकार में प्रकाश, किरण फैलाई है।
'पारदर्शी' का नमन, गुरु हस्ती के चरण,
सिद्ध-क्षेत्र श्रद्धा-पुष्प-माल पहुँचाई है।

—२६१, ताम्बावती मार्ग, उदयपुर

हे महाभाग ! | श्री प्यारेलाल फूलचन्द मूथा (भंडारी)

पूजवर ! हमको छोड़कर, कर गये महाप्रयाण,
हा ! हा ! गुरु हस्ती बिना, जिन-जग है निष्प्राण।
कद छोटा पर गुण वृहद्, केवल रूपा पूत,
दे न सके पीपाड़ अब, ऐसा सन्त सपूत।
क्या भूलें हमसे हुई ? छोड़ गये मझधार,
हे महाभाग ! वियोग में, दुःख का आर न पार।
संघ, 'प्यारा' परिजन करें, श्रद्धांजलि अर्पण,
सामायिक, स्वाध्याय है, अमर आत्म दर्पण ।।

C/o मगनमल चुन्नीलाल मूथा, तखतमल ऐस्टेट्स
अमरावती-४४४६०१ (महाराष्ट्र)

अद्भुत आत्मशक्ति के धारी

□ प्रिय सुशिष्य पं. र. श्री उदयमुनिजी म. सा.

[तर्ज—मोहन गारो जी........ ....]

वहुश्रुत धारीजी, पूज्य हस्तीमलजी पर उपकारीजी ।।टेर।।
पौष सुदी चवदस दिन आयो, हुए आप अवतारीजी ।
उन्नीसौ सड़सठ मे जन्मे, आनन्द भारीजी ।।१।।
पिता आपके केवलचन्दजी, रूपादेवी महतारीजी ।
वोहरा गोत्र है उज्ज्वलवंशी, महिमा न्यारीजी ।।२।।
उन्नीसो सितन्तर आया, माघ महीना भारीजी ।
शुक्लपक्ष की दूज अनोखी, दीक्षा धारीजी ।।३।।
जैनाचार्य श्री शोभाचन्दजी, महिमा जिनकी भारीजी ।
अजमेर में गुरु भेटिया, जगहितकारीजी ।।४।।
उन्नीसौसित्यासी मांही, आचार्य पद पायाजी ।
आखातीज को सुन्दर मुहूर्त, जन हर्षायाजी ।।५।।
जोधपुर मे वने आचार्य, ज्ञान आराधन कीनाजी ।
स्थान-स्थान पर कृपा करके, विचरण कीनाजी ।।६।।
सहज स्वभावी ओजस्वी थे, पूज्यवर गुण भंडारीजी ।
तेज पुंज मुखमुद्रा आपकी, मोहन गारीजी ।।७।।
प्रातःकाल से शयनकाल तक, अध्ययनरत रहते जी ।
ध्यान मौन की विशिष्ट साधना, हरदम करते जी ।।८।।
सामायिक स्वाध्याय का नारा, घर-घर आप गुंजायाजी ।
अद्भुत आत्मशक्ति के धारी, जगत लुभायाजी ।।९।।
सूत्रों की टीकाएँ कीनी, आगम के अनुसारी जी ।
साहित्य का सृजन कीना, सव हितकारी जी ।।१०।।
कव तक महिमा गाऊँ पूज्यजी, एक जीभ म्है मारीजी ।
गुण का सागर आप पूज्यजी, महिमा भारीजी ।।११।।
इक्कीस अप्रैल दिन आयो, रविवार दुःखदायी जी ।
उन्नीसौ इकाणवे में पूज्यवर, गये छिटकाई जी ।।१२।।
सकल संघ में शोक छा गयो, विलख रहे सव भाईजी ।
नीमाज शहर से स्वर्ग सिधाये, सव छिटकाई जी ।।१३।।
'उदयमुनि' गुरुवर की कृपा, गुण वर्णन तो कीना जी ।
श्रद्धा-भाव के सुमन वनाकर, अर्पण कीना जी ।।१४।।

वंदन है गुरु अभिवंदन है | □ श्री विपिन जारोली

वन्दन है, गुरु अभिवन्दन है।
सम्यग्ज्ञान प्रसारक हस्ती ! स्वीकारो श्रद्धा-अर्चन है।
वन्दन है, गुरु अभिवन्दन है।

श्रमण संस्कृति के उन्नायक।
जिनवाणी के हे चिर गायक।
वीर जिनेश्वर-पथ अनुगामी, संयम-आराधन जीवन है।
वन्दन है, गुरु अभिवन्दन है।

संघ-ऐक्य के रहे समर्थक।
सहे परिषह अगणित अनथक।
समता साधक ! धन्य तुम्हारा, संथारायुत श्रेष्ठ मरण है।
वन्दन है, गुरु अभिवन्दन है।

पूज्य तुम्हारे थे फरमान।
सामायिक-स्वाध्याय महान्।
इतिहासों के चिर पृष्ठों पर, अंकित उज्ज्वल तव जीवन है।
वन्दन है, गुरु अभिवन्दन है।

—कानोड़-३१३६०४ (उदयपुर)

वह मनुज देवता... | □ श्री जितेन्द्रकुमार सुराणा

वह मनुज देवता, इस दुनिया को, छोड़ अचानक चला गया।
लाखों को मंगल मानवता का, मंत्र सिखाकर चला गया।।

आते जीवन-क्षण कभी-कभी, अवसर को मोती मिले तभी।
वह प्रतिपल सुन्दर अभिनव था, उसको जीने का अनुभव था।।
करुणा का स्रोत बहा कर के, अनगिन आँखों मे समा गया।
वह मनुज देवता, इस दुनिया को, छोड़ अचानक चला गया।।

खिल मुरझा जाते फूल यहाँ, सबको सौरभ अनुकूल कहाँ।
उसने सबकुछ था बांट दिया, औरों का दु ख-सुख सदा पिया।।
जो नही एक का इस दुनिया में, सबका होकर चला गया।
वह मनुज देवता, इस दुनिया को, छोड़ अचानक चला गया।।

श्रमशील रहा वह जीवन भर, कोमलता से अनुप्राणित स्वर।
चलना न उसे भाता मंथर, विषपायी था वह शिवशंकर।।
वह श्रद्धा और समर्पण का, ज्योतिर्मय दीपक जला गया।
वह मनुज देवता, इस दुनिया को, छोड़ अचानक चला गया।।

—२०५, रश्मि अपार्टमेंट, शान्तादेवी रोड, नवसारी (गुजरात)

हस्ती, तुझ सी हस्ती जग में

□ श्री नथमल लूणिया

हस्ती, तुझ सी हस्ती जग में, विरल, कदाचित ही आती ।
जन-जन की जड़ता को हर, जो जीवन सफल बना जाती ॥

पूज्य, तुम्हारी पुण्य-पताका, अजर अमर हो फहरेगी ।
अध्यात्म-जगत् जर्रे-जर्रे में, ज्ञान-ज्योति सी लहरेगी ॥

संयम-पथ पर निश्चल, निर्भय, बढ़े तुम्हारे चरण सदा ।
हित, मित, ऋत जीवन का संबल, ऋजुता-मृदुता भरी अदा ॥

मोहक छवि, चंदन सी सौरभ, लिये कांति, रवि की स्वर्णिम ।
था विशिष्ट व्यक्तित्व तुम्हारा, सहज, सरल वाणी मधुरिम ॥

प्रवचन मिस साहित्य सृजन, इतिहास रचा जैनीजम का ।
आगम की टीकाएँ अभिनव, भेद खुला जड़-जगम का ॥

सामायिक, स्वाध्याय समर्थक, प्रेरक बन परमारथ के ।
सप्त-दशक लग बने रहे तुम, संत-शिरोमणि भारत के ॥

ध्यान-मौन, जप-तप के साधक, आत्मबली, दृढ़-आचारी ।
श्रेयंकर, पंडित, पारंगत, अमित-गुणी हे ! अविकारी ॥

सांसों की सीमा समीप लख, लिया संथारा, विरल, अलभ ।
जीवन तो था धन्य सदा ही, मरण बना, उत्सव अनुपम ॥

-सुमन, दिवंगत गुरुवर, हैं अर्पित, कर लो स्वीकार ।
क, भटक, भव-अटवी, हारा, अब हो मेरा भी निस्तार ॥

—नवरंग, लालजी मार्केट, पटना–४

तेरे दर्शन थे महान् !

□ श्री आर. के. जैन

नमन करें कर जोड़ के सारे, आचार्य हस्तीमल गुण की खान ।
तेरे दर्शन थे महान् ।।
क्षमा के सागर, ज्ञान उजागर, शीतल शशि समान ।
तेरे दर्शन थे महान् ।।
धर्मवीर श्री केवलचन्दजी पिता तुम्हारे,
श्रीमती रूपादेवी माता के नयन सितारे ।
राजस्थान देश "पीपाड़ नगर" प्यारे,
गुण गाते हैं जन-जन सारे ।
इसी धर्म भूमि का आचार्यजी ने बढ़ाया गौरव मान ।
तेरे दर्शन थे महान् ।।
संसार की माया नश्वर जानी,
लघु आयु में दीक्षा धारी ।
गुरु मिले थे ज्ञानी ध्यानी,
अमृत सम थी जिनकी वाणी ।
आचार्य श्री शोभाचन्द गुरु पाकर,
आचार्य श्रीजी ने दिपाया धर्म महान् ।
तेरे दर्शन थे महान् ।।
गम्भीर गुण की खान तुम्हीं थे,
भवी जनों के प्राण तुम्हीं थे ।
पतितों के पतवार तुमी थे,
संत समाज के आधार तुम्हीं थे ।
तेरी शिक्षाओं से हुआ था, जन-जन का कल्याण ।
तेरे दर्शन थे महान् ।।
जन मानस को तुम जगा रहे थे,
जिन शासन को तुम दीपा रहे थे ।
पाठ प्रेम का पढ़ा रहे थे,
संदेश धर्म का सुना रहे थे ।
'राज' प्रधान ने लीनी तेरे चरणों की शुभ आन ।
तेरे दर्शन थे महान् ।।

—प्रधान, हरियाणा हिंसा विरोध समिति
४/५११, जैन स्ट्रीट, जीन्द शहर (हरियाणा)

दिव्य विभूति थे

☐ प. र. श्री जीवन मुनिजी

आचार्य प्रवर संघनायक होकर भी, विनय विनम्रता की दिव्य मूर्ति थे।
ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, तप, संयम की, एक दिव्य विभूति थे ।।
बीसवीं सदी के इस युग पुरुष की, महिमा अपरम्पार है।
गुरु ! गुरुपदधारी होकर भी, सचमुच लघुता की प्रतिमूर्ति थे। ☐

वह तो अखण्ड ज्योति

☐ श्री नवरत्नमल जैन

[तर्ज—ओ दूर के मुसाफिर………………]

श्रद्धांजलि है गुरुवर, चरणों मे अब तुम्हारे रे।
चरणों में अब तुम्हारे, है जिन जगत के तारे ।।टेर।।

८१ वर्ष पहले थी शुभ घड़ी वो प्यारी।
जब फूल इक खिला था, खुश मात रूपा प्यारी ।।
केवल का वह दुलारा था, जिन जगत् का तारा रे ।।१।।

शोभा गुरु से दीक्षा, पाकर बने मुनिवर।
उन्नीस वर्ष की वय मे बन गये गणिवर ।।
शासन को यों दिपाया, अचरज करे जमाना रे ।।२।।

अंधों को दे दी तुमने, आँखे है दीन-बन्धु।
उस नाग को बचाया, ले झोली करुणा सिंधु ।।
जो आया तेरे द्वारे, खाली ना लौट पाया रे ।।३।।

स्थावर को भी सताना, तुमने था पाप माना।
फिर क्यों रुलाके, हमको यों हो गये रवाना ।।
सूनी पड़ी ये बगिया, आंगन हुआ विराना रे ।।४।।

जब कोई दर्श तेरे, करने को द्वार आता।
करता है क्या सामायिक, बस प्रश्न एक पाता।
वो मीठा प्यारा सपना, दुःख का बना तराना रे ।।५।।

कहता है कौन मेरे, गुरुदेव चल गये हैं।
तन जल गया भले ही, दिल-दिल मे बस गये हैं।
वह तो अखण्ड ज्योति, बुझ ना सके बुझाये रे ।।६।।

ये डब डबाई आँखे, आँसू भरी निगाहे।
खोजे तुझे है गुरुवर, अब दर्श कैसे पाये ।।
'नवरतन' की तमन्ना, गुरु मुक्ति महल पाये रे ।।७।।

—बम्बई

सादर नमन···वन्दन···अभिनन्दन !

□ श्री ज्ञानेन्द्र बाफना

लाखों भक्त जिसके दृष्टिपात से निहाल हो गये,
हजारों कार्यकर्ता जिसकी प्रेरणा से सदैव शासन सेवा में समर्पित हो गये,
सैंकड़ों स्वाध्यायी सैनानी जिसके दिव्य संदेश से संघ सेवा में जुड़ गए,
अनगिनत भावनाशील श्रद्धालु श्रावक जिनके स्मरण मात्र से
दिव्य आनन्दानुभूति करते,
उन महामनीषी अकारण करुणाकर,
आचार्य गुरुदेव के चरणों में
सादर नमन····वन्दन····अभिनन्दन !

मां रूपा जिस लाल को जन्म दे, निहाल हो गई,
पिता केवल जिसके पिता हो, सदा-सर्वदा यशस्वी हो गये,
पीपाड़ नगर जिनकी जन्मभूमि बनकर इतिहास में अमिट स्थान पा गया,
जिन्हें शिष्य बना पूज्य गुरुवर्य शोभा शोभायमान हो गये,
जिनके आचार्य पद पर आसीन होने से
आचार्य पद व परम्परा गौरवान्वित हो गई,
जिन संत रत्न के आदर्श संयमी जीवन से
जिनशासन विभूषित हो गया,
जिनके विमल प्रताप से रत्नवंश महिमामंडित हो गया,
जिनका शिष्यत्व ग्रहण कर, लाखों भक्त धन्य हो गये,
जीवन के उन अनूठे कलाकार, संयम के साकार स्वरूप,
सहज शान के धारक, अनन्त पुण्य के धनी,
उन पूज्यपाद गुरुवर्य के वियोग से
आज चतुर्विध संघ श्रीहीन हो गया।

पूज्य देव !
आपना विमल संयमी जीवन,
आपका अदृष्ट पूर्व समाधिमरण,
आपकी अजस्र प्रबल-प्रेरणायें,
हमारे जीवन को सदैव प्रशस्त करती रहे,
संघ-सेवा की ओर सदैव समर्पित करती रहें,
इस कामना के साथ····
सादर नमन ···वन्दन ···अभिनन्दन !

उपाध्यक्ष, अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ,
सी-५५, शास्त्रीनगर, जोधपुर-३

सांवरिया गुरुदेव !

□ श्री घीसूलाल बाघमा

म्हारे सांस सांस में बोले रे सांवरिया गुरुदेव ।
ओ परबत है राई रे ओले रे, गुणा दरिया गुरुदेव ।।१।।

निजर पसार निहारूँ, सामा ऊभा दीखे म्हारा गुरुदेव ।
पल-पल विष मे अमृत घोले रे सावरिया गुरुदेव ।।२।।

वात-वात मे, शब्द-शब्द में, सुशिक्षा देवे गुरुदेव ।
म्हारे घूमे ओले देले रे, सांवरिया गुरुदेव ।।३।।

कान लगाकर सुनो तो हर स्वर में गूंजे गुरुदेव ।
म्हारा अन्तर पट खोले रे, सांवरिया गुरुदेव ।।४।।

आँख मूंद कर ध्यान धरूँ तो घर में बैठा गुरुदेव ।
म्हारो मायलो मन टटोले रे, सांवरिया गुरुदेव ।।५।।

समय-समय पर सावधान भी करता म्हारा गुरुदेव ।
हेलो देवे सामायिक स्वाध्याय करो, सांवरिया गुरुदेव ।।६।।

मै गुरुदेव मे रम जाऊँ, मोक्ष में विराजे गुरुदेव ।
घीसूलाल कोसानावाला जोड़ करी, विनती सांवरिया गुरुदेव ।।७।।

नीमाज री नगरी में देवलोक हुआ म्हारा गुरुदेव ।
घीसूलाल री आ आस है, भव भव मे मिलजो ऐसा गुरुदेव ।।८।।

—५६/२, आदिप्पा नाइकन स्ट्रीट, साहूकार पेट, मद्रास-७९

मृत्युंजय थे

□ श्री चम्पालाल चौरड़िया

मृत्युंजय थे, जीत लिया तुमने मृत्यु को,
मर कर भी तो बसे हुए, जन-जन के मन मे ।
ज्योतिर्मय थे, ज्योति में तुम लीन हो गए,
फिर भी नव प्रकाश भर दिया जन-जीवन में ।।

—चौरड़िया भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

दो प्रणाम कविताएँ :

हे महामानव शत-शत प्रणाम !

☐ कविता डागा

मुक्त हुए नही कर्मो से,
ना पाया हमने मोक्ष-धाम,
हमें मझधार में छोड़ गुरुवर,
आप पधारे मुक्ति-धाम,
हे महामानव शत-शत प्रणाम ।
त्याग मार्ग पर अग्रसर थे तुम,
तेरे ज्ञान-दर्शन थे महान् ।
तुम्हारे चरित्र की ज्योति,
नभ में चमकती सूर्य समान ।
हे महामानव शत-शत प्रणाम ।।
ओजस्वी मुख तेरी मीठी वाणी,
देती है सन्देश महान् ।
हस्ती गुरु की दिव्य ज्योति से,
मिला ससार को दिव्य ज्ञान ।
हे महामानव शत-शत प्रणाम ।।
दया की मूरत, हँसमुख सूरत,
प्यार की थी मधुर मुस्कान ।
शासनप्रिय और सेवाभावी,
तेरा था पथ दर्शन महान् ।
हे महामानव शत-शत प्रणाम ।।
छोटा कद, विलक्षण बुद्धि,
देती रही संदेश महान् ।
अद्भुत साधना तेरे जीवन की,
राह बताती हमें मोक्ष-धाम ।
हे महामानव शत-शत प्रणाम ।।
जन्म लिया पीपाड़ शहर में,
निमाज चुना तूने मुक्ति धाम ।
माँ-बाप का नाम किया उजागर,
'कविता' पाया जीवन में अमिट नाम ।
हे महामानव शत-शत प्रणाम ।।

–द्वारा पारसमल डागा, २०५५, हल्दियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

आपको मेरा कोटि प्रणाम

☐ श्री महावीर प्रसाद जैन

हे योगीश्वर ! हे ज्योतिर्धर ।
हे पूज्यवर हस्ती गुरुराज ।
आपको मेरा कोटि प्रणाम ।
आप थे त्यागी संत सुजान,
आप थे तप के सूर्य महान्,
दु:खी विश्व में सुख बरसाने,
फिर आओ हे दया-निधान ।
आपकी कृपा दृष्टि पाकर प्रभु,
फूटे बांझ वृक्ष में आम,
आपको मेरा कोटि प्रणाम ।
सामायिक का महत्त्व बताकर,
स्वाध्याय का नाद गुंजाकर,
कल्पवृक्ष थे आप इस युग के,
चले गये अमृत बरसाकर ।
वीतराग यौवन में होकर,
अहिसा का वरदान संजोकर,
दिव्य ज्योति को किया प्रकाशित
मानव मन का कलमष धोकर ।
जन-जन के अन्तर्यामी थे,
परहित कारक, आप निष्काम,
आपको मेरा कोटि प्रणाम ।
इस श्रद्धांजलि अवसर पर वंदन,
करके करता हूँ अभिनन्दन,
गन्ध आपके उपदेशों की,
घर-घर फैले जैसे चन्दन ।
धन्य धरा पीपाड़ शहर की,
गुरुवर ने जहाँ जन्म लिया,
धन्य हुआ निमाज ग्राम,
गुरु ने महाप्रयाण किया ।
परसा जिसने तव चरणों को,
हुए पंथ वे ललित ललाम,
आपको मेरा कोटि प्रणाम ।

—श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान
ए. ९, साधना भवन
बजाज नगर, जयपुर-३०२०१

ॐ जय हस्ती गुरुवर

□ श्री मनमोहनचन्द्र बाफना

ॐ जय हस्ती गुरुवर, प्रभु जय हस्ती प्रभुवर।
जो कोई शरण में आये, भव-भव तिर जाये॥
बाल ब्रह्मचारी गुरु, रूपा के जाये ॥स्वामी॥
केवलजी के नन्दा, शोभा गुरु पाये॥१॥
ये महान् अतिज्ञानी, दिव्य प्रभा चमके॥स्वामी॥
लघु वय में गणी बनके, पा रत्नत्रयी दमके॥२॥
स्वाध्याय का शंख बजाते. अलख जगा भारी॥स्वामी॥
सामायिक करवाते, जन-जन बलिहारी॥३॥
करुणा सागर, गुण रत्नाकर, छत्तीस गुण धारे॥स्वामी॥
धर्म देशना देते, जिन शासन प्यारे॥४॥
धन्य-धन्य निमाज गाँव ने, चरण कमल पाये॥स्वामी॥
आत्म-रमण में निश्चल, शिवपुर पथ पाके॥५॥
अद्भुत आतम योगी, अन्तरमुखी बन के॥स्वामी॥
अतिशय अनुपम धारी, पावापुरी बन के॥६॥
गुरु अनन्त उपकारी, महिमा अति भारी॥स्वामी॥
जो नर ध्यान लगाये, शाश्वत शुभकारी॥७॥
विरल विभूति गुरुवर, महापुरुष भगवन॥स्वामी॥
'मनमोहन' मन चित्त से करो लाखों वंदन॥८॥

—जैन सदन, १२८/९७६, H-२, किदवई नगर, कानपुर

इस युग के थे सन्त महान्

□ श्री सौभाग्यमल जैन

जय-२ गजेन्द्र, जय-२ गुरु हस्ती, इस युग के थे सन्त महान्,
हम सब जन मिल करके करते हैं तेरी महिमा का शुचिगान।
तुम थे करुणा के सागर, थी करुणा जग का अनुपम प्राण,
तेरे फरमानों में झलकत, जन-जन का शाश्वत कल्याण।
जब तक सूर्य चंद्र है जग में, जब तक अमर तुम्हारा नाम,
सामायिक स्वाध्याय का नारा, सद् उपदेश दिया निष्काम।
श्रद्धावनत समर्पित करते, श्रद्धांजलि का है यह थाल,
ग्रहण कीजिये यह महामुनिवर, मोक्षपुरी के सुख का साल।

—कुश्तला (सवाईमाधोपुर)

घर-घर 'गुरु हस्ती' ले आओ ।

□ श्री पुखराज मोहनोत

विकराल काल ।
स्तब्ध हाल ।।
अट्टहास नहीं ।
ना मृत्यु-ताल ।।
यह कौन मनस्वी,
अभय ! निडर !!
मृत्यु का जिसको—
नहीं मलाल !!

•

जो मुझे निमंत्रित—
करता है ।
मृत्यु, महापर्व—
समझता है ।।
इक मंद, मृदु—
मुस्कान लिए,
जो स्वयं मरण को—
वरता है ।।

•

इक भरी हलाहल—
कालदृष्टि !
इक अमिय भरी—
सुशांत दृष्टि !!
इक पल दृष्टि में—
दृष्टि मिली,
खिल गई वहाँ भी—
नई सृष्टि !!

•

क्षण भर तो सिहरा—
महाकाल !
फिर नत-मस्तक,
हो गया बेहाल !!
वन्दन, अभिनन्दन,
हे आत्मजयी !
हो अमर तेरा यह,
मरण-काल !!

•

फिर प्राण-हरण,
तैयार खड़ा ।
कुछ क्षण फिर भी वह,
रहा जड़ा ।।
जब भान हुआ तो,
चुपके से—
कर प्राण-हरण,
ले चला उड़ा ।।

•

था मौन गगन,
थी मौन धरा ।
जन-जन के मन पर,
वज्र गिरा ।।
चेतन तो चला गया—
हा ! हा !!
बस शेष रहा—
खाली पिंजरा ।।

•

चेहरे-चेहरे पर,
व्यथा अमित।
लक्षाधिक मानव—
हुए व्यथित ।।
जिसने भी सुना—
जहाँ पर भी,
बन गया स्तब्ध,
आश्चर्यचकित ।।

•

जीवन जितना था,
भव्य अहो !
नही वैसा ही क्या,
मरण कहो ?
तेले पर दस दिन,
संथारा।
इस मरण पे क्यो,
अभिमान न हो !!

•

इक शोर मचा,
मची भगदड़ हलचल।
सब भागे पर कुछ,
रह गये अचल ।।
'जय हस्ती गुरु'
'जय गुरु हस्ती'।
उठ गई रथी सब
हुए विकल ।।

•

आचार्य हस्ती की,
जय होवे।
[illegible] गज मुनि की,
जय होवे ।।

दिश-दिश में—
जय-जय घोष हुआ।
संघाधिपति की,
जय होवे ।।

•

अन्तिम यात्रा की,
आतुरता।
अन्तिम दर्शन की,
व्याकुलता ।।
'निमाज' बन गया,
तीर्थधाम।
नर-नारी कितने,
किसे पता ?

•

वह उग्र विहारी,
आज अचल।
वह पाद विहारी,
आज अटल ।।
है चला जा रहा,
बिना चले।
भक्तो के कंधों पर—
अविचल ।।

•

जग मे जो आते,
जाते हैं।
यह ज्ञान कहाँ—
सब पाते है ।।
जिसका अन्तर्मन,
जग जाता।
वे दिव्य पुरुष—
कहलाते है ।।

•

वह दिव्य पुरुष यह,
सोया है।
अपना नर-जन्म,
संजोया है।।
है चरम लक्ष्य जिसका—
मुक्ति।
बस उसी लक्ष्य में,
खोया है।।

•

भक्तों ने भीड़,
लगाई है।
चन्दन की चिता,
सजाई है।।
पार्थिव तन उस पर,
सुला दिया।
कैसी विधि की,
अधिकाई है??

•

तृण-अग्नि अगले क्षण,
चमकी।
लपकी जिह्वा,
मानों यम की।।

पल-दो-पल दिनकर,
रहा खड़ा।
पल-दो पल,
वायु भी ठमकी।।

•

अम्बर गूंजा,
जय हस्ती मुनि।
धरती डोली,
जय हस्ती मुनि।।
अंशुमाली ने,
व्यथित्त कहा—
'जय हो, जय हो,
जय हस्ती मुनि।।'

•

नित प्रातः 'हस्ती',
गुण गाओ।
नित सन्ध्या 'हस्ती'
को ध्याओ।।
अब सामायिक,
स्वाध्याय करो।
घर-घर 'गुरु हस्ती'
ले आओ।।

—व्याख्याता (हिन्दी)
रा. सी. उ. मा. विद्यालय,
तखतगढ़ (पाली) ३०६९१२

□ □ □

उस महापुरुष को नमस्कार | श्री देवेन्द्रकुमार जैन

जो दीपक बनकर जला सदा,
तीखे शूलों पर चला सदा।
गतशाखी फूला-फला सदा,
मिल गया प्रकृति से पुरस्कार।
उस महापुरुष को नमस्कार ।।

जो कुल का वैभव कहलाया,
जिसने दुखियों को सहलाया।
जग को करुणा से नहलाया,
दिखलाया द्वन्द्वों का कगार।
उस महापुरुष को नमस्कार ।।

उसका मरना भी जीवन है,
रोते जिसको लाखों जन हैं।
स्मृति कर-कर होते उन्मन हैं,
करते गुण-गौरव का प्रसार।
उस महापुरुष को नमस्कार ।।

—सुराना की बड़ी पोल के बाहर, नाग

जय हस्ती | श्री चन्दन चौरड़िया

सूणो रे ऽऽ सूणो सूणो रे ऽऽऽ
क्यूं भगतां रो हिरदो भरने आयो रे ऽऽ ।।टेर।।

तुम बिन रह्योइ न जाई, निस दिन आवे याद थारी।
कब रे ऽऽ मिलाप होई, या एक आस म्हांरी ।।१।।

बात कहूं तो, कहत न आई, जीव घणो घबराई।
खान-पान फीको सो लागई, नैण बहे दो धाराई ।।२।।

सूरज री किरणां रुक गई, डाली डाली चुप हुई।
सरिता भी नहीं लहराई, या बात जुदाई की हुई ।।३।।

जिण मारग म्हारा साब आप बताया, उण मारग सूं जास्यां।
सब जण मिलकर म्हांतो, गुण आपरा ही गास्यां ।।४।।

घिस-घिसकर तप चन्दन, भाल-भाल पर तिलक लगाई।
तप अगनि सूं सेज सजाई, कंचन-सी तपचूनरी ओढ़ाई ।।५।।

ऐसी लगन लगाई, दरसण सूं प्यास बुझाई।
विरह-वेदना नूं, आंसू की बौछार हुई ।।६।।

—बोदवड़, जि. जलगांव-४२५३१०

तृतीय खण्ड



समाधि मरण



मेरे अन्तर भया प्रकाश,
नहीं अब मुझे किसी की आश ।
भेद-ज्ञान की पैनी धार से,
काट दिया भव-पाश ॥

—आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.

समाधिमरण*

□ आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

मरण कैसा हो ?

संसार में शायद ही कोई ऐसा प्राणी हो जो मरण को नहीं जानता हो। छोटे से छोटे कीट, पतंग से लेकर नरेन्द्र, असुरेन्द्र और देवेन्द्र तक भी इसके प्रभाव से प्रभावित है।

भयंकर से भयंकर रोग में फंसने वाला असहाय रोगी भी मरना नहीं चाहता। भले उसे कितना ही रोग, शोक, वियोग या अपमान सहना पड़े। फिर भी वह प्राणी यही चाहेगा कि मरूँ नहीं। कारण मरण सबसे बड़ा भय है। कहा भी है—मरण समं नत्थि भयं। मरण से बचने के लिये मनुष्य हर संभव उपाय करने के लिये तैयार रहता है। उसने मृत्युंजय और महामृत्युंजय के भी पाठ कराये, सुसज्जित सेनाओं के बीच अपने को सुरक्षित रखा, फिर भी मरण से नहीं बच पाया। मरण के सामने मंत्र-बल, तंत्र-बल, यंत्र-बल और शस्त्र-बल सभी बेकार है। कहावत भी है—'काल बेताल की धाक तिहुं लोक में।' सच है जगत के जीव मात्र मरण का नाम सुनते ही रोमांचित हो जाते हैं।

किन्तु ज्ञानी कहते हैं—'मृत्योर्विभेषिकि— मूढ ?' मूर्ख ! मृत्यु से क्यों डरता है ? यह तो पुराना चोला छोड़कर नया धारण करना है। इसमें भयभीत होने की क्या बात है। निर्भय और निर्मल भाव से कर्तव्य पालन कर, फिर देख कि मरण भी तेरे लिये मंगल महोत्सव बन जायगा।

अतः यह जानना आवश्यक है कि मरण क्या है और वह कितने प्रकार का है ? तथा उत्तम मरण कैसा होना चाहिये।

जैन शास्त्र कहते है कि संसार का कोई भी द्रव्य सर्वथा नष्ट नहीं होता। अतः प्रश्न होता है कि 'मरण' जिसको कि नाश कहते है, कैसे संगत होगा ? कारण द्रव्य का लक्षण 'उत्पाद, व्यय, ध्रौव्ययुक्तसत्' कहा है। उसका कभी नाश नही होता, तब मरण क्या हुआ ? यहां मरण का अर्थ आत्यन्तिक तिरोभाव या अदर्शन है। जब आयु पूर्ण कर जीव किसी शरीर से अलग होता है याने जीव या प्राणों का शरीर से सर्वथा संबंध छूट जाता है, उसे मरण कहते हैं।

---

*आचार्य श्री के प्रवचन से सकलित।

यद्यपि आत्मा अजर, अमर और अजन्मा है। वास्तव में उसका न जन्म है और न मरण, फिर भी संसारावस्था में शरीरधारी जीव का शरीर की अपेक्षा जन्म और मरण कहा जाता है। संक्षेप में कहना चाहिये कि वर्तमान शरीर को छोड़कर जीव का प्रयाण कर जाना ही मरण है।

जैन शास्त्रों में मरण पर बहुत गभीर विचार किया गया है। श्रीस्थानांग, श्रीभगवती, श्री उत्तराध्ययन आदि अगोपाग सूत्रों के अतिरिक्त जैनाचार्यों ने मरण पर स्वतंत्र प्रकरण भी लिखे हैं। मरणविभक्ति, भत्तपच्चक्खाण और समाधिमरण उनमें खास उल्लेख योग्य है।

यह निश्चित है कि संसार में दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ मात्र एक दिन विलय होने वाले है। अचेतन में जड़ होने से हर्ष, शोक के भाव उत्पन्न नही होते। चेतन होने से जीव को ही हर्ष, शोक होते है। इसलिये यहाँ इसी के मरण का विचार करना है। आत्मदर्शी महात्माओं ने कहा है कि मरण केवल दुःखदायी ही नही, वह सुखप्रद भी होता है।

अज्ञानी और ज्ञानी की दृष्टि से मरण भी बुरा और भला होता है। अज्ञानी पर्याय दृष्टिप्रधान होने से प्राण-वियोग पर रोता और दुःख करता है, वहाँ ज्ञानी दिव्यदृष्टि की प्रधानता से धन, जन, प्राण के वियोग मे भी प्रसन्न रहता है, सदा समरस रहता है। ठीक ही कहा है कि अज्ञानी मरण से डरते है, जबकि ज्ञानी उसको सहर्ष गले लगाते है। कारण, ज्ञानी समझता है कि मै तो त्रिकाल सत्य हूँ, इस शरीर के पहले भी था, अब भी हूँ और शरीर छूटने पर भी रहूँगा, फिर सुकृताचरण से मै कृतकृत्य हो चुका हूँ, अतः मुझे मरण से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। कहा भी है—"मरणादपि नोद्विजते कृतकृत्यो-ऽस्मीति धर्माऽस्मा"। शास्त्रों में मरण का विस्तार निम्न रूप से किया है।

मरण के प्रकार :

भगवती सूत्र में मरण के पाँच प्रकार बतलाए है—

(१) आवीचिमरण, (२) अवधिमरण, (३) आत्यन्तिकमरण, बालमरण, (५) पंडितमरण।

प्रथम तीन प्रकार के मरण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव भेद से ांच प्रकार के बतलाये गये है[1]। प्रति समय आयुकर्म के दलिकों का क्षीण

भगवती सूत्र १३ श०, ७ उ०, ४९६ सूत्र

होते जाना यह आवीचिमरण है। नरक आदि भव की स्थिति पूर्ण कर जो तत् तत् भवानुबन्धी सामग्री का त्याग किया जाता है वह अवधिमरण है। और एक वार मरने के बाद फिर उस भव से नहीं मरना यह आत्यन्तिकमरण है।

फिर स्थानांग सूत्र में मरण के तीन प्रकार बतलाये हैं[1]। जैसे—(१) बालमरण, (२) पंडितमरण, (३) बालपंडितमरण। विवेकरहित अविरत जीव का मरण बालमरण, तत्त्वज्ञानी संयमी का मरण पंडितमरण और सम्यग्दृष्टिव्रती गृहस्थ का मरण बालपंडितमरण कहलाता है। परिणामों के स्थित, अस्थित और वर्धमान शुभाध्यवसायों से प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं।

बालमरण :

वालमरण जन्म-मरण की वृद्धि का कारण है। अतएव श्रमण भगवान् श्रीमहावीर ने कहा है कि[2] तपस्वी निर्ग्रन्थों को ऐसे मरण से नहीं मरना चाहिये। ये मरण निम्न प्रकार हैं—(१) बलयमरण, (२) वशार्तमरण, (३) निदान-मरण, (४) तद्भवमरण, (५) गिरिपतन, (६) तरुपतन, (७) जलप्रवेश, (८) अग्निप्रवेश, (९) विषभक्षण, (१०) शस्त्रघात, (११) वेहायस, (१२) गृद्धपृष्ठमरण। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) भूख-प्यास आदि परिषहों से घबरा कर असंयम सेवन करते मरना वलयमरण है। (२) पतंग आदि की तरह शब्दादि विषयों के अधीन होकर मरना वशार्तमरण है, जैसे किसी कामिनी के पीछे कामी का प्राण गंवाना, (३) ऋद्धि आदि की प्रार्थना करके सम्भूति मुनि की तरह मरना निदानमरण है। (४) जिस भव में है उसी जन्म (योनी) का आयु बांध कर मरना तद्भव-मरण है। (५) पर्वत से गिर के मरना। (६) वृक्ष से लटक कर मरना। (७) जल में डूब कर मरना। (८) आग में सती आदि की तरह जीते जल मरना, (९) विष खाकर मरना। (१०) शस्त्र से आत्महत्या कर लेना। (११) फांसी लेकर मरना। (१२) पशु के कलेवर में गीध आदि का भक्ष्य बन कर मरना उक्त मरण के लक्षण है।

उपर्युक्त १२ प्रकार के मरण से मरने वाला जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के अनन्त-अनन्त जन्म करता हुआ चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है। इस प्रकार यह 'वाल-मरण' संसार को बढ़ाने वाला है। भगवान्

१. स्था० ३ उ० (२२२ सूत्र)

२. स्था० २

महावीर कहते है—'कौटुम्बिक झगडो से तंग आकर यश, धन-हानि, जन-हानि और मान-हानि की व्याकुलता मे मरना दु ख को घटाना नही, बढ़ाना है'—यह पंडितमरण नही, बालमरण है।

माता, पिता, पुत्र या पति, पत्नी आदि प्रियजन के वियोग में मर जाना अथवा मृत पति के साथ जीते जल जाना भी उत्तम मरण नही है। बहुत सी बार मनुष्य शोक, मोह और अज्ञान के वश भी प्राण गमा देता है। व्यापार, धंधे में हानि उठाकर लेनदारों को देने की अक्षमता से सैंकड़ों ने मान-प्रतिष्ठा की आग मे प्राणों की बलि कर दी और करते जाते है। अर्थाभाव मे पारिवारिक भरण-पोपण और कर्जदारी की चिंता से भी कई हलाहल पी कर मरण की शरण ले लेते है। घर के लड़ाई-झगडों से तंग आकर और दुःख में ऊब कर भी कई ललनाएँ तेल छिड़क कर मरती है। नौकरी नही मिलने से कई शिक्षित युवक और परीक्षा में फेल होकर कई विद्यार्थी प्रतिवर्ष जीवन समाप्त करते सुने जाते है। इस प्रकार इच्छा से मरने वालों की संख्या कम नही है। वास्तव में ये सब अकाम-मरण या बालमरण है। इस प्रकार चिन्ता, शोक या अभाव मे झुलस कर कई मानव जीवन-लीला समाप्त करते है। सचमुच यह देश और समाज के लिये कलंक की बात है। समाज और राष्ट्रनायकों को इसका उचित हल निकालना चाहिये। ऐसे अविवेकपूर्वक अकाममरण से मरना दुःख घटाने वाला नही होता। इससे तत्काल ऐसा प्रतीत होता है कि मर जाने से मैं अपनी आँखों से यह दु ख नहीं देख पाऊँगा, किन्तु उसे ध्यान रखना चाहिये कि अकाम-मरण से वर्तमान का दु.ख लाखों गुणा होकर फिर सामने आ सकता है। जबकि आज का विचारपूर्ण समर्थ मन भी नही रह पाता। सच बात यह है कि दु.ख भागने से नही छूटता, वह तो शांतिपूर्वक भोगने से छूटता है।

पंडितमरण :

'भगवती सूत्र' के द्वितीय शतक, प्रथम उद्देश्य में प्रभु ने खंदक संन्यासी को मरण का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि—पंडितमरण दो प्रकार का है—पादोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान। नीहारिम और अनीहारिम रूप से पादोपगमन दो प्रकार का है। यह प्रतिकर्म रहित ही होता है। भक्तप्रत्याख्यान नीहारिम और अनीहारिम दोनों प्रकार का सप्रतिकर्म होता है—अर्थात् इसमें शरीर की हलन-चलन रूप चेष्टाएँ तथा सार-संभाल होती है। इन दोनों प्रकार के पंडित-मरण से मरने वाला जीव अनन्त-अनन्त नरक, तिर्यंच आदि के जन्म-मरण से आत्मा को विमुक्त करता यावत् ससार को पार करता है। भक्त प्रत्याख्यान आदि का स्वरूप एवं भेद निम्न दिये जाते है—

भक्त प्रत्याख्यान—जिसमें तीन या चार प्रकार के आहारमात्र का त्याग

होता है और शरीर का हलन-चलन बन्द नहीं किया जाता, उसे भक्तप्रत्याख्यान कहते है।

इंगितमरण—इसमे सर्वथा खाने-पीने का त्याग किया जाता और मर्यादित क्षेत्र के अतिरिक्त शरीर से गमनागमन आदि चेष्टा भी नही की जाती है। पादोपगमन मे यह विशेषता है कि वह शरीर की कोई चेष्टा नहीं करता, न करवट ही बदलता है। दूसरा भले कोई उसे इधर से उधर बैठा दे या करवट बदल दे, किन्तु स्वयं वह कोई चेष्टा नहीं करता, वृक्ष की तरह अडोल पड़ा रहता है।

भक्त प्रत्याख्यान में जलाहार लिया जाता है और वह सागारी ी होता है, किन्तु इंगितमरण और पादोपगमन में कोई आगार नही होता, न कोई जलाहार ही ग्रहण किया जाता है। भक्त प्रत्याख्यान सर्वदा सबके लिये सुलभ है, परन्तु इंगितमरण एवं पादोपगमन प्रथम ३ संहनन मे और विशिष्ट श्रुतधारी को ही होते है। 'व्यवहार भाष्य' में कहा है कि सभी आर्या और सब प्रथम संहननहीन जीव तथा सब देशविरति भक्त प्रत्याख्यान को ही प्राप्त करते है।

पादोपगमन वाले को कभी पूर्वभव के वैर से कोई देव पातालकलशों मे संहरण करदे तो वह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार से सहन करता है। उस समय ऐसा सोचता है कि जैसे तलवार म्यान से भिन्न है, ऐसे जीव शरीर से भिन्न है, अतः उपसर्ग से मेरी कोई हानि नही होती। जैसे मेरु पूर्वादि चारों दिशा की प्रचण्ड वायु से कम्पित नहीं होता, वैसे पादोपगमनवाला उपसर्ग में भी ध्यान से चलायमान नही होता है।

इनका आदर्श होता है उग्रतम कष्ट के समय भी अविचल रहकर मरण का आलिंगन करना। देखिये, कृष्ण वासुदेव के लघु भाई गज सुकुमाल ने मरणान्त कष्ट के समय भी कैसी अखण्ड शांति कायम रक्खी। भगवान् नेमिनाथ की अनुमति लेकर जब महामुनि महाकाल श्मशान में ध्यान लगाकर देहभान को भुलाकर आत्मध्यान में तल्लीन हो गये। उस समय सोमल ब्राह्मण उधर से निकला और महामुनि को देखते ही क्रोध से जल उठा। उसने गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर बांधी तथा अंगार रख दिये। सिर जलने लगा और नसे खिचने लगीं, फिर भी मुनिजी के मन में उफ तक नहीं, क्योंकि उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ के आंतर विकारों को जला दिया एवं प्राणिमात्र को आत्मसम समझ लिया था। अंतर में एक ही आवाज गूंजती थी कि—"मै एक और शाश्वत हूँ। मेरा स्वरूप ज्ञान-दर्शन है। धन, दारा और परिवार आदि सब बाह्यभाव-

महावीर कहते है—'कौटुम्बिक झगडो से तंग आकर यश, धन-हानि, जन-हानि और मान-हानि की व्याकुलता मे मरना दुःख को घटाना नही, बढ़ाना है'—यह पंडितमरण नही, बालमरण है।

माता, पिता, पुत्र या पति, पत्नी आदि प्रियजन के वियोग में मर जाना अथवा मृत पति के साथ जीते जल जाना भी उत्तम मरण नही है। बहुत सी बार मनुष्य शोक, मोह और अज्ञान के वश भी प्राण गमा देता है। व्यापार, धंधे में हानि उठाकर लेनदारो को देने की अक्षमता से सैकड़ों ने मान-प्रतिष्ठा की आग मे प्राणों की बलि कर दी और करते जाते है। अर्थाभाव मे पारिवारिक भरण-पोषण और कर्जदारी की चिता से भी कई हलाहल पी कर मरण की शरण ले लेते है। घर के लडाई-झगडों से तग आकर और दुःख में ऊब कर भी कई ललनाएँ तेल छिड़क कर मरती है। नौकरी नहीं मिलने से कई शिक्षित युवक और परीक्षा मे फेल होकर कई विद्यार्थी प्रतिवर्ष जीवन समाप्त करते सुने जाते है। इस प्रकार इच्छा से मरने वालों की संख्या कम नही है। वास्तव में ये सब अकाम-मरण या बालमरण है। इस प्रकार चिन्ता, शोक या अभाव में झुलस कर कई मानव जीवन-लीला समाप्त करते है। सचमुच यह देश और समाज के लिये कलंक की बात है। समाज और राष्ट्रनायकों को इसका उचित हल निकालना चाहिये। ऐसे अविवेकपूर्वक अकाममरण से मरना दु.ख घटाने वाला नही होता। इससे तत्काल ऐसा प्रतीत होता है कि मर जाने से मैं अपनी आँखो से यह दु ख नही देख पाऊँगा, किन्तु उसे ध्यान रखना चाहिये कि अकाम-मरण से वर्तमान का दुःख लाखों गुणा होकर फिर सामने आ सकता है। जबकि आज का विचारपूर्ण समर्थ मन भी नही रह पाता। सच बात यह है कि दुःख भागने से नही छूटता, वह तो शांतिपूर्वक भोगने से छूटता है।

पडितमरण :

'भगवती सूत्र' के द्वितीय शतक, प्रथम उद्देश्य में प्रभु ने खंदक संन्यासी को मरण का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि—पंडितमरण दो प्रकार का है—पादोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान। नीहारिम और अनीहारिम रूप से पादोपगमन दो प्रकार का है। यह प्रतिकर्म रहित ही होता है। भक्तप्रत्याख्यान नीहारिम और अनीहारिम दोनों प्रकार का सप्रतिकर्म होता है—अर्थात् इसमें शरीर की हलन-चलन रूप चेष्टाएँ तथा सार-सभाल होती है। इन दोनों प्रकार के पंडित-मरण से मरने वाला जीव अनन्त-अनन्त नरक, तिर्यंच आदि के जन्म-मरण से आत्मा को विमुक्त करता यावत् संसार को पार करता है। भक्त प्रत्याख्यान आदि का स्वरूप एव भेद निम्न दिये जाते है—

भक्त प्रत्याख्यान—*जिसमें तीन या चार प्रकार के आहारमात्र का त्याग*

होता है और शरीर का हलन-चलन बन्द नहीं किया जाता, उसे भक्तप्रत्याख्यान कहते हैं।

इंगितमरण—इसमें सर्वथा खाने-पीने का त्याग किया जाता और मर्यादित क्षेत्र के अतिरिक्त शरीर से गमनागमन आदि चेष्टा भी नहीं की जाती है। पादोपगमन मे यह विशेषता है कि वह शरीर की कोई चेष्टा नहीं करता, न करवट ही बदलता है। दूसरा भले कोई उसे इधर से उधर बैठा दे या करवट बदल दे, किन्तु स्वयं वह कोई चेष्टा नहीं करता, वृक्ष की तरह अडोल पड़ा रहता है।

भक्त प्रत्याख्यान में जलाहार लिया जाता है और वह सागारी भी होता है, किन्तु इंगितमरण और पादोपगमन में कोई आगार नही होता, न कोई जलाहार ही ग्रहण किया जाता है। भक्त प्रत्याख्यान सर्वदा सबके लिये सुलभ है, परन्तु इंगितमरण एवं पादोपगमन प्रथम ३ संहनन में और विशिष्ट श्रुतधारी को ही होते है। 'व्यवहार भाष्य' में कहा है कि सभी आर्या और सब प्रथम संहननहीन जीव तथा सब देशविरति भक्त प्रत्याख्यान को ही प्राप्त करते है।

पादोपगमन वाले को कभी पूर्वभव के वैर से कोई देव पातालकलशों में संहरण करदे तो वह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार से सहन करता है। उस समय ऐसा सोचता है कि जैसे तलवार म्यान से भिन्न है, ऐसे जीव शरीर से भिन्न है, अतः उपसर्ग से मेरी कोई हानि नही होती। जैसे मेरु पूर्वादि चारों दिशा की प्रचण्ड वायु से कम्पित नहीं होता, वैसे पादोपगमनवाला उपसर्ग में भी ध्यान से चलायमान नहीं होता है।

इनका आदर्श होता है उग्रतम कष्ट के समय भी अविचल रहकर मरण का आलिंगन करना। देखिये, कृष्ण वासुदेव के लघु भाई गज सुकुमाल ने मरणान्त कष्ट के समय भी कैसी अखण्ड शांति कायम रक्खी। भगवान् नेमिनाथ की अनुमति लेकर जब महामुनि महाकाल श्मशान में ध्यान लगाकर देहभान को भुलाकर आत्मध्यान में तल्लीन हो गये। उस समय सोमल ब्राह्मण उधर से निकला और महामुनि को देखते ही क्रोध से जल उठा। उसने गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर बांधी तथा अंगार रख दिये। सिर जलने लगा और नसें खिचने लगीं, फिर भी मुनिजी के मन में उफ तक नहीं, क्योंकि उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ के आंतर विकारों को जला दिया एवं प्राणिमात्र को आत्मसम समझ लिया था। अंतर में एक ही आवाज गूंजती थी कि—"मैं एक और शाश्वत हूँ। मेरा स्वरूप ज्ञान-दर्शन है। धन, दारा और परिवार आदि सब बाह्यभाव-

पर हैं। और वे संयोग-संबध से अपने व पराये होते है। वास्तव मे ये मेरे नही, ज्ञान, दर्शन रूप उपयोग स्वभाव ही मेरा है। जो न कभी जलता है और न कभी गलता है।"

"एगो मे सासओ अप्पा, नाणदसणसजुओ ।
सेसा मे बहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ।।"

अंग-अंग के जलने पर भी गजसुकुमाल की प्रसन्नता अविचल रही और उन क्षणों में ही अखण्ड समाधिमरण के साथ उन्होंने सकल कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करली।

पण्डितमरण के अधिकारी :

वे लोग इसके अधिकारी नही होते, जिनका जीवन हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि पापों में रचा-पचा होता है, जो अजितेन्द्रिय होकर अभक्ष्य भक्षण करते और विपय-कपाय में रति मानते है। ऐसे असंयमशील प्राणियो का अन्तिम समय मे हाहाकार करते प्रयाण होता है, उनको पडितमरण प्राप्त नही होता। अतः यह बालमरण है। क्रोध, लोभ या मोह और अज्ञान के वश जो आत्म-हत्याएँ की जाती हैं वे सब भी बालमरण है।

अंतिम क्षण तक भौतिक कामा की आकुलता होने से ये अकाममरण करते है। अत' पण्डितमरण के अधिकारी नही होते।

संयमशील व्रती गृहस्थ या महाव्रतधारी साधु-साध्वी जो हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के पूर्ण त्यागी और जितेन्द्रिय है, आरम्भ, परिग्रह और विपय-कषाय से मन को मोड़ कर जिन्होंने परमात्मा के चरणों मे चित्त लगा दिया एवं ज्ञान के प्रकाश में जड़-चेतन का भेद समझकर तन, धन, परिजन से ममता हटाली है वे ही पंडितमरण के अधिकारी होते है। पडितमरण में केवल विशुद्ध हेतु और प्रसन्नता के साथ देहत्याग किया जाता है, अत. इसे सकाममरण भी कहते है। सभी साधु और श्रावक पंडितमरण को प्राप्त नही करते, किन्तु पंडितमरण के अधिकारी कुछ विशिष्ट पुरुष ही होते हैं। जैसे कहा भी है—

न इमं सव्वेसु भिक्खुसु, न इमं सव्वेसुअगारिसु ।
नाणा सीला अगारत्था, विसम-सीला य भिक्खुणो ।।उ० ५।।

अर्थात् यह मरण सभी भिक्षुओं मे नही होता, न सब गृहस्थो को होता

है। कारण विभिन्न शील स्वभाव के गृहस्थ होते हैं और भिक्षुओं के भी संयम-स्थान समान नहीं होते।

देखिये, हजार वर्ष का संयमपालन करके भी कुंडरीक ने चन्द दिनों की भोग-भावना में मरण बिगाड़ लिया, परिणामस्वरूप उसको नरक में जाना पड़ा और पुंडरीक ने जीवन का लम्बा समय भोग एवं राग में बिता कर भी अन्तिम दिनों की पवित्र साधना से जीवन सुधार लिया और पंडितमरण से मरकर सुगति प्राप्त की। यह पंडितमरण की ही महिमा है।

ज्ञानी कहते हैं—यदि तुम दुःख से ऊब गए हो, सहने की शक्ति खो चुके हो और मरना चाहते हो तो चिन्ता-शोक में देह को गला कर मरने की अपेक्षा तप-संयम में देह को विवेकपूर्वक गलाओ और ध्यानाग्नि में दुःख को जला कर हँसते-हँसते मरो, रोते हुए क्यों मरते हो?

पण्डितमरण की विधि :

जब समझ लो कि अब शरीर अधिक समय तक टिकने वाला नहीं है अथवा धर्म रक्षा के लिये प्राणों का त्याग करना है तब सर्वप्रथम मन से वैर-विरोध भुला कर अन्तरात्मा को स्वच्छ बना लेना चाहिये। फिर तन, मन, धन, परिजनादि बाह्य वस्तुओं से मन मोड़ कर, आत्मस्वरूप में वृत्ति जमा कर, सदा के लिये अकरणीय पापकर्म और चतुर्विध आहार का त्याग कर लेना चाहिये।

अर्हन्त सिद्ध की साक्षी से यह निश्चय कर लो कि संसार के दृश्य पदार्थ सब पर और नाशवान् हैं। उनको अपना समझ कर ही चिरकाल से मैं भटक रहा हूँ। यह मेरा अज्ञान है। वास्तव में तन एवं धन की हानि से मेरी कोई हानि नहीं होती। मै सदा शुद्ध, बुद्ध एवं समरस हूँ। आग में जलना, पानी में गलना और रोग से सड़ना मेरा स्वभाव नही है। सड़ना, गलना आदि देह के धर्म हैं, अतः इस परमप्रिय देह का भी आज से स्नेह छोड़ता हूँ। मेरा न किसी पर राग है, न किसी पर द्वेष।

इसी प्रकार के मरण से अंबड़ संन्यासी के ७०० शिष्यों ने भी सुगति प्राप्त की थी। कंपिलपुर से पुरिमताल की ओर जाते समय जब उनके पास का पानी समाप्त हो गया और तृषा के मारे होठ-कंठ सूखने लगे, तब उन्होंने उस दुःखद स्थिति में निम्न प्रकार का पंडितमरण स्वीकार किया था।

पहले गंगा के किनारे बालू को देखा, साफ किया और पूर्वाभिमुख पर्यंकासन से बैठ कर दोनों हाथ जोड़े हुए इस प्रकार बोले—"नमस्कार हो सिद्धि-

प्राप्त जिनवर को और नमस्कार हो सिद्धगति पाने वाले श्रमण भगवान् महावीर को, फिर नमस्कार हो हमारे धर्माचार्य, धर्मगुरु अम्बड़ परिव्राजक को। हमने पहले धर्मगुरु अम्बड़ के पास स्थूल हिंसा, झूठ, अदत्त, सम्पूर्ण मैथुन और परिग्रह का त्याग किया है। अब श्रमण भगवान् महावीर के पास आजीवन सब प्रकार के हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील और परिग्रह का त्याग करते है। हम सर्वथा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद अरतिरति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्यरूप अकरणीय पापकर्मो का आजीवन त्याग करते है। जीवन भर के लिये सब प्रकार का अनशनादि चतुर्विध आहार भी छोड़ते है और यह शरीर भी जो आज तक इष्ट, कांत एवं अत्यन्त प्रेमपात्र रहा, जिसको सदा भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, दंश-मच्छर, चोर, व्याल और रोग-शोक से बचाते रहे, उस प्रिय तन की भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ हम ममता छोड़ते हैं। अब कुछ भी हो, इस ओर ध्यान नहीं देंगे।" यह पंडितमरण ग्रहण करने की विधि है।

इस प्रकार वे संलेखनापूर्वक आमरण अनशन से काल की अपेक्षा नहीं करते हुए विचरते रहे। अन्तिम समय अनशनपूर्वक समाधिभाव में मरण पाकर ब्रह्मलोक के अधिकारी बने। उन्होंने अपना मरण सुधार लिया।

आत्महत्या और समाधिमरण :

बहुत से लोग यह समझा करते है कि संथारा या भत्तपच्चक्खाण से मरना, यह आत्महत्या है। उनको समझना चाहिये कि आत्महत्या और समाधिमरण में बड़ा अन्तर है। आत्महत्या में निष्कारण शोक या मोहादिवश शरीर नष्ट किया जाता है। उसमें चिंता-शोक की आकुलता या मोह की विकलता होती है, जबकि समाधिमरण मे भय, शोक को भूल कर प्रसन्न मन से सब को मैत्रीभाव से देखते हुए निर्मोह भाव में देह त्याग किया जाता है। आत्महत्या में देह का दुरुपयोग है, जबकि समाधिमरण सभी प्रकार के वेगों को शान्त कर स्वस्थ मन से आयुकाल की निकट अन्त मे समाप्ति समझ कर किया जाता है।

आत्महत्या किसी कामना को लेकर होती है। उसमें क्रोध, लोभ या शोक, मोह कारण होते है, जबकि समाधिमरण निष्काम होता है। इसमें सभी प्रकार के विकारों को नष्ट कर केवल आत्मशुद्धि का ही लक्ष्य होता है।

समाधिमरण में ये पाँच दूषण माने गये है। (१) इस लोक मे तन, धन वैभव आदि सुखों की इच्छा करना, (२) इन्द्रादि पद या स्वर्गीय सुख की आशा करना, (३) अधिक जीने की इच्छा करना, (४) कष्ट से घबरा कर जल्द मरने की इच्छा करना, (५) कामभोग-इन्द्रिय-सुखों की वांछा करना।

समाधिमरण में वहाँ कोई कामना नहीं रहती, वहाँ शरीर को अक्षम समझ कर या शील, धर्मादि की रक्षा के लिये अनिवार्य समझ कर पवित्र हेतु से आत्महित के लिये शरीर त्यागा जाता है। अतः इसे किसी तरह आत्महत्या नहीं कहा जा सकता। यह तो समाधिमरण या पंडितमरण है।

मरण-महिमा :

मनुष्य चाहे जैसे भी उच्च कुल, जाति या योनि में उत्पन्न हुआ हो, यदि जीवन का संध्यामरण अंधकारपूर्ण है तो उसका सारा परिश्रम और साधन-संकलन व्यर्थ है। उसका जन्म दुःख-वृद्धि के लिये है। वास्तव में जीवन शिक्षाकाल है और मरण परीक्षाकाल। जीवन कार्यकाल है और मरण विश्रांतिकाल। जैन महर्षियों ने कहा है कि—जिसका मरण सुधरा उसका जीवन सुधरा समझो और मरण बिगड़ा तो जीवन बिगड़ा समझो, क्योंकि मरण की संध्या पार करके ही प्राणी जीवन के नवप्रभात की ओर जाता है। शास्त्र में भी कहा है—

> अन्तोमुहुत्तमि गए, अन्तोमुहुत्तंमि सेसए चेव ।
> लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोयं ।।उ० ३४।।

जिस लेश्या में जीव काल करता है, अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक में भी उसी लेश्यास्थान में जाकर उत्पन्न होता है। अत. आत्महितैषियों के लिये मरण सुधार की ओर लक्ष्य देना अत्यावश्यक है। शास्त्र कहते है कि तनधारी प्राणिमात्र को मरना तो है ही. चाहे धैर्यपूर्वक कष्टों को शांति से सह कर मरे या कायर की तरह दीन होकर मरे। तन, धन एवं परिवार के लिये अकुलाते हुए मरे या सब से ममता हटाकर निराकुल भाव से मरे। सत्यशील की आराधना करते हुए मरे अथवा शीलरहित अव्रत दशा में मरे। दोनों दशा मे मरना तो अवश्य है। तब कायर की तरह बिलखते मरने की अपेक्षा संयमशील होकर धैर्य से हँसते हुए मरना ही अच्छा है। कहा भी है—

> धीरेणं वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्स मरियव्वं ।
> दुण्हंपि हु मरियव्वे, वरं खु धीरतणे मरिउं ।।६४।।
>
> सीलेण वि मरियव्वं निस्सीलेण वि अवस्स मरियव्वं ।
> दुण्हपि हु मरियव्वे, वरं खु सीलतणे मरिउं ।।६५।।आतु० प०

किसी उर्दू कवि ने भी कहा है—

> हँस के दुनिया में मरा, कोई कोई रोके मरा ।
> जिन्दगी पाई मगर उसने, जो कुछ हो के मरा ।।

विद्वानों को ऐसे ही मरण से मरना चाहिये। इस प्रकार मरने वाले मर के भी अमरता के भागी होते हैं।

अभ्युद्यत मरणविधि :

विवेकी पुरुष जीवन की अन्तिम घड़ियो में पूरी सतर्कता रखते हैं क्योंकि उस समय की जरासी गलती बने-बनाये काम को बिगाड़ देती है। अतः ज्योंही उन्हें जीवन-यात्रा में लम्बे समय तक शरीर टिकने वाला नही है ऐसा प्रतिभासित होता है, त्योंही बिना विलम्ब वे मरण को शानदार बनाने के लिये कटिबद्ध हो जाते है। तन, धन, परिजन और सम्मान से मन मोड़कर वे एक मात्र आत्मलक्षी हो जाते हैं। तब पराये गुणावगुण देखने की अपेक्षा उनको आत्मदर्शी होकर अपना निरीक्षण करना ही अधिक प्रिय होता है और जीवन की छोटी-मोटी कोई भी चूक हो उसको बिना संकोच के गीतार्थ के पास आलोचना द्वारा प्रगट करना और यथायोग्य प्रायश्चित्त से उसकी शुद्धि करना उनका प्रधान लक्ष्य होता है। जैसे सुयोग्य वैद्य भी अपनी चिकित्सा दूसरे से कराता है, वैसे ज्ञान-संपन्न साधक भी अन्य गीतार्थ के सम्मुख अपनी आलोचना करते और आत्म-शुद्धि करते हैं।

संलेखना :

मरण की तैयारी के लिये शास्त्रों में पहले संलेखना का विधान है। वह जघन्य ६ मास और उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३६वे अध्याय में कहा है कि उत्कृष्ट संलेखना १२ वर्ष की, मध्यम १ वर्ष और जघन्य ६ मास की होती है।

उत्कृष्ट संलेखना में पहले ४ वर्ष दूध आदि विगय का त्याग किया जाता है और दूसरे चार वर्ष में उपवास, वेला आदि विविध तप किये जाते हैं। फिर दो वर्ष एकान्तर तप और पारणक में आयंविल किया जाता है। ग्यारहवे वर्ष में ६ महीने का सामान्य तप किया जाता है और ६ महीने विशेष तप किया जाता है। इसमें आयंविल भी परिमित किये जाते है। वारहवे वर्ष में उपवास आदि के पारणक में कोटि सहित आयंविल आदि किये जाते हैं। वीच-वीच में मास और पक्ष के अनशन भी करते है। [अ० ३६/२५२-५६]

'व्यवहार सूत्र' के दशम उद्देश्य के भाष्य में भी इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। वहाँ प्रथम के चार वर्षों में विविध तप का इच्छानुसार कामगुण पारणा और दूसरे चार वर्षो मे विगइ, त्यागपूर्वक पारणा का उल्लेख है। [भा० ४१२ से ४२१]

मध्यम और जघन्य संलेखना भी ऐसे मास और पक्ष के विभाग से की जाती है। इस प्रकार संलेखना के अनन्तर गुरु या गीतार्थ परीक्षित ही सामान्य रूप से इस मरण को स्वीकार करते है।

संलेखना द्वारा केवल शरीर को ही क्षीण नहीं किया जाता, बल्कि अन्तर के विकारों को भी क्षीण किया जाता है। जब तक आन्तरिक विकार क्षीण नहीं होते साधक उत्तम मरण को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिये पहले परीक्षा की जाती थी। मनोनुकूल उत्तम भोजन पाकर भी जब मरणार्थी उसको ग्रहण नहीं करता तब तक उसकी अगृध्नुता समझ ली जाती थी। इस पर एक छोटा उदाहरण दिया गया है—

किसी समय एक आचार्य के पास भक्त परीक्षार्थी शिष्य आया और उसने कहा, "मैं भक्त प्रत्याख्यान करना चाहता हूँ।" तब आचार्य ने पूछा—'तुमने संलेखना की है या नहीं?' शिष्य को आचार्य की बात से विचार हुआ। उसने सोचा—मेरा शरीर हड्डी का पंजर सा हो चुका है, लोहू-मांस का कही नाम भी नहीं, फिर गुरुजी पूछते हैं कि संलेखना की या नहीं? रोष में आकर उसने अपनी अँगुली तोड़ डाली और बोला—'महाराज! देखो, रक्त की एक बूँद भी नहीं है, क्या अब भी संलेखना बाकी है?' गुरुजी ने कहा—'वत्स! यह तो द्रव्य संलेखना का रूप है जो तेरे शरीर से प्रत्यक्ष दिखता है, किन्तु अभी भाव संलेखना करनी है, कषाय के विकारों को सुखाना है। इसीलिये मैने पूछा था कि संलेखना की या नहीं? जाओ, अभी भाव सलेखना करो। फिर भक्त पच्चक्खाण संथारा प्राप्त होगा।' [व्य० भा० ४५०]

इस प्रकार द्रव्य-भाव-संलेखनापूर्वक किया गया मरण ही पंडितमरण है। मरणान्तिक कष्ट, आघात-प्रत्याघात या आतंक से निकट भविष्य में ही देह छूटने वाला हो, वैसी स्थिति मे द्रव्य सलेखना की आवश्यकता नही होती। उसी समय आलोचनापूर्वक आत्मशुद्धि की जाती है और विचार एवं आचार की पूर्ण शुद्धि के साथ सर्वथा पापो के त्याग कर लिये जाते है।

• • •

• मैं तो एक ही मरण जानता हूँ, वह है जीव भाव का ईश्वर के चरणों में समर्पण। —संत ज्ञानेश्वर

• अल्लाह के रास्ते चलते हुए जो कत्ल हो जांय, उन्हें मरा हुआ कभी नहीं समझना। वे दिखाई नही देते मगर जिन्दा है। —कुरान

संथारा एवं समाधिमरण

☐ श्री ज्ञानेन्द्र बाफना

जैन संस्कृति अध्यात्म प्रधान संस्कृति है। यह यम, नियम, संयम एवं तप-त्याग, विराग की संस्कृति है। यहाँ जीवन जीना कला है तो मरण भी एक कला है। जीवन एवं मरण की उभय कला में निपुण व्यक्ति ही जीवन का अमर कलाकार है। जीवन में संयम एवं मरण पर नियंत्रण ही सच्ची साधना है। कर्तव्य के लिये जीना और अवश्यम्भावी मृत्यु को, साधना की आदर्शतम स्थिति की ओर अग्रसर हो, प्रसन्नता व सहजता से वरण करना जीवन की सार्थकता है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है—

"मरने से मफर नही, जब अय अकब्बर।
बेहत्तर यही है, खुशी से मरना सीखो।।"

न जीवन से चिपको, न मृत्यु से भयभीत होओ। जिसे न जीवन की आसक्ति और न ही मरण की भीति, जिसे न जीने की स्पृहा और न मरने का भय, वस्तुतः उसका ही जीवन सच्चा जीवन एवं उसका ही मरण समाधिमरण है। ऐसे साधको की मन.स्थिति के लिये किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"तन जग में, मन हरि के पास।
लोक भोग सूँ रहत उदास।।"

समाधि का अर्थ है—चित्त की एकाग्रता, मन की शान्त स्थिरवृत्ति, आकुलता व व्याकुलता का अभाव और मरण का अर्थ है देह का परित्याग। मृत्यु को निकट देखकर साधक की अन्तर आत्मा बोल उठती है—'आहार मुवहि देह, सव्वं तिविहेण वोसिरिअ सथारपइन्ना।' उसके तन का रोम-रोम, मन का -कण और जीवन का क्षण-क्षण बोल उठता है—"भते! मैं हिंसादि यों का जो संसार एवं दुर्गति के कारण हैं तथा जन्म-मरण की वृद्धि वाले है—मनसा, वाचा, कर्मणा करने, करवाने अथवा अनुमोदन करने परित्याग करता हूँ।" वस्तुतः उस विशुद्ध आत्म-स्थिति में साधक, अप्रमत्त म साधक, समत्वयोगी एवं ध्यानलीन हो जाता है।

समाधिमरण की स्थिति विवश होकर संसार का त्याग-परित्याग करना , प्रत्युत् सज्ञान अवस्था में स्वेच्छा व आन्तरिक प्रसन्नता से, जीवन का

सिरा सन्निकट जानकर, संसार की आसक्ति, शरीर की ममता, परिवार एवं शिष्य-समुदाय का मोह तथा सुख-भोग की लालसा की जड़ को सदा सर्वदा के लिये काट देना है। यह किसी भीरू व्यक्ति का संसार से पलायन नहीं, प्रत्युत् दृढ साहसी, आत्म-शौर्य के धनी व्यक्ति का स्वतंत्र इच्छापूर्वक मुक्ति-पथ की ओर प्रसन्नतापूर्वक महाप्रयाण है। संथारे का आराधक सोचता है—

"जा मरने से जग डरे, मो मन में आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों, पूरण परमानन्द ।।"

समाधिमरण की यह उच्च स्थिति तात्कालिक एवं आकस्मिक नही है और न ही यह एकदम अधिगत की जा सकती है। साधक का यह दृष्टि बिन्दु तो साधना के ऊषाकाल से ही प्रारम्भ हो जाता है। साधना की परिपक्वता के साथ-साथ यह मनोभाव हृदय की भाव-भूमि में गहरी जड़ पकड़ता जाता है। समाधिमरण वस्तुत: साधक के अन्तर मन की चिर संचित-पोषित साध की मंगल पूर्ति अथवा पूर्णाहुति है। जीवन-साधना का परिणाम है समाधिमरण।

मोहग्रस्त प्राणी मृत्यु को सामने आया देख गिड़गिड़ता है, रोता है, अश्रुपात करता है, मिन्नतें मनाता है एवं उससे बचने का हर संभव उपाय करता है। उसकी दशा तो "जिन्दगी बैठी थी अपने हुस्न पर भूली हुई। मौत ने आकर सारा रंग फीका कर दिया" वाली होती है। पर वस्तुत: मृत्यु अवश्यम्भावी है। जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा। किसी उर्दू शायर के शब्दों मे—

"मरते-मरते कह गया लुकमान सा दाना हकीम।
दर हकीकत मौत की, यारो दवा कुछ भी नही ।।"

पर त्यागी विरक्त ज्ञानी साधक मृत्यु के आने पर भी हर्ष विभोर होता है, वह आनन्दानुभूति में झूमता है। वह जानता है कि मृत्यु कल्पवृक्ष है। जो वृक्ष झडता है, वही नई कोंपल पाता है। वह मृत्यु से डरे क्यों और लड़खड़ाये भी क्यों?

जीवन एक अमूल्य अवसर है, आत्म-उत्कर्ष का अलभ्य अमूल्य स्वर्णिम अवसर। अत: उच्च आदर्शों के लिये, यम, नियम व संयम के लिये, त्याग, तप व विराग के लिये, धर्म, ध्यान व साधना के लिए जीवन के क्षण-क्षण का उपयोग करो। आत्म-हत्या धर्म नही वरन् अधर्म है, जघन्य पाप है। आत्म-हत्या जीवन से पलायन, आत्म-पीड़न एवं आत्म-हनन है, किन्तु मरणवेला

सन्निकट जानकर, तन व इन्द्रिय-शक्ति क्षीण होकर असमर्थ होने पर, धर्म की शरण लेना, आत्मनिष्ठा एवं आस्था के साथ अनशनपूर्वक देहत्याग कर देना, संसार की ममता एवं मूर्च्छा का परित्याग अत्युत्कृष्ट साधना एवं धर्म है। समाधिमरण में आत्म-हत्या का एक भी कारण नही होता। न उसमें अपराध भावना होती है न जीवन के प्रति नैराश्य। इसके विपरीत समाधिमरण सारे अपराधों की जड़ कषायवृत्ति का मूलोच्छेद करने वाला होता है। साधक के अन्तर्मन में प्रतिक्षण आशा का प्रकाश जगमगाता है। उसके मानस-नयनों में असफलता नही वरन् सफलता नाच रही होती है। ऐसी स्थिति में न तो जीवन भाररूप लगता है, न ही मृत्यु की शीघ्रता होती है। वह तो जीवन एवं मरण के बीच सन्तुलित हो समाधिस्थ हो जाता है। वस्तुतः अन्तर्ज्योति के प्रकाश की आत्मोपलब्धि में साधक देह-वेदना की अनुभूति को ही भूल जाता है। न जीवन की ममता, न मृत्यु का भय। न इस लोक की आसक्ति, न परलोक की आकाक्षा। विनाशी तत्त्व से सम्पर्क तोड़ कर अविनाशी की ओर अग्रसर होना, उसी पर दृष्टि केन्द्रित कर देना, आत्म-विजेता साधक के जिनत्व का मार्ग है। अविनाशी परम आत्म तत्त्व की इसी साधना का पवित्र रूप संथारा है। यह तो समाधि से समाधि की ओर, आनन्द से आनन्द की ओर यात्रा है। मरण में पराजय है, समाधिमरण में विजय। इसलिये साधक के देहत्याग को 'निर्वाण' कहा जाता है। यह मरण से अमरण की यात्रा है, अमरता की ओर चल पड़ना है। दोनों मरण के अन्तर को किसी कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार प्रगट किया है—

> "जी उठा मरने से वह, जिसकी खुदा पर थी नजर।
> जिसने दुनिया ही को पाया, वह सब खो के मरा।।"

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

> "जो धर्म-पालन मे विमुख, जिसको विषय ही भोग्य है,
> ससार में मरना, उसी का सोचने के योग्य है।
> जो इन्द्रियों को जीतकर, धर्माचरण मे लीन है,
> उसके मरण का सोच क्या, वह मुक्त, बन्धनहीन है।।"

—सी-५५, शास्त्री नगर, जोधपुर—३४२ ००३

संलेखना, संथारा, समाधिमरण

□ श्री जशकरण डागा

संसारी जीव आयु कर्म के उदय व क्षय से जन्म और मृत्यु को प्राप्त होते रहते है। जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है, यह शाश्वत सत्य है। जीवन अनिश्चित है पर मृत्यु निश्चित है। किन्तु मृत्यु के पश्चात् पुनः जन्म हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। जो स्वयं के पुरुषार्थ से आयु कर्म का सर्वथा क्षय कर देते हैं, वे फिर जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। उन्हें फिर नया जन्म धारण नहीं करना पड़ता है। वीतराग भगवंतों को भी देह-त्याग तो करनी ही पड़ती है, किन्तु उनका देहत्याग पुनर्जन्म के लिए न होकर सदा शुद्ध स्वभाव में अवस्थित होने के लिए होता है। कहा भी है—

"मरण मरण सब कोई कहे, मरण न जाने कोय।
एक मरण ऐसा मरे, फिर मरना नही होय।।"

श्रेष्ठ मरण के लिए मृत्यु का वरण करें :

सांसारिक प्राणी मृत्यु की आशंका से बड़े भयभीत होते है। आगम में सात भय कहे हैं—१. लोक भय २. परलोक भय ३. वेदना भय ४. संरक्षण भय ५. यश-अपयश भय ६. अकस्मात भय और ७. मृत्यु भय (ठाणांग ७ उ. ३, सू. ५४९ तथा समबायांग ७वां)। इन सब में मृत्यु सबसे बड़ा भय है। किन्तु जब मृत्यु निश्चित है, तो फिर उससे क्या डरना ? अतः जब भी ऐसा अनुभव हो कि जीवन समाप्त होने वाला है, शरीर अपना कार्य छोड़ नाश की ओर अग्रसर हो रहा है, तो फिर मृत्यु से भयभीत न होकर, उसे एक आदरणीय अतिथि या परम हितैषी मित्र समझ कर, उसका स्वागत प्रसन्नता पूर्वक करना चाहिए। रुदन या विलाप करने अथवा आर्त्त, रौद्र ध्यान में मृत्यु को प्राप्त होना कायरता है, अन्तिम समय जीवन को हारना है। सम्मान एवं प्रसन्नता के साथ मृत्यु को वरण करना ही श्रेष्ठ मरण है। जीवन अध्ययन-काल है, तो मृत्यु परीक्षा-काल है। अतः मृत्यु के आगमन पर उसे सहर्ष समभाव से वरण करना चाहिए। आत्मा तो अजर-अमर है, अतः मौत का क्या शोक करना ? गुरु नानक ने बड़ा सुन्दर कहा है—

"चिन्ता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होय।
एह मार्ग संसार का, नानक स्थिर नही कोय।।" [गुरुग्रंथ साहब]

वस्तु नहीं है। उसके आने पर ही आस्तिक प्राणी अपने इष्टलोक अथवा विदेह मुक्ति को पाता है, जो मानव का परम लक्ष्य है।

इतने दिन सत्संग तथा सम्पर्क में रहने के पश्चात् भी तुम क्षणभंगुर तथा अनेक विकारों से पूर्ण शरीर को स्थिर देखना चाहती हो, यह कहाँ तक विवेक युक्त बात है? जो दशा लिखाते समय है वह पढते समय तक रहेगी, इसका क्या विश्वास? प्यारी बेटी! शरीर के बनने तथा बिगड़ने अथवा रहने तथा न रहने में विवेकीजन सम ही रहते हैं, क्योंकि वे भलीभांति अनुभव कर लेते है कि शरीर से जातीय एकता नहीं है, केवल काल्पनिक सम्बन्ध मात्र है, जिसका विचार मात्र से ही अन्त हो जाता है। तो फिर शरीर के लिए चिन्ता करना तथा घबरा जाना कहाँ तक उचित है? स्वयं विचार करो। शरीर से असंग होकर वासनाओं को त्याग कर्तव्यनिष्ठ बनी रहो। अविवेक तथा मोह का अन्त कर दो। तभी घबराहट का अन्त होगा।

• □ •

जो निज मन दृढ़ राखो

□ आचार्य श्री रतनचन्दजी म.

ओ तो गढ़ वांको राज-राज, कायम करने शिव सुख चाखो राज ।।ओ०।।

आठ करम को घाट विषमता, मोह महीपत जाको।
मुगतपुरी कायम की विरियां, विच-विच कर रह्यो साको राज ।।ओ०।।

खांड़े की धार छुरी को पानो, विषम सुई को नाको।
कायम करतां छिन नहीं लागे, जो निज मन दृढ़ राखो राज ।।ओ०।।

जगत् जाल की लाय विषमता, पुद्गल को रस पाको।
रसकुं छोड़ नीरस होई जावो, जग सुख सिर रंज नाखो राज ।।ओ०।।

'रतनचन्द' शिवगढ़ कुं चढ़तां, ऊठ-ऊठ मत थाको।
अचल, अक्षय सुख छोड़, विषय सुख, फिर-फिर मत अभिलाखो राज ।।ओ०।।

समाधि-वरण

□ श्री रणजीतसिंह कूमट

समता की आय और प्राप्ति ही समाधि है। या यों कहिये कि व्याधि का अंत समाधि है। जीवन में हम जैसे-जैसे विभिन्न गतिविधियो में फँसते हैं। सब ओर व्याधि और उपाधि ही देखते हैं। किसी को कुछ नहीं मिलने से व्याधि है तो किसी को मिल जाने से भी व्याधि है। चिंता, दुःख और प्रतिक्रिया में जीवन बिताने से व्यक्ति कई बार ऊब जाता है तो कहता है कि इससे तो मरना ही अच्छा। किन्तु जब कोई कहता है कि मरना ही अच्छा तो वास्तव में वह मरना नहीं चाहता और शायद दुःख से छुटकारे के लिए मौत का आह्वान करता है। मौत से सब डरते हैं किन्तु जब दुःख की पराकाष्ठा हो जाय तो मौत का आह्वान भी कर बैठते है। परन्तु क्या वह मौत स्वागत योग्य है या एक दुःख से बचने के लिए दूसरे दुःख को बुलावा? इस प्रकार की मौत से दुःखों का अंत नहीं क्योंकि वह मौत भी अपने आप में दुःख ही है। मौत में जब प्राण तिलमिला रहे हों तो दुःख का अंत कहाँ? समाधि कहाँ? वह तो व्याधि का एक नया रूप है। जो व्यक्ति आत्महत्या करते है यदि वे किसी प्रकार बचा लिए जांय तब बचने के बाद उनसे पूछा जाय कि वे कैसा अनुभव करते है तो देखेंगे कि वे बचाने वाले के प्रति बहुत उपकृत है। यदि वे दिल से मौत चाहते तो बचाने वाले के प्रति उपकृत क्यों होते? वास्तव में वे मौत नहीं चाहते, वे तो मौत में अपने तात्कालिक दुःखों का अंत देख रहे थे। मृत्यु किसे चाहिये? सब जीना चाहते हैं। दुःखों से भाग कर आत्महत्या करने को जघन्य अपराध कहा है।

तब प्रश्न उठता है कि साधु व अन्य महात्मा संथारा या संलेखना क्यों लेते है? अन्तिम समय में समस्त भोजन, पानी का त्याग क्यों करते है? क्या वे आत्महत्या का प्रयास नही कर रहे? आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने जब संथारा ग्रहण किया (अर्थात् भोजन, पानी का आजीवन त्याग किया) तब कई लोगों ने प्रश्न उठाया कि यह तो आत्महत्या है। यह अवांछनीय है। परन्तु यह बिल्कुल अलग घटना है। आचार्य श्री एक पहुँचे हुए संत थे जिन्होंने पूरे जीवन समता का रूप धारण किया और जब देखा कि शरीर के पुद्गल कार्य नही कर रहे है, तब अपना अंतिम समय नजदीक आया जानकर समाधि-वरण

की। वे चाहते है कि अंतिम समय बिल्कुल शान्ति का समय हो और शरीर के किसी अंग में और प्राणों में जरा सी भी वेदना के प्रति प्रतिक्रिया या जीने की वासना न हो। शरीर की इन्द्रियाँ बाहरी वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया को छोड़े क्योंकि अब वे अपने आपको अन्दर ले जाना चाह रहें है। मन, प्राण व इन्द्रियाँ बाहरी वातावरण से सिमट कर आत्मा में प्रवेश कर आत्मा में समाधिस्थ हो रही थी। इसका प्रमाण था कि जब अन्तिम समय आया और प्राणों ने शरीर को त्यागा तब शरीर में नाम मात्र की भी फड़फड़ाहट या प्रतिक्रिया नहीं थी। समाधि में ही प्राणत्याग हो चुके।

यह एक अजीब दृश्य था जब किसी ने मृत्यु का स्वागत किया और मृत्यु को स्वीकार किया। मृत्यु केवल देह की क्रिया का अन्त है, इन्द्रियों की कार्यवाही का अन्त है और यदि काया का उत्सर्ग इस प्रकार से हो कि जिसमें तड़पड़ाहट या छटपटाहट या प्रतिक्रिया न होकर समता, समाधि और शान्ति हो तो वह मरण पंडित-मरण कहलाता है। मौत के समय ही पूरी जागरुकता और पूरी शान्ति मिल सके, यह एक विशेप उपलब्धि है। पूरे जीवन में जिसने समता को प्राप्त करने की कोशिश की, वही व्यक्ति अन्त समय में इस प्रकार की समाधि प्राप्त कर सकता है। साधारण व्यक्ति इस प्रकार की समाधि प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि जीवन भर उसने इस प्रकार का प्रयोग या आचरण नहीं किया। हमें यदि इस प्रकार की शांति प्राप्त करनी है तो पूरे जीवन प्रयास करना होगा कि समता में रहें और इन्द्रिय-वासना के पीछे भागते हुए प्रतिक्रियात्मकता का अन्त कर सजग जीवन बिताएँ, तभी हम इच्छानुसार समाधि वरण कर सकते है।

—सी-२०, हीराबाग, जयपुर-४

न संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२९

शीलवान और बहुश्रुत भिक्षु मृत्यु के क्षणों में भी संत्रस्त नहीं होते।

• • •

कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

—उपासकद॰

आत्मार्थी साधक कष्टों से जूझता हुआ मृत्यु से अनपेक्ष वन क॰

सन्तों का आदर्श : सल्लेखना

☐ डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया

मानवी-जीवन की दो प्रमुख घटनाएँ है—जन्म और मरण। त्रेसठ शलाका पुरुषों में से तीर्थंकर प्रकृति के प्राणियों के जन्म-मरण विषयक पांच प्रमुख प्रसंग होते हैं—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष। ये सभी जीवंत घटनाएँ/प्रसंग स्व और पर कल्याणकारी होते हैं, अतः इन्हें कल्याणक कहा गया है। पंच कल्याणक जीवन में पहली आखिरी प्रसंग/घटनाएँ होती हैं। जन्म और मरण के साथ यह बात आवश्यक और अनिवार्य नहीं है।

पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ कर्मधारियों की जन्म और मृत्यु विषयक घटनाएँ अच्छा-बुरा अथवा सुखद-दुःखद परिणाम प्रदान करती हैं जिनके जन्म लेने से घर अथवा बाहर सौख्यप्रद और आनन्दकारी वातावरण उत्पन्न हो जाता है। बधाए गाए और बजाए जाने लगते है। किन्तु अशुभ जन्मोदय पर सर्वत्र हाहाकार मच जाता है। यही दशा मृत्यु-वेला पर होती है। पुण्यात्मा जीव जब मरते है तो आस-पास के वातावरण में किसी प्रकार की क्लेशकारी प्रतीति नहीं होती अपितु संसार की असार प्रवृत्ति मुखर हो उठती है। सहज और स्वाभाविक रूप में महायात्रा पर जाने वाला प्राण क्षमा माँगता हुआ, निराकुल वातावरण में चला जाता है।

मरण की इसी बेला में श्रमण संस्कृति जन्मोत्सव की नाई मृत्यु महोत्सव मनाने का निर्देश देती है। सन्त एवं साधक-चर्या में मृत्यु को महोत्सव के रूप में मनाने का रिवाज आज भी यदाकदा चरितार्थ होता देखा और सुना गया है। ऐसी मृत्यु को यहाँ अनेक संज्ञाओं में पुकारा गया है। समाधिमरण, सल्लेखनापूर्वक मरण तथा पडित मरण विशेषकर उल्लेखनीय हैं।

काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष नामक पुरुषार्थों के समवाय से पुरुषार्थ चतुष्टय के रूप को स्वरूप प्राप्त होता है। काम और अर्थ विषयक पुरुषार्थों का सम्पादन सामान्य स्तर के प्राणी भी प्रायः पूर्ण कर लिया करते है। धर्म पुरुषार्थ-सम्पादन के लिए विशेष कोटि के महापुरुषों की अपेक्षा होती है। जिन पंथी साधकों और सन्तों के जीवन का उद्देश्य प्रायः धर्म पुरुषार्थ का अर्जन करते हुए, मोक्ष पुरुषार्थ का सम्पादन करना होता है।

धर्म पुरुषार्थ के लिए जीवन-चर्या से अधार्मिक प्रवृत्तियों का एक प्रकार

[१०]

(१) **प्रश्न**—संलेखना (संथारा) एवं आत्म-हत्या मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—संलेखना एक व्रत है, जो जीवन के अन्तिम समय सार्वजनिक रूप से प्रायः ग्रहण किया जाता है। इसमें साधक की भावना शुद्ध, निर्मल व पवित्र होती है। इसमें साधक आत्मलीन और भेद-विज्ञान से परिचित रहता है। संथारा बिना किसी दबाव के दृढ़ संकल्प एवं मनोबल से स्वीकार किया जाता है। इसमें साधक शान्ति और आनन्द से समाधिपूर्वक प्राण त्याग करता है।

आत्म-हत्या व्रत नही है। इसमे भावना शुद्ध, निर्मल व पवित्र नहीं होती। आत्म-हत्या एकान्त में छिपकर की जाती है। इसमें कर्ता दु.खी, शोक-ग्रस्त, बिना होश और बिना विवेक मे रहता है। आत्मज्ञान नही होता तथा भयभीत रहता है। आत्म-हत्या में भयंकर कष्ट का सामना करना पड़ता है तथा यह कानूनी अपराध है। आत्महत्या कषाय या कुण्ठाओं के कारण की जाती है।

(२) **प्रश्न**—संथारे में कौन-कौन सी असंक्लिष्ट भावनाओं का चिन्तन करना चाहिए ?

उत्तर—(१) तप, (२) श्रुताभ्यास, (३) निर्भयता, (४) एकत्व, (५) धृति बल।

इन ५ भावनाओं का संथारे मे चिन्तन करना चाहिए।

(३) **प्रश्न**—उपवास-चिकित्सा और संलेखना में क्या अन्तर है ?

उत्तर—उपवास-चिकित्सा मे जीवन की पूरी आशा और चेष्टा रहती है, जबकि संलेखना तभी की जाती है, जब जीवन की न तो कोई आशा रहती है और न चेष्टा की जाती है।

[११]

(१) **प्रश्न**—दीर्घ काल या अल्प काल की पूर्व तैयारी के बिना समाधि-मरण का अपूर्व लाभ प्राप्त होना क्यों असम्भव है ?

उत्तर—अनादि काल से हमारी आत्मा, वासना, मोह, विकार, कषाय आदि से जकड़ी हुई है, इसलिए एकदम ये सब विकार आत्मा से अलग नही हो सकते। इन दोषों को दूर करने के लिए उसकी पूर्व तैयारी के रूप में अभ्यास प्रयत्न आवश्यक है। इस अभ्यास से हमे सम्यक् दर्शन एवं ज्ञान की प्राप्ति ोती है। लगातार अभ्यास करने से ही मृत्यु के समय हम सचेत रह सकते हैं ैर संथारा के लाभ का मौका मिल सकता है।

(२) **प्रश्न**—पादोपगमन मरण की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

उत्तर—पादप नाम वृक्ष का है। जैसे वृक्ष वायु आदि के प्रबल वेग से जड से उखड़कर भूमि पर जैसा गिर जाता है, उसी प्रकार पड़ा रहता है, इसी प्रकार जो साधक भक्तपान का यावज्जीवन परित्याग करता है तथा स्व-पर की वैयावृत्य का भी त्याग कर कायोत्सर्ग आदि से आत्म-चिंतन करते हुए प्राण त्याग करता है, उसके मरण को पादोपगमन मरण कहते हैं।

(३) **प्रश्न**—आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. के संथारे की क्या विशेषता रही ?

उत्तर—आचार्य श्री ने तेले की तपस्या कर फिर संथारा किया, यह उनके संलेखना संथारे की विशेषता थी।

[१२]

(१) **प्रश्न**—टूटी की कोई बूटी नहीं होती।
इस उक्ति का आशय क्या है ?

उत्तर—मौत के आगे किसी का वश नहीं चलता।

(२) **प्रश्न**—"जब हमें ऐसा अनुभव हो कि जीवन का प्रयोजन समाप्त होने वाला है, तो हमें मृत्यु का तिरस्कार न कर एक आदरणीय अतिथि समझ कर उसका स्वागत करना चाहिए। रोते-बिलखते मृत्यु को वरण करना कायरता है और प्रसन्नता के साथ मृत्यु को स्वीकार करना एक आदर्श है। जीवन जीना यदि अध्ययन-काल है, तो मृत्यु परीक्षा-काल है।"

उपर्युक्त विचार किसने व्यक्त किए ?

उत्तर—काका कालेलकर ने।

(३) **प्रश्न**—आहार, शरीर, उपाधि, पच्चखूं पाप अठार।
मरण पाऊँ तो वौसिरे, जीऊँ तो आगार॥

उपर्युक्त पाठ बोलकर कौनसा संथारा स्वीकार किया जाता है ?

उत्तर—सागारी संथारा।

—P. M. CHORDIA & Co.
Chartered Accountants
89, Audiappa Naicken Street
Sowcarpet, Madras-600 079

name of suicide. However, those who understand the real significanc of soul, they know that the soul is beginningless, endless, an immortal, which neither the wind can dry, nor can the fire burn no can anything pierce. Murder is a body related terminology bu Santhara is in reality the process of liberation of the soul from th body.

The folk diety of Rajasthan Ram Deoji has taken aliv Samadhi. It was not his suicide. Indian saints willingly relinquis the body which is called Samadhi. There is long tradition of Santhar in Sharamanic culture, which is an expression of fearlessness toward death. It is rising above all bodily pains and troubles, it is a proces of passionlessness and becoming a Stith-Pragya

To rise above the level of bodily existence Lord Mahavi underwent extreme penance. He invited many a troubles; only the he gained the *light of the soul, the nectar of spirituality* and the powe to become Mahavir.

This indifference to the body is a belief in its MORTALITY. That is why Santhara is the great inspiration to rise above all bodily difficulties and troubles. It is the height of Aparigraha denying attachment to the body.

(Courtesy : PRATINIDHI, Hindi Daily News Paper, Jodhpur)

चतुर्थ स्वराट



आत्म-साक्ष्य

[आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के कविमनीषी युवा शिष्य श्री गौतम मुनिजी की डायरी में संकलित यह आत्म-साक्ष्य युगद्रष्टा-युगमनीषी आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की संयम-साधना एवं संथारा-समाधिमरण के आत्म-जागृति परक कई प्रेरक मार्मिक प्रसंगों का स्पर्श करता है। आशा है, इसके अध्ययन-मनन से पाठकों को अपने जीवन-निर्माण एवं स्वाध्याय-चिन्तन में विशेष प्रेरणा मिलेगी। —सम्पादक]

name of suicide. However, those who understand the real significance of soul, they know that the soul is beginningless, endless, and immortal, which neither the wind can dry, nor can the fire burn nor can anything pierce. Murder is a body related terminology but Santhara is in reality the process of liberation of the soul from the body.

The folk diety of Rajasthan Ram Deoji has taken alive Samadhi. It was not his suicide. Indian saints willingly relinquish the body which is called Samadhi. There is long tradition of Santhara in Sharamanic culture, which is an expression of fearlessness towards death. It is rising above all bodily pains and troubles, it is a process of passionlessness and becoming a Stith-Pragya

To rise above the level of bodily existence Lord Mahavir underwent extreme penance. He invited many a troubles; only then he gained the *light of the soul, the nectar of spirituality* and the power to become Mahavir

This indifference to the body is a belief in its MORTALITY. That is why Santhara is the great inspiration to rise above all bodily difficulties and troubles. It is the height of Aparigraha denying attachment to the body.

(Courtesy : PRATINIDHI, Hindi Daily
News Paper, Jodhpur)

चतुर्थ खण्ड



आत्म-साक्ष्य

[आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के कविर्मनीषी युवा शिष्य श्री गौतम मुनिजी की डायरी से संकलित यह आत्म-साक्ष्य युगद्रष्टा-युगमनीषी आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की संयम-साधना एवं संथारा-समाधिमरण के आत्म-जागृति परक कई प्रेरक मार्मिक प्रसंगों को स्पर्श करता है। आशा है, इसके अध्ययन-मनन से पाठकों को अपने जीवन-निर्माण एवं स्वाध्याय-चिन्तन में विशेष प्रेरणा मिलेगी। —सम्पादक]

जीवन का संध्या-काल : आँखों देखा हाल*

□ श्री गौतम मुनि
(आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के युवा-मनीषी शिष्य)

शासनपति श्रमण भगवान महावीर स्वामी का अंतिम चातुर्मास पावापुरी में हस्तीपाल राजा की रज्जुशाला में हुआ, कौन जानता था कि उन्हीं प्रभु के ८१वें पट्टधर, जिनशासन के दैदीप्यमान सूर्य ८१ वर्षीय आचार्य हस्ती अपना अंतिम चातुर्मास पाली नगर में श्रेष्ठिवर्य हस्तीमलजी सुराणा की शाला में व्यतीत करेंगे। पाली के ऐतिहासिक चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् अपने मनोगत भावों को प्रगट करते हुए पूज्य आचार्य भगवन् ने संतों से कहा "मुझे निमाज जाना है क्योंकि जब मैंने पाली चातुर्मास स्वीकृत किया, तब निमाज सकल संघ एवं भण्डारी परिवार की अति उत्कृष्ट भावभीनी विनति पर लक्ष्य रखते हुए **मैंने ये शब्द कहे थे कि आगे तुम्हारा ध्यान रखूंगा।** इस वचन को पूरा कर कर्जमुक्त होना चाहता हूं।" इधर जोधपुर के भावुक भक्तजन शिष्ट-मण्डल बनाकर बार-बार श्री चरणों में उपस्थित हो साञ्जलि शीष झुका निवेदन करते—"कृपानाथ ! आपने ७० वर्ष पर्यन्त निराबाध विचरण कर जिन-शासन की महत्ती प्रभावना की है एवं प्रभु महावीर की भव-भयहारिणी मंगलमय वाणी द्वारा डगर-डगर, नगर-नगर, गाँव-गाँव अलख जगाते हुए सामायिक-स्वाध्याय के दो अमृतोपम आघोषों से जन-जन को उपकृत किया है। प्रभो ! अब शारीरिक अवस्था को देखते हुए जोधपुर स्थिरवास बिराज कर हमें उपकृत करें।"

जब-जब भी शिष्ट-मण्डल व जोधपुर श्री संघ ने गुरु चरण-सरोजों में उपस्थित हो इस प्रकार साग्रह भाव-प्रवण निवेदन किया, अपनी चिर-परिचित मंदस्मित युक्त शैली में उस वचन-धनी, अनासक्त-योगी गुरुदेव ने एक ही बात फरमाई—"मुझे पहले निमाज का वचन पूरा करना है।"

निराश, उदास मन भक्तगण नत थे आचार्य प्रवर के प्रत्युत्तर पर। फिर भी गुरुदेव की शारीरिक अशक्तता से चिंतित भक्त-समुदाय का मन नहीं मानता। जोधपुर श्री संघ ने सम्पूर्ण रत्नवंश के प्रमुख पदाधिकारियों एवं अग्रगण्य सुश्रावकगण का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर उन्हें भी निवेदन किया—स्थिरवास विनति मात्र हमारी व्यक्तिगत भक्ति व स्वार्थ नहीं वरन्

---

*मुनि श्री की डायरी से ज्ञानेन्द्र बाफना द्वारा संकलित।

प्रमुख बात पूज्य गुरुवर्य के स्वास्थ्य की है। संघ के सभी प्रमुख श्रावकों ने एक स्वर में, जोधपुर सघ की बात का अनुमोदन करते हुए सशक्त विनति ले श्री चरणों में पुनः कातर स्वर में प्रार्थना की—"दीनदयाल ! दीनानाथ !! हमारी प्रार्थना को नजर-अन्दाज न कर गौर फरमावे, आप हमारे संघनायक व चतुर्विध संघ की मुकुटमणि हैं । आप जिनशासन की दिव्य दिनमणि एवं श्रमणों में श्रेष्ठ श्रमण है, आप संघ के सर्वेसर्वा एवं लाखों भक्तों के भगवान् है। अतः यह शरीर जिसे आपने कभी भी अपना नहीं समझा, भगवन् ! इस पर चतुर्विध सघ का भी अधिकार है। हे कृपाशु ! शरीर का स्वास्थ्य पहले है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के आगार से दिया गया आश्वासन बाद में। अतः आप कृपाकर स्वास्थ्य की दृष्टि से नजदीक में सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र जोधपुर में स्थिरवास हेतु पधारे।"

आचार्य भगवन् ने निर्लिप्त भावो से सारी विनति सुनकर पूर्ववत् वैसा ही उत्तर दिया । साथ ही संघ के अत्याग्रह पर इतना मात्र फरमाया—"यदि निमाज संघ एवं भण्डारी परिवार मुझे वचन-मुक्त करता है तो मैं विचार कर सकता हूं।"

संघ ने भण्डारी परिवार को सभी परिस्थितियों से अवगत कराया एवं उन्हें पूज्य गुरुदेव को वचन-मुक्त करने का निवेदन किया पर भला ऐसी तारणतिरण की जहाज, जैन-जगत-सिरताज, सकल समाज जिन पर गौरवान्वित है, ऐसे परमाराध्य गुरुदेव की पावन पवित्र सेवा से कौन वंचित रहना चाहता ? फिर भी भण्डारी परिवार ने संघ का मान रखते हुए यही कहा—जैसा गुरुदेव उचित समझें।

कौन जानता था कि भावी के गर्भ में क्या छिपा हुआ था परन्तु एक मात्र ज्ञाता दृष्टा थे तो विमल ज्ञान के धनी वे अध्यात्म-सूर्य पर आत्माराधन में लीन वे योगिराज अपमे गांभीर्य को भला कैसे छलकने देते ! उन वचनधनी महापुरुष ने संघ के प्रमुख श्रावकों से यही कहा—"मुझे अभी निमाज की बात पूरी कर कर्जमुक्त होना है।" इस बात पर विचारमग्न चिन्तित बने भक्तगण मौन थे । उस अन्तर्यामी आराध्य आचार्य देव की भावना के विपरीत भला कैसे अपनी बात रखते ?

सर्दी की अत्यधिकता के कारण गुरुदेव को चातुर्मास के पश्चात् भी काफी समय तक पाली विराजना पड़ा। मुनि-मण्डल को श्री शुभेन्द्र मुनिजी म. सा. आदि की भी प्रतीक्षा थी। अन्ततः १०–२–९१ रविवार फागण वद ११ (ग्यारस) को निमाज की ओर विहार होना तय हुआ।

ज्यों-ज्यों विहार का समय निकट आ रहा था, पाली निवासियों के हृदय-कमल कुम्हला रहे थे । कितनी खुशियाँ छा गई थीं पाली की धरती पर जब पूज्य गुरुदेव ने चातुर्मासार्थ पाली में पदार्पण किया था, आबाल वृद्ध युवक सभी हर्षित थे, उस दिन पाली की समग्र जनता के मानस में श्रद्धा-भक्ति के शत-शत दीप प्रदीप्त हो उठे थे, पूज्य गुरुदेव का सान्निध्य पाकर सकल जैन समाज प्रफुल्लित था । ऐसा देवदुर्लभ पावन सान्निध्य पाकर धर्माराधन की होड़ सी लग गई । पूज्य गुरुदेव के प्रबल अतिशय एवं पाली संघ की अनुपम भक्तिमय सेवा से वह वर्षावास गुरुदेव के जीवन का एक ऐतिहासिक चातुर्मास बन गया । ज्ञान, ध्यान, सामायिक स्वाध्याय, तप एवं संवर के विविध सोपानों से युक्त यह चातुर्मास अविस्मरणीय बन गया । जब तक गुरुदेव पाली विराजे, वहाँ एक अनूठा ठाठ रहा पर आज जब गुरुदेव का विहार हो रहा था, सभी के दिल भारी थे, गुरुदेव की विदाई से बोझिल मन पाली नगर गमगीन सा लग रहा था, सभी भक्तगणों की आँखें नम थीं, मन भावाभिभूत थे । जय-विजय घोषों के साथ पुनः पदार्पण की बार-बार प्रार्थना करता अपार जन-समुदाय गुरुदेव के पीछे-पीछे चल पड़ा । पर किसे पता था कि यह महान् विभूति अब कभी इस धरती पर नहीं लौटेगी । 'जय गुरु हस्ती' के नारों से गगन गुंजायमान हो रहा था पर अपनी प्रशंसा से कोसों दूर पूज्य गुरु हस्ती ने पीछे मुड़कर जनता से यही कहा—'मेरी नहीं तीर्थंकर भगवन्तो की जय बोलो ।' सुनने वाले आश्चर्य श्रद्धाभिभूत थे—यह कैसा निर्लिप्त अवधूत ! कहाँ तो अपनी प्रशंसा व बढ़ाई के लिए आकाश-पाताल एक करने वाले और कहाँ अपनी जय-जयकार के लिये मना करने वाला यह विरल योगी !

सन्तों ने थोड़ी दूर पर एक डोली रख रखी थी । शारीरिक दुर्बलता होते हुए भी आचार्य भगवन् सन्तो के सहारे गजगति से पैदल चल रहे थे । ज्यों ही डोली के पास पहुँचे, सन्तों ने सविनय निवेदन किया—'भगवन् ! अब डोली में विराजमान हो हमें सेवा का दुर्लभ अवसर प्रदान करे ।' सरलता की प्रतिमूर्ति, असीम आत्म-शक्तिधारी उन महापुरुष ने मधुर मुस्कान लिये सन्तों से यही कहा—'अभी और पैदल चलने दो ।' इस प्रत्युत्तर से सभी आश्चर्य-चकित थे । नत-मस्तक थे सुनने वाले । प्रत्यक्ष देख रहे थे भक्तगण कि चलने की शक्ति नहीं है पर क्या गजब का अदम्य उत्साह है, चेहरे पर अपूर्व आत्म-विश्वास है, थकान मानो उन महापुरुष के आत्म-तेज के आगे नत मस्तक हो नजदीक नही फटकने पा रही हो । साञ्जलि सविनय शीश झुकाते हुए ...चरण पकड़ सन्तों ने अनुरोध किया—'भगवन् ! बस कीजिये । शरीर आखिर ... होता है । आपने आज तक कभी शरीर की ओर ध्यान ही नहीं दिया,

प्रमुख वात पूज्य गुरुवर्य के स्वास्थ्य की है। संघ के सभी प्रमुख श्रावकों ने एक स्वर मे, जोधपुर संघ की वात का अनुमोदन करते हुए सशक्त विनति ले श्री चरणों मे पुनः कातर स्वर में प्रार्थना की—"दीनदयाल ! दीनानाथ !! हमारी प्रार्थना को नजर-अन्दाज न कर गौर फरमावे, आप हमारे संघनायक व चतुर्विध संघ की मुकुटमणि हैं । आप जिनशासन की दिव्य दिनमणि एवं श्रमणों में श्रेष्ठ श्रमण हैं, आप सघ के सर्वेसर्वा एवं लाखों भक्तों के भगवान् है। अतः यह शरीर जिसे आपने कभी भी अपना नहीं समझा, भगवन् ! इस पर चतुर्विध संघ का भी अधिकार है। हे कृपाशु ! शरीर का स्वास्थ्य पहले है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के आगार से दिया गया आश्वासन वाद में। अतः आप कृपाकर स्वास्थ्य की दृष्टि से नजदीक में सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र जोधपूर में स्थिरवास हेतु पधारें।"

आचार्य भगवन् ने निर्लिप्त भावों से सारी विनति सुनकर पूर्ववत् वैसा ही उत्तर दिया । साथ ही संघ के अत्याग्रह पर इतना मात्र फरमाया—"यदि निमाज संघ एवं भण्डारी परिवार मुझे वचन-मुक्त करता है तो मैं विचार कर सकता हू।"

संघ ने भण्डारी परिवार को सभी परिस्थितियों से अवगत कराया एवं उन्हें पूज्य गुरुदेव को वचन-मुक्त करने का निवेदन किया पर भला ऐसी तारणतिरण की जहाज, जैन-जगत-सिरताज, सकल समाज जिन पर गौरवान्वित है, ऐसे परमाराध्य गुरुदेव की पावन पवित्र सेवा से कौन वंचित रहना चाहता ? फिर भी भण्डारी परिवार ने संघ का मान रखते हुए यही कहा—जैसा गुरुदेव उचित समझें।

कौन जानता था कि भावी के गर्भ में क्या छिपा हुआ था परन्तु एक मात्र ज्ञाता दृष्टा थे तो विमल ज्ञान के धनी वे अध्यात्म-सूर्य पर आत्माराधन में लीन वे योगिराज अपमे गांभीर्य को भला कैसे छलकने देते ! उन वचनधनी महापुरुष ने संघ के प्रमुख श्रावकों से यही कहा—"मुझे अभी निमाज की वात पूरी कर कर्जमुक्त होना है ।" इस वात पर विचारमग्न चिन्तित वने भक्तगण मौन थे । उस अन्तर्यामी आराध्य आचार्य देव की भावना के विपरीत भला कैसे अपनी वात रखते ?

सर्दी की अत्यधिकता के कारण गुरुदेव को चातुर्मास के पश्चात् भी काफी समय तक पाली विराजना पड़ा। मुनि-मण्डल को श्री शुभेन्द्र मुनिजी म. सा. आदि की भी प्रतीक्षा थी। अन्ततः १०–२–६१ रविवार फागण वद (ग्यारस) को निमाज की ओर विहार होना तय हुआ।

ज्यों-ज्यों विहार का समय निकट आ रहा था, पाली निवासियों के हृदय-कमल कुम्हला रहे थे। कितनी खुशियाँ छा गई थीं पाली की धरती पर जब पूज्य गुरुदेव ने चातुर्मासार्थ पाली में पदार्पण किया था, आबाल वृद्ध युवक सभी हर्षित थे, उस दिन पाली की समग्र जनता के मानस में श्रद्धा-भक्ति के शत-शत दीप प्रदीप्त हो उठे थे, पूज्य गुरुदेव का सान्निध्य पाकर सकल जैन समाज प्रफुल्लित था। ऐसा देवदुर्लभ पावन सान्निध्य पाकर धर्माराधन की होड़ सी लग गई। पूज्य गुरुदेव के प्रबल अतिशय एवं पाली संघ की अनुपम भक्तिमय सेवा से वह वर्षावास गुरुदेव के जीवन का एक ऐतिहासिक चातुर्मास बन गया। ज्ञान, ध्यान, सामायिक स्वाध्याय, तप एवं संवर के विविध सोपानों से युक्त यह चातुर्मास अविस्मरणीय बन गया। जब तक गुरुदेव पाली विराजे, वहाँ एक अनूठा ठाठ रहा पर आज जब गुरुदेव का विहार हो रहा था, सभी के दिल भारी थे, गुरुदेव की विदाई से बोझिल मन पाली नगर गमगीन सा लग रहा था, सभी भक्तगणों की आँखें नम थीं, मन भावाभिभूत थे। जय-विजय घोषों के साथ पुनः पदार्पण की बार-बार प्रार्थना करता अपार जन-समुदाय गुरुदेव के पीछे-पीछे चल पड़ा। पर किसे पता था कि यह महान् विभूति अब कभी इस धरती पर नहीं लौटेगी। 'जय गुरु हस्ती' के नारों से गगन गुंजायमान हो रहा था पर अपनी प्रशंसा से कोसों दूर पूज्य गुरु हस्ती ने पीछे मुड़कर जनता से यही कहा—'मेरी नहीं तीर्थंकर भगवन्तों की जय बोलो।' सुनने वाले आश्चर्य श्रद्धाभिभूत थे—यह कैसा निर्लिप्त अवधूत! कहाँ तो अपनी प्रशंसा व बढ़ाई के लिए आकाश-पाताल एक करने वाले और कहाँ अपनी जय-जयकार के लिये मना करने वाला यह विरल योगी!

सन्तों ने थोड़ी दूर पर एक डोली रख रखी थी। शारीरिक दुर्बलता होते हुए भी आचार्य भगवन् सन्तों के सहारे गजगति से पैदल चल रहे थे। ज्यों ही डोली के पास पहुँचे, सन्तों ने सविनय निवेदन किया—'भगवन्! अब डोली में विराजमान हो हमें सेवा का दुर्लभ अवसर प्रदान करें।' सरलता की प्रतिमूर्ति, असीम आत्म-शक्तिधारी उन महापुरुष ने मधुर मुस्कान लिये सन्तों से यही कहा—'अभी और पैदल चलने दो।' इस प्रत्युत्तर से सभी आश्चर्य-चकित थे। नत-मस्तक थे सुनने वाले। प्रत्यक्ष देख रहे थे भक्तगण कि चलने की शक्ति नहीं है पर क्या गजब का अदम्य उत्साह है, चेहरे पर अपूर्व आत्म-विश्वास है, थकान मानो उन महापुरुष के आत्म-तेज के आगे नत मस्तक हो नजदीक नहीं फटकने पा रही हो। साञ्जलि सविनय शीश झुकाते हुए बाँह पकड़ सन्तों ने अनुरोध किया—'भगवन्! बस कीजिये। शरीर आखिर शरीर होता है। आपने आज तक कभी शरीर की ओर ध्यान ही नहीं दिया

आपने सदैव आत्म-साधना, ज्ञान-आराधना एवं जन-जागृति में ही शरीर का उपयोग किया । अब अशक्तता के इस दौर में कृपानाथ पैदल चलने का आग्रह नहीं करावें ।'

अन्तत: कृपालु गुरुवर्य अपने शिष्टमण्डल को सेवा का लाभ देने, वेमन से डोली मे विराजे । डोली में विराजित गुरुदेव को देखकर ऐसा लग रहा था मानों कोई राजहंस तैरता हुआ अपने गन्तव्य स्थल की ओर प्रयाण कर रहा हो । जय-जयकार करती हुई जनता पीछे-पीछे चल रही थी। किसी भावुक भक्त ने जयकार लगाई कि 'पालकी में विराजित आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की जय ।' यह सुनकर डोली में विराजे-विराजे ही उन सरलता व निरभिमानता के साकार स्वरूप आचार्य भगवन् ने एक जयकार लगाई कि 'पालकी उठाने वाले सन्तों की जय ।' यह सुन उपस्थित जन-समूह श्रद्धाभिभूत हो गया, सभी सन्त गद्‌गद् हो गये इस अकारण करुणाकर गुरुदेव की अनिर्वचनीय कृपा पर । धन्य-धन्य गुरुदेव ! बेजोड़ है उनकी सरलता व निरभिमानता । आगम का वह पाठ (उत्तराध्ययन सूत्र का नवमा अध्ययन) जहाँ शकेन्द्र नमिराजर्षि से प्रश्नोत्तर परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर नत-मस्तक हो गुणगान करते हुए कहते है—

> अहो ! ते अज्जवं साहु, अहो ! ते साहु मद्दवं ।
> अहो ! ते उत्तमा खंती, अहो ! ते मुत्ति उत्तमा ।।५७।।

अहो ! उत्तम है आपका आर्जव, अहो ! उत्तम है आपका मार्दव, अहो ! उत्तम है आपकी क्षान्ति, अहो ! सर्वश्रेष्ठ है आपकी निर्लोभता ।

वही गाथा आपके जीवन में मानो साकार समुपस्थित हो गई हो । सभी सन्तगण गुरुदेव के आशीर्वचन से भावाभिभूत थे । उनके कृपाप्रसाद से अपने आपको कृतकृत्य महसूस करते मन ही मन यही प्रार्थना कर रहे थे दुर्लभ है ऐसी सरलता ! भव-भव मे सद्‌गुणो के पर्याय ऐसे गुरुदेव हमें मिले ।

सुखासन में विराजमान गुरुदेव कभी-कभी डोली उठाने वाले अपने सन्त शिष्यो ने कहते—'भाई, मेरे कारण से आप सन्तजनो को कष्ट उठाना पड़ रहा है ।' सन्त निवेदन करते—'पूज्य गुरुवर्य, कृपया ऐसा न फरमावें । आपने आज तक जीवन में कभी ऐसा अवसर ही नहीं आने दिया । आपका स्वावलम्बी जीवन हमारे लिये युगों-युगों तक प्रेरणाप्रदायी है । प्रभो ! भक्ति में कैसा भार व कैसा कष्ट ? यह तो हमारा प्रथम कर्त्तव्य है ।'

हम सब पूज्य गुरुवर के सहज सात्विक भावुक हृदय से अनुप्राणित थे । नवनीत तुल्य कोमलता से परिपूर्ण एवं साधना में वज्रादपि कठोर था उन चारित्रात्मा का हृदय । अपने कष्टों की चिन्ता नहीं, पर सन्तों के कष्ट की कल्पना मात्र से भी वे भावाभिभूत हो उठते । मंजिल दर मंजिल तय करते हुए हम ग्रामानुग्राम विचरण कर सोजत सिटी की ओर बढ़ रहे थे । मार्ग में कभी सन्तों के कद की समानता न होने से प्रयत्न के बावजूद भी डोली यदा-कदा हिल उठती और उन महापुरुष के वृद्ध तन को अवश्य ही कष्ट होता होगा पर जब भी हम पूछते—गुरुदेव ! विराजने या हमारे उठाकर चलने से आपको कोई असुविधा या कष्ट तो नहीं होता ताकि यथा-शक्ति हम ध्यान रख सकें ? प्रत्युत्तर में धैर्य व समता के पर्याय वे महापुरुष अत्यन्त आत्मीयता व वात्सल्य से यही फरमाते—'भाई मुझे कष्ट क्यों ? मै तो आराम से बैठा हूं । कष्ट तो आप लोगों को उठाने में होता होगा ।' स्थितप्रज्ञ की भांति विराजमान गुरुदेव ऐसे लगते मानों समता व सहिष्णुता साकार जीवन्त प्रतिमूर्ति हो । गुरुदेव तो तमाम इच्छाओं की आत्म-साधना के यज्ञ में आहुति दे चुके थे, फिर उन स्वलीन महापुरुष को कष्ट और सुविधा की अनुभूति ही कैसे होती ? वे परदु:ख-कातर, दयासागर महापुरुष तो सदा दूसरों का ही हितचिन्तन करते ।

२३–२–६१ बुधवार को पूज्य गुरु भगवन् ने सोजत सिटी में प्रवेश किया, तब से ही शहर में धर्माराधना की नवीन उमंग व उत्साह देखने को मिला, दर्शनार्थियों का तांता सा लग गया । भक्तजन दर्शन को उमड़ पड़े । जंगल में भी मंगल करने वाले इस साधक के पदार्पण से सोजत जैसे शहर में श्रद्धा, भक्ति व धर्माराधना का अनूठा ठाठ लग गया । पर गुरुदेव तो इस ऊपरी माहौल से परे हटकर संघ-दायित्व का सफल निर्वहन करते हुए जल-कमलवत् निर्लिप्त आत्म-साधना में निरत रहते । आप श्री जब तक सोजत विराजे तब तक जीवन के इस संध्याकाल में भी अप्रमत्त भाव से आध्यात्मिक ऊर्जा से ओतप्रोत वही नियमित दिनचर्या रही । यद्यपि वे स्वयं प्रवचन नही फरमाते पर आगम-सम्मत उनका संयममय जीवन स्वयं ही साक्षात् बोलता हुआ प्रवचन था । यही कारण है कि बिना उपदेश के भी आपके दिव्य आभामंडित तेजस्वी मुखमण्डल और आचार-प्रधान अप्रमत्त जीवन से कोई भी दर्शनार्थी प्रभावित व प्रेरित हुए बिना नहीं रहा । गुरुदेव अपनी साधना के अमित बल व वात्सल्य के अनन्त माधुर्य से सराबोर अपनी अमृतवाणी से व्यक्तिश: दर्शनार्थियों को सामायिक, स्वाध्याय व व्यसनमुक्ति की प्रेरणा प्रदान करते । इस तरह आप श्री के पावन सान्निध्य में समय निराबाध गति से व्यतीत हो रहा था ।

होली चातुर्मास के प्रसंग पर जोधपुर, निमाज, मेड़ता, बिलाड़ा आदि अनेक ग्राम-नगरों के श्री संघ शेखेकाल व चातुर्मास की भावभीनी विनतियां लेकर उपस्थित हुए। विशाल जन-समुदाय यह जानने को समुत्सुक था कि इस वार किस पुण्यशाली क्षेत्र को साधना के साकार स्वरूप इन महाश्रमण के वर्षावास का लाभ मिलेगा । लोग अपनी-अपनी अटकलें लगा रहे थे । विगत कुछ वर्षों से गुरुदेव होली चातुर्मासी के प्रसग पर वर्षावास खोल दिया करते थे पर इस वर्ष वे दीर्घद्रष्टा आत्मज्ञानी आचार्यवर्य न जाने क्यों वर्षावास घोषणा का मानस नहीं वना रहे थे ? इनके गुरु गाम्भीर्ययुक्त मन एवं भावी के गर्भ की थाह पाना हमारे सामर्थ्य के वाहर की वात थी।

निमाज श्री संघ एवं भंडारी परिवार की वर्षो से चली आ रही आग्रहपूर्ण प्रार्थना पर आचार्य भगवन् ने इतना मात्र फरमाया—'मै डॉ. एस. आर. मेहता से अपने स्वास्थ्य सम्वन्धी विचार-विनिमय कर कुछ वात कह सकूंगा।' इसी दरम्यान अचानक डॉ. एस. आर. मेहता भी दर्शनार्थ आ गये। डॉ. एस. आर. मेहता गुरुदेव के विश्वास पात्र चिकित्सक ही नही वरन् पीढियों के श्रावक एवं अनन्य-गुरु भक्त भी है। डॉ. मेहता सा. ने गुरुदेव के स्वास्थ्य का परीक्षण कर वताया कि पूज्य गुरुवर्य को किसी भी वड़े रोग का तो उपद्रव नही है, पर वृद्धावस्था के कारण कफ, खांसी, अशक्ति और श्वास का उठाव हो जाता है जिसके लिये नियमित उपचार की आवश्यकता है। डॉ. मेहता सा. ने आगे निवेदन करते हुए कहा कि भगवन् ! अवस्था एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से अव आपको एक स्थान पर विराजना आवश्यक है एव चिकित्सा सुविधाओं की दृष्टि से जोधपुर व जयपुर उपयुक्त क्षेत्र है। आप स्वय दीर्घद्रष्टा, गहन अनुभवी एवं प्रवल आत्म-विश्वासी महापुरुष है, निर्णय के अधिकारी आप स्वयं है, आप श्री का निर्णय हम सवको मान्य एवं शिरोधार्य है।

डॉक्टर साहव की सूझबूझपूर्ण वात श्रवण करने के पश्चात् पूज्य गुरुवर्य ने चातुर्मासिक विनति करने वाले जन-समुदाय को अपना निर्णय सुनाते हुए फरमाया कि अभी अक्षय तृतीया से पूर्व कही पर भी चातुर्मास नहीं खोलने की भावना है। सभी आश्चर्यचकित थे कि गुरुदेव ने इतने लम्वे समय पश्चात् चातुर्मास खोलने की वात कैसे व क्यों फरमाई ? 'कर्ता के मन कुछ और दाता के मन कुछ और' हम सव भावी घटना क्रम से अनभिज्ञ थे।

दूसरे दिन हम सव संत गुरु-चरणों में वैठे हुए थे (चैत्र कृष्णा प्रतिपदा) आचार्य भगवन् ने गंभीरता के साथ संतो को रात्रिकालीन घटना का संक्षिप्त कथन करते हुए फरमाया—भाई, मुझे रात्रि में किसी अदृश्य शक्ति ने प्रेरित करते हुए कहा—'आप तो वहुत जानकार हो। मैं आपने कंई केऊँ, अव आप सावधान हो जाओ।' गुरुदेव श्री ने संतों के समक्ष अपने आपको संवोधित करते

हुए कहा कि 'अब मुझे अधिकाधिक ध्यान, मौन, चिन्तन, साधना व स्वाध्याय मे लग जाना चाहिये।' हमने निवेदन किया—'भगवन्! आप तो साधना की पावन पवित्र धारा में सतत निमज्जित हुए ही रहते है।' हमारी इस बात को जैसे गुरुदेव ने सुना ही नहीं हो, उन महापुरुष के मुख-मण्डल पर गांभीर्य की रेखायें स्पष्टतः परिलक्षित हो रही थीं।

दूसरे दिन कोट का मोहल्ला से विहार कर ज्ञानशाला स्थानक पैदल ही पधारे। दूसरे दिन भी पहले दिन वाली बात दोहराई तो हम विचारमग्न हो गये। विविध आशंकायें मस्तिष्क-पटल से टकराने लगीं। हम संतों को गम्भीर व विचारमग्न देखकर आचार्य भगवन् ने रहस्य का पर्दा हटाते हुए फरमाया—"अब मुझे मेरे जीवन का ज्यादा समय नही लगता, अतः अन्तिम समय की प्रक्रिया में सावधान हो जाऊँ।"

गुरुदेव के ये शब्द कर्णगोचर होते ही, भविष्य की कल्पना मात्र से ही हृदय व्यथित हो गया, चेहरे पर रुआंसी आ गई, आँखों में अश्रुकरण छलछलाने लग गये, मन उदास हो उठा। गुरुदेव बिल्कुल स्वस्थ नजर आ रहे थे, कोई अन्यथा लक्षण भी नहीं प्रतीत हो रहे थे, फिर इस बात पर मन कैसे विश्वास करे? पर उस अन्तर्ज्ञानी युगपुरुष की बात पर संशय का भी तो प्रश्न नहीं था। हम सब मौन स्तब्ध थे पर गुरुदेव श्री के चेहरे पर वही पूर्व निश्चिन्तता के भाव परिलक्षित हो रहे थे। उस प्रशांत मुख-मुद्रा पर कोई शिकन मात्र भी नहीं थी। उन मृत्युंजयी महापुरुष ने अपना मौन तोड़ते हुए हम गमगीन बने संतों को उद्-बोधित करते हुए फरमाया—"भाई, इसमें शोक की क्या बात? मृत्यु अवश्य-म्भावी है, अतः आप लोग मुझे अन्तिम समय पूरा साथ देना, संघ में अनुशासन व प्रेम बनाये रखना तथा दृढ़ता के साथ समाचारी का पालन करना।" पूज्यवर्य ने प्रत्येक शिष्य के मस्तिष्क पर अपना वरद हस्त रखते हुए अमित वात्सल्य की वर्षा करते हुए सभी को योग्यतानुसार भोलावरण (शिक्षा) दी। वरिष्ठ संतों को भोलावरण देते हुए श्रद्धेय श्री मानमुनिजी महाराज साहब को फरमाया कि—"जैसे मेरे गुरुदेव पूज्य श्री शोभाचन्दजी महाराज साहब के शासनकाल में स्वामी जी श्री चन्दनमलजी महाराज साहब व मेरे शासनकाल मे स्वामी श्री सुजानमल जी महाराज साहब का समय-समय पर उचित सहकार सहयोग मिलता रहा, वैसे ही मेरे बाद श्री हीरामुनिजी को संघ-संचालन में आप मार्गदर्शन के साथ सहयोग एवं परामर्श देते रहें।"

हमारे कंठ अवरुद्ध थे, वाणी मौन थी, खामोशी के साथ श्रद्धा एवं विनम्रतापूर्वक हम गुरुदेव की भोलावरण स्वीकार कर रहे थे। निःशब्द वाता-वरण को भंग करते हुए मधुर स्वर में भजन गुनगुनाते हुए गुरुदेव ने सभी संतों

को साथ में गाने का निर्देश दिया—"मेरे अन्तर भया प्रकाश, नही अब मुझे किसी की आश।" गुरुदेव के द्वारा स्व-रचित भजन के ये बोल हृदय के तारो को झंकृत कर रहे थे। एक-एक पद मे विनश्वर संसार की क्षण भंगुरता एव जड़-चेतन के भेदज्ञान का सार गर्भित चित्रण प्रस्तुत करते हुए मानों गुरुदेव श्री अपनी अन्तिम देशना दे रहे प्रतीत हो रहे थे।

भजन के अनन्तर सभी सन्त अपनी-अपनी दैनिक चर्या मे लग गये पर सभी के दिलोदिमाग मे गुरुदेव के ही शब्द गुजित हो रहे थे।

सायंकाल आहार के बाद गुरुदेव को वमन हो गया तो सभी का मन घबरा गया। हमे लगा—आज ही तो गुरुदेव ने अन्तिम समय की बात कही और आज ही स्वास्थ्य मे गड़बड़। हमें लगा, हम उस अपरिहार्य सत्य को स्वीकार करने को विवश हो रहे हो। प्राथमिक उपचार के पश्चात् डॉक्टर को दिखाया तो डॉक्टर बोले—हृदय, रक्तचाप एवं नाड़ी सभी सामान्य है। गैस के कारण भी वमन हो सकता है। हमारा दिल भावी से भारी हो रहा था पर वह मस्ताना अध्यात्मयोगी हस्ती तो अपनी संयम-साधना की मस्ती मे ही मस्त रहता।

'मेरे जीवन का समय अब कम है।' आचार्य भगवन् के ऐसा फरमाने पर श्रद्धेय श्री हीरामुनिजी महाराज साहब ने पूज्य गुरुदेव श्री से पूछा—"भगवन्! सती मण्डल को दर्शन देने एव जोधपुर सघ की भावना को रखने के लिए पहले सीधे जोधपुर चले तो कैसा रहेगा?' पर उन वचनधनी महापुरुष को जहाँ एक ओर अपने शेष समय का ध्यान था तो वचन-पूर्ति का लक्ष्य भी दृष्टि में था। उन्होने यही फरमाया—'जोधपुर से वापिस आना हाथ मे नही, मुझे तो निमाज श्री संघ को दिया गया वचन पूरा करना है, अत. संत-सती निमाज आकर दर्शन-सेवा का लाभ से सकते हैं।'

इसी बीच गुरुदेव ने भी संतों को बिना कही ज्यादा रुके शीघ्र निमाज पहुँचने के भाव व्यक्त कर दिये। संतों ने आचार्य भगवन् की भावना के अनुसार शीघ्र निमाज पहुंचने का लक्ष्य बना लिया। सुदूर विराजित रत्नवंशीय सभी संत-सतिगण को गुरुदेव के दर्शनार्थं सेवा मे निमाज पहुँचने के संकेत करवा दिये गये क्योंकि निकटवर्ती संतो को गुरुदेव श्री ने शीघ्र निमाज पहुँचने के भाव व्यक्त कर दिये थे। हमारी सारी कल्पनाये कि अमुक जगह वीर जयन्ती कर लेगे, अमुक स्थान पर अक्षय तृतीया कर लेगे व अमुक स्थान पर शेखे काल रह कर आगे वर्षावास हेतु निमाज पहुँचेगे, गुरुदेव श्री के इस शीघ्र संकेत से विखंडित हो गई। बस अब तो निमाज ही हमारा लक्ष्य बन गया जो कि गुरुदेव के संकेतानुसार उनके संयमजीवन की यात्रा का अन्तिम पड़ाव-स्थल होने वाला था।

३-३-९१ रविवार चैत्र कृष्णा तृतीया को गोटावत भवन ठहरते हुए रात्रिवास गुरुसेवा समिति भवन में किया। इसके अनन्तर दो दिन सोजत रोड विराजे। दो दिन पश्चात् जब विहार की चंचलता के भाव दर्शाये तो स्थानीय श्रावकों ने अत्याग्रह पूर्वक कुछ दिन विराजने की प्रार्थना की परन्तु गुरुदेव श्री का एक ही प्रत्युत्तर था—'मुझे निमाज पहुँचना है।' उन भावुक भक्तों को क्या मालूम था कि गुरुदेव क्या सोच कर इतनी शीघ्रता कर रहे हैं? यहां तो उस अवधूत योगी ने पहले ही अपनी दिशा निर्धारित कर ली थी।

सोजत से बगड़ी, चंडावत होते हुए ८-३-९१ को पीपल्या पधारे। आहार के लिये निवेदन करने पर गुरुदेवश्री ने मना कर दिया। बार-बार आग्रह करने पर फरमाया—'भाई, मुझे आहार करने की रुचि नहीं है, तुम आग्रह मत करो।' हमारे अत्याग्रह पर हम लोगों के संतोषार्थ अल्पाहार किया, वह भी हमारे हाथों से। गुरुदेव ने अल्पाहार तो कर लिया पर प्रतिपल जागृत उन महापुरुष को अब मात्र अपनी आत्म-साधना का ही तो ध्यान था—फरमाने लगे—'मैं खाली नहीं जाऊँ, इसका सेवारत मुनिजन पूरा खयाल रखें—शरीर का नहीं—मेरी समाधि बनी रहे—।' कितनी उच्च भावना, कितनी सजगता, कैसा देहोत्सर्ग, कैसी समाधि भावना? अन्तर्ज्योति के आलोक पुञ्ज उन महापुरुष ने आगे फरमाया—'मेरी चिन्ता मत करना, शरीर तो नाशवान है।' फिर भोला-रण रूप में बोले—'आहार स्थानक की गवेषणा का पूरा खयाल रखना, पूज्य श्री रत्नचंदजी महाराज साहब की २१ नियम की समाचारी का पूरा पालन करना, प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी, उप प्रवर्तिनी महासती श्री लाड-कंवरजी, प्रभृति सती मंडल बराबर संयम-आराधना करती रहें।'

पूज्य गुरुदेव अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार निरन्तर अपने कदम अपने अन्तिम मनोरथ की ओर बढ़ा रहे थे। इसी क्रम में उन्होंने दो-दो, तीन-तीन घंटे के सागारी प्रत्याख्यान करने प्रारम्भ कर दिये। साथ ही अपनी उत्कृष्ट भावना प्रदर्शित करते हुए फरमाया—'मेरी संथारा करने की भावना है। मान मुनिजी म. सा. से पूछ लें एवं चतुर्विध संघ की अनुमति ले ले।' उस समय श्रद्धेय श्री मान मुनिजी म. सा. विहार-क्रम में पीछे-पीछे चल रहे थे अतः उन्हें भी सेवा में पधारने का संकेत कर दिया गया। संथारे की बात के ही क्रम में सभी सन्तों ने समवेत स्वर में निवेदन किया—'भगवन्! अभी इतनी क्या जल्दी है? आपका स्वास्थ्य भी ठीक है, डॉक्टर एवं ज्योतिष की राय में भी ऐसे लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते फिर आप ऐसा कैसे सोच रहे है?' इस पर आचार्य भगवन् ने दृढ़ आत्म-विश्वास के साथ फरमाया—'भाई, ज्योतिष की गणित एवं डॉक्टर की बात मुझे फेल लग रही है। मुझे मेरा समय सामने दिख रहा है।'

ये शव्द सुनते ही एक अजीव सी सिहरन नस-नस में दौड़ गई। क्या सचमुच इस वटवृक्ष का साया हमारे सिर से उठ जायेगा ? भविष्य की आशंका जन्य कल्पनायें उभर-उभर कर सामने आ रहीं थी।

जहाँ हम चिन्तित थे, वही गुरुदेव अपनी अजस्र आत्मिक ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण के चिन्तन में तल्लीन। वे तो कहाँ क्या हो रहा था, इससे सर्वथा वेखवर अपनी ही धुन में मस्त, अनवरत आत्महित में सन्न, जीवन के सन्ध्या काल के वारे में संजोये साधक-स्वप्न को साकार करने की ओर उन्मुख थे। इसी सन्दर्भ में आपश्री ने अपनी सरलता, लघुता एवं निरभिमानता का परिचय देते हुए संकेत दिया कि अमुक-अमुक सन्तों को खमतखामणा के समाचार दिला दो। गुरुवर्य की आज्ञा का पालन हुआ और उनका जिन-जिन से पुराना और गहरा सम्वन्ध रहा, उनकी सेवा में खमतखामणा अर्ज कराने हेतु श्रावकों द्वारा पत्र प्रेपित कर दिये गये।

इसी वीच उस दिन किसी ने अफवाह उड़ा दी—'गुरुदेव की हालत नाजुक है और उन्होंने संथारा ले लिया है।' वस फिर क्या था ? सायंकाल तक सुदूर ग्राम-नगरों से सैकड़ों हजारों व्यक्ति दर्शनार्थ पहुँच गये। यह तांता लगातार दो दिन तक चलता रहा। आगत दर्शनार्थियों को वस्तुस्थिति से अवगत कराया गया और अफवाह का खण्डन किया।

९-३-९१ को कुशालपुरा पहुँचे। वाहर से दर्शनार्थी उमड़ पड़े परन्तु इन सवके वीच भी गुरुदेव अपनी आत्म-साधना में निरन्तर निरत थे। इसी दिन डॉ० एस० आर० मेहता भी दर्शनार्थ पहुँचे। उन्होंने स्वास्थ्य के निरीक्षण-परीक्षण के पश्चात् स्वास्थ्य की दृष्टि से खुराक एवं दवा की आवश्यकता वतलाई पर गुरुदेव ने उन्हें भी यह कहा कि इन सवकी अव मुझे रुचि नहीं है। डॉक्टर सा. एवं मुनिजन के अत्याग्रह से आपने अनिच्छित भाव से ही पथ्य ग्रहण करना स्वीकार किया।

दिनांक १०-३-९१ को कुशालपुरा से निमाज की ओर विहार हो रहा था। निमाज का नाम हमारे मानस-पटल पर आते ही मस्तिष्क की शिरायें अनायास ही झनझना उठी, हम संतजन विचारों मे खो गये। गुरुदेव के कथनानुसार यह वही ग्राम है जहाँ हमारे प्रतिपल आराध्य गुरुदेव की जीवन-यात्रा का अन्तिम पड़ाव है। वढ़ते कदम ठिठक गये, चलना दुभर हो गया, एक-एक कदम भारी लग रहा था। उधर निमाज ग्रामवासी गुरुदेव के आगमन पर हर्पित एवं प्रफुल्लित थे, नर-नारियों के समूह जयनिनादों के साथ अगवानी हेतु उपस्थित थे, देखते-देखते ही स्थानीय व आगत वन्धु आते गये और कारवां वनता गया। गुरुदेव के पदार्पण से जैसे निमाज गाँव का कोना-कोना खिल उठा, समूचा वाता-

वरण ही उन महापुरुष के शुभ परमाणुओं के संसर्ग में आकर पवित्र हो गया। गाँव का चप्पा-चप्पा गुरुदेव के आगमन से महक रहा था, वहाँ के कण-कण में हर्ष व्याप्त था। भंडारी परिवार का तो कहना ही क्या? बच्चा-बच्चा खुशी से झूम रहा था, आँखों में आये हर्षाश्रु रोम-रोम से गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर रहे थे। गुरुदेव के पीछे-पीछे विशाल जनसमुदाय का यह काफिला निमाज के गलियों, बाजारों से होता हुआ, मुख्य मार्ग पर स्थित गंगवाल भवन (सुशीला-भवन) में आकर धर्म सभा में परिणत हो गया।

धर्म सभा में आचार्य गुरुदेव अपनी शिष्य मण्डली के बीच नक्षत्र मण्डल के मध्य दिव्य आभायुक्त जाज्वल्यमान दिनकर समान सुशोभित हो रहे थे। मुखमण्डल पर दिव्य तेज था। इस अन्तिम प्रवचन सभा को सम्बोधित करते हुए उन युगमनीषी महापुरुष ने अपनी धीर, वीर, गंभीर शैली में फरमाया—'मैने अपना वचन संतों के सहयोग से पूरा कर दिया है, आज मैं कर्ज मुक्त हो गया हूँ।' वचन-पूर्ति के आत्म-सन्तोष से 'सागरवरगम्भीरा' उस महापुरुष की आंखें भर आईं। सभी लोग भावविह्वल हो गये, सन्तों का हृदय गद्‌गद् हो गया। कैसा करुणासिक्त दृश्य था? इसी दिन मधुर व्याख्याता श्री ज्ञान मुनिजी म० सा० व श्री दयामुनिजी म० सा० जिनका चातुर्मास रींया था, वे भी गुरु-चरण सेवा में पधार गये। आज सभी शिष्यगण अपने परमाराध्य गुरुवर्य की सान्ध्यवेला में सेवा हेतु समुपस्थित थे।

मध्याह्न में जयपुर श्री संघ ने जयपुर स्थिरवास हेतु पधारने की भावपूर्ण विनति प्रस्तुत की और निवेदन किया कि भगवन्! स्वास्थ्य आदि सुविधाओं की दृष्टि से जयपुर सर्वोत्तम स्थान है। इस पर पूज्य गुरुदेव ने यही फरमाया कि 'मै अब ठिकाने आ गया हूँ, कहीं जाने के भाव नहीं, यदि स्थिरवास का अवसर रहा तो जोधपुर को प्राथमिकता दे रखी है।'

दिनांक ११-३-९१ को प्रातः लगभग १० बजे सभी सन्तों एवं प्रमुख श्रावकों को संघ सम्बन्धी भोलावण दी। बार-बार भोलावण देने पर मैंने सहज बाल सुलभ चेष्टा में गुरुदेव से निवेदन किया—'भगवन्! आप अभी से ही बार-बार भोलावण क्यों दे रहे है? अभी तो आप शतायु-चिरायु हो हमें अपनी वात्सल्यपूर्ण शीतल छाया प्रदान करते रहेंगे। आपके सान्निध्य में हमें क्या चिन्ता? इस पर गुरुदेव ने अपना वरद हस्त मस्तक पर रखते हुए अत्यन्त दुलार के साथ अपने स्नेह सुधासिक्त वचनों से फरमाया कि 'भाई गौतम! अभी तो मैं बोल रहा हूँ फिर कदाचित् नहीं बोल पाया तो?' मैं श्रद्धाभिभूत हो विचार मग्न हो गया। हम अज्ञ अबोध क्या जानें इन भविष्य दृष्टा महामनीषी के गहरे भावी भाव को।

१२-३-९१ को लगभग १२ वजे हम संतो ने गुरु-चरणों में सविनय साञ्जलि शीष झुकाकर निवेदन किया—भगवन् ! शरीर के लिये आहार आवश्यक है, अतः आप थोड़ा आहार ग्रहण करने का ध्यान देने की कृपा करें पर उन महामनीषी की तो अब इस तन के आहार की ओर नहीं वरन् परलोक के भाते की ही ओर एकमात्र दृष्टि थी। अपने हृदयगत भावों को प्रगट करते हुए गुरु भगवन्त वोले—"क्या मुझे खाली हाथ भेजोगे ? मुझे खाली हाथ मत भेजना, यह मेरी एक मात्र अंतिम इच्छा है।" उनके पवित्र हृदय के उस दृढ़ संकल्प से हम हतप्रभ थे। देह के प्रति कैसी निस्पृहता ? न दवा का ध्यान, न आहार का मन, न तन का मोह, एकमात्र अभिलाषा साधक के अंतिम मनोरथ की सिद्धि कर कृतकृत्य होने की।

दिनांक १३-३-९१ को स्वाध्याय एवं आत्म-चिन्तन के पश्चात् गुरुदेव श्री पुनः हम संतों को भोलावण दे रहे थे। भोलावण देते-देते गुरुदेव गद्गद् और भावुक वन जाते। हमने निवेदन किया—"भगवन् ! अपने मन को इतना भावुक न वनायें।" प्रत्युत्तर मे गुरुदेव ने फरमाया कि—"भाई, मुझे न शोक है न ही मोह और न ही मेरा मन अधीर होता है, यह तो मेरी सहज आन्तरिक भावाभिव्यक्ति है।"

हमें हमारी अल्पज्ञता पर भारी पश्चात्ताप हुआ कि हम गुरुदेव के आन्तरिक मनोभावों को भलीभाति समझ नही पाये। ये तो निर्लिप्त भाव से हमारे संयम जीवन को प्रशस्त करने हेतु दिशावबोध देकर हमें अपने कर्तव्य का भान करा रहे है। इन स्थितप्रज्ञ महासाधक को किस से क्या मोह जो ये भावुक वनें। अपने जीवन के इस सन्ध्याकाल में भी गुरुदेव सतत जागरूकतापूर्वक अपनी संयम-चर्चा मे निरत रहते। यदि संघ संबंधी कोई आवश्यक वात ध्यान मे आती तो वे ज्येष्ठ संतों एवं प्रमुख श्रावकों को संकेतात्मक भाषा में ध्यान दिला देते, शेष समय ध्यान, जप एवं स्वाध्याय साधना द्वारा अपनी अन्तर्ज्योति ज्योतित रखते।

उसी दिन (याने १३-३-९१) सायंकाल प्रतिक्रमण से पूर्व ६.२५ वजे उस प्रतिपल सजग साधक, संयम की साकार प्रतिमूर्ति आचार्य भगवन् ने अपनी सरलता, विनम्रता, समर्पण एव महानता का आदर्श उपस्थित करते हुए अपने द्वारा दीक्षित हम संतो के समक्ष कहा—"मैं अपने गुरु आचार्य भगवन् की साक्षी से पूर्व के दोषों की निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, और नये महाव्रतों का आरोपण करता हूँ, संयम पर्याय की निर्मलता के लिये महाव्रतों का आरोपण करता हूँ।"

गुरुदेव के हृदय से निकले इन पावन निर्मल शब्दों ने हम सभी शिष्यगणों

को आश्चर्य में डाल दिया कि जिन महापुरुष ने संयम पर्याय के प्रतिज्ञा पाठ के साथ ही अद्यावधि निरतिचार संयम का पालन किया, जिनका संयम युग-युग तक साधकों के लिये आदर्श रूप में पथ आलोकित करता रहेगा, उन महापुरुष को महाव्रतों के नवीन आरोपण जैसी क्रिया की क्या आवश्यकता ? पर यही तो युगमनीषी, युगप्रवर्तक महापुरुषों की महानता होती है जिनकी मेरु समान ऊँचाई व सागर सम गहराई की थाह पाना हम जैसे अज्ञ बालकों के सामर्थ्य के बाहर की बात है। उन्होंने तो आत्मिक विकास की उस उच्च भूमि का आरोहण कर लिया था जो वीतरागता की होती है। उनके आदर्श जीवन की इसी दिव्य आभा से प्रत्येक दर्शनार्थी का अन्तस् ज्योतिर्मय हो जाता है। श्रद्धावनत खड़े हम शिष्यों में उनके इन शब्दों ने उच्चतर चेतना जागृत कर दी।

१४-३-९१ को आचार्य भगवन् अनायास ही प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में तीन-चार बजे के लगभग गंगवाल भवन के पिछवाड़े के बरामदे मे पधारे और संतो के साथ छह छज्जीवनी का स्वाध्याय किया। जब ध्यान भक्तामर पाठ, प्रतिक्रमण के पश्चात् वन्दना के समय आचार्य भगवन् ने हर सन्त से हाथ जोड़कर खमतखामना की तो यह देखकर हर सन्त का हृदय गद्गद् हो उठा और उनके कृपा-प्रसाद से हम सभी श्रद्धासिक्त थे। लज्जा से हमारी आँखे नत थीं। मन कह रहा था। हे प्रभो! हम तो आपके समक्ष तृणवत् तुच्छ हैं। अविनय आशातना तो हम बालकों से होती रही है, क्षमायाचना तो हम शिष्यों को करनी चाहिये।

इसी दिन लगभग ९ बजे हम सभी संत गुरुचरण-छाया में बैठे थे। वार्ता प्रसंग में पूछा—भगवन्! कुछ इच्छा हो तो फरमाये। उस अनासक्त अवधूत योगी ने यही फरमाया—"समाधि लग रही है, आनन्द है, अब कांई इच्छा है?' (अर्थात् कुछ नहीं) मेरे पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री शोभाचन्द जी म० सा० का जन्म जोधपुर में हुआ और स्वर्गवास भी जोधपुर में ही हुआ। मेरे इस शरीर का जन्म पीपाड़ में हुआ।" यह कह कर अपनी बात समाप्त की।

जब देखा, आगे नही फरमा रहे है तो हमने सहज जिज्ञासा एवं उत्सुकता से अति विनीत स्वरों में पूछा—भगवन्! तो क्या अन्तिम समय पीपाड़ में गुजारना है? प्रत्युत्तर में उस प्रज्ञापुरुष महामनीषी ने स्नेहसुधासिक्त सस्मित मुस्कान के साथ सहज, सरल, शान्त, गम्भीर एवं दृढ स्वर मे छोटा सा उत्तर दिया—"भाई! पीपाड़ गाँव निमाज ठिकाने में ही आता है।" गुरुदेव का यह संकेत हमारे लिये पर्याप्त था।

गत तीन दिनों से औषधि-सेवन बिल्कुल बन्द था। आहार भी सन्तो के

अत्याग्रह पर अत्यन्त अल्प । इसी बीच लगभग ४ बजे डॉ० एस० आर० मेहता दर्शनार्थ व स्वास्थ्य की पृच्छा हेतु पहुँचे । डॉ० सा० ने कफ, खांसी व श्वास का उठाव पाया । उन्होंने संतों से भी जानकारी ली । इसके अनन्तर गुरु-चरणों में डॉ० मेहता सा० ने सानुरोध निवेदन किया—गुरुदेव ! स्वास्थ्य के लिए दवा और खुराक की महती आवश्यकता है । गुरुदेव ने फरमाया—'अब खाने की रुचि नहीं है और दवा लेने की इच्छा नहीं है । शरीर कुछ मांगता नहीं ।' इस पर डॉक्टर सा० ने कहा—अभिरुचि नहीं है तो दवा के माध्यम से उसे जागृत करने का प्रयास करूँगा पर आवश्यक दवा तो आपको लेनी होगी । आप एक सप्ताह तक दवा का सेवन करने की कृपा करें । मैं फिर सेवा में उपस्थित होऊँगा । अत्यन्त भावप्रवण निवेदन पर उस अकारण करुणाकर महर्षि ने दो दिन के लिए दवा लेना स्वीकार किया । डॉक्टर साहब ने सात दिन नहीं तो कम से कम पाँच दिन दवा लेने का आग्रह किया ताकि उसके परिणाम सामने आ सकें परन्तु आग्रहमय निवेदन के पश्चात् भी गुरुदेव ने दो दिन दवा लेना ही स्वीकार किया ।

हम शिष्यगण निरुपाय गुरुदेव के अटल निश्चयमय विचारों में खो गये । कहाँ तो वे लोग जो अन्तिम क्षण तक दवा, इंजेक्शन लेते और कहाँ ये गुरुदेव जिन महापुरुषों ने सदैव तन से आत्मा को अधिक प्रधानता दी, उन्हें क्या कहे और क्या आग्रह करें ? गुरुदेव ने पूर्व में कभी भी औषधि सेवन न करने का इतना प्रवल आग्रह नहीं किया ।

दूसरे दिन १५-३-६१ को गुरुदेव के सुस्ती रही पर जप का वही क्रम चलता रहा । प्रातः पहले दिन की बात के सन्दर्भ में निवेदन किया कि भगवन् ! आपने दो दिन ही दवा सेवन का निर्णय क्यो लिया ? प्रत्युत्तर में उन अप्रमत्त योगी ने फरमाया—"मै कही खाली हाथ न चला जाऊँ इसीलिये सावधानी रखने का परीक्षण कर रहा हूँ ।" सुनने वाले अवाक् थे क्या गजब की सजगता और जागरूकता ? ऐसी मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है । इसके बाद उस दिन गुरुदेव किसी से भी कुछ नही बोले । पूज्य गुरुदेव ने अन्नाहार बंद सा कर दिया । प्रायः पेय पदार्थ ही लेते । किसे पता था कि पूज्य भगवन् अब अन्नाहार कभी नही करेंगे । हम बाल प्राणी तो यही सोच रहे थे कि अन्नाहार स्वास्थ्य की दृष्टि से बंद किया है । और स्वस्थ होने पर पूज्यवर अन्नाहार अवश्य ही करेंगे ।

दिनांक १६-३-६१ को दिन-भर पूज्य गुरुदेव के सुस्ती रही
भी कुछ नही बोले । हल्का सा बुखार भी था जो तेज होते-हो
तक जा पहुँचा। पूज्य गुरुदेव की इस शारीरिक स्थिति से हम म
एवं चिन्तित थे । सभी के मन मे एक ही ख्याल था—भगवन् !

हों व आरोग्य लाभ प्राप्त करे। आवश्यक उपचार के पश्चात् अपराह्न तीन बजे लगभग ज्वर कम हुआ। सभी ने संतोष की सांस ली, मुरझाये चेहरे प्रफुल्लित हो उठे। इसी बीच अचानक लगभग ५ बजे पूज्य गुरुवर के शरीर में भयंकर कम्पन्न हुआ। मुह से झाग आने लगे, आँखे फिर गई। इस अप्रत्याशित शारीरिक स्थिति को देखकर हम सभी के होशहवास उड़ गये। अनिष्ट की आशंका से हृदय धक्-धक् कर रहा था। लगभग १५ मिनट की इस संघर्षपूर्ण स्थिति के पश्चात् पूज्य गुरुदेव अपनी सामान्य स्थिति में आने लगे। स्थानीय सेवाभावी चिकित्सक डॉ० राकेश शर्मा ने निरीक्षण कर बताया कि मस्तिष्क में रक्त संचार अवरुद्ध होने से शारीरिक स्थिति ऐसी हो गई है। थोड़ी देर बाद तीन बार वमन होने से शरीर में कमजोरी आ गई।

हम संतजन चिन्तित थे पर वे अपनी मस्ती में मस्त। योगीराज हस्ती तो कर-कमल मे माला लिये निरन्तर जप में लीन थे। कैसी विलक्षण सहिष्णुता, कैसी अदृष्टपूर्ण समता, जैसे कुछ हुआ ही न हो। पूज्य भगवन् की इस सहन-शीलता से हम सब भावाभिभूत थे। संध्याकाल प्रतिक्रमण के पश्चात् हम संतगण के विनम्र अनुरोध के उपरान्त भी विश्राम न कर भगवन ध्वान एवं जप-साधना में ही निरन्तर लीन रहे। रात्रि में लगभग १२ बजे जब संसार के अधिकांश प्राणी प्रमाद-निद्रा में लीन होते है, आत्म-चिन्तन में रत वे साधक शिरोमणि गुरुदेव समीपवर्ती बैठे संतों को अत्यन्त आत्मिक भाव से स्नेहासिक्त वात्सल्यपूर्ण मधुर वचनों के साथ संयम साधना में सतत जागरूक रहने की प्रेरणा देते हुए भोलावण देने लगे—"आचार्य श्री रत्नचंद्र जी म० सा० की मर्यादा निभाना, समाचारी का पालन करना, आपस में मतभेद मत रखना, मेरी आत्मा को शांति मिले ऐसा कार्य करना, संघ में प्रेम शांति बनाये रखना, आपस में मतभेद मत रखना, संघ का मान रखना।" इतना कह कर बड़ी संलेखना का पाठ श्रवण कर भगवन पुनः उसी अलमस्त साधना में तन्मय हो गये। मुझे जहाँ तक स्मरण है, हम सन्तों को गुरुदेव की ओर से ये शव्द अंतिम आदेश, उपदेश एवं भोलावण के थे।

अगले दिन दिनांक १८-३-९१ को मध्याह्न तक पूज्य भगवन् कुछ भी नहीं बोले। पेय पदार्थ ग्रहण के हमारे पुनः-पुनः आग्रह पर उन युग मनीषी के निम्नलिखित उद्गार हमारे अन्तर्चक्षुओं को उन्मीलित करने में सक्षम थे। शारीरिक दुर्वलता के उन क्षणों में भी भगवन् का वह अद्भुत उन्मुक्त आत्म-चिन्तन साधकों को युग-युग तक प्रेरणा देने वाला था। उस स्थिति में पूज्य गुरुदेव व हम शिष्यगण के मध्य जो संवाद हुआ, वह साररूपेण इस प्रकार है :—

संतगण—भगवन् ! थोड़ा रस-पान कर लिरावे।

गुरुदेव—मेरी आत्मा को संभालो, शरीर का मोह छोड़ दो। शरीर के पीछे क्यों पड़े हो ! अरे भाई, म्हारा शरीर ने छोड़ो…शरीर अनन्त बार धार्‌यो है और छोड्यो है। म्हारो जनम खराब मत करो।

जम्म दुक्ख जरा दुक्ख रोगाणि मरणाणिय।

अहो दुःख हु संसरो जत्थ किसंति जतुओ।

म्हारी आत्मा री साधना में कमजोरी मत लावो।

संतगण—शरीर में कमजोरी आ रही है भगवन् !

गुरुदेव—शरीर तो अनन्त बार धार्‌यो है और छोड्यो है।

संतगण—भगवन् ! देवलोक में जाने की इतनी आतुरता क्यों ? शरीर रहेगा तो संयम रहेगा, संयम श्रेष्ठ है या नन्दनवन (देवलोक) ?

गुरुदेव—सर्वश्रेष्ठ तो आत्मा है।

संतगण—दोनों की तुलना में भगवन् संयम या नन्दनवन ?

गुरुदेव—नन्दनवन तो क्या है पौद्‌गलिक है। आत्म-भाव ही अनंत सुख देने वाला है।

संतगण—भगवन् ! जल सेवन कर लें।

गुरुदेव—आचार्य श्री की मर्यादा का पालन करने का ध्यान रखना।

संतगण—आपने प्यास नहीं लागे ?

गुरुदेव—प्यास को कांई करनो है, अनन्त बार भूख और प्यास लगी है।

संतगण—भगवन् ! विना अन्न-जल के यह शरीर कैसे चलेगा ? शरीर तो स्वतः छूट जाई। आप तो भगवन् छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं।

गुरुदेव—आनन्द है।

संतगण—भगवन् ! हम इतना निवेदन कर रहे हैं। थोड़ा सा जल ले लें।

गुरुदेव—साधना जितनी निर्विघ्न बनाओगे, जितना धर्म में दृढ़ बनाओगे, उतना ही आत्मिक संतोष का विषय है।

संतगण—एक बार जल ले लो भगवन् !

गुरुदेव—इरी मनवार मत करो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र री मनवार करो ।

संतगण—भगवन् ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पालन में शरीर की आवश्यकता है और शरीर के लिये खुराक की ।

गुरुदेव—अरे भाई, जवाब सवाल की बात नहीं, म्हारी आत्मा ने आत्म-भाव में स्थिर करो ।

अपराह्न चार बजे रस पीने का बार-बार आग्रह करने पर भी पूज्य गुरुदेव मना करते रहे तब संतों ने पूछा—भगवन् ! आपकी भावना क्या है ? तो पूज्य भगवन् ने यही फरमाया —आहार, शरीर छोड़ने की ।

पुनः लगभग ४.२० बजे संतों ने भगवन् को करबद्ध निवेदन करते हुए आग्रह किया—भगवन् ! आप दवाई व आहार लिरावे । हम आपकी रुचि माफिक ही देने का ख्याल रखेंगे । भगवन् आपकी जो भी रुचि है, फरमावें, रस, दूध अथवा पटोलिया या कोई अन्य पदार्थ ?

प्रत्युत्तर में भगवन् बोले—रुचि भी नहीं और आयु भी नहीं है । पुनः संतों ने लगभग ४.४५ बजे गुरुदेव को पूछा—भगवन् ! साता कैसे मिले, वह बतायें । गुरुदेव एक शब्द ही बोले—"समाधि में" ।

प्रश्नोत्तर काल में पूज्य गुरुदेव भगवन् का मुखमंडल आत्म-ज्योति से दीप्त हो रहा था । हम सब उन तपोपूत महाश्रमण के उच्च आत्मिक भावों से परिपूर्ण उत्तर से निरुत्तर थे । एक ओर हम भगवन् के राग में बँधे थे । उनके तन की चिन्ता कर रहे थे, पर वह महासाधक तो शरीर और रोगों की चिन्ता से सर्वथा परे आत्म-भाव में समाधिस्थ हो रहे थे । युवावस्था में स्वयं द्वारा रचित रचना के भाव जीवन के इस संध्याकाल में उन महापुरुष ने मूर्तिमन्त कर दिखाये ।

"रोग शोक नहीं मुझको देते, जरा मात्र भी त्रास ।
सदा शांतिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास ।।"

उस संवाद के बाद एक दिन बीता, दो दिन बीते, गुरुदेव लगभग मौन ही रहे, किसी से भी कुछ नहीं बोलना । हम सब ऊहापोह में थे । अज्ञात आशंका से आशंकित । अपनी-अपनी सोच में इसे मौन, शारीरिक अशक्तता अथवा रुग्णता सोच रहे थे । शारीरिक दुर्बलता बढ़ रही थी । हम सब चिन्तातुर थे ।

कैसे क्या होगा ? स्वयं डॉक्टर भी कोई निर्णय लेने में अपनेआपको असमर्थ महसूस कर रहे थे। पर गुरुदेव इन सब चिन्ताओं से परे अपनी उसी चिर परिचित मंद मुस्कान के साथ समाधि भाव मे लीन रहते। उनके प्रशस्त शुभ्र दिव्य भाल पर वेदना की हल्की रेखा भी दृष्टिगत नहीं हुई। किन्तु ब्रह्म तेज से दीप्त मुखाकृति विहँसती हुई। भास्वर आँखों में वही सौम्य, स्नेह एवं करुणा का पारावार उमड़ता हुआ हर किसीको आप्लावित कर रहा था। संभाषण के लिए वार-वार आग्रह करने पर भी वह परमयोगी मात्र मधुर स्मित के साथ अपना वरद हस्त हमारे मस्तिष्क पर रखकर हमे आश्वस्त करते पर हमें संतोष कहाँ हो पाता ? हम तो गुरुदेव की अमृत वाणी श्रवण करने को आतुर थे, पर कुछ भी न बोलने पर हमारी उदासी गहन होती जा रही थी। दो दिन पूर्व तो गद्गद् स्वर में अच्छी तरह वात करते, अव अचानक क्या हो गया ?

इसी बीच दिनांक २३-३-९१ को श्री देवेन्द्रराज जी मेहता सपरिवार दर्शनार्थ आये। श्रद्धालु भक्त अपने आराध्य भगवन् को आत्म-भाव मे लीन, मन, वचन, काया से सम्पूर्ण श्रद्धा से अभिभूत हो नमन कर रहा था तो आराध्य भगवन् अपने इस संघसेवी श्रावक को पूर्वजों का स्मरण दिलाते भोलावण के रूप में वोल रहे थे। पूज्य गुरुदेव ने मेहता जी से कुछ देर तक वातचीत की। हम आश्वस्त वने कि गुरु भगवन् के न वोलने का कारण उनकी मौन साधना है न कि स्वास्थ्य की कोई गड़वड़ है।

पूज्य गुरुदेव को इस तरह आत्म-भाव में लीन देखकर हम सव सोच रहे थे, महापुरुषों के गुणगान मे हम जो सदैव करते हुए आये है। "जिन नही पण जिन सरीखा, वीतराग नहीं पण वीतराग सरीखा" का वह साक्षात् स्वरूप है। गुरुदेव की आन्तरिक जागरूकता सतत वढ़ती गई। उन समाधिभाव में लवलीन महामनीषी को अव न तो इस जीवन के प्रति आसक्ति थी और न ही अवश्यम्भावी मृत्यु का कोई भय। पूज्य भगवन् तो निर्लिप्त भाव से आत्म-साधना में निरत थे।

पूज्य गुरुदेव के स्वास्थ्य के समाचार सर्वत्र फैल चुके थे। वाहर से निरन्तर सैकड़ों-हजारों दर्शनार्थी उन महायोगी के दर्शनार्थ आ रहे थे। आराध्य भगवन् की आत्म-शान्ति में विघ्न न हो, इसी लक्ष्य से दर्शनार्थ उपस्थित भक्तजन भी अनुशासनपूर्वक पंक्तिवद्ध हो, दूर से ही दर्शन कर संतोष कर लेते।

दिनांक २८-३-९१ को शासनपति श्रमण भगवान् महावीर की जन्म जयंति के पावन प्रसंग पर जन सैलाव आराध्य आचार्य भगवन्त के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। प्रत्येक आगन्तुक दर्शनार्थी अपने आराध्य भगवन्त के मंगल दर्शन

कर संतुष्ट हो सके व व्यवस्था भी बनी रहे, इसी हेतु पूज्य भगवन् को विनम्र निवेदन किया । भगवन् ! मकान के बाहर बरामदे में विराजमान हो भक्तजनों को दर्शन दे कृतार्थ करने की कृपा करें । हमारा यह अनुरोध उस करुणा के अजस्र स्रोत महापुरुष ने सहज स्वीकार कर लिया । अपने शिष्य समुदाय से घिरे उच्च पट्ट पर आसीन स्थितप्रज्ञ की भाँति विराजमान गुरुदेव ऐसे लग रहे थे मानों नक्षत्र मंडल के बीच चन्द्र हों । अखण्ड ब्रह्मचर्य के अत्युद्भुत तेज से देदीप्यमान गुरुदेव के तेजस्वी मुखमंडल को निनिमिष नयनों से निहार कर समूचा जन समुदाय धन्य-धन्य कह उठा । आशीर्वाद की मुद्रा में उठे गुरुदेव के कर-कमल सभी को उन प्रज्ञापुरुष का मौन संदेश दे रहे थे । उन प्रज्ञापुंगव गुरुवर्य के मंगल दर्शन कर सभी भक्तजनों के नयन हर्षाश्रुओं से आप्लावित हो गये । हर हृदय में एक ही भावना थी कि इस युग में भगवदतुल्य हमारे ये पूज्य-राज शीघ्र स्वस्थ हों, शतायु हों, चतुर्विध संघ को अपने सान्निध्य की छाया प्रदान करते रहें ।

दिन प्रतिदिन दर्शनार्थियों का आवागमन बढ़ता ही गया । सुदूर क्षेत्रों के भक्तजन भी पहुँचने लगे । पूज्य भगवन् का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा था । हर किसी को एक ही चिन्ता थी कि शरीर में किसी रोग विशेष के लक्षण नहीं फिर भी स्वास्थ्य में सतत गिरावट क्यों ? महापुरुष की सेवा में डॉक्टर, वैद्य एवं भक्त सदैव तत्पर, पर जिन्हें आहार एवं दवा से अरुचि ही हो गई हो, जिन्हें अपना जीवन लक्ष्य ही दृष्टिगत हो रहा हो, जिन्होंने देहोत्सर्ग के लिए सभी तैयारियाँ कर ली हों, वे भला दवा क्या ग्रहण करते ? निमाज पधारने के बाद से ही आहार (तरल के अलावा) लगभग बंद सा ही था । जो कुछ भी लिया वह हम संतों के अत्याग्रह पर और मात्र हम लोगों का मन रखने हेतु । देह का मन ही मन ममत्व त्याग कर चुके गुरुदेव तो, मात्र आत्म-भाव में लव-लीन थे । कभी-कभी वे फरमाते भी—"यह जो कुछ आहार, दवा ले रहा हूँ, तुम्हारा मन रखने के लिये ले रहा हूँ वरना मुझे इसकी भी जरूरत नहीं है ।"

पूज्य गुरुदेव के गिरते स्वास्थ्य को लेकर आगत भक्तों में ऊहापोह हो गयी । यदि इतने दिन के उपचार में सुधार नहीं हो तो अन्य चिकित्सक की सेवायें ली जानी चाहिये । समूचे संघ व समाज की भावना के अनुरूप संघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं के विचार-विनिमय के पश्चात् दिनांक ४ अप्रेल, ९१ को जोधपुर से डॉक्टरों का एक दल स्वास्थ्य की जाँच हेतु उपस्थित हुआ । पाली से भी डॉक्टर पहुँचे । निमाज में सेवा कर रहे डॉक्टर भी उपस्थित थे । चिकित्सक दल जाँच इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वर्तमान में डॉ० एस० आर० मेहता के निर्देशन में जो उपचार चल रहा है वह उत्तम है और वही जारी रखा जाय । हाँ, यदि भगवन् पूर्णरूपेण पथ्य व दवा-सेवन नहीं कर पाते हों तो इंजेक्शन,

कैसे क्या होगा ? स्वयं डॉक्टर भी कोई निर्णय लेने में अपनेआपको असमर्थ महसूस कर रहे थे। पर गुरुदेव इन सब चिन्ताओं से परे अपनी उसी चिर परिचित मंद मुस्कान के साथ समाधि भाव में लीन रहते। उनके प्रशस्त शुभ्र दिव्य भाल पर वेदना की हल्की रेखा भी दृष्टिगत नहीं हुई। किन्तु ब्रह्म तेज से दीप्त मुखाकृति विहँसती हुई। भास्वर आँखों में वही सौम्य, स्नेह एवं करुणा का पारावार उमड़ता हुआ हर किसीको आप्लावित कर रहा था। संभाषण के लिए बार-बार आग्रह करने पर भी वह परमयोगी मात्र मधुर स्मित के साथ अपना वरद हस्त हमारे मस्तिष्क पर रखकर हमें आश्वस्त करते पर हमें संतोष कहाँ हो पाता ? हम तो गुरुदेव की अमृत वाणी श्रवण करने को आतुर थे, पर कुछ भी न बोलने पर हमारी उदासी गहन होती जा रही थी। दो दिन पूर्व तो गद्गद् स्वर में अच्छी तरह बात करते, अब अचानक क्या हो गया ?

इसी बीच दिनांक २३-३-९१ को श्री देवेन्द्रराज जी मेहता सपरिवार दर्शनार्थ आये। श्रद्धालु भक्त अपने आराध्य भगवन् को आत्म-भाव में लीन, मन, वचन, काया से सम्पूर्ण श्रद्धा से अभिभूत हो नमन कर रहा था तो आराध्य भगवन् अपने इस संघसेवी श्रावक को पूर्वजों का स्मरण दिलाते भोलावण के रूप में बोल रहे थे। पूज्य गुरुदेव ने मेहता जी से कुछ देर तक बातचीत की। हम आश्वस्त बने कि गुरु भगवन् के न बोलने का कारण उनकी मौन साधना है न कि स्वास्थ्य की कोई गड़बड़ है।

पूज्य गुरुदेव को इस तरह आत्म-भाव में लीन देखकर हम सब सोच रहे थे, महापुरुषों के गुणगान में हम जो सदैव करते हुए आये है। "जिन नहीं पण जिन सरीखा, वीतराग नहीं पण वीतराग सरीखा" का वह साक्षात् स्वरूप है। गुरुदेव की आन्तरिक जागरूकता सतत बढ़ती गई। उन समाधिभाव में लवलीन महामनीषी को अब न तो इस जीवन के प्रति आसक्ति थी और न ही अवश्यम्भावी मृत्यु का कोई भय। पूज्य भगवन् तो निर्लिप्त भाव से आत्म-साधना में निरत थे।

पूज्य गुरुदेव के स्वास्थ्य के समाचार सर्वत्र फैल चुके थे। बाहर से निरन्तर सैकड़ों-हजारों दर्शनार्थी उन महायोगी के दर्शनार्थ आ रहे थे। आराध्य भगवन् की आत्म-शान्ति में विघ्न न हो, इसी लक्ष्य से दर्शनार्थ उपस्थित भक्तजन भी अनुशासनपूर्वक पंक्तिबद्ध हो, दूर से ही दर्शन कर संतोष कर लेते।

दिनांक २८-३-९१ को शासनपति श्रमण भगवान् महावीर की जन्म जयंति के पावन प्रसंग पर जन सैलाब आराध्य आचार्य भगवन्त के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। प्रत्येक आगन्तुक दर्शनार्थी अपने आराध्य भगवन्त के मंगल दर्शन

कर संतुष्ट हो सके व व्यवस्था भी बनी रहे, इसी हेतु पूज्य भगवन् को विनम्र निवेदन किया। भगवन् ! मकान के बाहर बरामदे में विराजमान हो भक्तजनों को दर्शन दे कृतार्थ करने की कृपा करें। हमारा यह अनुरोध उस करुणा के अजस्र स्रोत महापुरुष ने सहज स्वीकार कर लिया। अपने शिष्य समुदाय से घिरे उच्च पट्ट पर आसीन स्थितप्रज्ञ की भाँति विराजमान गुरुदेव ऐसे लग रहे थे मानो नक्षत्र मंडल के बीच चन्द्र हों। अखण्ड ब्रह्मचर्य के अत्युद्‌भुत तेज से देदीप्यमान गुरुदेव के तेजस्वी मुखमंडल को निनिमिष नयनों से निहार कर समूचा जन समुदाय धन्य-धन्य कह उठा। आशीर्वाद की मुद्रा में उठे गुरुदेव के कर-कमल सभी को उन प्रज्ञापुरुष का मौन संदेश दे रहे थे। उन प्रज्ञापुंगव गुरुवर्य के मंगल दर्शन कर सभी भक्तजनों के नयन हर्षाश्रुओं से आप्लावित हो गये। हर हृदय में एक ही भावना थी कि इस युग में भगवदतुल्य हमारे ये पूज्य-राज शीघ्र स्वस्थ हों, शतायु हों, चतुर्विध संघ को अपने सान्निध्य की छाया प्रदान करते रहें।

दिन प्रतिदिन दर्शनार्थियों का आवागमन बढ़ता ही गया। सुदूर क्षेत्रों के भक्तजन भी पहुँचने लगे। पूज्य भगवन् का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा था। हर किसी को एक ही चिन्ता थी कि शरीर में किसी रोग विशेष के लक्षण नहीं फिर भी स्वास्थ्य में सतत गिरावट क्यों? महापुरुष की सेवा में डॉक्टर, वैद्य एवं भक्त सदैव तत्पर, पर जिन्हें आहार एवं दवा से अरुचि ही हो गई हो, जिन्हें अपना जीवन-लक्ष्य ही दृष्टिगत हो रहा हो, जिन्होंने देहोत्सर्ग के लिए सभी तैयारियाँ कर ली हों, वे भला दवा क्या ग्रहण करते? निमाज पधारने के बाद से ही आहार (तरल के अलावा) लगभग बंद सा ही था। जो कुछ भी लिया वह हम संतों के अत्याग्रह पर और मात्र हम लोगों का मन रखने हेतु। देह का मन ही मन ममत्व त्याग कर चुके गुरुदेव तो, मात्र आत्म-भाव में लव-लीन थे। कभी-कभी वे फरमाते भी—"यह जो कुछ आहार, दवा ले रहा हूँ, तुम्हारा मन रखने के लिये ले रहा हूँ वरना मुझे इसकी भी जरूरत नहीं है।"

पूज्य गुरुदेव के गिरते स्वास्थ्य को लेकर आगत भक्तों में ऊहापोह हो गयी। यदि इतने दिन के उपचार में सुधार नहीं हो तो अन्य चिकित्सक की सेवायें ली जानी चाहिये। समूचे संघ व समाज की भावना के अनुरूप संघ के प्रमुख कार्य-कर्ताओं के विचार-विनिमय के पश्चात् दिनांक ४ अप्रेल, ९१ को जोधपुर से डॉक्टरों का एक दल स्वास्थ्य की जाँच हेतु उपस्थित हुआ। पाली से भी डॉक्टर पहुँचे। निमाज में सेवा कर रहे डॉक्टर भी उपस्थित थे। चिकित्सक दल जाँच कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वर्तमान में डॉ० एस० आर० मेहता के निर्देशन में जो उपचार चल रहा है वह उत्तम है और वही जारी रखा जाय। हाँ, यदि आचार्य भगवन् पूर्णरूपेण पथ्य व दवा-सेवन नहीं कर पाते हों तो २

ग्लूकोज (ड्रिप) एवं आहार नलिका आदि बाह्य साधनों द्वारा दवा व आहार दिया जाना आवश्यक है।

चिकित्सक दल की इस बात से वातावरण अत्यन्त बोझिल था, सभी मानसिक उलझन में थे। एक ओर गुरुदेव की स्वास्थ्य की चिन्ता एवं उनके प्रति हमारा राग दूसरी ओर गुरुदेव की स्वयं की भावना एवं उनका दृढ़ सकल्प। अन्ततः हम लोगों की कर्तव्य भावना जागृत हुई और हम सब इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि गुरुदेव की भावना हमारे लिये आदेश है। जिस महापुरुष ने अपने जीवन पर्यन्त कई बार आवश्यक होने पर भी कभी भी इंजेक्शन आदि का उपयोग नहीं किया ऐसे निरतिचार संयम के आराधक, जिन्होंने अन्तिम समय का संकेत देकर हमें स्वयं चेता दिया है व सतत साथ देने की ही भावना को व्यक्त किया है। ऐसे पूज्यवर्य की इच्छा के विपरीत हमें कोई कार्य नही करना है। उधर भावुक भक्तों की भावना एवं डॉक्टरों का आग्रह है तो हमें स्वयं गुरु भगवन् को ही पुनः पूछ लेना चाहिये। यद्यपि गुरुदेव के शरीर में अत्यंत दुर्बलता थी, स्वयं उठ-बैठ नहीं पाते, चलना-फिरना बंद सा था, पर उनके अनुपम धैर्य व आत्म-बल पर शारीरिक दुर्बलता किंचित् मात्र भी आवरण नहीं डाल पाई। मुखमण्डल पर वही सहज, निश्छल, आत्मीय मुस्कान, नयन-कमलों में वही महर्घ्य मुक्ताफल की सी स्वच्छ, अद्भुत आभा दृष्टिगत हो रही थी। बार-बार पूछने पर निरतिचार संयम साधना के धनी उन पूज्यवर्य ने इतना मात्र कहा—"भय्या, क्यों मुझसे बुलवाते हो, मेरी साधना में विघ्न मत डालो।" गुरुदेव के इस वाक्य ने हम लोगों के विचारों को और दृढ़ बना दिया।

संतगण ने सारी स्थिति उपस्थित प्रमुख श्रावकों के समक्ष रखते हुए कहा कि ७० वर्ष की सुदीर्घ निरतिचार विमल संयम साधना में जिस तन ने पूज्य गुरुदेव का साथ दिया है, जो शरीर इस साधक महापुरुष की आदर्श साधना एवं तप तेज से दीप्त तथा तेजोमान हुआ है, उस शरीर को पूज्यवर्य की अन्तिम साधना का साथी बना रहने दे। यही भावना स्वयं पूज्यवर्य की है एव हम लोगो की भी यही भावना है। परन्तु संघनायक के इस तन पर समूचे चतुर्विध संघ का अधिकार है। अतः आप सामूहिक रूप से जो निर्णय करना चाहे कर हमें अवगत करायें, किसी भी अन्तिम निर्णय के पूर्व आप लोगों की सहमति अपेक्षित है। श्रावकगण ने भी समग्र स्थिति पर गहन विचार-विमर्श कर यही सम्मति प्रकट की कि हमें पूज्य भगवन् की भावना को सर्वोपरि स्थान देते हुए, इंजेक्शन, ग्लूकोज अथवा आहार नलिका नही लगवानी है। पर निर्दोष उपचार में कोई कमी नही होनी चाहिये।

चिकित्सक दल को निर्णय से अवगत कराया गया। सभी डॉक्टर सुनकर

चकित रह गये। वे सब एक स्वर में बोले—आप गजब करते हैं। इस युग में ऐसे महान् अध्यात्मयोगी संत-मुनिराज की महनीय उपस्थिति की बहुत आवश्यकता है, अतः सभी अपेक्षित उपचार किये जाने चाहिये।

शरीर की व्याधियों का उपचार करने वाले चिकित्सकों को भला क्या पता कि संतों में अद्भुत संत वे परमयोगी तो अब तक के ममत्व से परे हो चुके है। चिकित्सकगण को पूज्य भगवन् की संकल्पमय भावनाओं से अवगत कराया गया तो वे इन तपोपूत दिव्य साधक के संकल्प से आश्चर्याभिभूत हुए बिना नही रह सके कि यह कैसा अवधूत है। कैसा योगी है जो शरीर से सर्वथा निस्पृह हो, सभी उपलब्ध साधनों का स्वयं त्याग कर चुका है और कहाँ सामान्य जन जो अन्तिम क्षण तक आकुल-व्याकुल हो, सभी संभव उपाय कर अपरिहार्य मृत्यु को टालने का उपक्रम करते हैं। धन्य, धन्य है इन महापुरुष का धैर्यबल, अनुपम है इनकी त्यागवृत्ति और दृढ़ है इनका आत्मबल। सभी चिकित्सकगण सहज नत मस्तक हो, गुरु गुणगान करते हुए अपने-अपने गन्तव्य स्थान लौट गये। कुछ भावुक भक्तों को यद्यपि अत्यन्त निराशा थी पर आराध्य गुरुदेव के अटल वज्र संकल्प के आगे वे मौन नत मस्तक थे। भक्तों का आवागमन निरन्तर बढ़ता जा रहा था। आने वाला हर दर्शनार्थी जब गुरुदेव के स्वास्थ्य को देखता एवं उनकी भावना को सुनता तो चिन्तित मुद्रा में दीर्घनिश्वास ले यही कह उठता—

'पूज्यराज को यह क्या जँच गई? अन्नाहार क्यों बंद कर दिया? दवा क्यों नहीं लेते? उपचार में इतनी निस्पृहता क्यों? जीवन भर जिस महापुरुष ने तप, त्याग व संयम साधना में लेशमात्र कमी नहीं रखी, इस रुग्ण अवस्था में वे किस कमी को पूरा करना चाहते है? अति भावुक होने पर वे संतों से उलाहने भरे शब्दों में पृच्छा भी करते पर जब उन्हें गुरुदेव के पवित्र संकल्प से कि 'जीवन के संध्याकाल में मैं कहीं खाली हाथ न चला जाऊँ' से अवगत कराया जाता तो वे सहज नत मस्तक हो उस महापुरुष के प्रति सहज श्रद्धावनत हो जाते। पूज्यपाद की वह अत्युत्कृष्ट निर्मल भावना ही उन भोले भक्तों के सभी प्रश्नों का स्वयं समाधान कर देती।

सभी शिष्यगण अहर्निश सेवा-परिचर्या में लगे थे। कर्तव्य भावना से ओत प्रोत गुरु भक्त सभी श्रावकगण अपना-अपना व्यवसाय, सुख-सुविधायें छोड़, [illegible] की सेवा में ही उपस्थित रहते। किसी का भी मन घर लौटने को नहीं [illegible]। डॉक्टर एस. आर. मेहता, डॉक्टर राकेश मेहता एवं वैद्य सम्पतराजजी [illegible] पूर्ण श्रद्धाभक्ति व विवेक के साथ मर्यादानुसार उपचार में सन्नद्ध थे पर

पूर्ण प्रयासों के बावजूद भी स्वास्थ्य में कोई सुधार परिलक्षित नहीं हो रहा था। दिनांक ८-४-९१ को लगभग ४ बजे सायं डॉक्टर एस. आर. मेहता आये। निरीक्षण किया और पाया कि शरीर में अत्यन्त दुर्बलता आ गई है। शरीर मे रोगाणुओं से लड़ने की संघर्ष-क्षमता कम हो गई है, रोग संक्रमण की स्थिति बढ़ गई है, श्वास, कफ, खांसी का भी उठाव है। निरीक्षण के पश्चात् उन्होने उपचार में कुछ परिवर्तन किया।

इधर डॉक्टर दवा दे लौटे उधर सायंकाल गुरुदेव ने पेय पदार्थ हेतु भी मना कर दिया। हमारे अत्याग्रह पर अति अल्प मात्रा में पेय पदार्थ ले तो लिया पर दवा लेने से पूर्ण इनकार कर दिया। सायंकाल चौविहार के समय जल भी अत्यन्त अल्प मात्रा में ही लिया। दिनांक ९-४-९१ मंगलवार प्रथम वैशाख कृष्णा दशमी को प्रातः नवकारसी के पश्चात् हमने पेय ग्रहण करने हेतु प्रार्थना की पर वही इनकारी। हमने यही सोचा, थोड़ी देर पश्चात् पुनः निवेदन करेंगे, शारीरिक अशक्तता के कारण हल्की सुस्ती नजर आ रही थी। पर नाड़ी-गति, रक्त-चाप, हृदय-गति आदि सामान्य थे। दिन में हमने कई वार पेय लेने हेतु निवेदन किया पर हर वार अस्वीकृति। वार-बार अस्वीकृति पर हम लोगों ने अपने आपको सन्तोष देते सोचा कि "लंघनं परमौषधम्"। गुरुदेव स्वयं कई बार रुग्णता में उपवास का प्रयोग कर चुके हैं। पुनः आज कृष्ण पक्ष की दशमी भी है। कृष्ण पक्ष की दशमी को पूज्यराज वर्षों से व्रत व चिन्तामणि भगवान् पार्श्वनाथ का जप-स्मरण व एकान्त साधना करते रहे हैं। पूज्य गुरुदेव ने हम लोगों के कई वार निवेदन के उपरान्त भी पेय ग्रहण नही किया व उस दिन गुरुदेव ने उपवास कर लिया। उपवास से क्रमशः सुधार दृष्टिगत हुआ, सायंकाल होते-होते शारीरिक चेतना में सुधार प्रतीत हुआ। हम लोगों ने मन-ही-मन तसल्ली पाई कि अब पूज्यराज के स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर सुधार होगा।

दूसरे दिन दिनांक १०-४-९१ को हमारा मन कर रहा था—कल भगवन् का स्वास्थ्य ठीक रहा है, आज भगवन् अवश्य पारणा करेगे पर वे महापुरुष तो मन ही मन निश्चय कर अपना लक्ष्य चुन चुके थे। हम सभी ने पारणा करने हेतु पुनः करवद्ध निवेदन किया पर वे सकल्पधनी योगिवर्य अपने निश्चय पर अडोल थे। अन्ततः उनकी भावना के अनुरूप बेले का प्रत्याख्यान कराने पर ही पूज्य गुरुदेव ने कुछ जल ग्रहण किया।

तीसरे दिन दिनांक ११-४-९१ को सभी के मन में आशा थी कि पूज्य गुरुवर्य आज तो पारणा करने की कृपा करेंगे पर जब साञ्जलि शीष झुकाये सभी संत-सति वृन्द के भावाभिभूत आग्रह को भी ठुकरा दिया तो हमारी आशाओं पर तुषारापात हो गया। उपस्थित श्रावकगण ने भी निवेदन किया

पर वही अस्वीकृति। इस अबोध बालक के मन में आशा थी कि भगवन् अपने इस लघु शिष्य की बात तो अभी नहीं टालेगे इसी आशा व विश्वास के साथ मैंने पारणक की सामग्री पूज्य भगवन् के सामने रखी पर वे योगिराज तो मन-ही-मन सब मोह-बन्धन त्याग चुके थे, उन्हें तो अब संथारा-समाधि ही अभीष्ट था। हमने पारणक सामग्री मुँह के पास ले जाकर देने का उपक्रम किया तो पूज्यवर्य ने अस्वीकृति के साथ-साथ हाथ से हटा दिया। हम सभी संत-सतीगण सोच रहे थे कि जिस महापुरुष ने अपनी ७० वर्ष की सुदीर्घ संयम-साधना मे पूर्व मे एक बार से अधिक तेले की तपस्या नही की, वह महापुरुष इस अशक्तावस्था में, आज तीसरा दिन है पर पारणक नहीं कर रहे हैं, इन्होंने मन में क्या संकल्प किया है। सभी उदास व चिन्तित एक ही बात सोच रहे थे—इस करुणा सागर महामनीषी ने स्वयं कष्ट देखकर भी कभी शिष्यों का आग्रह नहीं ठुकराया, आज फिर यह क्यों मुँह मोड़ बैठे हैं। हम सभी को अपने आराध्य भगवन् पर एक अधिकार की सी भावना थी, आज वह सोच खंडित हो रही थी। इतिहास गवाह है कि गौतम को भले ही प्रभु महावीर से मोह रहा है, पर उन अर्हत् प्रभु के तो सभी मोह-बन्धन टूट चुके थे। इतिहास लेखक आज स्वयं एक इतिहास निर्माण करने को उद्यत थे। सभी शिष्य समुदाय अपने आराध्य भगवन् के राग में मोहासक्त हो करबद्ध निवेदन कर पारणक का आग्रह कर रहा था पर वे योगिराज तो तन, शिष्य-परिवार व संघ सभी का मोह त्याग सर्वथा निष्पृह हो चुके थे। अतुल आत्मबल, अदम्य उत्साह एवं सुमेरु के सम अडोल निश्चयव्रती वे योगिराज तेला करने के निश्चय पर दृढ़ रहे। तेले की तपस्या में भी उनके मुख-मण्डल पर थकान का कोई चिह्न नही था। मुख-मण्डल अद्‌भुत दिव्य आत्म-तेज से ज्योतिर्मान हो रहा था।

दिनांक १२-४-९१ को उषा काल में सूर्य की प्रथम किरणों के साथ हमारे मन में भी एक आशा उदित हुई कि आज तो अकारण करुणाकर दया-निधान अवश्यमेव कृपा कर हम सबके अनुनय विनय पर मेहर नजर कर पारणक करेगे व हमे कृतार्थ करेगे। पूज्य गुरुदेव की सदैव तप की भावना रहती पर शारीरिक दुर्बलता व मानसिक श्रम के कारण वे ऐसा नहीं कर पाते, फिर आज तो तेला भी पूर्ण हो गया है। इसी विश्वास भरी भावना से हम पारणक सामग्री ले गुरुचरणों मे पहुँचे। साग्रह निवेदन व गद्‌गद् कंठ से प्रार्थना भी की पर उन अनासक्त योगी ने अपने हाथ से उस सामग्री को दूर कर दिया। हम अवाक् रह गये, आँखें खुली की खुली रह गई। अरे भगवन् को तपस्या की यह कैसी धुन लग गई? बाहर दर्शनार्थियों की अपार भीड़। हर कोई एक दूसरे से पूछ रहे है—गुरुदेव ने पारणा किया या नही? सभी संतमुनिवृन्द, महासती मण्डल एवं संघ के कार्यकर्ताओं का मन अधीर हो उठा। सभी ने पुन: गुरुचरणों में निवेदन किया कि भगवन्! आप पारणा

क्यों नही करते ? पारणक के लिये निवेदन करने पर पुनः स्पष्ट इनकार। तव पूछा गया कि भगवन् ! आखिर आपकी क्या भावना है ? क्या इच्छा है ? क्या आपकी भावना संथारा की है ? सवने देखा कि संथारे की वात चलते ही उनके दिव्य मुख-मण्डल पर स्मित मुस्कान खिल उठी। संथारे हेतु पूज्य भगवन् का प्रवल आग्रह जानकर, हम सवके हृदय अत्यंत व्यथित, वातावरण अत्यंत वोझिल, हम सवके मन में भीषण अन्तर्द्वन्द्व—एक ओर उन महामनीषी की भावना का समादर तो दूसरी ओर अपने आराध्य गुरुवर्य के संथारे की कल्पना मात्र से कम्पायमान हम लोग। अनन्त-अनन्त जन्मों में संचित असीम पुण्योदय से जिन तरण-तारण, दया-निधान गुरुदेव का सान्निध्य मिला हो, उसे छोड़ने की स्वीकृति देने को यह मन कैसे राजी हो पाता ? सभी चाहते थे कि हमारे परम कृपानिधान तरण-तारण जहाज गुरुदेव पूर्णतः स्वस्थ हों, शतायु हों, चिरायु हों, अपना मंगल सान्निध्य सदैव हमें व चतुर्विध संघ को देते रहें।

पर काल-चक्र अवाध गति से अपने कदम वढ़ाता जा रहा था तो वे मृत्युंजयी महापुरुष उस पर विजय श्री का वरण कर मरण को अपने श्रेष्ठतम साधक जीवन से भी अधिक आदर्श वना, एक नया कीर्तिमान रचने को आतुर। भावनाओं के अतल महासागर में डूवते-तैरते हम शिष्यगण कोई भी निर्णय लेने में अपने आपको अक्षम पा रहे थे। सैकड़ों साधक अपने जीवन का निर्णय लेने जिन श्री चरणों में उपस्थित हुए, आज उसी नियामक के जीवन की निर्णायक घड़ी हम सवके सामने थी। निर्णय तो वह महासाधक कभी का ले चुका था, हमें तो मात्र उस पर अपनी स्वीकृति (चतुर्विध संघ की स्वीकृति) की छाप मात्र लगानी थी, उसमें भी हम अपने आपको असहाय महसूस कर रहे थे। अन्ततः श्रद्धेय श्री मान मुनिजी म. सा., श्रद्धेय श्री हीरा मुनिजी म. सा. प्रभृति सभी संतगण वहाँ उपस्थित रत्नवंशीय साध्वी मण्डल व संघ के अग्रगण्य श्रावक परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पूज्य भगवन् ने जीवनपर्यन्त हमारे जीवन को आगे वढ़ाने में, संघ एवं जिन शासन की सेवा करने में हमारा मार्गदर्शन किया है, उन महापुरुष ने जीवन मे सदैव दिया ही दिया है, कभी कुछ माँगा नहीं, आज जीवन की इस सांध्य वेला मे मांगा भी है तो जुदाई एवं पंडित मरण में सहयोग। हमें इस विषम घड़ी में अपने हृदय को मजवूत कर गुरुदेव की भावना के अनुरूप ही उनके अभीष्ट पाथेय की प्राप्ति में सहयोग देना ही होगा। एक वार पुनः चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) ने परम पूज्य गुरुदेव के चरण-सरोजों में उपस्थित हो गद्गद् कंठ से समवेत स्वरों में सानुनय विनम्र विनति कर पारणक का आग्रह किया, पर वे संकल्प से टस से मस न हुए। वही अस्वीकृति का स्वर। स्पष्ट अस्वीकृति से सभी को उन महापुरुष से यह पूछने को मजवूर होना पड़ा कि भगवन् ! पारणक नही तो क्या संथारा की भावना है ? संथारे की वात

श्रवण करते ही उन महाश्रमण ने अपनी चिरपरिचित स्मित के साथ हाँ कह दिया। सभी संतों की पुनः पुनः प्रार्थना—

> जाने को सब ही जाते हैं, रुकता कोई कभी नहीं।
> पर, गुरुदेव अर्ज यही है, अभी नहीं—बस अभी नहीं ॥

अन्तर्मन से निकली सन्तों की भावना पर आचार्य देव की दृढ़ता यथावत् थी। हम सभी अवाक् थे—अपने अन्तिम मनोरथ 'संथारा' की कितनी प्रबल अदम्य आकांक्षा, कैसा दृढ़ अभिनिश्चय, जीवन से कितनी निस्पृहता। त्याग के प्रबल आग्रह के समक्ष राग को झुकना ही पड़ा और अन्ततः भारी मन से चतुर्विध संघ ने गुरुवर्य की प्रबल भावना का समादर करते हुए संथारा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कर दी।

जब श्रद्धेय श्री मान मुनिजी म. सा. एवं श्रद्धेय श्री हीरा मुनिजी म. सा. संथारे की विधि पूर्ण करा रहे थे तो सभी ने देखा जहाँ हम सब अपने आपको निढाल, असहाय, अनाथ अनुभव कर रहे थे, उन महापुरुष के दिव्य आभामय मुखमण्डल पर आज अलौकिक आत्म-ज्योति प्रगट हो रही थी तो अपने अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति का संतोष भी झलक रहा था। उनके रोम-रोम में अपार उत्साह था, "मैं कहीं खाली हाथ न चला जाऊँ, संथारे में मेरा साथ देना।" की उनकी अदम्य आकांक्षा आज पूरी हो रही थी, वस्तुतः दृढ़ संकल्पव्रती, श्रमण श्रेष्ठ की चिर संचित अन्तर्भावना आज साकार होने जा रही थी। भगवन् ने तो हृदय में मानो एक ही आकांक्षा चिरसंचित कर रखी थी, जो आज पूरी होने जा रही थी—

> "जग मरण से डरत है, मो मन परमानन्द।
> कब मरस्यां कब भेटस्या, सहजे परमानन्द ॥"

श्रद्धेय मान मुनिजी म० सा० द्वारा विधि पूर्ण कराये जाने के वाद जब आजीवन (तिविहार) आहार त्याग के प्रत्याख्यान का पाठ श्रवण कराया जा रहा था, भगवन् ने पूर्ण सचेतन सजग अवस्था में स्वयं अपने श्रीमुख से 'वोसिरामि' शब्द का उच्चारण कर संथारा ग्रहण कर लिया। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका सभी भारी मन से आत्मसमाधिस्थ अपने आराध्य उन युग-निर्माता, युग-मनीषी, युग-प्रभावक गुरुवर्य को नत मस्तक हो, भाव-विह्वल हो, नमन कर रहे थे। हम गुरुदेव के राग में बेबस, निरुपाय, भावविह्वल विविध चिन्ताओं के अथाह सागर में डूबते जा रहे थे कि 'प्रभु तुम विन कौन आधार?' अब ऐसा अमित वात्सल्य व निश्छल स्नेह-सुधा हम पर कौन वरसायेगा? ऐसे

विराट् व्यक्तित्व का शीतल सान्निध्य हम पुनः कहाँ पायेंगे ? कौन हमें अपनी हित-मित शिक्षा से हमारी डोलती नय्या को सही मार्ग पर चलायेगा ?

किन्तु जब उन अध्यात्म-सूर्य के दिव्य तेजोमय शुभ्र ललाट एव चन्द्र सम शीतल प्रदाता मुखमण्डल की ओर देखा तो मन सहज ही कर्तव्य-पथ की ओर सजग हो गया । हमने सोचा—पूज्य भगवन् तो संघ, समाज, शिष्य-परिवार, अपने शरीर एवं आहार सभी का परित्याग कर मात्र आत्म-भाव में लीन हो चुके है, हम सबको भी समय-समय पर उन्होंने इसी ओर सचेत किया था कि मुझे सहयोग देना । जीवन के उषा काल में ही साधना करते जिस महापुरुष ने भेद-ज्ञान का साक्षात्कार कर यह अनुभव कर लिया था कि यह शरीर 'मैं' नहीं, 'मै' तो उसमें विराजित आनन्दघन आत्मा हूँ, तभी से उनकी समग्र साधना निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती गई । आज लगता है, उनकी समूची संयम जीवन की वह सुदीर्घ साधना इस समाधिमरण के लिपे की गई तैयारी थी, तभी तो सारी तैयारी होते ही वे अपने अभीष्ट की प्राप्ति हेतु आतुर हो उठे । हम सबका आग्रह उन्हें रोक न सका, शिष्यों के स्नेह व भक्तों की भक्ति भी उन्हे बांध नहीं सकी, क्योंकि वे निकट भवी महासाधक तो सभी बन्धनों से मुक्त होने की ओर सतत अग्रसर है । इस कठोर साधना पर आगे बढना उनके अनन्त मनोबल का ही तो परिचायक है । पूज्य भगवन् तो अन्तर्ज्योति जगा यही सोच रहे थे—

मैं हूँ उस नगरी का भूप, जहाँ नहीं होती छाया-धूप ।
दृश्य जगत पुद्गल की माया, मेरा चेतन रूप ।
पूरण गलन स्वभाव धरे तन, मेरा अव्यय रूप ।।
मै न किसी से दबने वाला, रोग न मेरा रूप ।
'गजेन्द्र' निज पद को पहचाने, सो भूपों का भूप ।।

यह तन मेरा नहीं, यह दुर्बलता, यह अशक्तता, ये रोग मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, मै तो अविनाशी, अजर, अमर, शुद्ध, शाश्वत आत्मा हूँ, मुझे तो मेरा स्वरूप प्रगट करना है, सभी बन्धनों को तोड़ मुक्त होना है ।

इन आत्मसमाधिस्थ पूज्य भगवन् के सूर्य सम दैदीप्यमान चेहरे से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो गुरुदेव अपने अप्रतिम आत्म-बल से कराल काल पर विजय-वैजयन्ती फहराने को इस अध्यात्म-संग्राम मे सन्नद्ध हो, कर्म-शत्रुओं को परास्त करने को कटिबद्ध हो । वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति से निरन्तर अपनी आत्मा को ऊँचा उठा कर मुक्तिश्री मजिल की ओर बढ़ रहे थे । वीतरागता की उच्च स्थिति पाने को समुत्सुक इन महाश्रमण को सहयोग तो हम अबोध बालक क्या दे पाते, पर उनके दिव्य साधनामय परमाणुओं का सस्पर्श पा...

भावना को भावित कर सकें, इस परम पवित्र अध्यात्म-गंगा में हम भी अवगाहन कर सकें, उन महापुरुष को सुनाने के निमित्त से हम भी अपनी आत्म-ज्योति को दीप्त कर सकें, इसी लक्ष्य से अपने अन्तर्हृदय की समस्त पीड़ा, वेदना व चिन्ताओं को विस्मृत कर, मात्र पूज्य गुरुदेव के आदेश कि 'मुझे साथ देना' से प्रेरित हो हम सब शिष्यगण भवभयहारिणी जिनवाणी के आगम पाठ एवं अध्यात्म-स्वरूपबोधक भजन पूज्य गुरु-चरणों में सुनाने को उद्यत हो गये।

पूज्य आचार्य भगवन् के संथारा-ग्रहण करने के समाचार देश-देशान्तर में विद्युत वेग से फैल गये। जिसने भी सुना अवाक् रह गया, अनायास विश्वास ही नहीं कर पाया। सभी अपने-अपने मन में विविध कल्पनायें करने लगे—क्या हम श्रमण भगवान् महावीर के शासन के इस दिव्य दैदीप्यमान नक्षत्र के प्रभा-मण्डल से इतनी जल्दी वंचित हो जायेंगे? क्या हम रत्नवंश के इस विराट् कल्प-वृक्ष जिसने अपनी शीतल छाया से अपने-पराये का भेद न रख कर सभी को अपना सुखद सान्निध्य प्रदान किया, जिन शासन सेवा में जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन, अपना समस्त सुख, आराम सभी समर्पित कर दिये, सामायिक एवं स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार एवं इनके सन्देश को घर-घर तक पहुँचाने के लिए दीर्घ विहार करने में कभी परीषहों की परवाह न की, तोड़ना नहीं वरन् जोड़ना जिनके जीवन का आदर्श रहा, विमल संयम-साधना एवं आचार प्रधान संगठन जिन्हें सदैव अभीष्ट रहें, साम्प्रदायिक वैमनस्य जिन्हें कभी छू भी न पाया, युवा पीढ़ी को व्यसन-मुक्त बन्धुभाव में संगठित करने में जो अपने जीवन के सन्ध्या-काल में भी पीछे नहीं रहे, अलभ्य गुण संयोग के धनी इन युग प्रधान आचार्य भगवन्त के संरक्षण से वंचित हो जायेंगे? नहीं, नहीं भगवन्! इस विषम समय में जब आप जैसे महापुरुष की जिनशासन को सर्वाधिक आवश्यकता है, यह आपने क्या किया? नही, नहीं ऐसा नहीं हो सकता।

पर जब सबने निमाज से विश्वस्त समाचार सुने, सभी स्तब्ध रह गये, सर्वत्र एक मौन सन्नाटा सा छा गया। सम्पूर्ण जैन समाज में एक ही चर्चा थी—आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब ने आजीवन संथारा ग्रहण कर लिया है—धन्य-धन्य भगवन्। आपका समग्र अप्रमत्त संयमी जीवन निरतिचार साधना एवं जिनशासन की कीर्तिपताका को दिग्-दिगन्त में फहराने में सन्नद्ध रहा, तो आज आप संथारा समाधिपूर्वक मरण विजय की ओर अग्रसर हो, आने वाली पीढ़ियों के लिये एक आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। सभी मन ही मन इस महापुरुष के चरणों में नत मस्तक थे। जिसने भी सुना, उसे जो भी साधन मिला, उससे शीघ्रातिशीघ्र पूज्य चरणों में पहुँचने हेतु चल पड़ा। दूर-दूर से दर्शनार्थी उमड़-उमड़ कर आने लगे, कहीं मैं दर्शन-लाभ से वंचित न रह जाऊँ, इस भावना से मानों जो जहाँ खड़ा था, वहीं से दौड़ पड़ा। निमाज नगर महानगर बन गया,

गंगवाल भवन तपोधाम बन गया। आसपास के क्षेत्रों से जैनेतर बन्धु भी विशाल संख्या में इस योगिवर्य की इस (जीवित) आत्म-समाधि को देखने व पूज्यराज के पावन दर्शन से अपने आपको पवित्र बनाने उमड़ पड़े। दर्शनार्थियो की भारी भीड़ गुरुदेव के दर्शन को आतुर, हर कोई शीघ्रातिशीघ्र दर्शन करने को तत्पर उन भावुक भक्तों को नियन्त्रित करना अत्यन्त कठिन, पर संघ के कार्यकर्ताओ एवं निमाज श्री संघ के सेवाभावी स्वयंसेवकों ने अचूक सूझबूझ एव समन्वित कार्यशैली से कुशल व्यवस्था की। जिससे सभी दर्शनार्थी योगिराज के दर्शन कर सन्तुष्ट हो सके, अनुशासन बना रहे व आत्मभाव में लीन इन पूज्यवर्य की आत्म-साधना में भी कोई व्यवधान न हो। संघ के अधिकारीगण, कार्यकर्तागण अपनी-अपनी व्यस्त दिनचर्या को छोड़ अपने आराध्य गुरुदेव की इस अन्तिम सेवा के लाभ से वंचित न रह जाये, सभी आगत दर्शनार्थी बन्धु गुरु-दर्शन का लाभ व्यवस्थित व अनुशासित रूप से ले सके तथा इस अपार जनसमूह की सेवा में पूर्ण समर्पण भाव से संलग्न अपने निमाजवासी भाइयों को व्यवस्था-सम्पादन में सहयोग दे सकें, वहीं रुक कर सेवा का लाभ लेने लगे, किसी का भी मन वहाँ से लौटने को ही नही होता। सभी भक्तगण व वातावरण मानों गुरु-चरणों में दत्तचित्त हो गये।

यदि सभी भक्तजन अपने आराध्य की सेवा में समर्पित थे तो गुरुभक्त नागराज (सर्प) भी कैसे पीछे रहते? जिस दिन पूज्य गुरुदेव ने संथारा ग्रहण किया, उसी दिन मध्याह्न के समय सुशीला भवन में नागराज दृष्टिगत हुए पर बिना किसी को कोई नुकसान पहुँचाये, विलुप्त हो गये। षटकाया प्रतिपालक संतजनों एवं रोम-रोम से प्राणिमात्र के प्रति करुणा बहाने वाले, मैत्री, प्रेम, दया एवं स्नेह-सुधा के सागर पूज्य भगवन् के दर्शनार्थ नागराज का भी आना सहज ही है, कोई आश्चर्य की बात नही। जिसे भी इस घटना की जानकारी मिली, हर व्यक्ति अपनी-अपनी सोच के मुताबिक अटकलें लगाने लगा। कुछ लोग इसे इन पूज्य योगिराज का चमत्कार मान रहे थे, तो कुछ इसे चिन्तामणि भगवान् पार्श्वनाथ का इष्ट होने से धरणेन्द्र का दर्शन हेतु पदार्पण। कुछ व्यक्ति इस घटना को सतारा में पूज्य भगवन् द्वारा बचाये गये नाग द्वारा अपने आराध्य भगवन् के इस अन्तिम साधना-काल में दर्शन करने आना मानते।

गुरु भगवन् के इस सथारा-ग्रहण करने के महासंकल्प के अवसर पर अपना अनुमोदन व्यक्त करने में प्रकृति भी पीछे नहीं रही। जब प्रत्याख्यान स्वीकार किये गये उस समय आकाश बिलकुल साफ था, वर्षा का मौसम भी नही था। अपराह्न अनायास ही गगन मेघाच्छादित हो गया एवं ठंडी हवाओं के साथ मूसलाधार वर्षा हुई। आगन्तुक दर्शनार्थियों ने बताया कि यह वर्षा भी मुख्यतः निमाज के इलाके में ही हुई है। अनायास वर्षा से ऐसा लग रहा था मानो देव-

राज इन्द्र भी गड़गड़ाहट के साथ आत्मसमाधिस्थ श्रमणरत्न पूज्य हस्ती के गुणगान व्यक्त कर रहे हों। प्रकृति भी इन योगिवर्य के चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित कर शीतलता का सुखद संयोग प्रस्तुत कर रही थी। वस्तुतः महा-पुरुष जहाँ-जहाँ विराजते हैं, वहाँ-वहाँ सभी प्रतिकूलतायें भी अनुकूलताओं में परिणत हो जाती हैं तो फिर भला यहाँ तो साधना के साक्षात् साकार स्वरूप आचार्य हस्ती श्रमण-साधना के शिखर पर आरूढ़ हो समाधि में लीन थे। उनके प्रबल पुण्यप्रताप व साधना के आगे नागराज (सर्प) अथवा देवेन्द्र (वर्षा) अथवा प्रकृति भी गुणानुवाद कर रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

अपने आराध्य गुरुवर्य की इस अप्रतिम साधना का अनुमोदन करने, वहाँ आगत दर्शनार्थी सुश्रावकों ने भी भवन के पीछे बरामदे में महामंत्र नवकार का अखण्ड जाप प्रारम्भ कर दिया। दर्शनार्थी बन्धु बिना प्रेरणा के जाप में बैठकर अपने आपको कृतकृत्य समझते। पूज्य गुरुदेव के तप-यज्ञ के अवसर पर सामूहिक रूप से समवेत स्वर में जाप करते हुए श्रावकगण पुरातन युगीन ऋषि आश्रम का सा बोध कराते। पूज्य गुरुवर्य इस मृत्युञ्जय यज्ञ में अपने शरीर को होम रहे थे। संत-सतीगण भी आगम पाठों का उच्चारण कर रहे थे तो भक्तगण भी जप व तप द्वारा अपनी-अपनी आहुति दे रहे थे।

जहाँ पूज्य गुरुदेव का समग्र जीवन, उनका प्रभापुञ्ज व्यक्तित्व व महनीय कृतित्व सदैव आगत व्यक्तियों को प्रेरित करता रहा, वहाँ आज समाधिमरण की ओर बढ़ाये गये उनके कदम अपना अद्भुत प्रभाव डाल रहे थे। इन तपोपूत महासाधक के आत्म-तेज को दृष्टिगत कर बिना प्रेरणा के ही प्रत्येक आगत दर्शनार्थी की यही भावना हो उठती कि पूज्य गुरुदेव के इस मृत्युञ्जय-यज्ञ में उसे भी तप, नियम का संकल्प कर अपनी ओर से आहुति अवश्य देनी है। धन्य गुरुदेव ! आज आप भले ही मौनस्थ हैं पर आज आपका यह तपोमय मौन प्रवचन से भी प्रेरणा प्रदायी बन हजारों पतितों को पवित्र कर रहा है।

संथारा काल में ही मुसलमानों की ईद का प्रसंग उपस्थित हुआ। अहिंसा के पुजारी आचार्य देव जिन्होंने सदैव छह काया के जीवों को अभयदान दिया, करुणा व दया से जिनका रोम-रोम आप्लावित था, प्राणिमात्र के प्रति जिनके हृदय में सहज मैत्री व स्नेह की भावना थी, ऐसे पूज्य भगवन् के इस महात्याग से प्रेरित हो, मुस्लिम भाई-बहिनों के हृदय भी परिवर्तित हो गये। रोजों की समाप्ति के अवसर पर वे सभी मुस्लिम-भाई-बहिन, जिनका सिर खुदा के सिवाय किसी के आगे झुकता नहीं, इस अनूठे फकीर के दर्शन करने व उनके आगे सिजदा करने स्वतः उपस्थित हुए और लगभग पौन घण्टे तक दर्शन होने तक बिना धैर्य खोये अनुशासित पंक्ति में खड़े रहे। महापुरुष के दर्शन करने के उप-

रान्त ही उन लोगों ने अपने रोजे (व्रत) खोले। आत्म-समाधिस्थ उन योगिराज के मंगल दर्शन कर उन मांस-विक्रेता भाइयों के मन में सहज ही अहिंसा व करुणा के संस्कार जागृत हुए और उन्होंने पूज्य गुरुराज के संथारा चलने तक मांस-विक्रय व पशुवध करने का त्याग कर दिया। यह था अहिंसा भगवती एवं महासाधक के अतुल आत्मतेज व विमल संयम साधना का साक्षात स्वरूप। वस्तुत: जहाँ भी महापुरुष विराजते है वहाँ का स्थान ही नहीं समूचा वातावरण ही निर्मल बन जाता है, सभी प्राणी परस्पर वैर-विरोध व हिंसा को भूल कर अलौकिक शांति का अनुभव करते है। हिंसक भी अहिंसक बन जाते है। मांस-विक्रय जिनकी आजीविका है उन भाइयों ने अपनी आजीविका का त्याग करके भी उन अबोध प्राणियों को अभयदान देकर इन महापुरुष के प्रति एक अनूठी श्रद्धा व्यक्त की। जहाँ बड़े से बड़े भक्त भी अपना व्यवसाय सहज बन्द नहीं कर सकते, वहाँ संथारे की अवधि तक अपनी आजीविका का भी त्याग कर उन मुस्लिम भाइयों ने अत्युत्कृष्ट अश्रुतपूर्व आदर्श उपस्थित किया। जिसने भी सुना, उन भाइयों के त्याग के अनुमोदन एवं पूज्य गुरुदेव के पुण्य प्रताप की प्रशस्ति किये बिना नहीं रह सका।

धन्य गुरुदेव! आपने अपनी साधना के प्रताप से अनहोनी को होनी कर दिखाया। भगवन्! आप जैसे महापुरुष के लिये कोई भी कार्य अशक्य नहीं है। हिंसा से ही अपना जीवन व्यापार चलाने वाले भाई-बहिन नवीन तप-त्याग अंगीकार कर अपने जीवन को आगे बढ़ाएँ तो क्या आश्चर्य? अभयदान के इस महान् कार्य में भाई श्री अल्ताफजी व निमाज निवासी अनन्य गुरु भक्त श्री तेजराजजी गणेशमलजी भण्डारी की प्रबल प्रेरणा रही।

संथारे का समय व्यतीत हो रहा था। अनन्त उपकारी, परमाराध्य, तपोधन, श्रमणश्रेष्ठ, आचार्य गुरुवर्य की अन्तिम सेवा के स्वर्णिम सुयोग को अपना अहोभाग्य समझ कर सभी मुनिवृन्द सर्वतोसमर्पित भाव से गुरुचरण-सेवा एवं सान्निध्य का अनुपम लाभ उठा रहे थे। किसी भी शिष्य का मन गुरुचरणों को क्षण भर के लिये भी छोड़ने का नहीं होता, आवश्यक कार्यवशात् इधर-उधर जाना पड़ता पर मन वहीं लगा रहता। यही संकल्प रहता कि कार्य सम्पन्न होते ही पूज्य भगवन् की सेवा में जाकर बैठे। उस अलौकिक तेजपुञ्ज की प्रशान्त मुख-मुद्रा से दृष्टि हटती ही नही, फिर भी मन अघाता नही, नयन परितृप्त ही नही होते। मुख-मुद्रा ऐसी प्रतीत होती कि गुरुदेव बोले और हम उनसे बात करते रहे। मौनस्थ प्रशान्त सोये गुरुदेव को देख कर मन रह-रह कर बात करने को अधीर और भावविह्वल हो जाता, पर कर्तव्य व गुरु आदेश का भान होते ही हम अपने आपको समझाने का उपक्रम करते व पुनः आगम-वाणी व भजन सुनाने में लग जाते। मेरे अनन्य गुरु

भ्राताओं का तो यही मन व निर्देश रहता कि हम अपने मोह व राग को गुरुदेव की सेवा में बाधक न बनने दें व गुरुदेव के समक्ष अन्य कोई बात भी न करें, मात्र आगम पाठ या आत्म-भाव विषयक भजन ही श्रवण करावें पर मैं अबोध बालक गुरुवर्य के राग-भाव में कुछ अधिक ही अधीर रहता, मेरे लिये अपने आपको रोक पाना अत्यन्त कठिन होता।

एक दिन इस भाव-विह्वल व्यथित अधीर मन को मैं रोक नहीं पाया और समाधिस्थ पूज्य चरणों में मैंने निवेदन कर ही दिया—प्रभो! अपने अन्तिम आशीर्वाद से तो उपकृत कीजिये। पूज्य भगवन् का वरदहस्त एक क्षण के लिये उठा, आंखें खुलीं और उन्होंने सभी सन्तों की ओर दृष्टिपात किया। हमारा मन गद्गद् हो गया, आँखों से अश्रुकण छलक उठे एवं मन विचारों में खो गया। हे प्रभो! आप हमें छोड़ अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ रहे हैं, हमें ऐसे कृपासिन्धु गुरु अब कहाँ मिलेंगे? आपके विरह में हमें यह स्नेह सुधासिक्त दृष्टि और कहाँ दृष्टिगोचर होगी?

संथारा-अवधि के सातवें दिन मैंने सहज भाव से आत्मसमाधिस्थ गुरुदेव को निवेदन किया—भगवन्! आपकी भावना के साथ हम शिष्यगण ने आपके संथारे में साथ का यत्किंचित प्रयास किया, भगवन् आप हमें भी व संघ को साथ देना, हमारा पथ-प्रदर्शन करने की महती कृपा करना। इस अबोध बालक की भावविह्वल बात सुनकर उन आत्मरमण में लीन महासाधक के मुख-कमल पर स्मित हास्य की रेखाएँ परिलक्षित हुईं। हमें प्रतीत हुआ कि इन दयासिन्धु गुरुदेव का सान्निध्य भले ही अमूर्त रूप से ही सही, पर सदैव साधना में हमारा पथ प्रशस्त करता रहेगा। पूज्य गुरुवर्य के स्मित हास्ययुक्त मुख-आभा को देखकर हम सभी शिष्यगण कृपा-प्रसाद से आप्लावित थे।

ज्यों-ज्यों संथारे का समय आगे बढ़ रहा था, दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। समीपवर्ती नगरों व आसपास के क्षेत्रों से भक्तगण ही नहीं वरन् जाति, धर्म व सम्प्रदाय की दीवारों से परे सभी वर्गों के लोग एक बार दर्शन कर जैसे परितृप्त ही नहीं हो पाते, घर लौटने पर भावना पुनः पुनः दर्शन की होती और वे भावुक भक्तजन सहज ही योगीवर्य के दर्शन को लौट पड़ते तो दूरस्थ क्षेत्रों के भक्तजन व दर्शनार्थी बन्धु भी अपने व्यवसाय व काम-काज को छोड़, दर्शन लाभ लेने हेतु उमड़ पड़े। हर भक्त की भावना यही होती कि इन परम पूज्य महासाधक के एक बार पुनः दर्शन कर लूँ। सैकड़ों-हजारों भक्तगण तो परम पूज्य गुरुदेव के अंतिम सान्निध्य, मंगल दर्शन व संघ-सेवा की पावन समर्पित भावना से अपनी गृह-सुविधाओं व कारोबार का मोह छोड़ सपरिवार निमाज में ही बस गये। हर व्यक्ति की भावना

रहती कि पुनः पुनः परम पावन गुरुदेव के मंगल दर्शन करते रहें, अधिकाधिक समय जप, तप व स्वाध्याय में लीन रहे, यथाशक्ति अधिकाधिक नियम व्रत अंगीकार कर अपने जीवन को आगे बढाएँ। दर्शनार्थियो के सतत आवागमन से वह गंगवाल भवन का विशाल परिसर भी छोटा पड़ गया, वाहर राजमार्ग से ही आतुर दर्शनार्थियों की कतारें लग जाती, इन अनुपम योगी की एक झलक देखने को हजारों दर्शनार्थी वन्धु, अनुशासित ढंग घण्टों पंक्ति मे खडे रहकर भी थकते नही, सभी का यही एकमात्र लक्ष्य कि कब नम्बर आवे, कब पतित पावन गुरुराज के पावन मंगलमय दर्शन का लाभ मिले। गुरु के इस दरबार में सभी समान थे, न कोई विशिष्ट न कोई सामान्य। मेघ जैसे सभी के लिये जल बरसाते है, वायु सभी को अपने शीतल स्पर्श से आनन्दित करती है, वैसे ही स्वयंसेवकों की अनुशासित व्यवस्था सभी दर्शनार्थी वन्धुओ के लिये एक समान थी—यदाकदा कोई अपवाद होता वयोवृद्ध भाई-बहिनों के लिये।

युवा कार्यकर्तागण स्वयंसेवक के रूप में उत्साह, अभिरुचि व कुशलता से संघ के कार्यकर्ताओं के निर्देशानुसार, अपने कर्तव्य के पालन व सघ-सेवा में सन्नद्ध थे। कोई परिसर के वाहर दर्शनार्थी वन्धुओ को कतारबद्ध खड़े रहने का विनम्र अनुरोध करते, कोई परिसर के भीतर अनुशासित व्यवस्था वनाये रखने, शांति वनाये रखने मे संलग्न रहते तो कुछ कार्यकर्ता गुरुदेव जहाँ विराज रहे थे, वहाँ दर्शनार्थियों को दर्शन हो और नये दर्शनार्थियों को प्रतीक्षा न करनी पड़े, यह व्यवस्था सम्भाल रहे थे। हर कार्यकर्ता का मन तो होता कि मुझे गुरुदेव जहाँ विराज रहे है, वहाँ खड़े रहने का दायित्व मिले तो मैं संघ-सेवा के साथ ही उन मंगलमूर्ति के पावन दर्शन करता रहूं, करता ही रहूं, अपने प्यासे नयनों की प्यास बुझाता रहूं, फिर भी सभी साथीगण परस्पर स्नेह, सौहार्द एवं प्रेमभाव से बारी-बारी से अदल-बदल कर व्यवस्था-सम्पादन में अपना सहयोग दे रहे थे। अनन्य गुरुभक्त श्री तेजराजजी भण्डारी, श्री गणेशमलजी भण्डारी दोनों भ्रातागण अपने पूरे परिवार व निमाज सकल संघ के सभी साथियों के साथ एक ओर गुरुसेवा व वहाँ विराजित सभी सन्त-सतीगण की सेवा में सन्नद्ध थे, दूसरी ओर आगत हजारों स्वधर्मी भाइयों व दर्शनार्थियों की सेवा का लाभ ले रहे थे। सभी निमाजवासी कार्यकर्तागण प्रातः सूर्योदय के पूर्व ही सेवा में जुट जाते व देर रात तक संघ सेवा का लाभ लेते रहते। दोनों भण्डारी भ्राता श्री तेजराजजी व श्री गणेशमलजी इस समूची व्यवस्था का संचालन कर रहे थे, गुरुसेवा व गुरु-चरणों मे वैठने को मन लालायित रहता पर साथी कार्यकर्ताओ के समन्वय, उन्हे दिशा-निर्देश देने तथा वाहर से पधारे दर्शनार्थियों से सम्पर्क

करते, उनकी सम्यक् व्यवस्था की देखभाल करने तथा संघ के वहाँ ठहरे हुए कार्यकर्ताओं से सम्पर्क व परस्पर विचार-विमर्श करने में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत हो जाता।

प्रातः सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखन होते-होते गुरुदर्शन को लालायित भक्तों की लम्बी कतार लग जाती जो मध्याह्न १२ बजे तक अनवरत चलती रहती। पुनः १—१॥ बजे दर्शनार्थियों की पंक्ति प्रारम्भ होती जो अपराह्न आधे घण्टे के लिये विराम के अतिरिक्त सूर्यास्त के पूर्व तक चलती ही रहती। प्रतिक्रमण के लिये सूर्यास्त के १०—१५ मिनट पूर्व दर्शनार्थियों के आवागमन को बन्द करने को कहा जाता, तब ही यह क्रम रुकता। भक्तजन इस ताक में रहते, कब मंगल दर्शन की अनुमति हो, कब हम अपने प्यासे नयनों को तृप्त करें? कई भक्तों की इच्छा रहती कि परमाराध्य गुरुवर्य के चरण-स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हो व कुछ देर गुरु-सेवा का देव दुर्लभ अवसर प्राप्त हो, पर जब दर्शनार्थियों की अपार भीड़ दृष्टिगोचर होती व समाधिस्थ गुरुदेव का वह पावन चेहरा नयनों के सामने आता तो वे भावुक भक्त अपने कर्तव्य की ओर सजग हो जाते। उन हजारों भक्तों की इच्छा पूरी करना सम्भव नहीं था व चरण-स्पर्श से समाधिस्थ गुरुदेव की समाधि में व्यवधान हो सकता था, उसी भावना से सबके लिये एक ही नियम था—बिना रुके, बिना चरण-स्पर्श किये पंक्तिबद्ध दर्शन करते जायें व चलते रहें। सभी दर्शनार्थी भाई-बहिनों ने भी स्थिति को समझते हुए पूर्ण विवेक व श्रद्धा के साथ व्यवस्था व शान्ति बनाये रखने में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

जैन जगत् की इस दिव्य विभूति के संथारे के समाचार विभिन्न जैनाचार्यों, सन्तों एवं महासतीगण के समक्ष पहुँचते रहे, सभी का मन इन महाप्राण आचार्य प्रवर के संथारे के समाचारों से उद्वेलित था, दूरस्थ विराजित पूज्य सन्त-सतीगण अपनी-अपनी भावनाएँ पत्रों के माध्यम से प्रेषित कर रहे थे, तो निकटस्थ सन्त मुनिराज व महासतीगण निमाज पधार कर इन योगिवर्य के दर्शन-लाभ करने को उत्कण्ठित थे। श्रद्धेय तपस्वीराज ज्ञान-गच्छनायक श्री चम्पालालजी म. सा. की प्रबल भावना स्वयं पधारने की होते हुए भी अस्वस्थतावश पधारना नहीं हो सका, अतः श्रद्धेय पण्डित रत्न श्री घेवरचन्दजी म. सा. 'वीरपुत्र' ने पूज्य श्री की सेवा में पहुँचने हेतु विहार कर दिया पर शारीरिक कारणवशात् वे पधार नहीं पाये। समताविभूति श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म. सा. ने अपने शिष्यगण श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. ठाणा २ को पूज्य भगवन् की सेवा में भेजा, इधर उग्र विहार कर जयमल जैन संघ के आचार्य-कल्प श्री शुभचन्द्रजी म. सा. ठाणा ३ पूज्य सेवा का लाभ लेने पधारे एवं श्री शीतल मुनिजी म. सा. ठाणा ३ भी गुरु-

हेतु पधारे। महासती श्री उमरावकंवरजी म. सा. 'अर्चना' आदि ठाणा, महासती श्री चेतनाजी ठाणा ३, महासती श्री आशाकंवरजी आदि ठाणा, महासती श्री मञ्जुकंवरजी ठाणा ६ आदि महासतीगण भी पूज्य आचार्य भगवन् के दर्शनार्थ पधारीं। पूज्य भगवन् के इस अद्भुत संथारे के अवसर पर मुनि-मण्डल, महासती-मण्डल, चतुर्विध संघ के विराजने से निमाज ग्राम एक नई चहल-पहल, नई शोभा लिये तीर्थ बन गया। सभी ग्रामवासी इस अदृष्टपूर्ण दृश्य को देखकर विस्मयविमुग्ध रह जाते। गाँव की चहल-पहल व शोभा को देखकर ऐसा प्रतीत होता मानो साक्षात् भगवान ने ही वहाँ अवतार लिया हो।

पर इस सब चहलपहल, हलचल के कारणभूत केन्द्र परम पूज्य गुरुदेव तो इन सबसे सर्वथा परे आत्मरमण में लीन थे, कौन आया, कौन गया, इसकी उन्हे न कोई चाह थी, न ही इस ओर कोई ध्यान था। वे आत्मसमाधिस्थ योगिराज तो अतुल आत्मबल, अदम्य उत्साह, अटल धैर्य, अथाह गाम्भीर्य व विरल शान्ति भाव के साथ सब 'पर' भावो से परे, मात्र अपनी आत्मा में ही रमण करते मग्न थे। वस्तुतः उनकी साधना उस उत्कृष्ट अवस्था को पा चुकी थी जहाँ न तो यश व अतिशय के वशीभूत हो जीवन की कामना अवशिष्ट थी और न ही अशक्तता, दुर्बलता व रुग्णता के कारण मृत्यु की कामना। न तो उन्हे मृत्यु का कोई भय था, न ही नन्दनवन की आकांक्षा। तप साधना से दिन-प्रतिदिन शरीर कृश होता जा रहा था, पर तप, संयम व साधना का तेज मुखमण्डल पर केन्द्रित होकर एक दिव्य दैदीप्यमान आत्म-ज्योति को आलोकित कर रहा था। हाथों में माला लिये अनवरत जप-स्मरण का क्रम चल रहा था। कभी-कभार सहज ही नयन खुलते तो उनमें मैत्री, करुणा, क्षमा व अमित वात्सल्य की पीयूष धारा दृष्टिगत होती। आँखें खुली देखकर कई दर्शनार्थी भक्तो व हम सन्तो को भी कई बार लगता कि पूज्यवर्य अपनी स्नेहिल दृष्टि से हमारी ओर दृष्टिनिपात कर रहे है पर वे महापुरुष तो हम सबके स्नेह-बन्धनों से कभी के परे हो चुके थे। पूर्ण सजग चैतन्य अवस्था होते हुये भी वे महापुरुष तो सर्वथा आत्माभिमुख, अन्तर्लीन बने हुए आत्म-भाव में ही रमण कर रहे थे। शिष्यो, भक्तों व आने-जाने वालों से उन्हे कोई सरोकार ही शेष न था। किंबहुना उन्हे तो अपने शरीर का भी मोह नही रह गया था। निरन्तर सीधे लेटे रहने से, हमारी सतत सावधानी के बावजूद भी उनके तन की कोमलता के कारण पीछे हलका सा घाव हो गया, फिर भी उनके चेहरे पर कोई शिकन मात्र भी नहीं थी, वही प्रशान्त सौम्य मुख-मुद्रा, और वही निस्पृह निर्लिप्त भाव। वे भगवन् तो देह से परे विदेह भाव को धारण कर अमूर्त, अविनश्वर देही की साधना में निरत थे।

विशाल भाल और कमल पुष्प सम खिले नयनों को निहारते, दर्शनार्थीगण के नयन अपलक स्थिर से हो जाते। परन्तु "सुलभा आकृतिर्दम्या, दुर्लभंहि गुणार्लनम्" अर्थात् आकृति से सुन्दर अनेक मिलेंगे पर रम्य आकृति के साथ गुणों का समन्वय दुर्लभ है। पूज्य गुरु भगवन् का बाह्य व्यक्तित्व जितना सुन्दर, सम्मोहक व आकर्षक था, उससे भी शतशः गुना उनका अंतरंग व्यक्तित्व था। पूज्य भगवन् तो क्षमा, दया, आर्जव, मार्दव एवं समता के आगार तथा त्याग, तप एवं साधना की साकार प्रतिमूर्ति थे। वस्तुतः उस समय निमाज में समाधिस्थ पूज्य आचार्य भगवन् का बहिरंग व्यक्तित्व वहाँ समस्त जैन-जैनेतर जनता के आकर्षण व भक्ति का केन्द्र बना हुआ था, वहीं उनका तपोपूत उदात्त आध्यात्मिक साधक अंतरंग व्यक्तित्व समस्त जैन जगत् की श्रद्धा, आस्था, समादर व समर्पण का केन्द्रस्थ विषय था। समता, सहिष्णुता व साधना की प्रतिमूर्ति उन महापुरुष की प्रशान्त मुख-मुद्रा के दर्शन मात्र से ही भक्तजन सहज दैवीय आशीर्वाद प्राप्त कर रहे थे।

संथारा-अवधि में पूज्य गुरुवर्य पूर्णतः सजग, सचेतन अवस्था में थे। श्रद्धेय पंडित रत्न श्री मान मुनिजी म. सा. नित्यप्रति प्रवचन हेतु पधारने के पूर्व वन्दना करते वक्त गुरु-चरणों में निवेदन करते "भगवन्! व्याख्यान में जाऊँ," तो गुरुदेव गर्दन हिलाकर सहज स्वीकृति देते। इससे स्पष्ट है पूज्यराज संथारा-अवधि में पूर्णतः सजग-सचेतन थे, पर पूर्ण चैतन्य अवस्था में विराजित समाधिस्थ गुरु भगवन् पूर्णतः अन्तर्लीन थे। कई बार हम सब सोचते रहते कि अहा, कैसी उच्च साधना व समाधिभाव की स्थिति है। हमने जो आगम में संथारा की महिमा पढी है, इतिहास में संथारा ग्रहण करने वाले महापुरुषों के जीवन चरित्र गाये गये है, पर इन महापुरुष ने स्वयं संथारा स्वीकार कर समता, सहिष्णुता व भेद-विज्ञान का साक्षात् स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। आगम पाठों को जीवन्त कर दिया है इन महामनीषी आत्म-साधक ने! शरीर से सभी सम्बन्ध तोड़ दिये हैं इस महापुरुष ने।

अब तो मात्र अपनी अन्तर्आत्मा का ही ध्यान अवशिष्ट है। जैसे बैठाया बैठ गये, जैसे लेटाया लेट गये, शारीरिक कष्टों की ओर कोई ध्यान नही, न मुँह से कोई ऊफ-आह न ही चेहरे पर कोई शिकन। चेहरे पर सदैव वही चिर परिचित सौम्य, गंभीर स्मित मुस्कान, हमारा हृदय भर आता, आँखें छलछला उठतीं, धन्य, धन्य गुरुदेव! आप जैसे महापुरुष का शिष्यत्व प्राप्त कर हम शिष्यगण गौरवान्वित है। जड़ पारस का संस्पर्श लोहे को स्वर्ण बना देता है। भगवन्! आप तो वह गुणआगार है, जिनका सान्निध्य जीव को शिव, कंकर को शंकर व अकिंचन् को सर्वपूज्य बना देता है। कभी हम शिष्यगण गुरुदेव को

शारीरिक आवश्यक कार्यों से इधर-उधर बिठाते तो मन में सदैव एक चिन्ता रहती कि उस वृद्ध कोमल कृशकाय शरीर को कोई कष्ट न पहुँचे पर भगवन् ने कभी भी अपने कष्टों की आहट भी हम तक न पहुँचने दी। सहिष्णुता, क्षमा व भेदविज्ञान का जो पाठ अब तक हमने आगम ग्रंथों व इतिहास की कथाओ मे पढ़ा मात्र था, वह आप श्री के संथारे मे प्रत्यक्षत: देखकर प्रत्येक भक्त सहज ही श्रद्धाभिभूत होकर रह जाता। कई शताब्दियों में ऐसे महापुरुष का सुयोग-सान्निध्य संघ को मिलता है। हम सब अत्यन्त सौभाग्यशाली है जिन्हे ऐसे अलौकिक विरल विभूति महापुरुष का साक्षात् सान्निध्य सुदीर्घ अवधि तक मिला, जिनका समग्र संयम जीवन व अब यह समाधिसाधना द्वारा मरण के वरण का यह अनूठा अभियान, दोनो ही युग-युग तक आत्मार्थी साधकों का मार्ग प्रदर्शन करते रहेंगे।

आत्माभिमुख समाधिस्थ गुरु भगवन् के चरण-शरण में बैठकर सतगण अनवरत रूप से सस्वर आगम पाठों का स्वाध्याय करते तो कभी महासती मंडल भी आगम-पाठों के स्वाध्याय में भाग लेते, तो कभी-कभी आत्म-स्वरूप प्रकाशक भजनों की सुमधुर स्वर-लहरी पूर्ण वातावरण को आत्म-स्वरूप से सरावोर कर देती। वह समूचा परिसर ही उस समय परम पावन भव भयहारिणी आगम-वाणी व आत्म-स्वरूप प्रतिवोधक काव्य-गीतिकाओं से पवित्र बन आगन्तुक सभी दर्शनार्थियों के मनो को निर्मल वना रहा था। पंक्तिवद्ध दर्शनार्थी नयनों से पूज्य गुरुदेव के मंगल दर्शन करते, तो कानों से पवित्र आगमवाणी का श्रवण कर अपने आपको प्रतिबोधित करते एवं मन में त्याग, तप, नियम, व्रत का नवीन संकल्प कर अपने जीवन को भावित करते।

हजारों दर्शनार्थी जहाँ पूज्य गुरुदेव के पावन दर्शन कर धन्य-धन्य कह उठते तो कभी कभार भाव विह्वल हो मन ही मन कहने लगते कि भगवन्! आप जिन शासन की अनमोल मुकुटमणि हो, जैन जगत् के दिव्य रत्न हो, आप अपने अद्‌भुत व्यक्तित्व एवं अलौकिक कृतित्व द्वारा एक नूतन इतिहास के रचयिता हो, आप श्रुत के आधार एवं जिन शासन के संचालक हो। भगवन्! आपने कही जाने की जल्दी तो नही कर दी? आप का और अधिक सान्निध्य चतुर्विध संघ को मिलता तो यह हमारा सौभाग्य होता। अपलक आपश्री को निहारते वे भक्त अपने आपको रोक नही पाते और सहज ही अश्रुकण नेत्रों से छलक जाते। हर दर्शनार्थी उस दिव्य दिवाकर के दर्शन करता तो भावुक भक्तों की मुख-मुद्रा के भावों से प्रतीत होता—

देखो कितने नेत्र सजल हो, अपलक तुमको देख रहे।
देखो कितने हृदय व्यथित हो, आशंका को झेल रहे॥

दिन भर दर्शनार्थी आते रहते, रात्रि में भी भावुक भक्त दर्शन के लिये उमड़ आते । व्यवस्था में संलग्न भक्तगण दिन में पावन सान्निध्य व दर्शन का लाभ नही ले पाते, तो वे भी रात्रि में गुरु सान्निध्य में बैठकर जप-स्मरण करने का लोभ संवरण नही करने पाते । वस्तुतः भक्तों की यह अपार उपस्थिति पूज्य गुरु भगवन् के साधना-सम्पूरित व्यक्तित्व व अनन्त पुण्यवानी का प्रत्यक्ष प्रमाण था । वे योगिवर्य तो जहाँ कहीं विराजे, वही क्षेत्र तीर्थधाम बन गया, जहाँ उनके कदम पड़े, वह भूमि पावन बन गई ।

निमाज होकर गुजरने वाली, सभी दिशाओं से आने वाली बसे आदि वाहनों में बैठे अधिकांश यात्रियों का एक ही लक्ष्य-स्थल था—निमाज ग्राम स्थित गंगवाल-भवन में विराजित समाधिस्थ पूज्य आचार्य भगवन् के मंगल दर्शन ! समूचे देश में चर्चा का मुख्य विषय था—भगवन् का संथारा । जिनके लिये बिस्तर से उठना ही कठिन, चलने-फिरने की शक्ति नहीं, ऐसे बुजुर्ग, रुग्ण, वृद्ध अशक्त भक्तजन भी चार-पांच व्यक्तियों के कंधो पर बैठकर भी उन महापुरुष के दर्शनार्थ बड़ी संख्या में वहाँ पहुँचे । जाति, वय, धर्म व पंथ की सभी दीवारें अन्तर्लीन उन योगिवर्य के दर्शनार्थ ढह गई थीं । जीवन पर्यन्त जो श्रमण-श्रेष्ठ अपनी अमोघ वाणी से लाखों श्रद्धालुओं को प्रेरित करते रहे, आज उनका संथारा हजारों दर्शनार्थी बन्धुओं की सुषुप्त अन्तर्चेतना को जागृत कर रहा था । आगत व्यक्तियों की जुबान पर रह-रह कर यह बात व्यक्त हो उठती कि इतने बड़े आचार्य प्रवर का संथारा हमने अपने जीवन में न देखा, न सुना । हां, आज से १९६ वर्ष पूर्व महाप्रतापी तपोवन आचार्य श्री जयमलजी म. सा. के संथारे की गाथायें अवश्य पढ़ी है । पूज्य भगवन् ने अपने अपूर्व संथारे द्वारा अपने पूर्वजों की इस विमल परम्परा को और आगे बढ़ाकर एक गौरवशाली इतिहास की रचना की है ।

आज पूज्य गुरुदेव के तप संथारे के १३वे दिन रविवार होने से सहज अवकाश का प्रसंग था । अथाह जनसमूह उत्ताल तरंगों की भांति समाधिलीन गजेन्द्र गुरुराज के पावन दर्शन करने को उपस्थित था । सूर्योदय की किरणों के साथ ही विविध दिशाओं से आ रहे दर्शनाभिलाषी जनसमूह लम्बी कतारों में दर्शन हेतु खड़े थे । दिन चढते-चढ़ते आज जनसमूह ने अत्यन्त विशाल रूप ले लिया था, बाहर राजमार्ग से ही प्रारम्भ कतारे अनवरत आगे बढ़ते रहने पर भी समाप्त ही नही हो पा रही थीं ।

आज पूज्य गुरु भगवन् के श्वास में कुछ तेजी नजर आ रही थी । सभी संतगण व सतीवृन्द गुरु-चरणों मे बैठे सस्वर आगमवाणी व भजन उच्चारण

कर रहे थे। आज वे समाधिलीन महासाधक कुछ विशिष्ट साधना मे ही अन्तर्धान प्रतीत हो रहे थे। मध्याह्न जब हमने पानी पिलाने की चेष्टा की तो उन्होंने पानी नही पिया और अपने करुणासिक्त नेत्रों से एक बार अपने शिष्यो की ओर दृष्टिनिपात किया, मानों वे अपने महाप्रयाण की सूचना हमे दे रहे थे। आज नाड़ी-गति व शरीर-चेष्टाओं मे कुछ परिवर्तन प्रतीत हो रहा था। स्थिति को समझते हुए श्रद्धेय श्री मानमुनिजी म. सा. एवं श्रद्धेय श्री हीरामुनिजी म. सा. ने परस्पर आवश्यक विचार-विमर्श के पश्चात् उन महापुरुष की पावन-पवित्र विमल भावना के अनुसार, सायंकाल ४ बजे तिविहार के स्थान पर यावज्जीवन चौविहार संथारे के प्रत्याख्यान करवा दिये। अब आशाएँ क्षीण-क्षीणतर हो रही थीं। डॉ. एस. आर. मेहता भी अपने आराध्य भगवन् के दर्शन हेतु उपस्थित हुए। उन्होंने शारीरिक लक्षणों को देखकर अवगत करवाया कि अब मुझे गुरुदेव का अंतिम समय प्रतीत होता है।

गुरुदेव के शरीर में परिवर्तन के लक्षणों को देखकर सभी के मन व्यथित हो गये, हृदय अकुला उठे, एक अजीब आंशका की सिहरन नस-नस में दौड़ गई, अनभ्र वज्रपात की घड़ी नजदीक आ रही प्रतीत हो रही थी, समूचा वातावरण अत्यन्त बोझिल था, हम सब अपलक सजल नयनों से उस पवित्र पावन चेहरे को निहार रहे थे। ढलती जीवन-लीला की इन बोझिल घड़ियों में सभी के हृदय विदीर्ण हुए जा रहे थे, आंखों से अश्रुकण बरबस छलके जा रहे थे, हमारे कंठ अवरुद्ध थे, महासतीवृन्द के आगम पाठ करते मधुर स्वर रुंध गये, वे पल अत्यंत करुणार्द्र थे, वह बोझिल समय व्यतीत ही नहीं हो पा रहा था, किसी भी कार्य में हम मन नहीं लगा पा रहे थे, सभी का मन गुरु-चरणों मे ही अटका हुआ था।। हम मात्र द्रष्टा बने, जो व्यतीत हो रहा था, उसके मूक दर्शक बने, बेवस-अहसास से बैठे थे। परिसर में उपस्थित सभी भक्तगण मानों अन्तिम दर्शन को बेताब थे, अन्तिम दर्शन कर इस मंगल मूर्ति को अपनी आँखों में बसा लेने की आतुरता लिये आशंकित हृदय भक्तजन कतारबद्ध आगे बढते जा रहे थे। एक ओर दिनकर दिन भर अपने प्रकाश एवं ऊर्जा से धरती के चप्पे-चप्पे को प्रकाशित कर सांझ के साये मे ढलने को आतुर था, दूसरी ओर अध्यात्म-सूर्य जीवन भर जन-जन को ज्ञान-प्रकाश से आलोकित कर अवसान की ओर अग्रसर हो रहा था। महासतीवृन्द संयमजीवनदाता अपने परमाराध्य महनीय गुरुवर्य को अपना अन्तिम वन्दन-नमन कर भारी मन, बोझिल हृदय से अपने स्थान को पधार गये।

सूर्यास्त के पश्चात् हम सब गुरुदेव के पट्ट के चारों ओर खड़े प्रतिक्रमण कर रहे थे। श्रद्धेय श्री हीरा मुनिजी म. सा. आज पूज्य गुरु भगवन् को

प्रतिक्रमण करा रहे थे। प्रतिक्रमण के समय संघ के अग्रगण्य श्रावक प्रतिनिधि निरन्तर गुरु-चरणों में महामंत्र नवकार जप कर रहे थे।

प्रतिक्रमण परिपूर्ण हुआ। सभी शिष्यों ने अनुक्रम से गुरु-वन्दन किया। शारीरिक लक्षण क्षण-प्रतिक्षण दीपक बुझने का संकेत कर रहे थे। सभी संतों ने आज अत्यंत भाव विह्वल बन असीम श्रद्धा-भक्ति व समर्पण के साथ अपने महामहिम गुरुवर्य, संयम-साधना के साकार स्वरूप उन पूज्य प्रवर के चरण-सरोजों में अपनी वन्दना समर्पित की। श्वास में उठाव और बढ़ जाने से उसकी गति तीव्र-तीव्रतर होती जा रही थी। हम सब शिष्यगण नित्य की भांति 'महावीराष्टक' व 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' का पाठ करने को तत्पर थे पर पूज्य गुरु भगवन् के स्वास्थ्य की स्थिति को देखकर महामंत्र नवकार का अखण्ड जप ही चालू रखा। स्वास्थ्य और बिगड़ता जा रहा था। श्वास अब रुक-रुक कर आ रहा था, गुरुदेव के हाथ-पैर ठण्डे हो रहे थे पर उनका सीना व मस्तिष्क गर्म था। हम सब अन्यमनस्क, किंकर्तव्य विमूढ़ खड़े पूज्य भगवन् के जीवन के अन्तिम क्षणों के साक्षी बने खड़े थे। सारे उपाय, सारी प्रार्थनायें अब अर्थहीन दृष्टिगत प्रतीत हो रही थीं। गुरुदेव की आँखें खुली थीं....लगता था अब बोलें, अब कुछ कहें....पर कहाँ, वह महामनीषी तो अनन्त मौन ग्रहण कर चुका था। आँखों की पुतलियाँ स्थिर थी, अन्ततः एक लम्बी सांस के साथ एक हिचकी आई और वह दुःखद घड़ी आई जिसे टालने को लाखों भक्त अपने रोम-रोम से प्रार्थना कर रहे थे पर भला इस को कौन टाल सका है? पर मानो काल भी उन मृत्युंजयी महापुरुष के आगे नतमस्तक हो गया था, वह भी उच्च ग्रह स्थिति की प्रतीक्षा कर रहा था।

चतुर्थ तीर्थंकर देव देवाधिदेव अभिनन्दन प्रभु के मोक्ष कल्याणक दिवस प्रथम वैशाख शुक्ला अष्टमी, (वि. सं. २०४८) रविवार, दिनांक २१ अप्रेल, १९९१ को रात्रि ८ बज कर २१ मिनट पर १३ दिवसीय तप संथारे के दिन रवि पुष्य नक्षत्र व उच्च सूर्य आदि उत्मोत्तम ग्रह स्थिति में अध्यात्म आलोक का वह दिव्य प्रभा-पुंज बुझ गया, जैन जगत् का वह ज्ञान-सूर्य अस्त हो गया, संघ अनाथ हो गया, हम सब की अनन्त आस्था का केन्द्र, लाखों भक्तों का भगवान्, संघ का सरताज, सभी का अपना, सभी का सर्वस्व, सबको भाव विह्वल छोड़ चला गया। चिराग गुल हो गया, वह ज्ञान-शमा बुझ गई। सभी भाव विह्वल निस्तब्ध मूक अवाक् क्या बोलें, किससे कहे? क्रूर-काल के पंजों ने आज हमारा सर्वस्व छीन लिया हमसे, आज तक जिस विराट् व्यक्तित्व के स्नेहसिक्त सान्निध्य में हम निश्चिन्त अपने साधना-पथ पर चल रहे थे, वह अतीत बन गया, जिसकी प्रेरणा सहस्रों कार्यकर्ताओं की वाणी का ओज था, आज वही वाणी मौन हो गई। चेहरे पर अब भी वही ओज, वही तेज, उस

विना हमें कौन आश्रय देगा ? किसकी चरण-छाया में हम प्रेरणा पायेंगे ? कहा भी है—

"यूँ तों दुनिया के समुद्र में कमी होती नहीं,
लाख गौहर देख लो, इस आब का मोती नहीं ।।"

व्यथित हृदय सभी भक्तजन अपने परम पावन गुरुवर्य के अन्तिम दर्शन व महाप्रयाण-यात्रा में भाग लेने दौड़ पड़े । जो जहाँ था, वही से चल पडा, कही मैं अपने परमाराध्य पूज्य गुरुवर्य के अन्तिम दर्शन से वंचित न रह जाऊँ ? इसी भावना से लोग रात्रि में ही निमाज के लिए रवाना हो गये । विविध ग्राम-नगरों से जैन-जैनेतर भक्तगण कार, वस, स्कूटर, ट्रक, ट्रैक्टर सभी उपलब्ध साधनो से निमाज की ओर दौड़ पड़े ।

परम पूज्य भगवन् के पार्थिव शरीर को वोसिराने के पश्चात् हम अलग वैठे थे । निद्रा कोसों दूर थी, सारी रात हम पूज्य गुरुवर्य की स्मृतियों मे खोये लगे बैठे रहे । विरह-वेला की वे घड़ियाँ काटे नही कट रही-थी, रह-रहकर वह आभा प्रदीप्त चेहरा, वे विहँसती आँखें हमारी आँखों के सामने आ-आकर हृदय को व्यथित किये जा रही थी, दिल भारी थे, आँखे कह रही थीं ।

"वो क्या गये, चला गया मौसम वहार का ।"

हमारे वरिष्ठ गुरु भ्रातागण अपने हृदय को कड़ा कर अपनी भावनाओं के वेग को ज्ञान-विचारपूर्वक मन में दवाकर, हमें ढांढ़स बँधा रहे थे ।

संघ व निमाज के कार्यकर्ताओ ने विचार-विमर्श कर अन्तिम संस्कार के लिये मध्याह्न एक वजे का समय नियत किया । श्रावकगण व्यवस्था व प्रवन्ध हेतु इधर-उधर दौड़ रहे थे । हलचल से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वहुत बडी व्यवस्था को सरंजाम दिया जा रहा था । अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पण करने हेतु निकटस्थ क्षेत्रों से हजारों जैन-जैनेतर भक्तजन रात्रि में ही आने लगे । भीड़ प्रति पल वढ़ती जा रही थी । संभावित दर्शनार्थियों की संख्या का अनुमान कर सकल श्री संघ, निमाज के कार्यकर्ताओं के साथ निमाज क्षेत्र के सभी जैन-जैनेतर वन्धु व संघ के कार्यकर्तागण, युवक संघ के स्वयंसेवक, सभी व्यवस्था मे जुट गये कि वाहर से पधारने वाले आवालवृद्ध युवक किसी भी भाई-वहिन को कोई असुविधा न हो, पार्थिव देह के अन्तिम दर्शन से कोई वंचित न रहे, उस पवित्र पार्थिव देह की असातना न हो । निमाज गांव का हर व्यक्ति, इस महापुरुप की इस महाप्रयाण-यात्रा को अविस्मरणीय वनाने में जुट गया ।

सुबह होते-होते हजारों लोग गंगवाल भवन के परिसर के भीतर-बाहर एकत्र हो चुके थे। गुरुदेव का पार्थिव शरीर बरामदे से व्याख्यान-स्थल पर स्थित चबूतरे पर रखा जा चुका था। 'जय गुरु हस्ती', 'गुरु हस्ती अमर रहे', 'जब तक सूरज चाँद रहेगा, हस्ती गुरु का नाम रहेगा' आदि गुरु की प्रशस्ति में जय जयकार के नारे लगाते भक्तजन रात भर आते रहे, अश्रुसिक्त नयनों से पंक्तिबद्ध भक्त अपने आराध्य गुरु भगवन् की स्मृति को नमन करते हुए दर्शन करते रहे। रात्रि में प्रारम्भ वह पंक्ति लगातार चलती रही—बढ़ती ही गई। शोक-संतप्त लोग अपने प्रिय गुरु की एक झलक पाने के लिए लालायित थे। सूर्योदय होने पर महासतिगण भी गंगवाल भवन संतों के दर्शनार्थ पधारे। अश्रुनिपात करते सतीमंडल के पदार्पण से निःस्तब्ध वातावरण और अधिक गमगीन हो गया। सुबकते हुए आने वाले लोगों की वह असंख्य भीड़ जब संत-सतीगण के दर्शन करती तो वातावरण और बोझिल बन जाता। वह दृश्य अत्यन्त करुणार्द्र था। चारों ओर उस शोकपूर्ण वातावरण से घिरे हम लोग भी अपने दुःख के आवेग को रोक पाने में असफल थे।

चारों दिशाओं से आने वालों का यह अटूट तांता बढ़ता गया। पल-प्रतिपल भीड़ बढ़ती जा रही थी। अनगिनत जन-समुदाय उमड़ पड़ा। जिधर भी दृष्टिनिपात करें, उधर ही असंख्य जन समुदाय। निमाज क्षेत्र के इतिहास में यह प्रथम अवसर था, जब इतनी भारी भीड़ एकत्र हुई हो। बसें, मेटाडोर, जीप, ट्रक, ट्रेक्टर व कारों के लिये गाँव के बाहर खेतों में अलग पार्किंग व्यवस्था करनी पड़ी।

अंतिम दर्शनों की होड़ सी लगी हुई थी। छोटे से गांव में इतने सारे लोग। किन्तु वहां के सकल श्रीसंघ व गांव के सभी लोगों का उत्साह अद्वितीय था, ज्यों-ज्यों आने वाले बढ़ते गये, त्यों-त्यों उनका उत्साह बढ़ता गया। पुण्योपार्जन का ऐसा अवसर भला कहाँ मिलता ? सभी के मन में एक ही चाह—कही कुछ कमी न रह जाय ? तन-मन-धन सर्वस्व समर्पण किये वे सभी ग्रामवासी व्यवस्था व आगत बन्धुओं की सेवामें दौड़ रहे थे।

उत्साही ग्रामवासियों का विचार था कि महाप्रयाण-यात्रा गांव के मुख्य-मुख्य मार्गों व बाजार से होकर निकाली जाय, पर जनसमूह की अपार संख्या को देखकर यह विचार स्थगित करना पड़ा। यह अपार जनसागर गलियों में कहाँ समा पाता ? कहीं तिल भर भी जगह न थी। जहां भी नजर जा पाती, आदमी ही आदमी नजर आते, मानो अपार जनसागर उमड़ पड़ा। नियन्त्रण हेतु वहां उपस्थित पुलिस जन भी उस जनसमूह के प्रबल वेग को नियंत्रित करने में अपने आपको अक्षम पा रहे थे। व्यवस्थापकों द्वारा ध्वनियंत्र पर दिये जा रहे निर्देश उस अपार जनसमूह के कोलाहल में डूबे जा रहे थे। सांसद, विधायक

मंत्री, मुख्यमंत्री, राजनेता, न्यायविद्, पत्रकार, समाजसेवी, कार्यकर्तागण भी भक्तजनों की इस अपार भीड़ में सम्मिलित हो, उन तपोपूत महासाधक के अंतिम दर्शन कर अपने आपको गौरवान्वित पा रहे थे।

राज्य सरकार ने उन षटकाया प्रतिपाल अंहिसा व अभय के दूत श्रमण रत्न को श्रद्धांजलि स्वरूप पूरे राज्य में बूचड़खाने व मांस-विक्रय बंद रखने का आदेश प्रसारित किया जिसका पूरा पालन किया गया। अनेक ग्राम-नगरों में बाजार भी पूर्णतः बन्द रहे।

निश्चित समयानुसार ठीक एक बजे, जब महाप्रयाण यात्रा के लिये अर्थी उठाई गई, तो वहाँ उपस्थित लक्षाधिक भक्तों के धैर्य का बांध टूट पड़ा, अपने पर संयम रख पाना अत्यधिक कठिन हो गया। पलकें नम हो गई, हमारे चेहरे बुझे हुये थे, अपने अजीज रहनुमा को आखरी विदाई दी, अब किसे देखें, किसे निहारें, निढाल तन, बोझिल मन। अब कौन करेगा रिक्तता पूरी, अब सबकी दुनिया आदि अधूरी। सभी विरह-वेदना का इजहार आंसुओं की अनवरत धारा से कर रहे थे। अत्यन्त करुणाजनक दृश्य था। पर पूज्य गुरुदेव श्री की आकृति में वही ध्यानमुद्रा की सी गहरी शान्ति, मुख-मंडल पर अब भी वही तेज, चेहरे पर वही चिर परिचित दिव्य आभा। चारों ओर से गुरु हस्ती अमर रहें की जय-जयकार।

लोगों की जुबानी :

जैन-जैनेतर, आबाल वृद्ध युवक, पुरुष व महिला, सभी इस महनीय महासाधक की इस महाप्रयाण की वेला में उपस्थित थे, यहां जाति, धर्म, लिंग, वय, सम्प्रदाय व स्तर का न कोई बंधन था, न कोई दीवार थी। जो भी था वह उन श्रमण श्रेष्ठ का पुजारी था, सभी उन महापुरुष की इस महाप्रयाण-यात्रा को व्यथित हृदय, बोझिल मन, बरसते नयनों से देख रहे थे।

'इमां की शान जिसको अजीज थी, अपनी जान से।
वो खिज्र जा रहा है, देखो कितनी शान से।।'

जिस हस्ती के विराजने से वह गगवाल भवन तीर्थ बना हुआ था, वहां के कोने-कोने से जिस महापुरुष की संयम-साधना की महक आ रही थी, आज वही महापुरुष भक्तों के कंधों पर आसीन, इस भवन को वीरान कर जा रहा था। श्रद्धालु भक्तों ने हाथोंहाथ मांडी (अर्थी) को कंधा दिया और धीरे-धीरे वह (अर्थी) गगवाल भवन के बाहर पहुँची। हर कोई कंधा देने को उतावला—

उसे छू भर लेने को आतुर, पर मांडी (अर्थी) तक पहुँच पाना क्या सरल था ? चलने को वहाँ जगह ही कहाँ थी, बस धकेले ही जा रहे थे—फिर भी हर एक व्यक्ति वहाँ तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा था, हर एक के मन में यही एक चाह थी कि मैं भी कंधा दे सकूं। जैसे अथाह सागर में वायु के वेग से नाव इधर-उधर हिलोर खाती है वैसे ही जन-समूह के कंधों पर वह अर्थी हिलोरें खा रही थी। जो भी कंधा देने अथवा परम पावन गुरुदेव के चरण-स्पर्श कर पा लेने में सफल रहा उसे लगा मानों जीवन सफल हो गया हो, मानों जन्म-जन्म की साधना पूरी हो गई हो, मानों उसने त्रैलोक्य का साम्राज्य प्राप्त कर लिया हो। इस आतुरता में कई लोग गिर पड़े, कुछ गिरते-गिरते बचे, पर इस अपार जन सैलाब में भी कोई धक्का-मुक्की नहीं, किसी को कोई चोट नहीं, गुरु-कृपा से सभी सकुशल। लोगों की जुबां पर एक ही बात—ऐसी भीड़ न कभी देखने में आई न सुनने में आई।

भंडारी उपवन तक रास्ते भर सभी मकानों की छतों पर अनगिनत बहिनें व वृद्ध भक्तगण अन्तिम दर्शन हेतु खड़े थे। सभी हाथ जोड़ नत मस्तक थे उस कर्मयोगी आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि सर्मपित करने को। महाप्रयाण-यात्रा में सबसे आगे कई स्थानों से आई हुई भजन-मंडलियां व मातमी धुन बजाते बैंड बाजे माहौल को और गम्भीर बना रहे थे। शोक-संतप्त निमाज ग्राम का कण-कण, चप्पा-चप्पा धन्य-धन्य हो गया, पूज्य गुरुवर्य के नाम के साथ सर्वदा के लिये जुड़ गया। उपस्थित सभी दर्शनार्थी अतीत की स्मृतियों में खोये, गुरु-सेवा में बिताये अपने जीवन-क्षणों को अपने जीवन की अमोल थाती माने, उन क्षणों को पुनः-पुनः स्मरण करते आगे बढ़ते जा रहे थे। सभी का अपना, सभी का सर्वस्व, सभी का जीवनधन आज चिर यात्रा की ओर चल पड़ा। हर दिल से एक ही ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी—क्या इस युग में ऐसा युग पुरुष जन्म ले पायेगा ? क्या हम अपने जीवन में ऐसे महापुरुष के दर्शन व सान्निध्य का लाभ ले पायेंगे ? पर वे तो युग-पुरुष थे, ऐसा महापुरुष तो सदियों में एक होता है—

'मौत उसकी है जिसका जमाना करे अफसोस।
यूं तो दुनिया में आए है सभी मरने के लिए ॥'

अंततः महाप्रयाण-यात्रा भंडारी उपवन पहुँची। उपवन के बीचोबीच अन्तिम संस्कार की पूर्ण तैयारी की जा चुकी थी। उस अपार जनसमूह को नियन्त्रित करने पुलिस-दल व कार्यकर्ता सचेष्ट पर भला सागर की उत्ताल तरंगों को भी भला कोई बांध पाया है ? रोक पाया है ? तो इन भावाभिभूत आतुर भक्तों के सैलाब को कौन रोक पायेगा ? जिसको भी जहां स्थान मिला, सभी

वन्धन तोड़कर लोग वैठ गये। हर भक्त दर्शन की अन्तिम झलक को आतुर! सैकड़ों लोग वृक्षों पर वैठे यह दृश्य देख रहे थे तो कई लोग अन्तिम दर्शन कर अपने नयनों को परितृप्त कर पाने हेतु ऊंटों पर वैठकर यह नजारा देख रहे थे।

चंदन चिता सजी हुई थी, अनगिनत नारियलों की चारों ओर से वरसात हो रही थी। व्यवस्थापकों द्वारा वार-वार ध्वनियंत्र पर निवेदन किये जाने पर भी हर आतुर व्यक्ति अपनी श्रद्धांजलि स्वरूप नारियल चिता की ओर वरसाये जा रहा था, तो गहन गंभीर भक्तजन अपने द्वारा लाये गये नारियल स्वयंसेवकों के माध्यम से आगे भिजवा रहे थे। अपराह्न २ वजकर ४० मिनट पर उस महासाधक की तपोदीप्त देह को चंदन चिता पर रख दिया गया। चारों ओर से 'हस्ती गुरु अमर रहे,' 'जव तक सूरज चाँद रहेगा, हस्ती गुरु का नाम रहेगा' के नारे लगाते उन अनगिनत भक्तों की उपस्थिति में जव पूज्य गुरुवर्य के निकट सांसारिक परिजन सर्वश्री सहजमलजी सा. वोहरा, संघाध्यक्ष श्री मोफतराजजी सा. मुणोत व सागरमलजी भंडारी ने उन महनीय योगिवर्य की उस पावन देह को धधकती अग्नि को समर्पित किया, तो सभी भक्तगण रो पड़े। सव स्तव्ध एवं पस्त थे। एक युग का अंत हो गया, दिनकर अस्त हो गया। अव उनका वह परम पूज्य गुरुवर्य अनन्त में विलीन हो चुका था। वह विहँसता मुख-मण्डल, वे विहँसती आँखें, आशीर्वाद देते वे वरद हस्त, सदैव आगे वढ़ते वे कदम, सभी कुछ तो इस सर्वहारा अग्नि को समर्पित हो चुके थे, अव कुछ शेष थी तो मात्र स्मृतियां! उन स्मृतियों को अपने दिल में संजोये, उनके गुण स्मरण करते वे असंख्य भक्त-जन अपने खाली हृदय लिये अपने-अपने स्थानों के लिये लौट पड़े। सभी भक्तगण के हृदय से यही प्रतिध्वनि व्यक्त हो रही थी—

'धीर वीर निर्भीक सत्य के, अनुपम अटल पुजारी।
तुम मर कर भी अमर हो गये, जय हो सदा तुम्हारी॥'

अनन्त में लीन हो चुके अपने महनीय गुरुवर्य के गुण-स्मरण करते वे असंख्य दर्शनार्थी भक्तजन अपने-अपने गंतव्य स्थानों के लिये रवाना होने से पूर्व गंगवाल भवन में विराजित सन्त-मण्डल के दर्शनार्थ पहुँचे।

गंगवाल भवन में सायंकाल ५ वजे श्रद्धाञ्जलि सभा का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के वहाँ उपस्थित प्रमुख प्रतिनिधि श्रावकों ने उन दिवगंत गुरु भगवन्त को अपने अवरुद्ध कण्ठों से भावाभिभूत श्रद्धा-सुमन समर्पित किये। सभा के अन्त में न्यायाधिपति श्री जसराजजी चौपड़ा

ने परम पूज्य गुरुदेव द्वारा भावी संघ-व्यवस्था सम्बन्धी स्वहस्त लिखित पत्र जो पूज्य गुरु भगवन् द्वारा संघ के वयोवृद्ध श्रावक, अनन्य संघ सेवी श्रीमान् उमरावमलजी सा. ढढ्ढा एवं श्री नथमलजी हीरावत को सुपुर्द किया गया था, चतुर्विध संघ की उपस्थिति में पढ़ कर सुनाया जिसमें पूज्य गुरुवर्य ने भावी संघ-व्यवस्था सम्बन्धी निर्देश देते हुए लिखा था कि श्री हीरा मुनिजी म. सा. भावी आचार्य व श्रद्धेय श्री मान मुनिजी म. सा. संघ के उपाध्याय होंगे। उपस्थित जनसमूह द्वारा आचार्य श्री हीराचन्दजी म. सा. की जय, उपाध्याय श्री मानचन्दजी म. सा. की जय के जयनिनादों के साथ सभा विसर्जित हुई।

रात्रि में वर्षा का समय न होने पर भी लगभग १० बजे अचानक व्योम-मण्डल मेघाच्छादित हो गया, बिजलियाँ चमकने लगीं व ओलों की तीव्र वेग के साथ वर्षा होने लगी। यह वर्षा मात्र निमाज व समीपवर्ती क्षेत्रों में ही हुई। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों स्वयं इन्द्रदेव भी इन श्रमणश्रेष्ठ महासाधक को अनवरत मेघ-धारा द्वारा श्रद्धा-सुमन समर्पित कर रहे थे। महान् विस्मय जैसा कि जनश्रुति से सुनने में आया, भंडारी उपवन में उस ज्योतिर्मान चिता के चारों ओर ओलों व पानी की वर्षा हो रही थी, पर चिता ज्यों की त्यों प्रज्वलित रही।

आज जब यह इतिवृत्त लिखते पूरे घटनाक्रम पर एक नजर जाती है तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन महामनीषी को अपने अन्तिम समय का पूर्व भविष्य-दर्शन हो गया था एवं उन युगप्रधान आचार्य भगवन्त ने मृत्युवरण का जो नियोजित स्वप्न संजोया, उसी के अनुसार सारा घटनाक्रम घटित हुआ। वस्तुतः महापुरुषों के वचन तो अमोघ होते है, उनके वचन कभी निष्फल नहीं होते, उनके मुख से निकले सहज वचन भावी घटनाक्रम का अनायास संकेत दे जाते है, समझने वाला उसे समझ पाये या न समझ पाये।

जहाँ एक ओर पूज्य भगवन् ने हर भक्त को, हर दर्शनाभिलाषी को चाहे वह पैदल चला हो, चाहे किसी वाहन से, दर्शन का अवसर सुलभ किया, हर भक्त की भावना पूर्ण हुई पर जब महासती जी तेजकंवरजी आदि ठाणा ३ के बार-बार विहार की अनुमति की प्रार्थना गुरु-चरणों में अर्ज की गई तो दीर्घ-दृष्टा गुरुवर्य के मुँह से सहज ही निकल पड़ा कि महासतीजी को दर्शन नहीं हो पायेंगे। सबने देखा कि महासतीजी सवाईमाधोपुर क्षेत्र से निरन्तर उग्र विहार कर पधारे पर मात्र २ दिन का अन्तराल रह गया। और वे परम पूज्य भगवन्त के अन्तिम दर्शन से वंचित रहे।

इसी प्रसंग पर आज से ६ वर्ष पूर्व पूज्य गुरुवर्य द्वारा प्रगट किया गया भविष्य-दर्शन आँखों के सामने सजीव हो उठा। रेनवो हाउस जोधपुर में चातुर्मास काल में रोगाक्रान्त होने पर जब स्वास्थ्य की स्थिति काफी नाजुक थी तब श्रद्धेय श्री हीरा मुनिजी म. सा. द्वारा सहज रूप से निवेदन करने पर कि भगवन् अन्तिम समय की जानकारी अवश्य देना। भगवन् सहज रूप से बोले—भाई, अभी समय नहीं आया है। आगे अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव के स्थान का निर्देश देते हुए भगवन् के मुख से निकल पड़ा—वहाँ बगीचा होगा, कुआ होगा, पास में पाठशाला होगी, मन्दिर होगा, वह मकान राजमार्ग पर स्थित होगा, विशाल परिसर होगा। श्री हीरा मुनिजी म. सा. ने सहज ही ये बातें अपने दैनिक दैनन्दिनी–टिप्पण में नोट कर ली। ये सारी बातें शत-प्रतिशत वैसी की वैसी गंगवाल भवन के प्रसंग में सत्य सिद्ध हुई।

अब तो गुरुवर्य! मात्र आपकी स्मृतियाँ ही शेष हैं। ये स्मृतियाँ ही समय-समय पर हमारा पथ प्रशस्त करेंगी—

"तू नहीं तेरी उल्फत, हर किसी के दिल में है।
शमा तो बुझ चुकी, रोशनी महफिल में है।।"

शरीर विनश्वर है, आत्मा अमर है। फूल बिखर जाता है पर उसकी सौरभ वातावरण को सुरभित कर जाती है। व्यक्ति चला जाता है, व्यक्तित्व अमर रहता है, कृतित्व युग-युग तक प्रेरणापुंज बना रहता है। वह पावन देह भले ही अनन्त में विलीन हो गई पर उनकी गुण-सौरभ हम सबके जीवन को सदैव सुरभित करती रहेगी, उनके सन्देश सदैव आने वाली पीढ़ियों को साधना की राह दिखाते रहेंगे। उनकी पावन स्मृतियाँ सदैव सम्बल देती रहेंगी।

सर्वत्र गुण-सौरभ महकाने वाला वह नन्दनवन, लाखों भक्तों का आश्रय-दाता, स्नेहिल सान्निध्य प्रदाता वह विराट् वटवृक्ष आज भले ही स्थूल शरीर से हमारे सामने दृष्टिगोचर न हो पर अमरलोक से वह अपनी पवित्र पावन गुण-रश्मियाँ बिखेर रहा है। वह जहाँ विराजमान है, वहीं से प्रेरणास्रोत बन कर चतुर्विध संघ को उठो, आगे बढ़ो की मंगल प्रेरणा दे रहा है। वह वहीं से हमारे अज्ञान-तिमिर को नष्ट कर ज्ञान-आलोक से हमारे जीवन को आलोकित कर रहा है। नयनों में वह छवि सदा छाई रहेगी। हृदय में वह मूर्ति सदा बसी रहेगी, कानों में उसका नाद सदैव गूंजता रहेगा, होठों पर सदा उसकी गुण-गरिमा स्फुरण करती रहेगी। वह युग-पुरुष मिट नहीं सकता, वह महापुरुष तो आप हम सब, चतुर्विध संघ के पावन मनों में, साधक जीवन में सदा प्रगट होता

रहेगा। वह महायोगी तो अजर है, अमर है, अमर रहेगा एवं समग्र मानव जाति को अपना पवित्र पावन मंगलमय शुभ सन्देश देता रहेगा।

आइये, आप हम सब उन कृपासिन्धु पूज्य गुरुवर्य का गुण-स्मरण करते हुए उनके द्वारा आलोकित पथ पर आगे बढते हुए, अपने जीवन को साधना-सौरभ से सुरभित करें व उन महापुरुष के सन्देशों को जन-जन, डगर-डगर तक पहुँचाने का संकल्प करें क्योंकि इन्ही सन्देशों के रूप में भगवन् सदा हमारे-आपके, सबके साथ रहेगे—

गुरु हस्ती का पावन था, जीवन-सन्ध्याकाल।
'मुनि गौतम' ने लिखा है, आँखों देखा हाल ।।



विद्या और विद्वान्

- वास्तविक विद्या वही है, जिसके द्वारा मानव अपने स्वरूप को समझता है, आत्मोन्मुख होता है और उसको निश्चय हो जाता है कि संसार में सार क्या है।

- यदि विद्वानों का मस्तिष्क जागृत रहता है तो वे अपना प्रभाव लोगो के मन पर डाल सकते है। यदि उनका दिमाग विकृत हुआ तो उलटा असर पड़ सकता है।

- जहाँ विद्वानों को दबाकर रखा जाय और बावलों को ऊपर लाया जाय, वहाँ अविवेक है।

—आचार्य हस्ती

आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. के सुशिष्य पूज्य आचार्य श्री हीराचन्दजी म. सा. एवं परम श्रद्धेय उपाध्याय पं. रत्न श्री मानचन्द्रजी म. सा. के आज्ञानुवर्ती संत-सतीगणों के सवत् २०४८ के स्वीकृत चातुर्मास

क्र.	रत्नवंश के संत–सतीगण	सम्पर्क-सूत्र
१.	**जोधपुर (राजस्थान)** श्रद्धेय पूज्य आचार्य प्रवर श्री हीराचन्द्रजी म. सा., श्रद्धेय उपाध्याय पं. रत्न श्री मानचन्द्रजी म. सा. आदि ठाणा १०	श्री अनराजजी बोथरा, मंत्री श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, घोड़ों का चौक, जोधपुर-३४२००१ फोन–का. २४८९१, नि. २२१२३
२.	**मेड़ताशहर (जि. नागौर) राज.** पं. रत्न श्री शुभेन्द्रमुनिजी म. सा. आदि ठाणा २	श्री श्रीचन्दजी डोसी मै. देवकरण श्रीचन्द कमीशन एजेन्ट, कृषि मण्डी, मेड़तासिटी-३४१५१० फोन १४, १८१, १४४
३.	**बिलाड़ा (जि. जोधपुर) राज.** रोचक व्याख्याता श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. आदि ठाणा २	श्री मोहनलालजी कटारिया, कटारिया एजेन्सीज, बस स्टेण्ड के पास, बिलाड़ा-३४२६०२
४.	**जोधपुर (राज.)** साध्वी प्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री वदनकंवरजी म. सा. आदि ठाणा ६	श्री अनराज बोथरा, मंत्री श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ घोड़ों का चौक, जोधपुर-३४२००१ फोन–का. २४८९१, नि. २२१२३
५.	**बारनी (वाया-भोपालगढ़) राज.** सरल हृदया महासती श्री सायरकंवरजी म. सा. आदि ठाणा ३	श्री देवरूपचन्दजी भण्डारी, मंत्री श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, पो. बारनी खुर्द-३४२६०३ वाया–भोपालगढ़ (जि. जोधपुर)
६.	**बजरिया (सवाईमाधोपुर) राज.** शासन प्रभाविका परम विदुषी महासती श्री मैनासुन्दरीजी म. सा. ठाणा ८	श्री महावीर प्रसादजी लोहिया, अध्यक्ष श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ महावीर आयरन एण्ड टिम्बर मर्चेन्ट बजरिया (सवाई माधोपुर)
७.	**नसीराबाद (जि. अजमेर) राज.** सेवाभावी महासती श्री सन्तोषकंवरजी म. सा. आदि ठाणा ५	श्री ताराचन्दजी मुणोत २०३, सदर बाजार नसीराबाद-३०५६०१ (राज.)
८.	**भोपालगढ (जि. जोधपुर) राज.** शांत स्वभावी महासती श्री शांतिकंवरजी म.सा. आदि ठाणा ४	श्री मदनचन्दजी कांकरिया, मंत्री श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक सघ भोपालगढ़-३४२६०३
९.	**किशनगढ़ (जि. अजमेर) राज.** व्याख्यात्री महासतीश्री तेजकंवरजी म.सा. (निर्मलावतीजी) ठाणा ३	श्री सौभाग्यमलजी लोढा सिंघवियों का मोहल्ला, किशनगढ़-३०५८०२

सामायिक साधन करलो

जीवन उन्नत करना चाहो तो, सामायिक साधन करलो ।
आकुलता से बचना चाहो तो, सामायिक साधन करलो ।।
चेतन निज घर को भूल रहा, पर घर माया मे झूल रहा ।
सद् चित् आनन्द को पाना हो तो, सामायिक साधन करलो ।।

— आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.